Dr. C.V. Raman D. Sc., F.R.S. (Born 1888)
Nobel Prize 1930 *Lenin Peace Prize 1958*
Dr. C.V. Raman is the only Scientist of our country who *has won the nobel Prize.*

सामान्य-शिक्षा

प्रथम भाग

(A TEXT BOOK OF GENERAL EDUCATION)

According To The Syllabus Prescribed By Rajasthan University for the Frist year Class of Three year Degree Course of Science, Commerce & Arts Faculties.

लेखक :
हरीशचन्द्र भारतीय, एम. एस. सी.,
रणजीत सिंह दरड़ा, एम. ए. एल. एल. बी.,
कॉमर्स कालेज, जयपुर

(तृतीय संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण)

१९६०

आशा पब्लिशिंग हाउस,
जयपुर

मूल्य : ६—५०

चित्रकार : रामकिशन शर्मा

मोहन लाल जैन, आशा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर द्वारा : प्रकाशित
तथा नवल प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर में . मुद्रित

निवेदन

'जनरल एज्यूकेशन' का पठन त्रिवर्षीय डिग्री शिक्षा को सर्वांगीण बनाने की दिशा में एक नया प्रयास है। कला, वाणिज्य और विज्ञान के विद्यार्थी से यह आशा तो की ही जाती है कि वह जिन विषयों का अध्ययन करता है उनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी रखता है। किन्तु ज्ञान-विज्ञान के अन्य क्षेत्र में शून्य रहना इस युग में अनुपयुक्त ही नहीं लगता है वरन् यह निश्चित है कि यह शून्यता उसके समुचित मानसिक विकास में बाधा बन कर आ सकती है। शिक्षा विशेषज्ञों का ऐसा विचार है कि आज का डिग्री प्राप्त विद्यार्थी विज्ञान, समाज-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र और इतिहास आदि के विकास क्रम की रूप-रेखा से अवश्य परिचित हो। इस दृष्टि से 'जनरल एज्यूकेशन' का पाठ्यक्रम में समावेश करना अत्यन्त सामयिक है। इसकी उपयुक्तता होते हुए भी यह सही है कि नया विषय होने के कारण इसकी रूपरेखा स्पष्ट होने में समय लगेगा। अतः इस विषय पर पाठ्य पुस्तक लिखने में बहुत बड़ी व्यवहारिक कठिनाई हुई है। सौभाग्य से हमें इस विषय को पढ़ाने का जो भी थोड़ासा अनुभव हुआ है वह इस प्रयास में काफी सहायक सिद्ध रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक प्रथम वर्ष के डिग्री छात्रों के राजस्थान विश्व-विद्यालय द्वारा निर्धारित जनरल एज्यूकेशन के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर तैयार की गई है। निर्धारित पाठ्यक्रम में कुछ विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। किन्तु हायर सेकेन्ड्री से आने वाले विद्यार्थियों की अस्पष्ट पृष्ट-भूमि के कारण यह निश्चित करना सरल नहीं कि उन विषयों की व्यापकता कहां तक रखी जावे। पुस्तक में भाषा व शैली यथासम्भव सरल रखने का प्रयास किया गया है। वैज्ञानिक शब्दों के प्रमाणिक

रूपान्तर किये गये हैं परन्तु साथ ही उनके अंग्रेजी रूप भी दिये गये हैं। हमारा विश्वास है कि 'टैकनिकल' शब्दों का हिन्दी भाषा में समावेश कर लिया जाय तो उत्तम है क्योंकि उनका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है।

इस पुस्तक को प्रस्तुत करने में निसन्देह हमें अनेकों विद्वानों की कृतियों से सहायता लेनी पड़ी हैं जिसके लिए हम हृदय से आभारी हैं। हम आदरणीय डा० दयाकृष्ण माथुर, अध्यक्ष प्राणी शास्त्र विभाग, जसवन्त कालेज जोधपुर के विशेष कृतज्ञ हैं जिन्होंने पुस्तक का प्राक्कथन लिख कर हमें उत्साहित किया है।

पुस्तक अत्यन्त शीघ्रता से लिखी गई है जिससे त्रुटियां रहना स्वाभाविक है अतः विज्ञ पाठकों से आलोचना व उसके सुधार सम्बन्धी सुझाव सहर्ष आमन्त्रित हैं।

आशा है पुस्तक छात्रों को लाभकारी सिद्ध होगी।

निवेदन तृतीय संस्करण

इस सत्र के मध्य में ही सामान्य शिक्षा के प्रथम भाग के द्वितीय संस्करण की समाप्ति होना तथा विद्यार्थी वर्ग द्वारा बराबर पुस्तक की माग बनाए रखना इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि पुस्तक जिस उद्देश्य को लेकर लिखी गई है उसमे अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई है। हम उन प्राध्यापक महोदयों तथा विद्यार्थियों के आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक को अपनाकर इसके तृतीय संस्करण की आवश्यकता प्रस्तुत की है।

तृतीय संस्करण में त्रुटियों को दूर करके सुधार सम्बन्धी सुझावों के अनुसार कुछ स्थानों पर पाठ्यसामग्री को आवश्यकतानुसार घटा-बढा दिया गया है। आशा है पाठकगण इस संस्करण का भी उत्साहपूर्वक स्वागत करेंगे तथा अपने अमूल्य सुझाव भेजकर पुस्तक की उपयोगिता को अधिकाधिक बढाने में योग देंगे।

लेखक—द्वय

BIBLIOGRAPHY

NATURAL SCIENCE.

Book — Author

(1) The Earth and its Mysteries : G. W. Tyrrell.
(2) General Biology : Kenoyer, Goddard and Miller.
(3) Biology the Science of Life : Macdougall and Hegner.
(4) Fundamentals of Biology : J. W. Stork and L. P. W. Renouf.
(5) An Illusrated History of Science : F. Sherwood Taylor.
(6) General Zoology : Tracy I. Storer.
(7) Limitations of Science : J. W. N. Sullivan.
(8) Introductory General Science : L. M. Parsons.
(9) Organic Chemistry : Sarkar and Rakshit.
(10) Biology for Beginners : T. C. Nandi.
(11) Animals without Backbone : Ralph Buchshaum.
(12) Origin of Cells : O B. Lepeshinskaya.
(13) Samanya Vigyan : *Rajasthan university publication.*

SOCIAL SCIENCE

Books. — Authors.

A Survey of Indian History : K. M. Pannikar.
Early Indus Civilization : Earnest Mackey.
Mohanjo daro and the Indus Civilization : Marshall, Mackey and others.
Vedic India : Ragozin.

Title	Author
Rigvedic India :	A. C. Das.
Rigvedic Culture :	A. C. Das.
Ancient Indian History and Civilization :	Mazumdar.
Hindu Civilization :	R. K. Mukerjee.
History of Greece :	Robinson.
History of Rome :	Robinson.
Short History of Chinese Civilization :	R. Wilhelm.
Nile and Egyptian Civilization :	A. Moret.
Outline of History :	
World History :	Weech.
Age of Imperial Guptas :	Banerjee.
Ancient Indian Colonies in the Far East :	Mazumdar.
Influence of Islam on Indian Culture :	Tarachand.
Our Heritage :	Humayun Kabir.
Studies in Mughal India :	Sarkar.
Our Cultural Heritage :	Ishwar Topa.
Indian Culture :	Dutt.
World History :	H. A. Davis.
Story of Civilization :	W. Durant.
Political Theory :	Asirvadam.
Recent Political Thought :	F. W. Coker.
Modern Political Theory :	Joad.
Socialism :	Spargo.
Elements of Political Science :	J. P. Sood.
राजनीति शास्त्र की विवेचना :	पंड्या और श्रीवास्तव
भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास :	सत्यकेतु विद्यालंकार
भारतीय संस्कृति का इतिहास	एम. एन. शर्मा
राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त I & II :	गुप्ता और सबरवाल
आधुनिक राजनैतिक विचार धारायें :	एस. एन. सिसोदिया
भारतीय कांग्रेस का इतिहास :	डा० पट्टाभि

विश्व इतिहास की एक झलक :	जवाहरलाल नेहरू
मानव जाति की प्रगति :	भगवानदास केला
मानव समाज :	रघुराज गुप्त
मानव की कहानी I & II :	रामेश्वर गुप्त
समाज विज्ञान :	चन्द्रराज भण्डारी
सामाजिक अध्ययन :	वर्मा एवं सक्सेना
मध्यकालीन भारतीय संस्कृति :	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
विश्व इतिहास की रूप रेखा :	डा० आशीर्वादी लाल
नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त :	बी. एन. मेहता
भारतीय शासन एवं नागरिक जीवन :	बी. एन. मेहता
प्राचीन भारत का इतिहास :	डा० रमाशंकर त्रिपाठी
भारतीय संस्कृति के चार अध्याय :	दिनकर
राजनीति शास्त्र :	सत्यकेतु विद्यालंकार
भारत का इतिहास :	ईश्वरीप्रसाद
भारत का सांस्कृतिक इतिहास I &II :	हरिदत्त वेदालंकार

विषय-सूची

प्रथम खण्ड—सामान्य विज्ञान

द्वितीय खण्ड—सामाजिक विज्ञान

प्रथम खण्ड

सामान्य विज्ञान

(GENERAL SCIENCE)

१ पृथ्वी का विकास
(Evolution of Earth)

पृथ्वी की उत्पत्ति और विकास के रहस्य को समझने की जिज्ञासा प्रायः हर व्यक्ति मे पाई जाती है। जहां तक पृथ्वी की उत्पत्ति का प्रश्न है, अनेक प्रकार के विभिन्न मत पाये जाते हैं। इन मतो को हम मुख्य रूप से दो भागो मे विभक्त कर सकते है—

(१) धार्मिक और (२) वैज्ञानिक

(१) धार्मिक मत : जब तक मनुष्य समाज मे वैज्ञानिक प्रगति नही हुई तब तक प्रत्येक प्राकृतिक रहस्य का उत्तर धर्म एवं ईश्वर के आधार पर दिया जाता था। संसार के प्रायः सभी धर्मों ने सृष्टि की रचना के विषय में अपना कुछ न कुछ मत दिया है। हिन्दू धर्म विष्णु की नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि की रचना होना मानता है जब कि ईसाई धर्म की मान्यता है कि ईश्वर ने छः दिन मे सारी सृष्टि की रचना की तथा सातवें दिन विश्राम किया। ये मत केवल ऐसे विश्वासों पर आधारित हैं जिन्हें तर्क और विवेक की कसौटी पर नही कहा जा सकता है।

(२) वैज्ञानिक मत : विज्ञान की प्रगति के साथ ही दिन प्रतिदिन पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य तारो और ग्रहो के विषय मे अधिकाधिक जानकारी प्राप्त होने लगी। विशेष तौर से वैज्ञानिक अवलोकन तथा गणित के आधार पर ब्रह्माण्ड एवं पृथ्वी की रचना के विषय में भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए गए। यहा हम मुख्य-मुख्य मतो का विवेचन करेंगे।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति (Origin of Universe)

सर्व प्रथम यह बात मानने वाले कि विश्व प्राकृतिक नियमों के अनुसार कार्य करता है तथा उसे विवेकशील तर्कों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है, ग्रीक विद्वान थे। ई० पू० ५८० से ई० पू० ४५० के बीच थेल्स (Thales) नाम के विद्वान ने पृथ्वी को एक ऐसे बिम्ब (disc) के समान माना था जो पानी पर तैर रहा हो। एनेक्सीमेण्डर (Anaximander) ने बतला कि तारों के समूह ध्रुव तारे के चारों ओर घूमते रहते हैं। आगे चलकर एरिस्टार्कस (Aristarchus) ने सबसे पहले यह विचार रखा कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर गोलाकार मार्ग पर घूमती है। यह विचार उस पिछड़े हुए युग के अनुसार अत्यन्त प्रगतिशील था और इसीलिए इस विचार को १६वीं–१७वी शताब्दि तक मान्यता नहीं मिली।

संसार के सम्भवतः प्राचीनतम ग्रंथ वेदो में भी आकाश मण्डल का विस्तृत वर्णन आता है। इससे प्रतीत होता है कि आर्य ऋषियों का ज्योतिष ज्ञान काफी बढा चढा था। वेदो में वर्णित सप्तर्षि जैसे तारो के समूह की स्थिति से लोकमान्य तिलक ने वेद-काल की गणना की है।

उपरोक्त विचार अधिकतर सौरमण्डल के रहस्यो तक ही सीमित थे। आगे चलकर ब्रह्माण्ड के विषय में अनेक प्रकार के सिद्धान्त-प्रतिपादित किये गये।

आधुनिक सिद्धान्त

आकाश मंडल सम्बन्धी आधुनिक सिद्धान्तों की सहायता से आकाश में पाई जाने वाली लाखों आकाश गंगाओं (galaxies) की उत्पत्ति एवं विकास को समझना काफी सरल हो गया है। आधुनिक सिद्धान्तो को दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है—

(१) एक श्रेणी में गेमो (Gamow), लामेटर (Lemaitor) आदि के सिद्धान्त आते हैं। इनके अनुसार ब्रह्माण्ड का समस्त पदार्थ किसी

समय एक अत्यन्त घनीभूत (Compressed and Compact) गोलाकार पिण्ड के रूप मे एकत्रित था। उसकी सघनता इतनी थी की उसके एक Cubic Centimetre टुकड़े का भार दस करोड (100millions) टन मे कम नही था। इस पिण्ड का तापक्रम भी करोड़ो डिग्री रहा होगा। ऐसी स्थिति वाला पिण्ड अधिक समय तक नही बना रह सकता था। वह आकार मे बढ़ने लगा। साथ ही साथ उसका तापक्रम भी कम होने लगा। जब यह प्रक्रिया चलने लगी तब पदार्थ के मूलकण प्रोटोन, इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन आदि मिलकर परमाणु मे बदलने लगे। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के तत्वो का निर्माण प्रारम्भ हुआ। ठण्डा होता हुआ आकार मे बढ़ता हुआ पदार्थ का यह पिण्ड मुख्य रूप से हाइड्रोजन और हीलियम का बादल था। हाइड्रोजन और हीलियम के इस पुञ्ज मे अन्य तत्व बारीक कणों के रूप मे तैर रहे थे। इस प्रकार के बादल आज भी आकाश मे दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हें अन्तरिक्ष रज के बादल (clouds of cosmic dust) कहते हैं। कालान्तर मे भिन्न-भिन्न तत्वो के पारस्परिक आकर्षण के कारण नये पदार्थ का संघटन होता गया। तदनन्तर यह संघठित पिण्ड बड़े बडे गैस-बादलो (gas clouds) मे टूट गया। जब गैस बादल मुख्य पिण्ड से टूट कर अलग हुए तब वे अत्यन्त तीव्रगति से उसी प्रकार घूमने लगे जैसे तोप से निकले हुए गोले के टुकडे घूमते हैं। इन्ही घूमते हुए बादलो से संघनन (condensation) तथा दबाव के फलस्वरूप उत्पन्न तापक्रम के कारण धीरे धीरे सूर्य (suns) बनने लगे।

(२) दूसरी श्रेणी के सिद्धान्त होयल (Hoyle), बोन्डी (Bondi), वोरोन्जोफ (Voronzoff) आदि के द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं। उनकी मान्यता है कि ब्रह्माण्ड का कभी प्रारम्भ नहीं हुआ। वह सदा से है तथा उसे निर्मित करने वाले पदार्थ का सदा निर्माण होता रहता है। (the matter constituting the world is constantly being produced.) होयल का कहना है कि आकाश गंगाये बराबर एक दूसरे से दूर हटती जा रही

हैं। उनकी खाली जगह (vacuum) को लेने वाला पदार्थ अन्यत्र पैदा होता रहता है। साधारणतया हाइड्रोजन ही आकाश मे बहुतायत मे पाई जाती है। हाइड्रोजन तारों के भीतर निरन्तर जलती रहकर हीलियम तथा अन्य तत्वों में बदलती जाती है। यह हाइड्रोजन 'शून्य' में बराबर बनती रहती है (Hydrogen must be constantly created from nothing) अगर ऐसा नहीं होता तो जितनी हाइड्रोजन प्रारम्भ में रही होगी वह कभी की समाप्त हो गई होती। इस सिद्धान्त के अनुसार हाइड्रोजन मूल-पदार्थ है। उसके बादल संघनन की क्रिया द्वारा तारो (stars) की आकाश गंगा मे बदलते जाते हैं।

वैज्ञानिक अवलोकन तथा गणित के आधार पर प्रथम श्रेणी का सिद्धान्त ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उस सिद्धान्त के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के तारो की अवस्था आँकना सम्भव हो सका है। आजकल विज्ञान ने इतने साधन जुटा रक्खे हैं जिससे मालूम किया जा सकता है कि तारे मे कौन से तत्व मुख्य रूप से पाये जाते हैं। उनके भीतर कौन-सी भौतिक और रासायनिक क्रिया-प्रक्रिया चल रही है तथा कब से चल रही है? इन्ही सब तथ्यों के आधार पर यह आंका गया है कि जैसा आकाश मण्डल हमें आजकल दृष्टिगोचर होता है उसका प्रारम्भ लगभग चार अरब वर्ष पूर्व हुआ था।

हमारे सौरमण्डल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति

(Origin of our Solar System and Earth)

हमारे सौर मण्डल मे सूर्य और उसके चारो ओर घूमने वाले नौ ग्रह तथा उनके अपने-अपने उपग्रह शामिल हैं। सूर्य के सबसे निकट बुध ग्रह (Mercury) है तथा शुक्र (Venus) पृथ्वी (Earth), मंगल (Mars), गुरु (Jupiter), शनि (Saturn), अरुण (Uranus), वरुण (Neptune) और कुबेर (Pluto) क्रमानुसार पाये जाते हैं। सबसे बड़ा ग्रह गुरु है। पृथ्वी समेत इन सब ग्रहों का जन्म एक ही रीति से हुआ है।

इनकी उत्पत्ति के विषय में भी अनेक प्रकार के सिद्धान्त प्रचलित हैं। जबसे दूरदर्शक यन्त्र (telescope) का आविष्कार हुआ है, आकाश मंडल में मिलने वाले पिण्डो (heavenly bodies) का अवलोकन सरल हो गया है। वैज्ञानिक अवलोकन तथा विभिन्न प्रमाणों पर आधारित पृथ्वी की उत्पत्ति से सम्बन्धित कुछ सिद्धान्त इस प्रकार हैं ;

Fig 1 : Solar System

(१) अठारवी शताब्दि में फ्रांसीसी वैज्ञानिक बफन (Buffon) ने १७४५ में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उसके अनुसार ग्रह मण्डल का जन्म हमारे सूर्य तथा पुच्छल तारे (Comet) के टकराने से हुआ है। इस सिद्धान्त को अधिक समर्थन प्राप्त नहीं हो सका है।
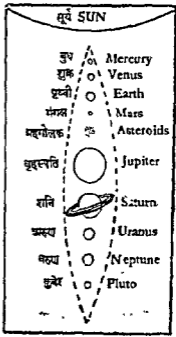
(२) कांट और लाप्लास का वलय-सिद्धांत (ring hypothesis)

दूरदर्शक यन्त्र की सहायता से मालूम हुआ कि शनिग्रह एक गोलाकार पुञ्ज है। उसके चारो ओर द्रव्य का एक वलय (ring) पाया जाता है। इस तथ्य के आधार पर जर्मन विद्वान कांट (Kant, 1724-1804) ने सन् १७५५ में ग्रहमण्डल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपनी परिकल्पना प्रस्तुत की। उसके अनुसार ग्रहो का जन्म सूर्य के गैस पदार्थ के वलयों (rings) से हुआ है। इसी परिकल्पना को फ्रांसीसी गणितज्ञ लाप्लास (Laplace, 1749-1827) ने सन् १७९६ में विस्तृत रूप दिया। उसके अनुसार हमारा सूर्य तथा हमारे

ग्रह-उपग्रह एक ही उष्ण गैस-निहारिका (Hot gaseous nebula) के अंश हैं। यह निहारिका मानो धुरी पर घूमती हुई लगातार ताप विकीर्ण कर रही थी और सिकुड़ रही थी। इस क्रिया का यह परिणाम हुआ कि निहारिका का भीतरी भाग ठण्डा होकर सिकुड़ता गया और बाहरी भाग क्रमशः वलयों के रूप में अलग होता गया। इस प्रकार एक-एक करके नौ वलयों का निर्माण हुआ। यही वलय धीरे-धीरे परिभ्रमणशील (rotating) ग्रहों के रूप में संघटित होते गए। निहारिका का शेष केन्द्रीय भाग सूर्य के रूप में विद्यमान रहा। इसी प्रकार ग्रहों के चारों ओर घूमने वाले उपग्रहों का निर्माण हुआ।

लाप्लास का यह सुन्दर सिद्धान्त वैज्ञानिक आपत्तियों की कसौटी पर नहीं कसा जा सका। इसके विरुद्ध मुख्य रूप से दो आपत्तियाँ उठाई गई हैं। एक आपत्ति यह है कि लाप्लास के अनुमानित एक वलय से केवल एक ही ग्रह की उत्पत्ति नहीं होगी। दूसरी आपत्ति का सम्बन्ध ग्रहों की परिभ्रमण गमता (rotational momentum) से है। गणित की दृष्टि से लाप्लास के सिद्धांत से प्राप्त ग्रहों की परिभ्रमण गति वह नहीं हो सकती जो वास्तव में पाई जाती है।

(३) नोर्मन लोकियर का सिद्धान्त (N. Lockiar's meteorite theory)

सर नोर्मन लोकियर के अनुसार हमारे ग्रहों का जन्म आकाश में टूटते हुए तारों अर्थात् उल्कापिण्डों (meteors) से हुआ है। उनका कहना है कि आकाश में भ्रमण करते हुए उल्कापिण्ड जब आपस में टकराते हैं तब संघर्षण से अत्यधिक ताप उत्पन्न होता है। उस ताप के कारण छोटे २ उल्कापिण्ड पिघलकर बड़े पिण्ड में बदल जाते हैं। हमारी पृथ्वी भी इसी प्रकार ग्रह बनी है। लोकियर का सिद्धान्त भी विभिन्न आपत्तियों और शङ्काओं का समाधान नहीं कर सका, अतः अमान्य रहा।

(४) चेम्बरलेन और मोल्टन का सिद्धान्त (Chamberlain and moulten's theory)

अमरीकी वैज्ञानिक चेम्बरलेन और मोल्टन ने लाप्लास के निहारिका सिद्धान्त में एक महत्वपूर्ण संशोधन किया। उनका कहना है कि ग्रहों का जन्म

साधारण निहारिका से न होकर कुण्डलाकार निहारिका (spiral nebula) से हुआ है। यह निहारिका द्रव्य के अत्यन्त सूक्ष्म कणों की बनी होती है। द्रव्य के ये सूक्ष्म कण ग्रहाणु (ग्रह+अणु—Planetesimals) कहलाते हैं। दो विशालकाय तारों के आकर्षण के कारण एक तारे के पिण्ड में से बहुत सारा ग्रहाणु-पदार्थ अनेक कुण्डलाकार भुजाओं (spiral extensions) के रूप में केन्द्रीय पिण्ड के चारों ओर निकल आया। बारम्बार संघर्षण के कारण उन भुजाओं का ताप बहुत बढ़ गया। इस क्रिया के फलस्वरूप भुजाओं का द्रव्य ग्रह-पिण्डों के रूप में बदल गया। आसपास के द्रव्य को एकत्र करते हुये ये पिण्ड बड़े होते गये। इस विधि से भुजाओं से ग्रह बन गये तथा बीच का पिण्ड सूर्य के रूप में बना रहा।

यह सिद्धान्त इसलिये सही नहीं माना जाता है कि कुण्डलाकार निहारिकायें इतनी विशाल होती हैं कि एक ही निहारिका से हमारे जैसे असंख्य सौर मण्डल उत्पन्न हो सकते हैं।

(५) सर जेम्स जीन्स का सिद्धान्त

आजकल सबसे अधिक मान्य सर जेम्स जीन्स (Sir James Jeans) का ज्वार-सिद्धान्त है। उनके अनुसार करोड़ों वर्ष पहिले हमारे सूर्य के निकट एक बहुत बड़ा तारा आने लगा। उसके गुरुत्वाकर्षण (gravitation) के फलस्वरूप सूर्य में भयङ्कर ज्वार उठा और उसके पदार्थ का एक बहुत बड़ा भाग स्तम्भ (pillar) के रूप में इतना अधिक बाहर खिंच आया कि उस तारे के दूर हट जाने पर भी यह पदार्थ पुनः सूर्य में नहीं मिल सका। यह स्तम्भ सिगार की आकृति का था। शनैः शनैः ये स्तम्भ ठण्डा होकर कई छोटे छोटे पिण्डों के रूप में बिखर गया। ये पिण्ड ही पृथ्वी समेत नौ ग्रह हैं जो अपने जन्मदाता सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते रहते हैं। सूर्य के आकर्षण के कारण इन ग्रह पिण्डों से जो टुकड़े अलग हुए वे उपग्रह (satellites) बन गये।

(६) ओटो श्मिट (Otto Schmidt) का सिद्धान्त

प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक ओटो श्मिट ने सन् १९४३ में यह सिद्धान्त रखा

कि हमारे सौर मण्डल की उत्पत्ति प्रारंभिक ढङ्ग के उस बादल से हुई है जो अन्तरिक्ष रज (cosmic dust) का बना हुआ था। श्मिट-का कहना है कि हमारे ग्रहों का जन्म उष्ण गैस के पिण्ड से नहीं हुआ है। इसके विपरीत ग्रह मण्डल शनैः शनैः एकत्रित ठण्डी अन्तरिक्ष रज से बना है। ठण्डी धूल का यह पिण्ड ज्यों-ज्यों सिकुड़ता गया उसका तापक्रम बढ़ता गया और इस तरह धीरे-धीरे ग्रह गरम होते गये। अभी तक इस नये सिद्धान्त की ओर लोगों का अधिक ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है। इस सिद्धांत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पृथ्वी के परिभ्रमण (rotation) तथा परिक्रमण (revolution) की एक ही दिशा (पश्चिम से पूर्व) का ठीक-ठीक गणित हल दे देता है।

पृथ्वी की आयु

पृथ्वी की आयु की गणना वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न आधारों पर की है। पृथ्वी का जन्म किस समय से माना जाये, इस विषय पर भी मत-मतान्तर रहे हैं। ज्योतिषशास्त्री (astronomers) पृथ्वी का जन्म-काल उस समय को मानते हैं जब वह सूर्य से अलग हुई थी। भू-भौतिक शास्त्री (geophysists) पृथ्वी का जन्म उस समय से मानते हैं जब वह कुछ ठण्डी एवं घनीभूत होकर पपड़ी सहित अथवा पपड़ी रहित गोलाकार रूप में बदल चुकी थी। इन दोनों से भिन्न भूगर्भ शास्त्र के अनुसार पृथ्वी का जन्मकाल उस समय को माना जाता है जब पृथ्वी की पपड़ी (crust) पर्याप्त शीतल होकर काफी मोटी हो चुकी थी और उसके चारों ओर का अधिकांश वायुमण्डल तरल होकर समुद्री जल के रूप में बदल चुका था।

उपरोक्त तीनों प्रकार की अवस्थाओं में पर्याप्त लम्बी अवधि का अन्तर रहा है। इन तीनों में से किसी भी घटना का ठीक ठीक समय निर्धारित करना सरल नहीं है। किन्तु समय समय पर मानव ने इस कौतूहलपूर्ण प्रश्न का उत्तर दिया है।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार पृथ्वी की आयु लगभग दो अरब वर्ष की है। यह विशाल कालखण्ड कल्प (eons), मन्वन्तर (eras), युग (periods) आदि में विभाजित किया गया है। इस काल की गणना एवं काल विभाजन का आधार क्या था, यह अस्पष्ट है। इस कमी के कारण इसे वैज्ञानिक स्तर नहीं दिया जा सकता है। किन्तु यह आश्चर्यजनक बात है कि आधुनिक वैज्ञानिक गणना और हिन्दू गणना में बहुत कुछ समानता है। धार्मिक अन्धविश्वास का लाभ उठाकर ऊशर (Usher) नाम के एक पादरी ने तो यहां तक कह डाला था कि पृथ्वी का जन्म ईसा से ४००४ वर्ष पूर्व प्रातः ६ बजे हुआ था। समुचित आधार न होने के कारण वर्षों तक इस प्रकार के विवेकहीन कथनों पर विश्वास किया जाता रहा।

वैज्ञानिक आधार पर पृथ्वी की आयु की गणना चार प्रकार से की जाती है :—

(१) समुद्र में तलछट जमने की गति से—

पृथ्वी के प्रारम्भ में ही उसके किसी न किसी भाग मे निरन्तर तलछट (sedimentation) जमती रही है। तलछट के जमने की गति तथा अभी तक के सम्पूर्ण तलछट के परिमाण से यह आंका गया है कि पृथ्वी की आयु लगभग बीस करोड़ वर्ष है। यह गणना अत्यन्त त्रुटिपूर्ण प्रमाणित हुई है।

(२) समुद्र में एकत्रित लवण के आधार पर—

प्रारम्भ में समुद्र का पानी मीठा था। धीरे धीरे नदियों द्वारा धरातल से निकला हुआ लवण समुद्र में पहुँचता गया। प्रतिवर्ष समुद्र में कितना लवण पहुँचता है तथा अभी तक समुद्र में एकत्रित नमक की मात्रा कितनी है, इन तथ्यों के आधार पर गणना करने से पृथ्वी की आयु केवल दस करोड़ वर्ष आती है। यह विधि भी त्रुटिपूर्ण मानी गई है।

(३) पृथ्वी की ताप हानि से (Loss of heat)—

प्रारम्भ में पृथ्वी का अत्यन्त उष्ण होना माना गया है। उसमें से धीरे-

धीरे विकीर्णता (radiation) के कारण ताप निकलती रही है और वह ठंडी होती रही है। मगर यह मालूम हो सके कि प्रारम्भ मे पृथ्वी में ताप की मात्रा कितनी रही होगी तथा वह किस गति से विकीर्ण होती रही है, तो यह गणना की जा सकती है कि पृथ्वी की प्रायु क्या है? इस विधि के अनुसार लार्ड केलविन ने १८६७ मे कहा कि पृथ्वी की आयु तीन चार करोड वर्ष से अधिक नही है। उस समय केलविन को यह मालूम नही था कि पृथ्वी में रेडियो सक्रिय (radioactive) पदार्थो के विघटन के कारण भी अतुल उष्मा उत्पन्न होती रहती है। उसकी उपेक्षा के कारण ही केलविन की गणना मे भयंकर त्रुटि रह गई।

(४) पृथ्वी मे स्थित रेडियो-सक्रिय तत्वों के अनुपात से--

पृथ्वी में यूरेनियम, थोरियम, एक्टीनियम आदि ऐसे तत्व हैं जो धीरे-धीरे वितेर कणों के विमोचन के कारण अन्त में सीमे (Lead) मे परिवर्तित हो जाते हैं। एक रेडियो-सक्रिय तत्व का परिवर्तन सीसे जैसे साधारण तत्व में निश्चित गति से होता है। यूरेनियम का १% (एक प्रतिशत) भाग ६ करोड़ ६० लाख वर्ष मे ऐसे सीसे मे बदल जाता है जिसका परमाणु भार २०६ होता है। (साधारण सीसे का परमाणु भार २०७ होता है)। पृथ्वी मे अनेक ऐसी चट्टानें मिलती हैं जिनमें यूरेनियम पाया जाता है। उन चट्टानों मे वह सीसा भी होता है जो यूरेनियम के विघटन से प्राप्त होता है। यूरेनियम कब से विघटित हो रहा है? चूंकि पृथ्वी के जन्म काल से ही यूरेनियम का यह सिलसिला चल रहा है, अतः पृथ्वी का आयुकाल ज्ञात हो जाता है। यह विधि आजकल सबसे अधिक विश्वसनीय और सही मानी जाती है। इसके अनुसार पृथ्वी की आयु लगभग तीन अरब वर्ष से कुछ अधिक निर्धारित होती है।

प्रश्नावलि

१. ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रकार के प्रमुख विचारों का विवरण दीजिए।

२. पृथ्वी के उत्पत्ति के विषय मे कौन-कौन से मत हैं ? आजकल कौन सा मत सबसे अधिक माना जाता है ?

३. पृथ्वी की आयु से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न विचारो का विश्लेषण कीजिये।

"Yet again an old thought comes to the mind. We are stretching our hands to the moon, Some say we shall go next to the Mars or the venus and conquer the space round the earth. Yet we forget perhaps what is happening on this earth and that we cannot fully manage the earth."

— Nehru

२ पृथ्वी का बाहरी और भीतरी भाग

[The Exterior and Interior of the Earth]

जब पृथ्वी सूर्य से अलग हुई तब वह सम्भवत उष्ण गैस की घूमती हुई एक गोलाकार पिण्ड थी। उसका तापक्रम बहुत ऊँचा था। कुछ समय पश्चात् वह सघनन की क्रिया द्वारा ऐसी पिघली हुई चट्टान के दहकते हुए महासागर के रूप में बदल गई जिसमें उबाल आरहा था, बुलबुले उठ रहे थे तथा जो भयकर निनाद कर रहा था। जैसे जैसे तापक्रम कम होता गया, धरातल पर ठोस पपडी (Crust) जमने लगी। उसके नीचे फिर भी भयकर हलचल मची हुई थी। इस हलचल के कारण ऊपर की पपडी बारबार बनती थी और टूटती थी। ताप क्रम के लगातार गिरने से धरातल पर मजबूत ठोस पपडी की स्थापना हुई। उस समय पृथ्वी के चारो ओर की गैस का भी सघनन हुआ और वह द्रव के रूप में बरसने लगी। वह बरसात हमारी आधुनिक बरसात के समान नही थी। उसमे बहुत तेज ज्वलनशील अम्ल मिले हुए थे। जब वे पृथ्वी की पपडी पर गिरे तब पपडी का बहुत सारा भाग रासायनिक क्रिया के कारण घुल गया। प्रारम्भिक पपडी पर टूट फूट के कारण और अधिक ठोस पदार्थ जमता गया तथा यदाकदा पृथ्वी के भीतर से निकलने वाले लावा से मोटाई बढती गई। जब शुरू की पपडी पर्याप्त ठण्डी होगई तब गहरे खोखले स्थलो मे पानी भर गया। आधुनिक महासमुद्रो की यह शुरुआत थी। चारो ओर की बची खुची गैस से वायुमडल (atmosphere) बन गया। प्रारम्भिक आग्नेय पपडी शक्तिशाली घोलको (Solvents) के प्रभाव और टूट फूट के कारण छोटे छोटे टुकडो में टूटती रहती थी जो तलछट के रूप मे जमती जाती थी। इसी विधि से अवसादीय

चट्टानों (Sedimentary rocks) का निर्माण हुआ है। कालान्तर में अत्यधिक ताप और दबाव के कारण आग्नेय और अवसादीय चट्टानों में टूट फूट हुई तथा वे नये रूप में निर्मित होती गई। ये चट्टानें विरूपित (metamorphic) कहलाती हैं। प्रारम्भिक तप्त अवस्था से शीतलता की उपरोक्त अवस्था तक के इतिहास को प्राग्भौमिक (Pre-geologic age) काल कहते हैं।

पृथ्वी की पपड़ी (Lithosphere)

पृथ्वी की पपडी से हमारा तात्पर्य उन भू-पदार्थों से है जिन्हे हम सरलता से देख सकते हैं तथा काम में ला सकते हैं। ये पदार्थ हलकी चट्टानों और खनिजों (minerals) के रूप में पाये जाते है। चट्टान पृथ्वी की पपडी की इकाई को (unit of earth's crust) कहते हैं। भूगर्भ-शास्त्र की दृष्टि से केवल बडी बडी शिलायें अथवा पत्थर ही चट्टान की श्रेणी में नही आते हैं वरन् छोटे छोटे पत्थर, कंकर, धूल, रेत और मिट्टी (c'ay) आदि भी चट्टान ही मानी जाती हैं। जो भी जटिल पदार्थ हमें पृथ्वी की पपडी से प्राप्त होते हैं तथा जो अनेक खनिज द्रव्यों से मिलकर बने होते हैं, उन्हें ही चट्टान (rock) कहते हैं, जैसे ग्रेनाइट (granite), बासाल्ट (basalt) आदि।

जब चट्टानों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है तब मालूम पडता है कि वे अनेक सरल पदार्थों के सम्मिश्रण से बनी होती है। ये सरल पदार्थ खनिज (minerals) कहलाते हैं। खनिज पदार्थों की अपनी विशेष रासायनिक रचना (chemical composition) होती है। प्रत्येक खनिज पदार्थ का अपना विशेष मणिभीय आकार (crystalline form) होता है। तथा उनके अपने विशेष भौतिक एवं प्रकाशीय (optical) गुण होते है इन्हीं गुणों (properties) के आधार पर भिन्न भिन्न प्रकार के खनिज पदार्थों का वर्गीकरण किया जाता है।

क्वार्ट्ज (Quartz-crystalline silica), फेल्डस्पार (Feldspar-silicates of potassium, sodium, calcium and alumi-

nium), माइका (Mica—silicates of aluminium, potassium magnesium and iron) आदि सामान्य खनिज पदार्थ है।

सहस्रो प्रकार की चट्टानों और खनिजो के विश्लेषण (analysis) से इस निर्णय पर पहुँचा गया है कि पृथ्वी की दस मील गहरी पपड़ी में मुख्य रूप से निम्नलिखित तत्व दिये हुए क्रमिक अनुपात में मिलते हैं।

Main elements of the 10 mile thick crust of earth

तत्व	प्रतिशत
१. ऑक्सीजन (Oxygen)	४६.७%
२. सिलिकन (Silicon)	२७.७%
३. एल्यूमिनियम (Aluminium)	८.१%
४, लोहा (Iron)	५.१%
५. केलशियम (Calcium)	३.६%
६. सोडियम (Sodium)	२.७%
७. पोटेशियम (Potassium)	२.६%
८. मेगनेशियम (Magnesium)	२.१%
९. टिटेनियम (Titanium)	०·६%
१०. हाइड्रोजन (Hydrogen)	०·१%
११. फोस्फोरस (Phosphorus)	०·१%
१२. कार्बन (Carbon)	०·१%
१३. मैंगनीज (Mangnese)	०·१%
	कुल ९९·६%

शेष तत्वों की मात्रा केवल ०·४% ही होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बहुलता से मिलने वाले १३ तत्व पृथ्वी की १० मील मोटी पपड़ी बनाते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऑक्सीजन ऐसा तत्व है जो पृथ्वी की पपड़ी

में सबसे अधिक पाया जाता है। ऑक्सीजन एक अदृश्य गैस है। वह स्वतन्त्र रूप मे न मिलकर अन्य तत्वो के साथ मिली हुई पाई जाती है। बहुलता से मिलने वाले तत्वों में सिलिकन का दूसरा नम्बर है। सिलिकन से ही सिलिकेट्स (silicates) नाम के खनिज पदार्थ बनते हैं जो चट्टानो के मुख्य अंश होते हैं। धातुओं में सबसे अधिक मात्रा एल्यूमीनियम की मिलती है।

लगभग दो हजार तरह के ऐसे खनिज पदार्थ हैं जिनका अभी तक वर्णन किया जा चुका है। किन्तु इनमे से केवल २० खनिज ही ऐसे हैं जो पृथ्वी की पपड़ी का ६६.६% भाग बनाते हैं। खनिज पदार्थ तत्वो एवं यौगिको के रूप मे पाये जाते हैं। मुख्य रूप से सोना, चाँदी, ताँबा, प्लेटिनम, गंधक, कार्बन आदि तत्वो के रूप मे मिलते हैं तथा अन्य तत्व अधिकतर यौगिको के रूप मे पाये जाते हैं।

प्रमुख खनिज पदार्थ निम्नलिखित हैं :—

(1) Halides (Sodium Chloride, Calcium fluoride etc.)
(2) Sulphides (Galena i e. lead sulphide, pyrites i.e. iron sulphide, blende i e. zinc sulphide etc)
(3) Oxides (Quartz i.e. Silicon oxide, haematite i.e iron oxide, etc)
(4) Carbonates (Calcium carbonates, iron co bon tes etc.)
(5) Silicates (feldspars, Mical pyroxenes i. e. silicates of Ca, Mg, Fe, olivenes i e. silicates of Mg and Fe,)
(6) Sulphates (Barium sulphate, calcium sulphate etc.)

चट्टानों में मुख्य रूप से सिलिकेट्स (silicates) पाये जाते हैं। चूने के पत्थर की चट्टानों में विशेष रूप से केलसाइट (calcite i.e. calcium carbonate) और डोलोमाइट (dolomite i.e. magnesium carbonate) मिलते हैं। आग्नेय चट्टानों (igneous rocks) में ग्रेनाइट (granite) और बासाल्ट (basalt) चट्टानें मुख्य होती हैं। ग्रेनाइट चट्टानें वे आग्नेय चट्टानें होती हैं जिनमें quartz, feldspar, mica आदि अधिकता से मिलते हैं। ये चट्टानें कठोर होती हैं।

बासाल्ट चट्टानें वे आग्नेय चट्टानें होती हैं जो श्याम रंग की होती हैं तथा जिनमें मुख्य रूप से feldspar, pyroxenes और olivines नाम के सिलिकेट्स मिलते हैं। लावा से बनने वाली चट्टानें प्रायः बासाल्ट चट्टानें ही होती हैं।

पृथ्वी का अभ्यन्तर

(Interior of the Earth)

पृथ्वी के भीतरी भाग की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करना अभी तक संभव नहीं हो सका है। धरातल से पृथ्वी के केन्द्र तक की गहराई लगभग ४००० मील है (ठीक ठीक गहराई ३९६३ मील आँकी गई है) अभी यह कहना कठिन है कि कभी इतनी गहराई तक खोदकर पृथ्वी के अभ्यन्तर का प्रत्यक्ष अध्ययन किया जा सकेगा। पृथ्वी के अभ्यन्तर का हमारा आधुनिक ज्ञान भूकम्प* की लहरों के व्यवहार तथा उल्का पिण्डों की रचना के परीक्षण पर

---

* भूकम्प (Earthquake)

कभी कभी हमारी पृथ्वी सहसा काँपने लगती है और ऐसे समय हम लोग विशेष रूप से सावधान हो जाते हैं। पृथ्वी के ऐसे आकस्मिक कंपन को भूकम्प (earthquake) कहते हैं। पृथ्वी के भीतर होने वाली विशेष हलचल (disturbance) के कारण ही भूकम्प आता है। ये कारण मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं:—

आधारित है।+

भूकम्प की लहरें (earthquake waves) : ये लहरें तीन प्रकार की होती हैं।

(१) प्रधान लहरें (primary waves) :—इन लहरो का सकेत 'P' है। जब यह लहरें संचारित होती हैं तब माध्यम के कण आगे पीछे (to and fro) गति करते हैं।

(२) गौण लहरें (secondary waves) :—इन लहरो का सकेत 'S' है। जब ये लहरें संचालित होती हैं तब माध्यम के कण लहरो की संचार-दिशा के ऊपर नीचे समकोण बनाते हुए गति करते हैं (particles move across at right angles to the direction of the transmission of the waves).

(३) धरातल लहरें (surface waves or long waves):—ये लहरें पृथ्वी की गहराई में प्रवेश नही करती हैं। ये पृथ्वी के घेरे (circumference) के चारो ओर चलती हैं। इनका सकेत 'L' है।

---

(१) पृथ्वी के शैल पुञ्जों (rocks) मे पूर्व स्थित दरारो अथवा नवीन दरारो (faults or fractures) के कारण होने वाली हलचल तीव्र भूकम्प का कारण हो जाती है।

(२) ज्वालामुखी पहाडो के फटने पर भी भूकम्प आ जाते हैं।

भूकम्प के कारण कई प्रकार की लहरें उत्पन्न होती हैं। भूकम्प का मूल उत्पत्ति स्थान पृथ्वी की गहराई मे होता है। जहा से कम्पन अथवा लहरें उत्पन्न होती हैं उसे focus कहते हैं तथा focus के ठीक ऊपर वाली पृथ्वी की सतह epicentre कहलाती है।

+ हाल ही मे सूचना मिली है कि रूस ने एक ऐसा रॉकेट तैयार किया है जो पृथ्वी को खोदता हुआ बहुत गहराई तक जा सकेगा जिससे भीतर की अधिक जानकारी मिल सकेगी।

प्रधान और गौण लहरें ही पृथ्वी के अभ्यन्तर में प्रवेश करती हैं। प्रधान लहरों (P–waves) की गति ठोस पदार्थ में अधिक और द्रव पदार्थ में कम होती है। गौण लहरों का संचार द्रव पदार्थ में नहीं होता है। इन लहरों के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि लगभग १८०० मील की गहराई तक तो ये लहरें पृथ्वी के भीतर बढ़ती रहती हैं। तत्पश्चात गौण लहरों (S-waves) का संचार बंद हो जाता है तथा प्रधान लहरों की गति कुछ कम हो जाती है। इससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि पृथ्वी के बीच में ठोस भाग तथा केन्द्र में द्रव भाग पाया जाता है। चूंकि केन्द्र में दबाव और तापक्रम बहुत अधिक होता है, इसलिए केन्द्र का पदार्थ कुछ पिघला हुआ तथा चिपचिपा (viscous) होता है। इसका घनत्व बहुत अधिक होता है।

तापक्रम :—साधारणतया यह विचार सही है कि जैसे जैसे पृथ्वी की गहराई में बढ़ते हैं, तापक्रम भी बढ़ता जाता है। ऐसा पाया गया है कि औसतन हर १२० फुट की गहराई पर १°C तापक्रम बढ़ जाता है। किन्तु यह सिलसिला कुछ सीमा तक ही मिलता है। फिर भी यह सही है कि पृथ्वी के भीतर अत्यधिक तापक्रम पाया जाता है। इस प्रकार पृथ्वी के अभ्यन्तर में हमें दो प्रकार की स्थिति का सामना करना पड़ता है। वहां तापक्रम भी अधिक होता है और दबाव भी अधिक होता है। पृथ्वी के केन्द्र में इसलिये विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अधिक तापक्रम के कारण पदार्थ द्रव अवस्था में रहना चाहता है जब कि अधिक दबाव के कारण वह सघन (compact) हो जाता है। यही कारण है कि केन्द्रीय पदार्थ चिपचिपा होता है।

पदार्थ की भिन्न भिन्न अवस्था तथा चट्टानों और खनिजों की विभिन्नता के आधार पर पृथ्वी के अभ्यन्तर को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया जाता है—

(१) सियाल मंडल पपड़ी (crust and sial) :

यह पृथ्वी की सबसे बाहरी परत होती है, जो लगभग ४४ मील की

गहराई तक पाई जाती है। इसका ऊपरी भाग हलकी अवसादीय चट्टानों (light sedimentary rocks) का बना होता है जिसे पर्पटी (crust) कहते हैं। पर्पटी के नीचे का भाग granite की भारी चट्टानों का बना होता है जो सायल (sial) कहलाता है। समुद्रों की पेंदी मे सायल नहीं मिलता है।

(२) असितारम मंडल (Sima and Peridotite layer) :

साइमा तह महाद्वीपों की सायल तह के नीचे तथा समुद्रों की पेंदी के नीचे पाई जाती है। यह तह लगभग ६२५ मील की गहराई तक मिलती है। यह कठोर बासाल्ट की चट्टानों की बनी होती है।
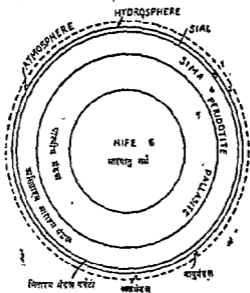
Fig. 2 : Different layers of Earth

(३) धात्वीय मंडल (Pallasite or Transition zone) : यह भाग साइमा के नीचे लगभग १८०० मील की गहराई तक मिलता है। यह भाग भी ठोस होता है तथा चट्टानों और धातुओं का बना हुआ होता है।

(४) नाइफ (Nife) :पैलेसाइट तह के नीचे पृथ्वी के केन्द्र में नाइफ (nife) का ही विस्तार होता है। इस भाग की मोटाई लगभग २१०० मील होती है। यह भाग द्रव जैसे चिपचिपे सघन पदार्थ का बना होता है। इसमें मुख्य रूप से लोहा (iron) और निकल (nickel) नाम की धातुएं पाई जाती हैं।

पृथ्वी पर गिरने वाले उल्का पिण्डों (meteors) के निरीक्षण पर भी यही पाया गया है कि उनका बाहरी भाग हल्का पाषाणमय, केन्द्रीय भाग धातुमय तथा बीच का भाग पाषाण एवं धातु से मिलकर बना होता है।

प्रश्नावली

(१) पृथ्वी की पपड़ी के विषय में क्या जानते हो?

(२) चट्टान और खनिज में क्या अन्तर है। विभिन्न प्रकार की चट्टानों और खनिजों का वर्णन करो।

(३) पृथ्वी के अभ्यन्तर का अध्ययन किस प्रकार किया गया है? पृथ्वी की मुख्य तहों (layers) का वर्णन करो।

"Once facts are shown against a hypothesis, I shall immediately give it up, however, dear it may be to me."

३ कार्य, ऊर्जा और सामर्थ्य
[Work, Energy and Power]

प्रकृति (१) पदार्थ (matter), (२) ऊर्जा (energy) तथा (३) गति (motion) के रूप में हमारे सामने आती है । पदार्थ और ऊर्जा का परस्पर गहरा सम्बन्ध है । पदार्थ से ही हमें शक्ति अथवा ऊर्जा प्राप्त होती है। जब पदार्थ गतिशील होता है तब कार्य सम्पादित होता है, (work is done when the matter is in motion.) पदार्थ और ऊर्जा के भिन्न भिन्न रूप होते हैं। कार्य करने के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की अनेक तथ्यपूर्ण क्रियायें (phenomena) प्रकृति में पाई जाती हैं। वैज्ञानिक प्रगति के लिए इन सबको समझना नितान्त आवश्यक था। प्रसन्नता की बात है कि मानव ने इस क्षेत्र में अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

कार्य (work)

शक्तियों के रूपान्तर (transformation) और स्थानान्तर (transference) को कार्य (work) कहते हैं। यांत्रिक (mechanical) दृष्टि से जब कोई वस्तु उस पर प्रयुक्त बल की दिशा में सरकती है तब कार्य होता है। जब कोई वस्तु किसी अवरोध (resistance) के विरुद्ध गति करती है अथवा जब किसी गतिशील वस्तु का वेग बढ़ाया जाता है या घटाया जाता है तब भी कार्य होता है।

जिस प्रकार लम्बाई, ऊंचाई, भार, समय आदि को मापने की इकाई होती है, उसी प्रकार काम की भी इकाई (unit) होती है। काम की छोटी

इकाई को अर्ग (erg) कहते हैं। बड़ी इकाइयां जूल (joule) और फुट-पाउन्ड (foot pound) आदि कहलाती है। जब कोई वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान तक सरकती है तब बल की आवश्यकता पड़ती है। बल (force) की परिभाषा देना उतना सरल नहीं है जितना उसे अनुभव करना सरल है।

निम्नलिखित कार्यों के लिये बल की आवश्यकता होती है—

[१] किसी निश्चित गति की अवस्था वाली वस्तु अथवा स्थिर अवस्था वाली वस्तु में विघ्न डालने के लिये।

[२] चलित वस्तु की गति-दर (rate of motion) बढ़ाने के लिये।

[३] घर्षण (friction) पर विजय प्राप्त करके किसी वस्तु को समान गति से चलायमान रखने के लिये।

[४] गतिशील वस्तु की दिशा बदलने के लिये।

[५] गतिशील वस्तु को रोकने के लिये।

संसार की प्रत्येक वस्तु में जड़ता (inertia) का गुण होता है। वह यथावत् अपनी स्थिति में बनी रहना चाहती है। अगर वह स्थिर है तो स्थिर और गतिशील है तो गतिशील बनी रहना चाहेगी। पदार्थ की इस प्रकृति को ही जड़ता कहते हैं। जड़ता को जीतने के लिये बल की आवश्यकता पड़ती है। अतः जड़ता को जीतने वाली शक्ति को ही बल (force) कहा जाता है। जितने बल के द्वारा कोई वस्तु जितनी दूर तक सरकती है, उनके गुणनफल से काम की मात्रा मालूम की जाती है।

Work=Force×Distance

बल की इकाई को डाइन (dyne) कहते हैं। एक डाइन बल वह बल है जो एक ग्राम भारी वस्तु में एक सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड वेग, एक सेकण्ड

में उत्पन्न करता है। वेग (velocity) के परिवर्तन की दर को त्वरण (acceleration) कहते हैं। बल की मात्रा मालूम करने के लिये वस्तु की मात्रा (mass ingms.) तथा त्वरण (acceleration in cms. per second. per second) का गुणा किया जाता है। यह नियम वैज्ञानिक न्यूटन के द्वारा प्रतिपादित किया गया था।

. Force=Mass×acceleration

अब हम काम की इकाई 'अर्ग' को सरलता से समझ सकते हैं। एक अर्ग काम तब होता है जब एक डाइन बल किसी वस्तु पर एक सेंटीमीटर की दूरी तक कार्य करता है, (one erg is the work done by a force of one dyne acting through a distance of one centimetre.) अर्ग काम की बहुत छोटी इकाई होती है। बड़ी इकाई के लिये जूल (joule) अथवा फुट-पाउन्ड (footpound) का उपयोग किया जाता है। विद्युत की एक वाट (watt) शक्ति द्वारा एक सेकंड में एक जूल काम होता है। एक जूल 10^7 अर्ग के बराबर होता है।

1 Joule=10^7 ergs

जब एक पौंड भारी वस्तु को एक फुट की दूरी तक सरकाया जाता है तब एक फुट-पाउन्ड काम होता है। काम, बल एवं दूरी (distance) के सम्बन्ध का उपयोग यांत्रिक क्षेत्र में बड़ी सफलता के साथ किया गया है।

लीवर्स (Levers) ऐसे यंत्र हैं जिनकी सहायता से थोड़े बल के द्वारा ही बड़े-बड़े काम किये जा सकते हैं। सरौता, कैंची, चिमटा आदि विभिन्न प्रकार के लीवर्स हैं।

ऊर्जा अथवा शक्ति (Energy)

काम करने की क्षमता को ऊर्जा कहते हैं। (Energy is the capacity to work) जितना कार्य करना हो उतनी ही शक्ति की आवश्य-

करता होती है। अतः व्यवहारिक दृष्टि से काम और ऊर्जा की इकाई समान होती है। अर्ग, जूल आदि ही ऊर्जा की इकाई हैं।

ऊर्जा के अनेक रूप होते हैं। (ererey manifests itself in several forms.) । प्रकाश (Light), ताप (Heat), ध्वनि (Sound), विद्युत (Electricity), चुम्बकत्व (Magnetism), यांत्रिक (Mechanioal), रासायनिक (Chemical) तथा परमाणु शक्ति (Atomic en rgy) के रूप मे हम ऊर्जा का उपयोग करते हैं। शक्ति का स्थानान्तर अथवा प्रसार प्रायः तरंगो के रूप में होता है। आधुनिक जानकारी के अनुसार शक्ति मे भार अवश्य होता है; किन्तु वह इतना कम होता है कि नगण्य (negligible) माना जाता है। सन् १९०५ में महान वैज्ञानिक आईंसटीन (Einstein) ने "सापेक्षवाद का सिद्धान्त" (Theory of Relativity) दुनिया के सामने रखा। उस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह प्रमाणित किया गया कि पदार्थ और शक्ति का आपस मे ऐसा सम्बन्ध है जिसे समीकरण (equation) के द्वारा दर्शाया जा सकता है।

वह समीकरण $E=MC^2$ है

यहा E=Energy, M=Mass in gms.

E=Velocity of light in cms./second है।

प्रकाश की गति 3×10^{10} cms. प्रति सेकण्ड होती है। इस समीकरण मे मनुष्य को पहली बार प्रमाणित कराया कि वह बहुत थोड़े पदार्थ से अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर सकता है। अगर हम एक ग्राम पदार्थ को पूर्ण रूप से शक्ति में बदल सकें तो हमको 9×10^{20} अर्ग शक्ति प्राप्त हो सकती है।

$M=1$ gm., $C=3\times10^{10}$ cms.per second

$E=1\times(3\times10^{10})^2$ ergs,

$=1\times9\times10^{20}=9\times10^{20}$ ergs.

शक्ति की यह मात्रा 1000 किलोवाट वाले एंजिन को ३५ महीने तथा 25,000 H.P. वाले एंजिन को एक सप्ताह तक चला सकती है।
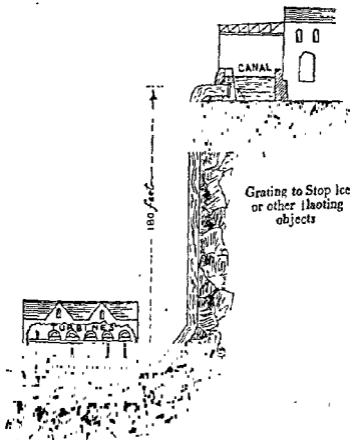
Fig. 3 : Diagram to show how Water Power is used at Niagara

जब एक प्रकार की शक्ति दूसरी प्रकार की शक्ति मे बदलती है तब कार्य (work) होता है। शक्ति के इस महत्वपूर्ण पहलू का वैज्ञानिकों ने बहुत अधिक उपयोग किया है। बिजली की सहायता से हम प्रकाश, ताप एवं यान्त्रिक शक्ति प्राप्त करते हैं। ताप शक्ति की सहायता से रेलगाड़ी के एंजिन तथा रासायनिक शक्ति की सहायता से मोटर–एंजिन, हवाई जहाज–एंजिन के रूप में अद्भुत यान्त्रिक शक्ति प्राप्त होती है। यही नहीं पानी की स्थितिज शक्ति (potential energy) को गतिज शक्ति (kinetic energy) मे बदल कर बहुत सस्ती विद्युत प्राप्त की जाती है। किसी वस्तु मे अपनी विशेष स्थिति के कारण जो शक्ति विद्यमान होती है उसे potential energy कहते हैं। पानी को बहुत ऊंचाई पर एकत्र करके नीचे गिराया जाय तो एकत्रित पानी की potential energy गतिज शक्ति मे बदल जाती है। गिरते हुए पानी की गतिज शक्ति से turbines चलाये जाते हैं। टरबाइन्स की सहायता से विद्युत उत्पादक Dynamos (डायनमो) चलते हैं और विद्युत उत्पन्न होती है। यद्यपि जल–विद्युत बहुत सस्ती है किन्तु वह केवल ऐसे स्थानों पर ही प्राप्त की जा सकती है जहा पानी को बहुत ऊंचाई से गिराया जा सके। राजस्थान मे चम्बल योजना के द्वारा बहुत बड़ी मात्रा मे जल-विद्युत बनाई जाने लगेगी। इसी प्रकार भाखरा-नांगल, दामोदर घाटी, हीराकुंड आदि हमारे देश की वे बड़ी योजनायें हैं जिनमे बहुत अधिक जल–विद्युत प्राप्त होगी।

सामर्थ्य (Power)

यह हम समझ चुके है कि कार्य, शक्ति की सहायता से होता है; किन्तु कार्य जिस दर से होता है उसे सामर्थ्य (power) कहते हैं (the rate of work done is power) अगर हमें यह ज्ञात हो कि कितने समय में कितना काम हुआ है तो हम किसी भी शक्ति स्रोत की सामर्थ्य मालूम कर सकते हैं।

$$\frac{\text{Work}}{\text{Time}} \quad \text{woPer=}$$

पावर की सामान्य इकाई वाट होती है। एक वाट (watt) वह शक्ति है जो एक सेकन्ड मे एक जूल काम करती है।

1 watt performs 1 Joule of work in one second

वाट बहुत छोटी इकाई है। अतः एक हजार वाट की बडी इकाई का अधिक प्रचलन है। इसे एक किलोवाट (kilowatt) कहते हैं। ब्रिटिश पद्धति में पावर की इकाई अश्वबल अथवा Horse Power [H. P.] होती है।' इस इकाई का उपयोग उस समय प्रारम्भ किया गया जब इंग्लैंड मे घोड़ों की सहायता से बहुत बडे पैमाने पर खानो मे कोयला खीचा जाता था। इसको सबसे पहिले जेम्सवाट ने प्रचलित किया था। जेम्सवाट ने यह हिसाब लगाया था कि एक सामान्य घोडा एक मिनट में १५० पौंड कोयला २२० फीट की ऊंचाई तक खीच लेता हैं। अतः घोडे की सामर्थ्य को १५०×२२०= ३३,००० फुट-पाउन्ड प्रति सेकन्ड अर्थात् ५५० फुट-पाउन्ट प्रति सेकन्ड माना गया है।

Horse power per minuta=33,000 foot pound

" " per second $=\frac{33,000}{60}=550$ foot pound

एक H. P. द्वारा एक सेकन्ड मे ५५० फुट-पाउन्ड अथवा ७४६ जूल काम होता है। चूंकि एक जूल काम एक वाट पावर के द्वारा होता है इसलिये एक H. P. ७४६ वाट के बराबर होती है।

बिजली घरों मे प्रयुक्त ऊर्जा (energy) अथवा काम (work) की इकाई को किलोवाट आवर (Kilowatt Hour unit) कहते हैं। यह इकाई शक्ति की उस मात्रा को बतलाती है जो एक किलोवाट सामर्थ्य-बल वाला अभिकर्त्ता एक घण्टे में व्यय करता है। हमारी बिजली के बिल इसी यूनिट के आधार पर बनते हैं। जब १०० वाट का बल्ब १० घण्टे तक जलता है तब एक किलोवाट अवर बिजली खर्च होती है।

(i) एक किलोवाट भवर यूनिट कितनी शक्ति के बराबर है ?

∵ 1 वाट 1 सेकण्ड में 1 जूल काम करता है

∴ 1000 (1 किलोवाट) 1 सेकण्ड में 1×1000 जूल

∴ 1000 वाट 1 घण्टे में 1000×3600 जूल

$= 1000 \times 3600 \times 10^7$ अर्ग

$= 36 \times 10^{12}$ अर्ग

इस प्रकार एक किलोवाट भवर (one kilowatt hour) यूनिट 36×10^{12} अर्ग के बराबर होता है।

(ii) ५० वाट का बल्ब १ किलोवाट-भवर यूनिट बिजली कितने समय में खर्च करेगा ?

∵ 1000 वाट (1 किलोवाट) का बल्ब 1 यूनिट बिजली खर्च करता है=1 घण्टे में

∴ 1 वाट का बल्ब 1 यूनिट खर्च करेगा $= 1 \times 1000$ घण्टे में

∴ 50 वाट का बल्ब ,, ,, $= \frac{1000}{50} = 20$ घण्टे में

अतः ५० वाट का बल्ब २० घण्टे जलकर ही एक यूनिट बिजली खर्च कर सकता है।

एक कार्यशील व्यक्ति साधारणतया $\frac{1}{8}$ H. P. के बराबर काम करता है। मोटरकारों के एंजिन ७ H. P. से ५० H. P. तक होते हैं। प्रथम श्रेणी का बड़ा जंगी जहाज (war ship) एक लाख २० हजार H.P. का होता है।

प्रश्नावली

१, कार्य और शक्ति से आप क्या समझते हैं ? इनका विवरण देते हुये बतलाइए कि इनके ज्ञान का उपयोग किन-किन क्षेत्रों में किया गया है ?

२. सामर्थ्य (Power) क्या है ? हमारे दैनिक जीवन में पावर का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है ?

३. बल (force), किलोवाट-घण्टा यूनिट, हार्स-पावर (H. P.) तथा त्वरण (acceleration) पर टिप्पणियां लिखिए।

४. एक मकान में चालीस वाट के चार बल्ब जलाये जाते हैं। बतलाइए कि २० यूनिट बिजली खर्च करने के लिए उन्हें कितने समय तक जलना पड़ेगा ? उत्तर १२५ घण्टे ।

"Physical science gives power, power over steel, over distance, over disease, whether that power is used well or ill, depends upon the moral and political intelligence of the world."

— G. H. Wells

४ द्रव्य [Matter]

द्रव्य (पदार्थ) वह मूल वस्तु है जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड की प्रत्येक जड़ एवं चेतन वस्तु होती है। सामान्यतया पदार्थ स्थान घेरता है, भारमय होता है तथा जिसमे जड़त्व (inertia) का गुण होता है।

पदार्थ को सूक्ष्मता और विशालता, विचित्रता और विभिन्नता देखकर हर जिज्ञासु व्यक्ति के मन में चमत्कार एवं विस्मय की वृत्ति उत्पन्न होती है। प्रारम्भ में यह वृत्ति ही ईश्वरीय और दार्शनिक कल्पना की जनक बनी। किन्तु पदार्थ के रहस्य का ईश्वरीय एवं दार्शनिक स्पष्टिकरण अनेक विचारको संतुष्ट नहीं कर सका। ऐसे व्यक्तियो के द्वारा प्रकृति के रहस्य को समझने का अभियान चलता रहा। इसी अभियान का परिणाम आज का विज्ञान है। पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान का अध्ययन हम दो भागो मे करेंगे—

(१) प्राचीन विचार। (२) आधुनिक विचार।

प्राचीन-विचार

ईसा से कई शताब्दियो पूर्व भारत और यूनान मे ऐसे दार्शनिक हो गये हैं जिनके पदार्थ सम्बन्धी विचार आज भी महत्व रखते हैं। यद्यपि उस समय के विचारो का कोई प्रायोगिक आधार नही था, तथापि कल्पना की गहराई इतनी अधिक थी कि उनमें से कुछ विचार आज भी सही प्रतीत होते हैं। प्राचीन विद्वान् अपने विचारो की पुष्टि तर्क के आधार पर किया करते थे।

भारत के ऋषि कपिल ने द्रव्य की रचना के विषय में अपने यह विचार व्यक्त किये थे कि सब प्रकार के पदार्थ पांच तत्वों (पंच भूत) से मिलकर बने होते हैं। कपिल के अनुसार पांच तत्व पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल और वायु हैं। यह विचार अत्यन्त सरल अनुभव पर आधारित था। सम्भवतः पदार्थों के मूलेपन, ठण्डेपन, गीलेपन आदि गुणों को देखकर ही उपरोक्त तत्वो की कल्पना की गई थी। इसी प्रकार का समानान्तर विचार यूनानी विद्वानो मे भी पाया जाता था। वे केवल चार तत्व पृथ्वी, अग्नि, जल तथा वायु को ही मान्यता देते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि महान् विद्वान् अरस्तू (Aristotle) ने भारतीय विचारो से सहमत होकर ही पांच तत्वों को मान्यता दी थी। अरस्तू के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार के पदार्थ दो या दो से अधिक तत्वो के परस्पर मिलने से बनते हैं तथा तत्वों को बदलने से एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में बदल जाता है।

प्राचीन विद्वानों के विचार तत्व की मान्यता तक ही सीमित नहीं थे। उन्होंने तत्व की रचना की व्याख्या भी की है। यूनानी विद्वान् डेमोक्रिटस (Democritus 5th century B. C) का कथन है कि पदार्थ सूक्ष्मतम कणों अर्थात् परमाणुओं (atoms) का बना होता है। डेमोक्रिटस ने तो यहां तक कहा है कि परमाणु कम्पन की अवस्था में रहते हैं तथा पदार्थ का प्रत्येक परिवर्तन परमाणुओं के संयोजन अथवा वियोजन के कारण होता है। आधुनिक ज्ञान की दृष्टि से देखा जाये तो यह जानकर आश्चर्य होता है कि डेमोक्रिटस के विचार इतने सही कैसे थे? यही नहीं यूनानी विद्वानों ने मूल-पदार्थ (Prima materia) की भी कल्पना की थी। अन्य पदार्थों को वे मूल-पदार्थ का रूपान्तर मात्र मानते थे। आजकल हम हाइड्रोजन (Hydrogen) को मूल-पदार्थ मान कर अन्य तत्वो को उसका रूपान्तर कह सकते हैं।

भारतीय दार्शनिक कणाद, पाराशर, पातञ्जलि आदि ने भी परमाणु सम्बन्धी महत्वपूर्ण विचार रखे हैं। कणाद ऋषि का कणावाद का सिद्धान्त तो डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त से बहुत कुछ मेल खाता है। कणाद का कथन इस प्रकार है—

(१) पदार्थ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अत्यन्त सूक्ष्म कणों का बना होता है।

(२) अपनी माध्यमिक अवस्था में वह अणुओं (molecules) का बना होता है तथा (३) पदार्थ के सूक्ष्म कण (atoms) अविभाज्य होते हैं।

आगे चलकर भारतीय दार्शनिक, कणाद के इस विचार से आगे बढ़ गये कि परमाणु अविभाज्य होता है। उनकी मान्यता है कि परमाणु स्वयं अन्य छोटे-छोटे कणों का बना होता है। इन कणों को 'भूतादि' कण कहा गया है। ये विचार आजकल की जानकारी से अद्‌भुत मेल खाते हैं, किन्तु उस समय न तो प्रायोगिक प्रमाणों की प्रथा थी और न वैज्ञानिक अनुसन्धान की लगन थी। प्रकृति के रहस्यों को प्रायः ईश्वर की माया (चमत्कार) समझा जाता था और इसीलिए वैज्ञानिक खोज की ओर किसी का झुकाव नहीं होता था। यही कारण था कि प्राचीन काल में विज्ञान अधिक प्रगति नहीं कर सका।

आधुनिक-विचार

पदार्थ संबंधी आधुनिक विचारों का प्रारम्भ सत्रहवीं शताब्दि में रॉबर्ट बॉयल (Robert Boyle) ने किया। बॉयल ने सर्वप्रथम तत्व, यौगिक और मिश्रण की वैज्ञानिक व्याख्या की। आजकल रॉबर्ट बॉयल के द्वारा प्रतिपादित व्याख्या को ही माना जाता है। इसके द्वारा पदार्थों की प्रकृति, क्रिया-प्रक्रिया तथा श्रेणियों को समझने में अत्यधिक सहायता मिली है। रॉबर्ट बॉयल के तत्व, यौगिक एवं मिश्रण सम्बन्धी विचारों की व्याख्या सन् १६६१ में प्रकाशित उनकी पुस्तक "Sceptical Chymist" में की गई है। उनका सारांश इस प्रकार है—

(१) तत्व की परिभाषा :—तत्व वह सरल से सरल पदार्थ है जिसका कितना ही विखण्डन क्यों न किया जाये, उससे अन्य पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकता है।

(२) रासायनिक यौगिक :—यौगिक पदार्थ एक से अधिक तत्वों से मिलकर बनता है। जब तत्व आपस में रासायनिक क्रिया करते हैं तब यौगिक पदार्थ तैयार होते हैं। यौगिक की विशेषता यह है कि उनके गुण उन तत्वों के गुणों से बिलकुल भिन्न होते हैं जिससे मिलकर वे बनते हैं, जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से पानी बनता है। इनमें हाइड्रोजन ऐसा तत्व है जो ज्वलनशील है, आक्सीजन किसी भी वस्तु को जलाने के लिये आवश्यक होती है, इनके विपरीत पानी ऐसा यौगिक पदार्थ है जो न जलता है और न अन्य वस्तुओं को जलने देता है। यौगिक पदार्थों का प्रत्येक नमूना एकसा ही (homogeneous) होता है। यौगिक में मिलने वाले तत्व सदैव एक ही अनुपात में पाये जाते हैं। सभी पदार्थ छोटे छोटे कणों के बने होते हैं। कणों के पारस्परिक कम अथवा अधिक आकर्षण के कारण ही यौगिकों का संघठन अथवा विघटन होता है।

(३) मिश्रण भी एक से अधिक तत्वों से मिलकर बनता है; किन्तु मिश्रण में तत्व किसी भी अनुपात में मिलाये जा सकते हैं। मिश्रण के गुण तथा उसके तत्वों के गुणों में प्रायः समानता होती है तथा तत्वों को सरलता से अलग अलग किया जा सकता है।

राबर्ट बॉयल ने तत्व (elements) और यौगिक पदार्थों (Compounds) के अन्तर को इतने स्पष्ट रूप से समझाया कि भविष्य में उनका ठीक ठीक वर्गीकरण किया जाने लगा। इस बात की संभावना थी कि बॉयल की विचारधारा से पदार्थ की रचना को समझने में अत्यधिक प्रगति होती; किन्तु उस समय विज्ञान-जगत में एक ऐसा भ्रामक सिद्धान्त फैल गया जिसके कारण कुछ समय के लिये वैज्ञानिक भटक गये। यह सिद्धान्त फ्लोजिस्टन सिद्धान्त (Phlogiston theory) के नाम से प्रसिद्ध है। यह सिद्धान्त बेचर और स्टाह्ल (Becher and Stahl) द्वारा प्रतिपादित किया गया था। इसके अनुसार हर एक ज्वलनशील पदार्थ में फ्लोजिस्टन नाम का अंश होता

है। फ्लोजिस्टन के कारण ही वस्तु जल पाती है। जब फ्लोजिस्टन निकल जाता है तब उस वस्तु की केवल राख बच रहती है।

ज्वलनशील वस्तु–फ्लोजिस्टन=राख

प्रीस्टले, शीले, केवेन्डिश जैसे वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किन्तु लेवॉयजियर (Lavoisier 1743 to 1794) ने अपने मात्रात्मक प्रयोगों (quntitative experiments) द्वारा फ्लोजिस्टन सिद्धान्त को निर्मूल प्रमाणित करते हुए कहा कि जलने की क्रिया एक रासायनिक क्रिया है। जिसके अन्तर्गत आक्सीजन जलते हुए पदार्थ के साथ योग करती है। इस प्रकार अठारवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लेवॉयजियर ने आधुनिक रसायन शास्त्र का सूत्रपात किया।

फ्लोजिस्टन सिद्धान्त के पश्चात् पदार्थ का सुव्यवस्थित वर्गीकरण किया जाने लगा। अब यह मानने लगे कि एक ही प्रकार का पदार्थ तीन अवस्थाओं में रह सकता है। ये अवस्थायें ठोस (solid), द्रव (liquid) तथा (gas) कहलाती हैं। इस विचार के पश्चात् ही जॉन डाल्टन (John Dalton 1766–1844) का प्रसिद्ध परमाणु–सिद्धान्त (Dalton's atomic theory) प्रतिपादित किया गया। डाल्टन मानचेस्टर के स्कूल में विज्ञान के अध्यापक थे। उन्होंने सन् १८१० में अपनी पुस्तक "New System of Chemical Philosophy" प्रकाशित करवाई जिसमें परमाणु सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन किया है। डाल्टन का परमाणु सिद्धान्त सारांश में इस प्रकार है–

(१) प्रत्येक तत्व अत्यन्त सूक्ष्म कणों का बना होता है, ये कण 'परमाणु कहलाते हैं।

(२) परमाणु वृत्ताकार होते हैं।

(३) परमाणु अविभाज्य होते हैं (atoms are indivisible)।

(४) एक तत्व के सभी परमाणु समान होते हैं तथा दूसरे तत्व के परमाणुओं से भिन्न होते हैं।

(५) एक से अधिक समान अथवा असमान परमाणुओं के मिलने से संयुक्त परमाणु (compound-atoms) बनते हैं। इन्ही संयुक्त-परमाणुओं को आजकल अणु (molecules) कहते हैं।

(६) परमाणु सदा पूर्ण संख्याओं में ही योग करते हैं अथवा अलग होते हैं।

यद्यपि यह विचार बहुत पुराना था कि पदार्थ ऐसे सूक्ष्म कणों का बना होता है जो अविभाज्य होते हैं किन्तु डाल्टन ने पहली बार इन कणों के विषय में मात्रात्मक (quantitative) विचार रक्खे। मात्रात्मक विचार किसी भी समस्या को ठीक ठीक समझने में बहुत सहायता करते हैं। डाल्टन ने विज्ञान की सुदृढ़ आधार-शिला रक्खी। उन्नीसवी शताब्दि में वैज्ञानिक प्रगति बहुत द्रुतगति से हुई। इस शताब्दि के अन्तिम दशक में "परमाणु" का रहस्य मय दुर्ग टूट गया। सन् १८९७ में. जे.जे. थॉमसन (J.J.Thomson) ने electron की खोज करके यह प्रमाणित कर दिया कि परमाणु विभाजनशील है। इलेक्ट्रोन (electron) नाम के कण परमाणु के टूटने से प्राप्त होते हैं। विद्युताणु (electron) ऋण विद्युत का सबसे छोटा कण होता है। चूंकि सामान्य परमाणु (normal atom) विद्युत-उदासीन होता है, इसलिए परमाणु मे धन विद्युत के कणों का होना भी आवश्यक था। आगे चलकर यह बात भी प्रमाणित हुई कि परमाणु मे धन विद्युत के सबसे छोटे कण भी होते हैं। इन्हें प्राणु (Protons) कहते हैं। वैज्ञानिक रदरफोर्ड (Rutherford) ने इस क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किया और यह प्रमाणित किया कि परमाणु के दो भाग होते हैं। आन्तरिक भाग में धन-विद्युत पाई जाती है तथा बाहरी भाग में ऋण-विद्युत मिलती है। सामान्य तौर से धन विद्युत कण (Protons) तथा ऋण-विद्युत कणो (electrons) की संख्या बराबर होती है। प्रोटोन की विशेषता यह है कि उसमे धन-विद्युत के अतिरिक्त भार भी होता है। उसके भार को इकाई भार कहा जाता है। सन् १९३२ मे शेडविक (Chadwick) ने एक अन्य कण का पता लगाया।

यह कण न्यूट्रॉन (Neutron) कहलाता है। यह विद्युत-उदासीनता ही है तथा प्रोटोन के बराबर भारी होता है। यह भी परमाणु के आन्तरिक भाग में पाया जाता है।

इस प्रकार परमाणु की रचना के विषय में अधिकाधिक ज्ञान बढ़ता गया। उपरोक्त तीनों कण परमाणु के "मूलकण" (fundamental particles) कहलाते हैं। वैज्ञानिकों ने परमाणु के आकार एवं प्रतिरूप (model) का विवरण भी दिया है। जहाँ तक प्रतिरूप का सम्बन्ध है, वह काल्पनिक है। उसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उनके पास नहीं है। उनका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि उनकी कल्पना के अनुसार परमाणु का व्यवहार (behaviour) जैसा होना चाहिये वैसा ही होता है। फिर भी इस क्षेत्र में अभी आगे बढ़ना शेष है।

यही नहीं 'मूलकणों' के अतिरिक्त कुछ अन्य कणों, positrons, neutrinos आदि की भी खोज हुई है। ये कण 'परमाणु' की संरचना (structure of atom) पर अपना प्रभाव डालते हैं। इतना होते हुए भी परमाणु के सम्पूर्ण रहस्य वैज्ञानिकों को अभी तक मालूम नहीं है। वैज्ञानिकों के प्रयत्न इस दिशा में बराबर चल रहे हैं।

पदार्थ के एक बहुत बड़े रहस्य का पता वैज्ञानिक आईंसटीन ने सन् १९०५ में अपने 'सापेक्षवाद के सिद्धान्त' (theory of relativity) के आधार पर लगाया। इसके पहिले पदार्थ (matter) और शक्ति (energy) के पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट नहीं थे। आईंसटीन ने अपनी प्रसिद्ध समीकरण $E=MC^2$ द्वारा पदार्थ और शक्ति को एक दूसरे में परिवर्तनशील बताया। इस सिद्धान्त के अनुसार यह प्रमाणित हो गया कि पदार्थ की थोड़ी मात्रा अगर शक्ति में परिवर्तित हो जाये तो वह अत्यधिक शक्ति होगी। आगे चल कर यही सिद्धान्त परमाणु शक्ति और परमाणु बम के निर्माण का बना। पदार्थ-रचना की रहस्य-यात्रा में मनुष्य ने बहुत कुछ सीखा है

और बहुत कुछ सीखेगा। इसी के आधार पर वह आज परमाणु-शक्ति पर नियन्त्रण कर रहा है। इस प्रगति को देखकर मानव-समाज का भविष्य आशाजनक ही कहा जा सकता है।

प्रश्नावली

१. पदार्थ क्या है ? पदार्थ सम्बन्धी प्राचीन विचारों की व्याख्या कीजिए।

२. पदार्थ सम्बन्धी आधुनिक विचारों की विवेचना कीजिए।

३. तत्व, यौगिक, मिश्रण, फ्लोजिस्टन और परमाणु के मूलकण पर टिप्पणियाँ लिखिये।

"Cease to be ruled by dogmas and authorities, look at the world."

—Roger Bacon

५ **परमाणु नाभिक और परमाणुशक्ति**

[Atomic Nuclei and Atomic Energy]

सन् १८६७ के पहिले तक ऐसा माना जाता था कि परमाणु अविभाज्य है तथा अभेद्य है। यह सच है कि अभी तक ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर निःसंकोच यह कहा जा सके कि परमाणु की संरचना (structure) कैसी है? किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शीघ्र ही वैज्ञानिक इस स्थिति में पहुँच जायेंगे जब वे निश्चय पूर्वक इस गुत्थी को सुलझा सकेंगे। प्रोफेसर इरविन मुलर-कृत सुपर माइक्रोसकोप (super microscope) के द्वारा इतना तो सम्भव हो गया है कि परमाणु सूक्ष्म बिन्दुओं (small round specs) के रूप में दिखने लगे हैं। किन्तु परमाणु का भीतरी भाग अभी तक नहीं देखा जा सका है। अतः उसकी संरचना से सम्बन्धित समस्त ज्ञान अप्रत्यक्ष प्रायोगिक तथा गणितीय प्रमाणों पर ही आधारित है। अप्रत्यक्ष प्रमाणों पर आधारित होते हुए भी यह ज्ञान इतना सही प्रतीत होता है कि उसके आधार पर मनुष्य आज परमाणु का विखंडन करके परमाणु-शक्ति प्राप्त करने में सफल हुआ है तथा एक तत्व के परमाणुओं को दूसरे तत्व के परमाणुओं में बदल सका है।

२. जब जे. जे. थॉमसन ने सन् १८६७ में विद्युताणु (electron) की खोज करके यह कहा कि वह परमाणु का लगभग भार-रहित ऋण-विद्युत् मय कण है, तब ही से परमाणु सम्बन्धी खोज ने एक नया मोड़ लिया। सन् १६११ में वैज्ञानिक रदरफोर्ड ने परमाणु के आन्तरिक भाग की खोज की। रदरफोर्ड

ने कुछ तत्वों पर तीव्र गति के Alpha particles✽ की बौछार की। इन प्रयोगों के समय यह पाया गया कि ये कण परमाणु-क्षेत्र मे कुछ दूर तक सीधे बढ जाते हैं, तत्पश्चात् कुछ कणो का पथ तिरछा हो जाता है तथा कुछ कण पुनः अपने पूर्व पथ पर लौट आते हैं।
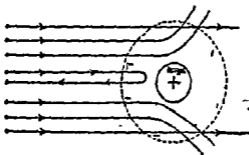
Fig. 4 : The Changing path of ∝—Particles

अपने प्रयोगों के आधार पर रदरफोर्ड इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि :

(१) परमाणु में पर्याप्त रिक्त स्थान होता है तथा

(२) परमाणु के केन्द्रक में कोई ऐसी भारी वस्तु होती है जिससे एल्फा कण टकराते हैं तथा वह भारी वस्तु "धन विद्युतमय" होती है। इसीलिए घनाकर्षण (repulsion) के कारण कुछ एल्फा कणों का पथ तिरछा हो जाता है तथा कुछ वापिस अपने पथ पर लौट आते हैं। (∝—particles are deflected and reflected back due to repulsion)

✽ एल्फा कण ऐसे कण होते हैं जिनमें दो इकाई धन-विद्युत और चार इकाई भार होता है। वास्तव में एल्फा कण हीलियम के नाभिक (nuclei) होते हैं। एल्फा कणों को ∝—prticles के रूप में लिखा जाता है।

रदरफोर्डकी खोज के पश्चात् परमाणु का चित्र (model) कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगा। अब यह मानने लगे कि परमाणु के केन्द्र में धन-विद्युत के भारमय कण होते हैं जिन्हें प्राणु (protons) कहते हैं। इस केन्द्रीय पिण्ड को नाभिक अथवा केन्द्रक (nucleus) कहा गया। नाभि के चारों ओर विद्युताणु delectrons) पाये जाते हैं। साथ ही यह निष्कर्ष भी निकाला कि सामान्य
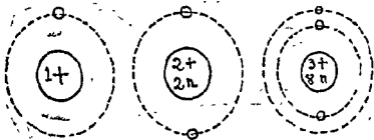
Fig. 5 : Atomic models of Hydrogen, Helium and Lithium.

(normal) परमाणु मे electrons और protons की संख्या बराबर होनी चाहिये क्योंकि परमाणु विद्युत उदासीन होता है। आगे चलकर नील्स बोहर (Neils Bohr) और सोमरफील्ड (Sommerfield) की खोज के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि (electrons) नाभिक (Nucleus) के चारो ओर स्थित कक्षो (orbits) में मिलते हैं। वे सदा नाभिक के चारो ओर घूमते रहते हैं। बोहर का विचार था कि कक्ष गोलाकार होते हैं, किन्तु सोमरफील्ड ने उन्हें अण्डाकार बतलाया। सोमरफील्ड का विचार ही आज-कल सही समझा जाता है। इस प्रकार परमाणु का प्रतिरूप (Model) सूर्यमंडल से मिलता-जुलता पाया गया। जिस प्रकार सूर्य के चारो ओर ग्रह अण्डाकार पथ पर घूमा करते हैं, उसी तरह परमाणु के नाभिक के चारों ओर electrons अण्डाकार कक्षो पर घूमते रहते हैं।

सैद्धान्तिक दृष्टि से परमाणु भार (atomic-weight) की गणना

सभी ठीक हो सकती थी जब परमाणु में एक ऐसा कण भी होता जिसका भार तो प्राणु (Proton) के बराबर हो किन्तु जो विद्युत उदासीन हो। सन् १६३२ में वैज्ञानिक चेड्विक ने उपरोक्त कण भी खोज निकाला। इस कण का नाम क्लीवाणु (Neutron) रखा गया। Electrons, Protons तथा Neutron पदार्थ के मूल कण (Fundamental particles) माने जाते हैं।

मूल कणों की विशेषतायें:—

Electrons (विद्युताणु)

(१) Electrons की खोज १८६७ मे जे. जे. थोमसन ने की थी। यह कण ऋण विद्युत का सबसे छोटा कण होता है। इस पर $1 \cdot 8 \times 10^{19}$ Coulombs※ ऋण विद्युत होती है।

(२) यह कण लगभग भार रहित माना जाता है। क्योंकि इसका भार इतना कम होता है कि वह उपेक्षणीय है। एक Electron में लगभग 10^{-27} gm. भार होता है।

(३) सामान्य तौर से electrons परमाणु की समस्त ऋण विद्य के लिए उत्तरदायी होते हैं। ये परमाणु के बाहरी भाग में पाये जाते हैं।

※Coulomb.—विद्युत की मात्रा की इकाई (The practical unit of quantity of electricity, being the amount of electricity passing in a cir(uit when one ampere flows for one second.

Ampere:—The unit of current when passed through a solution of silver nitrate in water, will deposit silver at the rate of 0·001118 gms. per second or 1·1180 milligrams/second.

(४) एक परमाणु में मिलने वाले Electrones की संख्या को परमाणु संख्या कहते हैं। किसी तत्व के विशेष गुण (Properties) उसकी परमाणु संख्या पर निर्भर करते हैं। परमाणु संख्या को "Z" अक्षर के द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

(५) Electrons अण्डाकार कक्षो में पाये जाते हैं। किसी भी कक्ष मे $2n^2$ से अधिक Electrons नही हो सकते हैं। ('N') कक्ष की क्रमसंख्या को प्रदर्शित करता है। कक्षो की गणना नाभिक (Nucleus) से बाहर की ओर की जाती है। इस प्रकार नाभिक के सबसे निकट वाले कक्ष की संख्या प्रथम तथा उसके बाहर वाले को द्वितीय होती है।

कक्षो मे Electrons की अधिकतम सख्या की गणना निम्न प्रकार से की जाती है।

पहले कक्ष मे (i) $2\times1^2=2$ Electrons
$n=1$

दूसरे कक्ष मे, (ii) $2\times2^2=2\times2\times2=8$ Electrons
$n=2$

Protons (प्राणु)

Electrons की खोज के पश्चात् ऐसे कण को खोज होने लगी जो धन विद्युत का सबसे छोटा कण है। शीघ्र ही यह मालूम पड़ा कि हाइड्रोजन के परमाणु के केन्द्र में धन विद्युत का कण होता है इसे प्रोटोन कहा गया। सन् १९११ मे वैज्ञानिक रदरफोर्ड और ब्लेकेट (Blackett) ने यह प्रमाणित किया कि सभी तत्वों के परमाणुओं के केन्द्रो मे प्रोटान्स होते हैं। परमाणु के केन्द्रों को नाभिक अथवा केन्द्रक (Nucleus) कहा गया।

प्राणु (Protons) की विशेषताः—

(१) प्राणु धन विद्युत का सबसे छोटा कण होता है। इस पर उतनी ही धन विद्युत होती है जितनी एक Electron में ऋण विद्युत होती है (1.8×10^{19} coulombs.)

(२) प्राणु भार मय कण होता है इसका भार 1.67×10^{-24} gms. होता है।※ परमाणु इकाई की दृष्टि से प्राणु का भार 1.0078 होता है। एक प्राणु का भार और हाइड्रोजन के एक परमाणु का भार समान होता है क्योंकि हाइड्रोजन के परमाणु का भार उसमें स्थित एक प्राणु (Proton) के कारण होता है। एक प्राणु एक इलेक्ट्रोन से लगभग १८४० गुना भारी होता है।

(३) प्राणु परमाणु के नाभिक (Nucleus) में पाये जाते हैं। एक परमाणु में जितनी भी धन विद्युत होती है वह प्रोटोन्स के कारण होती है।

(४) सामान्य परमाणु में Electrons और Protons की संख्या बराबर होती है। अतः Protons की संख्या को भी परमाणु संख्या ही कहते हैं।

(५) प्राणु परमाणु के भार के लिये भी उत्तरदायी होता है।

Neutron (क्लीवाणु)

जब विभिन्न तत्वों के परमाणु भार मालूम किये गये तब वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुंचे कि Protons के अतिरिक्त परमाणु में ऐसे कण भी होने चाहिये जिनमें विद्युत तो नहीं हो किन्तु जो भार मय हों। बहुत अरसे तक यह

※ भिन्न-भिन्न तत्वों के परमाणु भार की तुलना oxygen के उस परमाणु से की जाती है जिसका भार 16.00 units होता है।

कण रहस्य मय बने रहे। सन् १६३२ में चैडविक (Chadwick) ने परमाणु में उन कणों की खोज की जिनकी प्रतीक्षा थी। ये कण स्नीवाणु (Neutrons) कहलाये।

Neutrons की विशेषतायें:—

(१) Neutron विद्युत उदासीन होते हैं।

(२) एक Neutron का भार लगभग एक प्रोटोन के भार के बराबर होता है। परमाणु की इकाई की दृष्टि से Neutron में 1.0070 भार होता है तथा यह electron से लगभग 1837 गुना भारी होता है।

(३) Neutrons भी परमाणु के नाभिक में ही पाये जाते हैं। Neutrons तथा Protons मिलकर परमाणु के भार के लिये प्रायः पूर्णतया उत्तरदायी होते हैं।

(४) Neutrons की कमी अथवा वृद्धि से परमाणु भार (Atomic wright में परिवर्तित होता है। लेकिन परमाणु संख्या अपरिवर्तित रहती है।

(५) Neutrons अत्यन्त शक्तिशाली कण होते हैं। ये परमाणु के टूटने से ही प्राप्त होते हैं। इनको प्राप्त करने के लिये ऐसे शक्तिशाली बल की आवश्यकता होती है जो अत्यन्त सीमित क्षेत्र (Short Range) में कार्यशील होता है।

(६) Neutrons की भेदन शक्ति बहुत तीव्र होती है। ये गामा रेज की अपेक्षा तीन गुनी मोटाई को भी पार कर सकते हैं। ये सीसे की ६–१० सेण्टी मीटर मोटी दीवार को पार कर सकते हैं।

इस प्रकार परमाणु तीन मूल कणों से मिलकर बना होता है। ये मूल

कण Electrons, Protons तथा Neutrnos हैं। इनके अतिरिक्त Positrons, Mesons, Neutrinos आदि अन्य कण भी होते हैं जो परमाणु पर अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

एक सामान्य परमाणु काफी दीर्घ घेरता है, किन्तु परमाणु का नाभिक अपेक्षाकृत बहुत छोटा होता है। Nucleus का व्यास 10^{-12}cm. के लगभग होता है जब कि परमाणु का व्यास 10^{-8} cm. होता है। इस प्रकार परमाणु का व्यास नाभिक के व्यास से लगभग बीस हजार गुना अधिक होता है।

परमाणु संख्या (Atomic Number):—

किसी भी तत्व के परमाणु में (Electrons) अथवा (Protons) की संख्या को atomic number कहते हैं। तत्व के गुण atomic number पर ही निर्भर करते हैं। जब एक तत्व को दूसरे तत्व में बदलना होता है तब परमाणु संख्या को बदलना आवश्यक होता है।

परमाणु भार Atomic wieght:—

व्यवहारिक रूप मे परमाणु भार वह संख्या होती है जो यह बतलाती है कि किसी तत्व का एक परमाणु हाइड्रोजन के एक परमाणु से कितना भारी है? वास्तव मे परमाणु भार किसी भी परमाणु के Protons तथा Neutrons के योग के बराबर होता है। Atomic weight में से Atomic number को घटाने से Neutrons की संख्या मालूम हो जाती है। परमाणु भार के बदलने से तत्व नहीं बदलता है वरन् उसी तत्व का सम स्थानीय रूप (Isotope) प्राप्त हो जाता है। आजकल परमाणु भार हाइड्रोजन का तुलनात्मक रूप न होकर ऑक्सीजन का तुलनात्मक रूप होता है जिसका परमाणु भार 16 होता है।

ATOMIC ENERGY (परमाणु शक्ति)

यह विचार कि परमाणु में अत्यधिक शक्ति विद्यमान होती है, बहुत प्राचीन है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इस शक्ति का ज्ञान तब हुआ जब रेडियो सक्रियता (Radio activity) का अध्ययन किया गया। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में यूरेनियम, रेडियम, पोलोनियम आदि रेडियो सक्रिय तत्वों की खोज हुई। इन तत्वो की रेडियो सक्रियता के अध्ययन से मालूम हुआ कि इनमें से शक्ति की किरणें निकलती है तथा ये तत्व अन्य तत्वो में बदल जाते हैं। इस जानकारी से वैज्ञानिकों का ध्यान परमाणु शक्ति तथा तत्वों के रूपान्तर की ओर आकृष्ट हुआ।

सन् १९०५ मे वैज्ञानिक Einstein ने शक्ति और पदार्थ का सम्बन्ध बतलाने वाली प्रसिद्ध समीकरण (equation) प्रस्तुत की।

$E=Mc^2$

Energy in ergs=Mass in grms × (Velocity of light in cms Per second)^2

इस समीकरण का कुछ वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। इसके अनुसार यह प्रमाणित हो गया कि अगर मनुष्य थोड़े से पदार्थ की भी पूर्णतया शक्ति में परिवर्तित कर सके तो उससे शक्ति की बहुत बड़ी मात्रा प्राप्त हो सकती है।

मान लीजिये हम १ ग्राम पदार्थ को शक्ति मे परिवर्तित करते हैं तो उपरोक्त समीकरण के अनुसार हमें $E=1\times(3\times10^{10})^2=9\times10^{20}$ Ergs शक्ति प्राप्त होगी इस शक्ति की अधिकता का अनुमान हम इस प्रकार लगा सकते हैं:—

१ ग्राम पानी का तापक्रम १डिग्री सेंटीग्रेड (१५° C से १६° C तक)

बढ़ाने के लिये गर्मी की जितनी मात्रा की आवश्यकता होती है उसे एक केलोरी कहते हैं। एक केलोरी की सामर्थ्य लगभग $4 \cdot 2 \times 10^7$ अर्ग के बराबर होती है।

1 calorie=$4 \cdot 2 \times 10^7$ ergs (approximately)

इसके आधार पर हम 9×10^{20} ergs शक्ति का केलोरीज के रूप में अनुमान लगा सकते हैं। इस शक्ति के द्वारा लगभग 2×10^5 टन पानी उबाला जा सकता है। कुछ अन्य उदाहरण देकर भी हम पदार्थ से प्राप्त शक्ति का अनुमान लगा सकते हैं।※

(1 पौंड=454 ग्राम, 1 ton=2240 पौंड)

(१) अनुमान है कि 1 inch cubic uranium$^{235}_{92}$ जिसका भार लगभग १ पौंड होता है, विखंडन (fission) पर इतनी शक्ति दे सकता है जो लगभग ३० लाख पौंड कोयले अथवा २ लाख ४० हजार गैलन पैट्रोल से प्राप्त होती है।

(२) एक सेर uranium इतनी शक्ति देता है जितनी शक्ति ५ लाख मन बारूद से मिलती है।

(३) यह भी अनुमान है कि १ ग्राम पदार्थ से प्राप्त शक्ति एक ऐसी सामान्य Express Train को जिसकी चाल ४५ मील प्रति घण्टा हो लगातार १० वर्ष तक चला सकती है।

उपरोक्त उदाहरणों से मनुष्यों को शक्ति के एक ऐसे स्रोत की आशा बंध गई है जो लाखों वर्ष तक अनन्त भण्डार की भाँति काम करेगा।

※यहाँ calculation की सरलता की दृष्टि से 1 पौंड 500 ग्राम के बराबर तथा 1 टन को 2000 पौंड के बराबर मान लिया है, अतः 2×10^5 टन मात्रा Approximate है।

ATOMIC ENERGY (परमाणु शक्ति)

यह विचार कि परमाणु में अत्यधिक शक्ति विद्यमान होती है, बहुत प्राचीन है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इस शक्ति का ज्ञान तब हुआ जब रेडियो सक्रियता (Radio activity) का अध्ययन किया गया। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में यूरेनियम, रेडियम, पोलोनियम आदि रेडियो सक्रिय तत्वों की खोज हुई। इन तत्वों की रेडियो सक्रियता के अध्ययन से मालूम हुआ कि इनमें से शक्ति की किरणें निकलती हैं तथा ये तत्व अन्य तत्वों में बदल जाते हैं। इस जानकारी से वैज्ञानिकों का ध्यान परमाणु शक्ति तथा तत्वों के रूपान्तर की ओर आकृष्ट हुआ।

सन् १६०५ में वैज्ञानिक Einstein ने शक्ति और पदार्थ का सम्बन्ध बतलाने वाली प्रसिद्ध समीकरण (equation) प्रस्तुत की।

$E=Mc^2$

Energy in ergs=Mass in grms × (Velocity of light in cms Per second)^2

इस समीकरण का कुछ वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। इसके अनुसार यह प्रमाणित हो गया कि अगर मनुष्य थोड़े से पदार्थ को भी पूर्णतया शक्ति में परिवर्तित कर सके तो उससे शक्ति की बहुत बड़ी मात्रा प्राप्त हो सकती है।

मान लीजिये हम १ ग्राम पदार्थ को शक्ति में परिवर्तित करते हैं तो उपरोक्त समीकरण के अनुसार हमें $E=1\times(3\times10^{10})^2=9\times10^{20}$ Ergs शक्ति प्राप्त होगी इस शक्ति की अधिकता का अनुमान हम इस प्रकार लगा सकते हैं:—

१ ग्राम पानी का तापक्रम १ डिग्री सेंटीग्रेड (१५° C से १६° C तक)

बढ़ाने के लिये गर्मी की जितनी मात्रा की आवश्यकता होती है उसे एक केलोरी कहते हैं। एक केलोरी की सामर्थ्य लगभग $4 \cdot 2 \times 10^7$ अर्ग के बराबर होती है।

1 calorie=$4 \cdot 2 \times 10^7$ ergs (approximately)

इसके आधार पर हम 9×10^{20} ergs शक्ति का केलोरीज के रूप में अनुमान लगा सकते हैं। इस शक्ति के द्वारा लगभग 2×10^5 टन पानी उबाला जा सकता है। कुछ अन्य उदाहरण देकर भी हम पदार्थ से प्राप्त शक्ति का अनुमान लगा सकते हैं।❀

(1 पौंड=454 ग्राम, 1 ton=2240 पौंड)

(१) अनुमान है कि 1 inch cubic uranium$^{235}_{92}$ जिसका भार लगभग १ पौंड होता है, विखंडन (fission) पर इतनी शक्ति दे सकता है जो लगभग ३० लाख पौंड कोयले अथवा २ लाख ४० हजार गैलन पैट्रोल से प्राप्त होती है।

(२) एक सेर uranium इतनी शक्ति देता है जितनी शक्ति ५ लाख मन बारूद से मिलती है।

(३) यह भी अनुमान है कि १ ग्राम पदार्थ से प्राप्त शक्ति एक ऐसी सामान्य Express Train को जिसकी चाल ४५ मील प्रति घण्टा हो लगातार १० वर्ष तक चला सकती है।

उपरोक्त उदाहरणों से मनुष्यों को शक्ति के एक ऐसे स्रोत की आशा बँध गई है जो लाखों वर्ष तक अनन्त भण्डार की भाँति काम करेगा।

❀यहाँ calculation की सरलता की दृष्टि से 1 पौंड 500 ग्राम बराबर तथा 1 टन को 2000 पौंड के बराबर मान लिया है, अतः ? टन मात्रा Approximate है।

अतः आइंस्टीन की खोज से प्रेरित होकर वैज्ञानिक इस प्रयत्न में लग गये कि किसी प्रकार परमाणु-शक्ति प्राप्त करने की विधि मालूम की जावे। अनेक वैज्ञानिकों ने इस दिशा में प्रयत्न किये जिनमें रदरफोर्ड, बोहर, जोलियट क्यूरी, मरिन, जोलियट क्यूरी, फर्मी, हान एवं स्ट्रासमैन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जर्मनी के Hahn और Strassman ने सन् १९३९ में पहली बार uranium $^{235}_{92}$ के परमाणु का विखण्डन किया तथा इटली के वैज्ञानिक फर्मी ने संसार की पहली परमाणु भट्टी (Atomic Reactor) बनाई।

ATOMIC REACTOR (परमाणु-भट्टी)

परमाणु भट्टी वह यन्त्र है जिसके द्वारा परमाणु का विखण्डन (Atomic fission) करके नियन्त्रित रूप से परमाणु शक्ति प्राप्त की जाती है। विखण्डन विधि (Fission method) से परमाणु शक्ति प्राप्त करने के लिए मुख्य रूप से यूरेनियम और थोरियम का उपयोग हो सकता है। यूरेनियम, थोरियम, प्लूटोनियम आदि तत्व परमाणु ईंधन (Atomic fuels) कहलाते हैं। इनमें से सबसे अधिक यूरेनियम का उपयोग किया जा रहा है। प्रकृति में यूरेनियम के तीन समस्थानीय रूप (Isotopes) मिलते हैं:- u^{234}_{92} u^{235}_{92}, u^{238}_{92}।

u^{234}_{92} की मात्रा बहुत कम होती है तथा वह प्रायः निष्क्रिय होता है।

u^{235}_{92} की मात्रा भी बहुत कम होती है (0·7%) तथापि यह परमाणु शक्ति की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

u^{238}_{92} बहुत अधिकता से मिलता है (99.23%)।

u^{235}_{92} का विखण्डन मन्दगामी न्यूट्रोन्स (Slow moving-Neutrons) के द्वारा ही हो सकता है जबकि u^{238}_{92} का विखण्डन अत्यन्त शीघ्रगामी Neutrons के द्वारा सम्भव होता है। साधारण गति वाले Neutr-

ons यूरेनियम 238 का विखन्डन तो नहीं कर पाते हैं परन्तु उसे Plutonium नाम की अन्य धातु मे बदल देते हैं। प्लूटोनियम भी परमाणु शक्ति प्राप्त करने के काम आता है।

CONSTRUCTION OF ATOMIC REACTOR
परमाणु भट्टी की बनावट

आजकल भिन्न-भिन्न प्रकार की परमाणु भट्टियाँ बनने लगी हैं। इनमें विशेषकर Graphite Atomic Reactors और Swimming Pool Reactors* प्रसिद्ध हैं। हम यहाँ Graphite Atomic Reactor का वर्णन करेंगे।

ग्रेफाइट ईंटों की बनी हुई यह भट्टी घन के आकार (Cubical) की होती है। इसमें Horizontal (अनुप्रस्थ) तथा Vertical (ऊर्ध्वाधर) नलिकायें बनी होती हैं। Horizontal नलिकाओं मे शुद्ध यूरेनियम की छड़ें रक्खी जाती हैं। इन छड़ो मे यूरेनियम $^{238}_{92}$ और यूरेनियम $^{235}_{92}$ दोनों

VERTICAL HOLES

HORIZONTAL HOLES
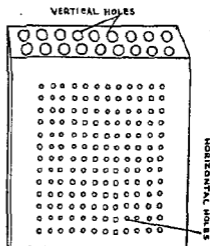
Fig. 6 : Graphite Atomic Reactor

---

*हमारे देश की प्रथम परमाणु-भट्टी swimming pool जैसी है। इसका नाम अप्सरा है और यह बम्बई के समीप Trombay नामक स्थान पर स्थित है।

ही मिले रहते हैं। Vertical नलिकाओं में Cadmium, की छड़ें रखी जाती हैं। इन छड़ों को नलिकाओं में इच्छानुसार ऊपर नीचे किया जा सकता है। यह सारा यन्त्र सीमेंट की मोटी दीवारों में बन्द रहता है। इन दीवारों में ऐसा स्थान बना रहता है जहाँ से भट्टी के कार्य का संचालन किया जा सकता है। भट्टी को संचालित करने वाले विशेष प्रकार की पोशाक पहने रहते हैं। सीमेंट की दीवार तथा पोशाक का उपयोग हानिकारक विकिरणों (Harmful Radiations) से बचने के लिये होता है।

WORKING OF ATOMIC REACTOR

परमाणु भट्टी का कार्य

परमाणु भट्टी का कार्य यूरेनियम के परमाणुओं को विखण्डित करना होता है। प्रारम्भ में यूरेनियम की छड़ें नलिकाओं में रखी जाती हैं तथा केडमियम की छड़ें बाहर रखी जाती हैं। बहुत भारी तत्व होने के कारण यूरेनियम के कुछ परमाणु स्वयं टूटते रहते हैं और उनमें से कुछ neutrons बाहर निकले रहते हैं। परमाणु भट्टी में ऐसे neutrons की संख्या निरंतर बढ़ती जाती हैं। इन neutrons की गति (speed) काफी तेज होती है, किन्तु जब ये ग्रेफाइट में होकर गुजरते हैं तब इनकी गति कम हो जाती है। न्यूट्रोन्स की गति (चाल) को कम करने वाले पदार्थों को moderators कहते हैं। अब मन्दगामी न्यूट्रोन्स (slow moving neutrons) u^{235} के परमाणुओं से टकराते हैं तब वे परमाणु टूट जाते हैं। u^{235} का परमाणु टूटकर दो हल्के तत्वों के परमाणुओं में बदल जाता है।

विखण्डन की रूप रेखा दो प्रकार की है :—

(i) $u^{235}_{92} \longrightarrow Ba^{137}_{56} + Kr^{88}_{36} + 16$ neutrons

(ii) $u^{235}_{92} \longrightarrow Sr^{88}_{38} + Xe^{131}_{54} + 16$ neutrons
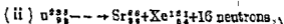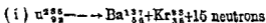
इस प्रकार हम देखते हैं कि u^{235}_{92} या तो बेरियम और क्रिप्टन में अथवा स्ट्रोन्शियम और जेनॉन (Xenon) में बदल जाता है। इस क्रिया के फलस्वरूप १५–१६ न्यूट्रोन्स बाहर निकलते है। इनमें से १२–१३ न्यूट्रोन्स तो शक्ति (energy) मे बदल जाते हैं तथा शेष यूरेनियम के अन्य परमाणुओं पर प्रहार करते हैं। यूरेनियम के परमाणुओं के टूटने की पुनः वैसी ही क्रिया होती है जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस प्रकार यूरेनियम के परमाणुओं के टूटने का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है। थोड़े समय पश्चात् ही गर्मी (heat) के रूप में अत्यधिक शक्ति प्राप्त होने लगती है। सिलसिले से उत्तरोत्तर बढ़ने वाली इस क्रिया को चेन-प्रक्रिया (chain reaction) कहते हैं।

यूरेनियम 235 के परमाणु-विखण्डन (atomic fission) से प्राप्त न्यूट्रोन्स शीघ्रगामी (fast moving) होते हैं। इनमें से कुछ न्यूट्रोन्स तो graphite के कारण मन्दगामी हो जाते हैं। यहाँ ग्रेफाइट moderator का काम देता है। जो न्यूट्रोन्स शीघ्रगामी ही बने रहते हैं वे u^{238}_{92} के द्वारा पकड़ लिए जाते हैं। इस क्रिया के कारण u^{238} जो बहुत अधिक मात्रा में होता है, प्लूटोनियम (plutonium) नाम के तत्व में बदल जाता है।

यूरेनियम 238 को प्लूटोनियम मे बदलने की क्रिया.—

(i) $u^{238}_{92}+N=u^{239}_{92}$

(ii) $u^{239}_{92}-\beta particle=Np^{239}_{93}$ (neptunium)

(iii) $Np^{239}_{93}-\beta\ particle=Pu^{239}_{94}$ (plutonium)
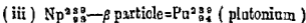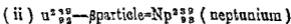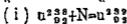
इस प्रकार परमाणु-भट्टी मे दोनो प्रकार की क्रियाएँ चलती रहती हैं। प्लूटोनियम का उपयोग भी विखण्डन के द्वारा परमाणु-शक्ति प्राप्त करने के लिये किया जाता है। कुछ समय पश्चात् यह क्रिया इतनी अधिक बढ़ जाती है कि परमाणु भट्टी मे कैडमियम की छड़ें डालना आवश्यक हो जाता है। कैडमियम धातु की यह विशेषता है कि वह बहुत तेजी के साथ न्यूट्रोन्स का शोषण

(absorption) करती है। इस तरह कैडमियम का उपयोग क्लीवाणु-अव-शोषक (neutron absorber) के रूप मे होता है। कैडमियम की छड़ों के द्वारा न्यूट्रोन्स की संख्या पर नियंत्रण रक्खा जाता है।

परमाणु विखण्डन के द्वारा जो परमाणु-शक्ति विमोचित (release) होती है वह विशेष यत्न (technique) के द्वारा स्थानान्तरित की जाती है। तत्पश्चात् उसका उपयोग ताप, विद्युत आदि के रूप में होता है। इसके अतिरिक्त विखण्डन के समय निकलने वाले radiations का उपयोग विभिन्न तत्वों के रेडियो सक्रिय समस्थानीय रूप (radio active isotopes) बनाने के लिये किया जाता है। Radio isotopes जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अत्यन्त उपयोगी साबित हुए हैं।

परमाणु बम (Atom bomb):—परमाणु बम मे यथाशक्ति U^{235} का ही उपयोग होता है। उसमे यूरेनियम दो भागों मे रक्खा जाता है। जब बम का उपयोग करना होता है तब उन भागों को अलग करने वाला पर्दा तोड़ दिया जाता है। दोनों भागों के मिल जाने से यूरेनियम की मात्रा इतनी हो जाती है कि उसमे विखण्डन की क्रिया तेजी के साथ शुरू हो जाती है तथा परमाणु शक्ति बहुत शीघ्रता के साथ बड़े परिमाण में उत्पन्न होने लगती है। इस शक्ति पर कोई नियन्त्रण नहीं रहता है। जब परमाणु शक्ति की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है तब वह भयंकर विस्फोट के रूप में फैल जाती है। जब परमाणु विस्फोट (atomic-explosion) होता है तब आसपास का तापक्रम और दबाव बहुत अधिक बढ़ जाता है। इसके फलस्वरूप भयंकर आग लग जाती है तथा मकान, भवन आदि धराशायी हो जाते हैं। इस प्रकार एटम बम से जान और माल की अपार क्षति होती है। ६ अगस्त सन् १९४५ के दिन हीरोशीमा पर गिरने वाला बम U^{235} का बना हुआ था तथा ९ अगस्त सन् १९४५ को नागासाकी पर गिरने वाला बम प्लूटोनियम का बना हुआ था। अनुमान है कि केवल इन दो एटम बमों से लगभग तीन लाख व्यक्तियों की तत्काल मृत्यु हो गई थी।

परमाणु शक्ति के उपयोग

(Uses of atomic energy)

परमाणु शक्ति को साधारणतया अणु शक्ति ही कहते हैं। इस शक्ति की खोज अत्यन्त सामयिक हुई है। आजकल शक्ति-व्यय (Consumption of energy) बहुत अधिक बढ गया है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि १०० वर्ष पहले दुनियाँ मे जितनी शक्ति एक वर्ष मे खर्च होती थी उससे लगभग दस गुनी शक्ति आजकल प्रतिवर्ष खर्च हो रही है। शक्ति के मुख्य स्रोत कोयला और पैट्रोल हैं। भारतीय परमाणु शक्ति विभाग के अध्यक्ष डा० होमी जे. भाभा का कथन है कि शक्ति के वर्तमान व्यय को देखते हुए संसार के कोयला और पैट्रोल के सभी भण्डार लगभग १००–१५० वर्ष मे समाप्त हो जायेंगे। इस अन्धकारमय भविष्य की पृष्ठभूमि मे परमाणु-शक्ति की खोज एक वरदान साबित हुई है। परमाणु शक्ति के रूप में मनुष्य के पास शक्ति का एक अथाह भण्डार आ गया है।

परमाणु शक्ति का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है:--

(१) ताप और विद्युत के रूप मे।

(२) Radio isotopes के रूप मे।

(१) ताप और विद्युत के रूप मे.--परमाणु शक्ति मुख्यतया ताप के रूप मे प्राप्त होती है। इसको सरलता से विद्युत शक्ति मे बदला जा सकता है। विद्युत आधुनिक जीवन मे कितनी आवश्यक एवं उपयोगी है, यह सर्व विदित है। हमारे साधारण घरेलू उपयोग से लेकर बडे बडे कल कारखाने, यातायात के साधन आदि मे विद्युत का उपयोग होता है। रूस, अमेरिका, इंगलैण्ड आदि देशों मे परमाणु शक्ति का उपयोग विद्युत के रूप मे होने लग गया है। इस क्षेत्र मे प्रगति इतनी शीघ्रता से हो रही है कि दुनियाँ के अन्य देशों मे भी शीघ्र ही परमाणु विद्युत मिलने लगेगी।

परमाणु शक्ति की सहायता से अनेक प्रकार की पनडुब्बियाँ (submarines) चलने लगी हैं। आशा की जाती है कि शीघ्र ही यातायात के

अन्य साधन जहाज, रेलगाडी आदि मे भी इस शक्ति का उपयोग होने लग जायेगा। रूस द्वारा निर्मित प्रथम कृत्रिम ग्रह (artificial planet) परमाणु शक्ति को सहायता से ही अन्तरिक्ष मे भेजा गया था।

(२) Radio-isotopes का उपयोग:—

विमोचित होती हुई परमाणु शक्ति की सहायता से भिन्न-भिन्न तत्वों के radioactive isotopes सरलता से प्राप्त कर लिये जाते हैं। इनका उपयोग न केवल वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्रो में किया जा रहा है वरन् वे औद्योगिक, चिकित्सा, कृषि आदि के क्षेत्रों में भी अत्यन्त उपयोगी साबित हो रहे हैं।

वैज्ञानिक खोज—

रेडियो आइसोटोप्स की सहायता से भौतिक शास्त्र (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry) जीवशास्त्र (Biology)सम्बन्धी अनुसंधान में विशेष सहायता मिल रही है। पदार्थ और शक्ति सम्बन्धी समस्याओं पर नया प्रकाश पड़ रहा है। रेडियो-कार्बन, रेडियो-नाइट्रोजन आदि द्वारा इस रहस्य को समझने का प्रयत्न किया जा रहा है कि पौधे (plants)कार्बोहाइड्रेट्स और प्रोटीन्स कैसे तैयार करते हैं? यह भी समझने का प्रयत्न हो रहा है कि radio-isotopes से निकलने वाले हानिकारक विकिरणों (radiations) का शरीर एवं वंशानुक्रम (heredity) पर क्या प्रभाव पड़ता है?

चिकित्सा के क्षेत्र में—

चिकित्सा के क्षेत्र मे radio isotopes अत्यन्त उपयोगी साबित हो रहे हैं। इनके द्वारा अनेक असाध्य रोगों के ठीक होने की आशा बँधने लगी है। इनमे से एल्फा, बीटा अथवा गामा किरणें निकल कर शरीर के रोगग्रस्त हिस्से पर अपना प्रभाव डालती हैं और प्रायः रोग निवारण मे सहायता देती हैं। कुछ radio-isotopes के उपयोग निम्नलिखित हैं:—

(१) Radio cobalt, radio gold तथा radio carbon की सहायता से कैंसर (cancer) नाम के रोग को प्रकृति को समझने में

परमाणु बम के रूप में इस शक्ति का भीषण दुरुपयोग हुआ है और हो सकता है। इससे समस्त मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। आज-कल इसीलिए संसार के प्रमुख विवेकशील व्यक्ति परमाणु शस्त्रों पर प्रतिबन्ध लगाने की बात कर रहे हैं।

प्रश्नावली

१. परमाणु के मूल कणों की खोज का वर्णन करते हुए उनके गुणों की विवेचना कीजिये।

२. परमाणु का सामान्य विवरण देते हुए उसके प्रतिरूप (model) सम्बन्धी विचार दीजिये। हाइड्रोजन, हीलियम और लीथियम के प्रतिरूपों के चित्र दीजिये।

३. परमाणु-नाभिक की विवेचना कीजिये।

४. परमाणु शक्ति के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए बतलाइये कि वह शक्ति के रूप में हमारे लिए कितनी अधिक उपयोगी हो सकती है?

५. परमाणु शक्ति प्राप्त करने का क्या सिद्धान्त है? परमाणु भट्ठी की बनावट तथा कार्य पर प्रकाश डालिये।

६. परमाणु शक्ति के विभिन्न उपयोगों पर लेख लिखिये।

७. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये.—

(i) एल्फा कण (ii) आइसोटोप्स और रेडियो-आइसोटोप्स (iii) प्लूटोनियम (iv) परमाणु बम (v) परमाणु संख्या और परमाणु भार।

"The introduction of the idea of Atom has changed the concept of everything except the thinking of man so that we are drifting towards an unexpected catastrophe"

—Einstein.

६ अणु की रचना

[Building of molecules]

अणु की रचना कैसे होती है, यह समझने के पहले आवश्यक है कि हम यह समझ लें कि परमाणु (atom) और अणु (molecule) में क्या अन्तर है ?

अणु और परमाणु शब्द बहुत प्राचीन काल में भी प्रचलित थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से अणु और परमाणु की ठीक-ठीक व्याख्या डाल्टन ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में की। डाल्टन ने परमाणु को पदार्थ का वह अन्तिम कण माना जो रासायनिक क्रिया में भाग लेता है तथा जो अविभाज्य होता है। उसने यह भी कहा कि एक तत्व के सभी परमाणु समान होते हैं तथा अन्य तत्वों के परमाणुओं से भिन्न होते हैं। अणु के विषय में डाल्टन का विचार था कि समान अथवा असमान परमाणु आपस में मिलकर संयुक्त-परमाणु (Compound atom) बनाते हैं। आगे चलकर डाल्टन के 'संयुक्त परमाणु' को ही अणु कहा गया।

सामान्यतया अणु पदार्थ का वह छोटे से छोटा कण है जो सम्बन्धित पदार्थ के सभी गुण रखते हुए स्वतन्त्र अवस्था में रह सकता है। यद्यपि मणिभीय लवणों (crystalline salts) के विषय में अणु की यह परिभाषा ठीक नहीं बैठती है। प्रत्येक मणिभ (crystal) के अपने-अपने प्रकाशीय (optical) गुण होते हैं और ये गुण मणिभ की विशेष बनावट पर निर्भर होते हैं। एक

मस्तिष्क परमाणुओं की बहुत बड़ी संख्या से मिलकर बना होता है और इस प्रकार अणु से काफी बड़ा होता है। इस प्रकार का अपवाद होते हुए भी सामान्य तौर पर अणु की उपरोक्त परिभाषा ठीक ही मानी जाती है।

अब यह समझना है कि अणु कैसे बनता है ? इसके लिए यह जानना आवश्यक है कि प्रायः सभी प्रकार के तत्वों में परस्पर संयोग करके यौगिक पदार्थ बनाने की क्षमता होती है। इस क्षमता को रासायनिक आकर्षण (chemical affinity) कहते हैं। रासायनिक आकर्षण की दृष्टि से कुछ तत्व अक्रियाशील (inert) होते हैं जैसे हीलियम, क्रिप्टन, निऑन आदि। ऐसे निष्क्रिय तत्वों की संख्या बहुत कम है। शेष तत्व एक दूसरे से संयोग करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि 'अणु' के निर्माण की दो परिस्थितियाँ उपस्थित होती हैं। एक तो स्वयं तत्वों की वह अवस्था जब वे अपने ऐसे छोटे से छोटे कण की स्थिति मे हों जिसमें उनके गुण (properties) विद्यमान हों तथा वे स्वतन्त्र अवस्था में रह सकें। दूसरे यौगिकों की वह अन्तिम अवस्था जिसमे उनके सभी गुण पाये जायें।

तत्वों के अणु (Molecules af elements):—

साधारणतया परमाणु स्वतंत्र अवस्था मे नहीं रह सकते हैं। ऐसा पाया जाता है कि जब हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि गैसें तैयार की जाती हैं तब वे परमाणु की अवस्था मे न रहकर अणु की अवस्था मे रहती हैं। इन तत्वों के दो परमाणु मिलकर एक अणु बनाते हैं। इस प्रकार हाइड्रोजन $H+H=H_2$, ऑक्सीजन $O+O=O_2$ तथा नाइट्रोजन $N+N=N_2$ के रूप मे ही स्वतंत्र अवस्था मे पायी जाती है। जहाँ अधिकांश गैसीय तत्वों के अणु दो परमाणुओं के बने होते हैं वहाँ धातुओं के परमाणु केवल एक ही परमाणु के बने होते हैं। इसलिए sodium, potassium, copper, iron, uranium आदि के अणु क्रमशः Na, K, Cu, Fe, U के द्वारा ही प्रदर्शित किये जाते हैं। इनके परमाणु भी इसी प्रकार प्रदर्शित होते हैं। इनमे अन्तर

केवल यह होता है कि जब परमाणु की एक से अधिक संख्या को बतलाना होता है तब संकेत के आगे संख्या लिख दी जाती है, जैसे सोडियम के दो परमाणु Na_2 के द्वारा बतलाए जाते हैं। इसके विपरीत जब अणु की संख्या को बतलाना होता है तब संकेत के पहले संख्या लिख दी जाती है, जैसे सोडियम के दो अणु 2Na के द्वारा दर्शाये जाते हैं।

जब अणु और परमाणु एक ही कण के रूप में पाए जाते हैं तब उनमें यही अन्तर होता है कि अणु की अवस्था में वे रासायनिक क्रिया नहीं करते हैं जब कि परमाणु की अवस्था में वे रासायनिक क्रिया करते हैं।

यौगिक के अणु
(Molecules of Compounds)

जब तत्व आपस में मिलकर यौगिक पदार्थ बनाते हैं तब उन तत्वों के परमाणु संयोग करके यौगिक पदार्थ के अणु बनाते हैं। यौगिक पदार्थ की अन्तिम अवस्था अणु के रूप में ही पाई जाती है। जब अणु टूट जाता है तब यौगिक के गुण नष्ट हो जाते हैं तथा उसके अवयव तत्व (Constituent elements) अलग हो जाते हैं। यौगिको के अणुओं की रचना भिन्न-भिन्न तत्वों के परमाणु अथवा "परमाणुओं के समूह" (radicals) की दूसरे परमाणुओं से मिलने की क्षमता पर निर्भर करती है। विभिन्न प्रकार के परमाणुओं के मिलने की इस क्षमता को योजनीयता (valency) कहते हैं। सामान्य तौर से valency वह संख्या है जो यह बतलाती है कि किसी भी तत्व के एक परमाणु से हाइड्रोजन के कितने परमाणु मिलते हैं; जैसे ऑक्सीजन के एक परमाणु से हाइड्रोजन के दो परमाणु मिलकर पानी का एक अणु "H_2O" बनाते हैं। इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि ऑक्सीजन की valency दो है। इसी तरह यह पाया जाता है कि क्लोरीन (chlorine)का एक परमाणु हाइड्रोजन के एक परमाणु से मिलकर नमक के अम्ल (Hydrochloric acid) का एक अणु "Hcl" तथा नाइट्रोजन का एक परमाणु हाइड्रोजन के तीन परमाणुओं से मिलकर एमोनिया (ammonia) का एक अणु NH_3 बनाता है। इन क्रियाओं के आधार पर क्लोरीन की वेलेंसी एक तथा नाइट्रोजनकी वेलेंसी तीन मानी जाती है। कुछ तत्व ऐसे भी होते हैं जिनकी वेलेंसी

तालिका नं० १

Radical	Name	Valency
OH	Hydroxyl	1
NO_3	Nitrate	1
NO_2	Nitrite	1
ClO_3	Chlorate	1
CO_3	Carbonate	2
SO_4	Sulphate	2
NH_4	Ammonium	1

तालिका नं० २

Element	Symbol	Atomic number	Atomic weight	Valency	Molecule	Molecu. weight
Hydrogen	H	1	1·008	1	H_2	2·00
Carbon	C	6	12·00	4	C	12·00
Oxygen	O	8	16·00	2	O_2	32·00
Nitrogen	N	7	14·00	3,5	N_2	28·00
Aluminium	Al	13	27·00	3	Al	27·00
Phosphorus	P	15	31·00	3,5	P	31·00
Gold (Aurum)	Au	97	197·00	1,3	Au	197·00
Silicon	Si	14	28·00	4	Si	28·60
Sodium (Natrium)	Na	11	23·00	1	Na	23·00
Potassium (Kalium)	K	19	39·00	1	K	39·00
Copper	Cu	29	63,50	1,2	Cu	63·00
Iron (Ferrum)	Fe	26	56·00	2,3	Fe	56·00
Chlorine	Cl	17	35·50	1	Cl_2	71·00
Iodine	I	53	127·00	1,3,5,7	I_2	254·00
Silver (Argentum)	Ag	47	08·00	1	Ag	108·00
Sulphur	S	16	32·00	2,4,6	S	32·00
Calcium	Ca	20	40·09	2	Ca	40·00
Lead (Plumbum)	Pb	82	207·00	2,4	Pb	207·00
Uranium	U	92	238·00	2,6	U	238·00
Zinc	Z	30	65·00	2	Z	65·00

प्रश्नावली

१. अणु और परमाणु में क्या भेद है, स्पष्ट रूप से समझाइये।

२. तत्वों के अणु और यौगिक के अणुओं की रचना का विवेचन कीजिए।

३. योजनीयता (valency), मूलक (radicals) और अणुभार (molecular weight) पर टिप्पणियाँ लिखिये।

"Respect for observation as opposed to tradition is difficult (since man has a strong tendency to keep his belief intact... and yet fight we must, against, outdated tradition.)"

—Bertrand Russel.

---

७ कार्बन की विलक्षणता
[Uniqueness of Carbon]

पृथ्वी में प्राप्त होने वाले सभी तत्वों में कार्बन एक ऐसा तत्व है जो अनेक आश्चर्यजनक विशेषताओं से भरा हुआ है। यह अधातु (non-metal) वर्ग का तत्व है जिसकी परमाणु संख्या ६ तथा परमाणु भार १२ होता है। इसका द्रवणांक (melting point) ३५००°C के ऊपर तथा क्वथनांक (boiling point) ४२००°C के लगभग होता है। कार्बन की सामान्य योजनीयता (valency) चार है (carbon is tetravalent)। वायुमंडल में यह कार्बन-डाई-ऑक्साइड के रूप में तथा पृथ्वी में तत्व एवं अनेक यौगिकों के रूप में मिलता है। पृथ्वी की लगभग १० मील गहरी पपड़ी में कार्बन की मात्रा केवल ०.१% होती है। इतनी कम मात्रा में होते हुए भी कार्बन सजीव-जगत (Living World) के अस्तित्व का आधार है।

कार्बन में तीन ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण उसे अद्भुत (unique) तत्व कहना पड़ता है।

(१) कार्बन बहुरूपीय है। इसके बहुरूप (allotropic forms) एक दूसरे से इतने भिन्न होते हैं कि प्रायोगिक प्रमाणों के अभाव में इस बात पर विश्वास करना असम्भव सा होता है कि वे सब एक ही तत्व के भिन्न-भिन्न रूप हैं।

(२) कार्बन में अन्य तत्वों से मिलकर नये-नये यौगिक बनाने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है। कार्बन से बनने वाले यौगिकों की असंख्य संख्या के कारण कार्बन के रसायनशास्त्र का अध्ययन एक अलग ही शाखा के अन्तर्गत किया जाता है। यह शाखा कार्बनिक रसायनशास्त्र (Organic Chemistry) कहलाती है।

(३) जीव-रसायन (Biochemistry) के अध्ययन से इस निर्णय पर पहुंचा गया है कि जीव-पदार्थ (Living substance) का आधारभूत तत्व कार्बन ही है। कार्बन की आधारशिला पर ही भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़-पौधा और जीव-जन्तुओं (*organic beings*) का निर्माण हुआ है। यही कारण है कि कार्बन के रसायन को Organic Chemistry कहा जाता है। कार्बन की उपरोक्त विशेषताओं का अध्ययन कुछ विस्तार से करना आवश्यक है।

कार्बन के बहुरूप

(Allotropic forms of Carbon)

कार्बन के कई रूप पाये जाते हैं। वह हीरा, ग्रेफाइट, लकड़ी का कोयला, पत्थर का कोयला, हड्डी का कोयला, कोक (Coke), काजल, गैसकार्बन आदि के रूप में मिलता है। इनमें में हीरा और ग्रेफाइट मणिभीय (crystalline) होते हैं तथा शेष अमणिभीय (amorphous) होते हैं। रासायनिक दृष्टि से ये सब एक ही तत्व होते हुए भी एक दूसरे से स्पष्ट भिन्नतायें रखते हैं। इनकी विभिन्नताओं का कारण इनके कणों में परमाणुओं की विभिन्न व्यवस्था (different arrangement) होती है। भिन्न भिन्न रूपों में जो समान गुण हैं उनमें गंधहीनता, स्वादहीनता, पानी में अघुलनशीलता तथा हवा में जलने पर कार्बन-डाइ-ऑक्साइड (Co_2) की उत्पत्ति मुख्य है। जब ये हवा में जलते हैं तब इनसे कार्बन-डाइ-ऑक्साइड प्राप्त होती है जो यह प्रमाणित करती है कि अन्ततः वे सभी कार्बन हैं। इसमें सन्देह नहीं कि

हीरे जैसी बहुमूल्य एवं चमकदार वस्तु तथा कोयले जैसी काली और सस्ती वस्तु का एक ही तत्व होना प्रकृति के महान् आश्चर्यों में से एक है।

हीरा (Diamond)

सर्वप्रथम फ्रांसीसी वैज्ञानिक लेवॉइजियर (Lavoisier) ने सन् १७७५ में यह प्रमाणित किया था कि हीरा कार्बन है। उसने हीरे को जलाकर उससे निकलने वाली गैस का परीक्षण किया। वह गैस Carbon-di-oxide थी। आगे चलकर डेवी ने यह सिद्ध कर दिया कि हीरे में कार्बन के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है। हीरा कार्बन का इतना अधिक शुद्ध रूप है कि पूर्णतया जलने पर अवशेष के रूप में प्राप्त होने वाली राख केवल ०.०५% ही होती है। इसका आपेक्षिक घनत्व ३.५ है तथा यह पारदर्शक एवं विद्युत और ताप का कुचालक होता है।

सभी प्रकार के हीरे मणिभीय होते हैं, किन्तु व्यापारिक हीरों में बनावटी काट-छाँट इतनी करदी जाती है कि वे अत्यन्त चमकदार और सुन्दर हो जाते हैं। हीरा अत्यन्त कठोर होता है। अलंकारिक उपयोग के अतिरिक्त हीरे का उपयोग कठोर वस्तुओं को काटने के लिए भी किया जाता है। वैज्ञानिक क्षेत्र में भी हीरों का बहुत महत्व है। विश्व प्रसिद्ध नोबेल-पुरस्कार एवं लेनिन-पुरस्कार प्राप्त भारतीय वैज्ञानिक श्री सी. वी. रमन का मुख्य कार्य प्रकाश एवं हीरों से सम्बन्ध रखता है।

ग्रेफाइट
(Graphite of Black lead)

यह नरम, अपारदर्शक (Opaque), मणिभीय एवं काले रंग का होता है इसका आपेक्षिक घनत्व २.२५ होता है। यह ताप और विद्युत का अच्छा चालक होता है। प्रकृति में यह काले चिकने ढेलों के रूप में आग्नेय चट्टानों में पाया जाता है। इसमें ५% सिलिका (SiO_2) भी मिला होता है।

यह छूने पर चिकना मालूम होता है, इसलिये ऊँचे तापक्रम पर तेल के स्थान पर यन्त्र चलाने के लिए lubricant के रूप मे काम में लिया जाता है। काली पेन्सिलों में इसी का उपयोग होता है। इसे black lead अथवा plumbago भी कहते हैं।

कार्बन के अमणिभीय रूप

(Amorphous Forms of Carbon)

कार्बन के वे रूप जिनसे हम अपने दैनिक जीवन में अत्यधिक परिचित हैं, अमणिभीय वर्ग में शामिल है। लकड़ी का कोयला (charcoal), खनिज कोयला (mineral coal), गैस कार्बन, कोक आदि अमणिभीय कार्बन के मुख्य रूप हैं। औद्योगिक दृष्टि से खनिज कोयला तथा कोक आदि के महत्व से हम भली-भांति परिचित हैं।

लकड़ी का कोयला (Charcoal

ईंधन के रूप मे लकड़ी के कोयले का उपयोग बहुत बड़े पैमाने पर होता है। यह कोयला लकड़ी के नष्टस्रावन (desttuctive distillation) के द्वारा तैयार किया जाता है। लकड़ी को अत्यन्त सीमित हवा क उपस्थिति में जलाया जाता है। इसके फलस्वरूप उसमें से पानी, स्पिरिट (sp. irit), sulphur-di-oxide आदि निकल जाती हैं तथा कार्बन का काफी अधिक भाग कोयले के रूप मे बच रहता है।

खनिज कोयला (Mineral Coal)

खनिज कोयला पृथ्वी में मिलने वाली खानों से प्राप्त होता है। यह कोयला लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व की उस वनस्पति से बना है जो पृथ्वी के नीचे दब गई थी। पृथ्वी के भीतर तापक्रम और दबाव दोनों ही अधिक होते हैं। उन्हीं के कारण, दबी हुई लकड़ी धीरे-धीरे कोयले मे परिवर्तित हो जाती है।

अपरिवर्तित लकड़ी एवं नमी की मात्रा के आधार पर खनिज के कोयले को अनेक श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

पीट (peat) तथा लिग्नाइट (lignite) नाम की श्रेणियों में वनस्पति एवं नमी की मात्रा अधिक होती है अतः इस कोयले का उपयोग अधिक तापक्रम प्राप्त करने के लिए नहीं हो पाता है।

केनल कोल (Cannel Coal) में कार्बन की मात्रा लगभग ६०% होती है। इस कोयले का उपयोग नष्टस्रावन (destructive distillation) के लिये बड़े-बड़े पैमाने पर किया जाता है। जब इस कोयले का नष्टस्रावन होता है तब इससे कोलगैस (Coal gas), कोलतार (Coal tar), एमोनिया के लवण, कोक (hard and soft coke) तथा गन्धक जैसे महत्वपूर्ण पदार्थ प्राप्त होते हैं।

भाप के कोयले (steam coal or bituminous coal) में कार्बन की मात्रा ८२% के लगभग होती है। यह कोयला कठोर होता है और पृथ्वी में बहुतायत से पाया जाता है। इसे प्रायः पत्थर का कोयला भी कहते हैं। यह वही कोयला है जिसका उपयोग रेलगाड़ियों, जहाजों इत्यादि में किया जाता है।

एन्थ्रेसाइट कोल (Anthracite coal) खनिज कोयले में सर्वश्रेष्ठ होता है। इसमें कार्बन लगभग ९०% होता है। यह जलने पर धुँआ कम और ताप अधिक देता है। इसका उपयोग धातुशोधन (metallurgical) के कार्यों में किया जाता है।

गैस कार्बन और कोक खनिज कोयले के नष्टस्रावन से प्राप्त होते हैं। गैस कार्बन का उपयोग विद्युत सम्बन्धी कामों में होता है जबकि कोक का उपयोग सस्ते ईंधन के रूप में किया जाता है। जब भी कोई कार्बन-युक्त पदार्थ जलता है तब अपूर्ण दाह (incomplete combustion) के कारण

जैसे ईथेन (ethane) और प्रोपेन (propane) नाम की गैसों के सूत्र क्रमशः C_2H_6 और C_3H_8 है। इनमें कार्बन और हाइड्रोजन के परमाणुओं की व्यवस्था इस प्रकार है:—
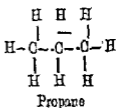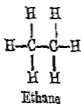
यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि कार्बन के परमाणु एक दूसरे से मिलकर लम्बी शृंखला (chain) बनाते जाते हैं और इस प्रकार एक विशेष ढंग की व्यवस्था वाले हजारों यौगिक बनते जाते हैं। यही नहीं कार्बन के परमाणुओं के बीच दो-दो और तीन-तीन रासायनिक बन्धक (chemical bonds) भी पाये जाते हैं। एसिटिलीन (acetylene) और इथाइलीन (ethylene) में परमाणुओं की व्यवस्था इस प्रकार होती है:—

$$H-C\equiv C-H \qquad \qquad {}^{H}_{H}>C=C<{}^{H}_{H}$$

Acetylene (C_2H_2) Ethylene (C_2H_4)
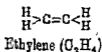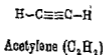
इसी प्रकार कार्बन अन्य तत्वों के साथ मिलता हुआ जटिल से जटिल यौगिक बना देता है। विशेषकर कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, सल्फर, नाइट्रोजन, क्लोरीन आदि से मिलकर अद्भुत प्रकार के रासायनिक पदार्थ बनाता है जिनका अणुभार (mol.weight) छोटे से छोटा लेकर लाखों की संख्या तक पहुंच जाता है। अब तक कार्बन के लगभग १० लाख से भी अधिक भिन्न-भिन्न प्रकार के यौगिकों की खोज की जा चुकी है तथा उन्हें प्रयोगशाला में बनाया जा चुका है। इसके विपरीत अन्य सब तत्वों से मिलकर बनने वाले यौगिकों की संख्या मुश्किल से एक लाख है।

कार्बन के अनेक यौगिक अत्यधिक जटिल होते हैं। उनके अणुओं में परमाणुओं की संख्या सैकड़ों और हजारों की तादाद में होती है। घुलनशील स्टार्च (soluble starch) का अणुसूत्र (molecular formula) $C_{1200} H_{2000} O_{1000}$ होता है। हमारे रक्त का लाल रंग हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) नाम के यौगिक पदार्थ के कारण होता है। इस पदार्थ का अणु अत्यन्त जटिल होता है। उसका आनुभविक सूत्र (empirical formula)❀ $C_{387} H_{1213} O_{218} N_{195} S_{3} Fe$ है। रुई से प्राप्त होने वाले सैल्यूलोज का अणुभार लगभग ५ लाख होता है। इन उदाहरणों से अनुमान लगाया जा सकता है कि कार्बन कितना अद्भुत तत्व है।

यही नहीं, कार्बन के अनेक यौगिक ऐसे भी हैं जिनका अणुसूत्र तो समान होता है किन्तु जिनके गुण (properties) भिन्न-भिन्न होते हैं। गुणों की भिन्नता का कारण अणु में परमाणुओं की विभिन्न व्यवस्था का होना है। ऐसे यौगिकों को आइसोमर्स (isomers) कहते हैं। $C_{10} O_{3} H_{13} N$ सूत्र १३५ विभिन्न यौगिकों को बतलाता है। $C_{10} H_{22} O$ सूत्र के ५०७ विभिन्न रूप मिलते हैं। इसी तरह सैद्धान्तिक दृष्टि से $C_{20} H_{42}$ सूत्र के ३६६३१६ आइसोमर्स हो सकते हैं। इस प्रकार की विचित्रता अन्य किसी तत्व में नहीं मिलती है।

जीव पदार्थ का आधार, कार्बन

(carbon, the basis of organic matter)

कार्बन की तीसरी विशेषता यह है कि उसका जीव जगत से अविच्छिन्न

❀Empirical formula को विशेष संख्या से गुणा करके mol. formula मालूम किया जाता है; जैसे benzene का emp.formula CH है,जबकि उसका mol.formula $C_{6} H_{6}$ है। "CH" को ६ से गुणा करने पर benzene का mol formula मालूम हो जाता है।

सम्बन्ध है। बहुत प्राचीन समय से ही इस बात को महसूस किया जाता था कि अनेक पदार्थ ऐसे हैं जो केवल जीवधारियों से ही प्राप्त होते हैं। ऐसे पदार्थों को Organic पदार्थ कहा जाता है। अठारहवीं शताब्दि में में लेवाइजियर ने अनेक Organic Compounds का विश्लेषण किया और ये निष्कर्ष निकाला कि उन सबमें कार्बन आवश्यक रूप से मिलता है। कार्बन की व्यापकता की जानकारी बराबर बढ़ती गई और अन्त में कार्बन के यौगिकों को ही organic compounds कहा जाने लगा। इन यौगिकों के अध्ययन को ही Organic Chemistry कहते हैं।

प्रारम्भ में यही विश्वास था कि organic compounds केवल जीवधारियों (organic beings) से ही प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि उनका निर्माण जीवधारियों के शरीर में किसी दैविक शक्ति (vital force) के अन्तर्गत होता है। बर्जेलियस (Berzelius 1779-18 8) नाम का प्रसिद्ध रसायन शास्त्री इस मत का प्रबल समर्थक था। किन्तु सन् १८२८ में बर्जेलियस के शिष्य वूलर (Wholer) ने प्रयोगशाला में यूरिया (urea) नाम का महत्वपूर्ण organic यौगिक तैयार करके विक शक्ति वाली धारणा को समाप्त कर दिया। इसके पश्चात् Organic Chemistry का विकास बहुत द्रुतगति से हुआ।

कार्बन के अध्ययन से यह मालूम होता है कि जीव जगत की आवश्यक गैस कार्बन-डाइ-ऑक्साइड से लेकर विटामिन्स, हारमोन्स, विभिन्न औषधियां, भाँति-भाँति के रंग, cosmetics, कृत्रिम रबड़, प्लास्टिक, नाइलोन, रेयॉन इत्यादि में कार्बन का कितना अधिक महत्व है। कार्बन की इस विलक्षण व्यापकता को देखकर यह सोचना उपयुक्त ही लगता है कि सभी तत्वों में हमारी सृष्टि का मूलाधार कहलाने का अधिकारी अगर कोई तत्व है तो वह केवल कार्बन है।

प्रश्नावली

१ कार्बन क्या होता है ? उसके बहुरूपो (allotropic forms) का वर्णन कीजिये ।

२ कार्बन को विलक्षण तत्व क्या माना जाता है ?

३ कार्बन के यौगिका की सधारण जाजनारी दीजिये ।

"Science is truthful because it has practically no temptation to be anything else."

—J. W. N. Sullivan.

८ जीवधारियों की विशेषतायें [Characteristics of Living Organisms]

विश्व की समस्त वस्तुएँ पदार्थ (matter) की बनी हुई हैं। पदार्थ की मुख्य रूप से दो अवस्थायें होती हैं—(१) जड़ अवस्था और (२) जीव अथवा चेतन अवस्था।

चेतन अवस्था (living state) में पदार्थ कुछ ऐसे गुण ग्रहण कर लेता है जिसके कारण वह जड़ पदार्थ से सर्वथा भिन्न एवं अद्भुत लगने लगता है। जीव पदार्थ की विशेषताओं से अप्रतिभ होकर ही प्रारम्भ मे मनुष्य को ईश्वरीय एवं दैवीय शक्तियों की कल्पना करनी पड़ी। वैज्ञानिक दृष्टि से चेतन अवस्था पदार्थ की विकसित अवस्था है। प्रारम्भ में केवल जड़ पदार्थ का ही अस्तित्व था। धीरे-धीरे वातावरण की बदलती हुई परिस्थितियो के अन्तर्गत जड़ पदार्थ को अनेक रासायनिक और भौतिक क्रियाओं का सामना करना पड़ा। इन्ही क्रियाओं के दौरान एक ऐसा पदार्थ बन गया जो सामान्य जड़ पदार्थ से भिन्न था। वह पदार्थ अपने से भिन्न आसपास के पदार्थ को खींचकर उसे अपने अनुरूप बनाने में समर्थ हो गया। इसके अतिरिक्त अपने को वातावरण की बदलती परिस्थितियों के अनुकूल बनाने और अपने ही जैसे पदार्थ को उत्पन्न करने की क्षमता भी उसमे आ गई। ये ही मूल विशेषतायें हैं कि जिनके सहारे जीव-पदार्थ विकास की दौड़ में जड़ पदार्थ से बहुत आगे निकल गया। जीव-पदार्थ से ही संसार के भिन्न भिन्न प्रकार के पेड़ पौधे तथा जीव-जन्तु जैसे जीव-

धारी बने हैं। सभी जीवधारियों मे निर्जीव (nonliving) वस्तुओं की अपेक्षा जो विशेष गुण (characteristics) पाये जाते हैं, उन्हीं का विस्तृत वर्णन यहाँ किया जायेगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि हम विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख अलग-अलग रूप से करते हैं तथापि वे सब विशेषतायें एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि उनमे से किसी का भी अलग से कोई अस्तित्व नहीं होता है।

(१) जीव-प्ररस (protoplasm)--सभी जीवधारी चाहे वे एककोशीय (unicellular) हो अथवा बहुकोशीय (multicellular) हों, जीवप्ररस के बने हुए होते हैं। शरीर पदार्थ (body material) का आधार प्रोटोप्लाज्म ही है। वस्तुतः शरीर पदार्थ की विशेषताओं का अध्ययन जीवप्ररस का अध्ययन एक ही बात है। वैज्ञानिक T. H. Huxley का कथन है कि प्रोटोप्लाज्म जीवन का भौतिक आधार है (Protoplasm is the physical basis of life)।

(२) उद्दीप्यता (irritability)—जीव पदार्थ अपने वातावरण में होने वाले परिवर्तन का अनुभव करते हैं तथा उसके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं (All living material responds to stimli) पारिभाषिक भाषा में वातावरण में होने वाले परिवर्तन को उद्दीपक (stimulus) तथा जीव पदार्थ की प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति का उद्दीप्यता (irritability) कहते हैं। यह साधारण अनुभव की बात है कि सूर्य का प्रकाश पाकर कमल के फूल खिल उठते हैं। अगर ध्यान पूर्वक अध्ययन किया जाय तो ऐसे अनेकं उदाहरण मिलेंगे जहाँ पर सूर्य के प्रकाश की विशेष प्रतिक्रिया होती है। अनेक ऐसे प्राणी (animals) होते हैं जिनके शरीर पर सर्दी में घने बाल उत्पन्न हो जाते हैं। वातावरण के गिरते हुए तापक्रम से बचने के लिए ही घने बालों की उत्पत्ति होती है। अगर हमारे शरीर में कहीं काँटा अथवा सूई चुभ जाती है तो हम उसके प्रति तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं। जब भोजन हमारे आमाशय (stomach)

मे पहुँचता है तब ग्रामाशय की ग्रन्थियाँ (gastric glands) तुरन्त gastric juice का संचार करने लगती है जिससे भोजन पर पाचनक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

उद्दीप्यता जीव पदार्थ की एक आवश्यक प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के कारण ही जीवधारी वातावरण की बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल अपने को बदलता है तथा अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रयत्न करता है। वातावरण के अनुकूल बनने के इस गुण को 'सानुकूलता' (adaptation) कहते हैं। सानुकूलता उद्दीप्यता के कारण ही सम्भव हो पाती है। पेड पौधो की इस प्रवृत्ति पर भारत के प्रथम विश्व विख्यात वैज्ञानिक स्व० श्री जगदीशचन्द्र बसु के द्वारा विशेष खोज की गई है।

(३) निश्चित आकार (Definite form)—साधारणतया विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुओ का एक निश्चित रूप एव आकार होता है। वनस्पतियो के विषय मे भी यही बात कुछ सीमा तक कही जा सकती है। यही कारण है कि हम उनकी समानता और विभिन्नता के विषय मे निश्चित धारणा बना पाते हैं।

(४) गतिशीलता (movements)—जीवधारियो मे स्पंदन अथवा गतिशीलता की अद्भुत क्षमता होती है। गति दृश्य एव अदृश्य दोनो प्रकार की होती है। अनेक पशु-पक्षियो का चलना फिरना हम सरलता से देख सकते हैं। उनकी अपेक्षा पेड पौधो की गतिशीलता की ओर हमारा ध्यान नही जा पाता है। इसलिये साधारणतया यह समझते हैं कि पेड पौधे गतिहीन हैं, किन्तु कलियो का खिलना और बन्द होना, फूलो का सूर्य की ओर उन्मुख होना, पत्तों का फैलना अथवा मुर्झाना, पौधो की गतिशीलता का परिचायक है। तीव्र प्रकाश में आँख की पुतली का सिकुडना, नीद में काटते हुए मच्छर को हटा देना आदि ऐसी क्रियाएं हैं जिनकी ओर प्राय हमारा ध्यान नहीं जाता है। यह जीव द्रव्य की स्वाभाविक गति (automatic movement) होती है
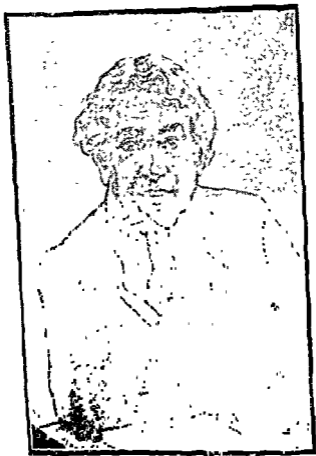
Late Sir Jagdish Chandra Bose (1958-1937)
The First world repited Scientist of our country

जो जीव पदार्थ की एक विशेषता है। इसके अतिरिक्त शरीर के भीतर सदा ही विभिन्न रस एक स्थान से दूसरे स्थान तक संचारित होते रहते है।

(५) श्वसन (respiration)—किसी भी प्रकार के उद्दीपक stimulus) की प्रतिक्रिया (response) के लिये 'शक्ति' की आवश्यकता होती है। जब जीव पदार्थ के जटिल यौगिक सरल यौगिकों मे टूटते हैं तब यह शक्ति प्राप्त होती है। इस क्रिया के लिये प्राय ऑक्सीजन गैस की आवश्यकता होती है। जीव पदार्थ किसी न किसी रूप मे सदैव क्रियाशील रहता है। प्रत्येक क्रिया शक्ति की सहायता से सम्पन्न होती है। जिस विधि से शरीर के भीतर शक्ति उत्पन्न होती है उसे 'श्वसन' (respiration) कहते हैं। साधारण तौर से श्वसन क्रिया के समय जीवधारी के द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण की जाती है तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का त्याग किया जाता है। कुछ ऐसे जीवधारी भी होते हैं जिनके शरीर मे इस प्रकार की रासायनिक क्रिया होती है जिससे आवश्यक शक्ति तो प्राप्त हो जाती है किन्तु ऑक्सीजन की आवश्यकता नही होती है। इन क्रियाओं का वर्णन अन्यत्र किया जायेगा। श्वसन क्रिया के कारण जीव-पदार्थ का विघटन होता है अत 'श्वसन' एक मुख्य 'अपचन क्रिया (katabolic activity) है।

(६) उत्सर्जन (excretion)—जब जीवधारियों के शरीर मे श्वसन क्रिया एवं अन्य विपचन क्रियायें होती हैं तब अनेक प्रकार के वर्ज्य पदार्थ (waste products) उत्पन्न होते है। जीवधारियों के स्वास्थ्य की दृष्टि से ऐसे वर्ज्य पदार्थों का शरीर मे अधिक समय तक रहना हानिकारक होता है। अत वर्ज्य पदार्थों का त्याग किया जाता है। उनके त्यागने की क्रिया को उत्सर्जन (excretion) कहते हैं। वर्ज्य पदार्थों मे मुख्य रूप से carbon-dioxide, ammonia तथा आवश्यकता से अधिक पानी (excess of water) की गिनती होती है। अनेक जीवधारियों मे तो kidneys और nephridia जैसे विशेष उत्सर्जन अङ्ग (excretory organs) होते हैं जो

वर्ज्य पदार्थों को शरीर के बाहर फेंकते रहते हैं। कुछ जीवधारियों में ये वर्ज्य पदार्थ शरीर के ऐसे भागों में जमा होते जाते हैं जहाँ उनकी उपस्थिति शरीर की सामान्य क्रियाओं मे बाधा नही डालती है। ऐसा प्रायः सन्धिपादा (arthropoda) वर्ग के प्राणियो मे होता है।

पौधो में भी calcium oxalate, silica आदि उपरोक्त ढंग से जमा हो जाते हैं। कीड़े मकोड़ों में वर्ज्य पदार्थ शरीर के बाहरी भाग में जमा होते रहते हैं जहा वे रक्षात्मक कवच (protective covering) का काम करते हैं तथा धीरे-धीरे वातावरण में गिरते रहते हैं।

(७) पोषाहार (nutrition)—विभिन्न जीवन क्रियाओं (vital activities or life processes) के लिये शक्ति शरीर पदार्थ के विघटन (break down) से प्राप्त होती है। अतः यह आवश्यक है कि जीवन को बनाये रखने के लिये उस शरीर-पदार्थ की पूर्ति हो जिसका उपयोग शक्ति प्राप्त करने के लिये होता है। विघटित शरीर पदार्थ की यह पूर्ति पोषाहार (nutrition) के द्वारा होती है। इस क्रिया के अन्तर्गत जीवधारी खाद्य-पदार्थ ग्रहण करता है। यह खाद्य पदार्थ शरीर में विभिन्न रासायनिक क्रियाओं में से गुजरता है। अन्त मे वह इस प्रकार के रूप मे बदल जाता है कि सरलता से शरीर के विभिन्न भागो में पहुँच जाता है। यह क्रिया पाचन-क्रिया कहलाती है। पचा हुआ खाद्य पदार्थ शरीर के विभिन्न भागो मे पहुँच कर शरीर पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है। इस महत्वपूर्ण क्रिया को स्वीकरण (assimilation) कहते हैं।

पोषाहार की क्रिया विपचन (metabolism) का प्रमुख रचनात्मक (anabolic) भाग है। इसके फलस्वरूप न केवल शरीर पदार्थ के विघटित भाग की पूर्ति होती है, वरन् शरीर की वृद्धि भी होती है। प्राणियो (animals) तथा पेड़ पौधों (plants) के पोषाहार की विधि मे आधार मूत

(basic) अन्तर होता है। पोषाहार की विधि के आधार पर ही animals और plants को अलग-अलग वर्गों में रखा गया है। पेड पौधे वातावरण से पानी, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, नाइट्रेट्स (nitrates) जैसे सरल रासायनिक पदार्थ प्राप्त करते हैं तथा उन्हें कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन्स, चर्बी आदि जटिल पदार्थों मे बदलते हैं। ये पदार्थ उनका पोषण करते हैं। प्राणीवर्ग में पेड पौधो जैसी योग्यता नहीं होती है। उन्हें अपने पोषण के लिये पेड पौधो द्वारा तैयार किये हुए जटिल रासायनिक पदार्थों पर निर्भर करना पडता है।

(८) वृद्धि (growth)—पोषाहार की क्रिया के फलस्वरूप नये जीव पदार्थ (protoplasm) का निर्माण होता है। इसका परिणाम यह होता है कि जीवधारी अपने आकार मे बढने लगता है। वृद्धि का यह क्रम पेड पौधो में प्राय. जीवन भर तथा प्राणियो में सीमित समय तक चलता रहता है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जीवधारियो मे जो वृद्धि होती है वह प्राय. निश्चित रूप (definite pattern) के अनुसार ही होती है। वैसे वृद्धि निर्जीव पदार्थ जैसे मणिभ (crystal) में भी होती है। किन्तु मणिभ की वृद्धि बाहरी मिलावट (accretion) के कारण होती है जबकि जीवधारियों की वृद्धि आन्तरिक मिलावट (intussusception) के द्वारा होती है। साथ ही निर्जीव पदार्थों की वृद्धि अनिश्चित ढग से होती है। अत हम कह सकते हैं कि जीवधारियों की वृद्धि आन्तरिक एव व्यवस्थित होती है जबकि निर्जीव पदार्थों की वृद्धि बाह्य तथा अव्यवस्थित होती है। जीवशास्त्रीय वृद्धि (biological growth) उन पदार्थों के द्वारा होती है जो जीव पदार्थ से बहुत भिन्न होते हैं किन्तु जिनमें जीवधारी के शरीर के भीतर जाकर आमूल परिवर्तन हो जाता है। निर्जीव पदार्थों की वृद्धि के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वृद्धि करने वाले पदार्थ में आमूल परिवर्तन हो। यही नहीं, जीवशास्त्रीय वृद्धि का एक अद्भुत परिणाम यह भी होता है कि प्रारम्भ में समान लगने वाले कोष (cells) आगे चलकर भिन्न-भिन्न प्रकार के विशिष्ट कोषो (differentiated cells) में व्यवस्थित हो जाते हैं।

(९) प्रजनन (reproduction)—जीवधारियों की अत्यन्त विलक्षण विशेषता यह है कि वे अपने ही अनुरूप जीवधारियों को उत्पन्न कर सकते हैं They give rise to organisms similar to themselves)। प्रजनन की इस योग्यता के कारण ही जीवधारी अपनी पीढ़ियों (generations) के रूप में निरन्तर क्रियान्वित रहते हैं। निर्जीव पदार्थ इस गुण से सर्वथा वंचित होते हैं। प्रजनन की विधियाँ अनेक प्रकार की हैं जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। यहाँ यह कहना पर्याप्त है कि अपने शरीर के विशेष भाग अथवा विशेष कोशो में विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत होने वाली परिवर्धन (development) की क्रिया के द्वारा ही अन्य जीवधारी का विकास होता है।

(१०) विपचन (metabolism)—मेटाबोलिज्म जीवधारियों के शरीर में होने वाली समस्त रासायनिक क्रियाओं का पारिभाषिक (technical) शब्द है। शरीर में प्रमुख रूप से दो प्रकार की क्रियायें होती हैं:—(१) रचनात्मक और (२) विनाशात्मक।

रचनात्मक क्रियाओं को 'पचय' (anabolism) कहते हैं तथा विनाशात्मक क्रियाओं को 'अपचय' (katabolism) कहते हैं। Anabolism में वे क्रियायें शामिल होती हैं जो नवीन शरीर पदार्थ के निर्माण में योग देती हैं, जैसे पचन (digestion), अवशोषण (absorption), स्वीकरण (assimilation) आदि। Katabolism में वे क्रियायें शामिल होती हैं जो शरीर पदार्थ के विघटन (break down) में योग देती हैं, जैसे श्वसन क्रिया, उत्सर्जन क्रिया आदि। Anabolism और Katabolism की क्रियायें सम्मिलित रूप से metabolism कहलाती हैं।

(११) विकास क्रम (evolution)—जीव की उत्पत्ति से लेकर आज तक जीव के लाखों प्रकार के विभिन्न रूप विकसित हो गये हैं। शुरू में वह एक सरल आकार का जीवधारी था। वातावरण की बदलती हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत जीवधारियों का क्रमिक विकास (evolution) होता गया और वे

भिन्न-भिन्न रूप में संगठित होने गये। विकास की गति बहुत मन्द होती है जो साधारणतया एक जीवन मे नही देखी जा सकती है। प्राचीन अवशेषों के आधार पर ही विकास-सिद्धान्त का प्रमुख मान्यता मिली है।

(१२) जीवन क्रम (Life-cycle)—जीवधारियों की आयु निश्चित होती है। लगातार जीवन क्रियाओं के फलस्वरूप शरीर के कोश एव तन्तु जर्जर हो जाते हैं और अन्त मे अपनी क्रियायें बन्द कर देते हैं। जीवन की इस अवस्था को वृद्धावस्था (senility) तथा मृत्यु (death) कहते हैं। निर्जीव पदार्थों में मृत्यु जैसी कोई अवस्था नही होती है।

प्रश्नावली

१. सजीव और निर्जीव के भेद अच्छी तरह समझाइये।

२. उद्दीपक, साग्रकूलता, जीवप्रस (protoplasm), विकासक्रम पर संक्षिप्त नोट लिखिये।

"We cannot wait for favours from nature, we have to wrest them from her."

—Mi churin.

६ कोशिका की संरचना
[Structure of a Cell]

कोशिका का इतिहास—कोशिका की खोज के पहले जीवजगत की प्रकृति के विषय में वैज्ञानिकों के विचार अत्यन्त अस्पष्ट एवं भ्रमपूर्ण थे। उनका विचार था कि जीव-जगत दो ऐसे वर्गों, प्राणीवर्ग और वनस्पति वर्ग में विभाजित है जिनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है।

लगभग ३०० वर्ष पूर्व सूक्ष्मदर्शक यंत्र (microscope) का आविष्कार हुआ। उसकी सहायता से वैज्ञानिक यह समझ सके कि सभी जीवधारियों में अनेक मूल समानतायें हैं। इन समानताओं में जीवधारियों की कोशिकामय संरचना (cellular structure) बहुत अधिक महत्वपूर्ण साबित हुई है।

सन् १६६५ में रॉबर्ट हुक (Robert Hooke) नाम के एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने कॉर्क (Cork) के काट (sections) का अध्ययन किया। रॉबर्ट हुक तात्कालिक सूक्ष्मदर्शक यंत्रों में सुधार सम्बन्धी प्रयोग कर रहा था। उसने देखा कि कॉर्क बहुत सारे छोटे-छोटे कमरों के सदृश अङ्गों से मिलकर बना है। रॉबर्ट हुक ने उन्हें सेल्स (cells) का नाम दिया। कोशिका सम्बन्धी यह पहली जानकारी थी। तत्पश्चात् वैज्ञानिक इस क्षेत्र में निरन्तर अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करते गये। आगे चलकर यह मालूम हुआ कि सभी वनस्पति एवं प्राणीवर्ग के जीवधारी कोशिकाओं से मिलकर बने होते हैं।

सन् १८२४ में रेने डुट्रोशे (Rene Dutrochet) ने कहा कि

"plants are composed entirely of cells and of organs that are obviously derived from cells" किंतु plants की cellular theory को प्रतिपादित करने का श्रेय जर्मन वैज्ञानिक M J Schleiden को दिया जाता है। उसने सन् १८३८ में अपना यह सिद्धान्त रखा कि कोशिकायें वनस्पतियों के शरीर रचना की इकाई हैं। यही कोशिका सिद्धांत सन १८३९ में वैज्ञानिक थियोडोर श्वान (Theodor Schwann) ने प्राणी-जगत (animal kingdom) पर लागू किया। थियोडोर श्वान श्लीडेन का सहयोगी था। इस विषय में रूसी वैज्ञानिकों का दावा है कि उनके वैज्ञानिक गोरियनिनोव (Goryaninov) ने वनस्पति संबंधी कोशिका सिद्धांत (cell theory of plants) सन् १८२७ में ही प्रतिपादित कर दिया था। सन् १८३३ में रॉबर्ट ब्राउन (Robert Brown) ने नाभिक (nucleus) को plant cells का केन्द्रीय अङ्ग (central feature) बतलाया। प्रारम्भ में कोशिका भित्ति (cell membrane) पर अधिक ध्यान दिया गया था। सन् १८४० में पुरकिञ्जे (Purkinje) ने कोशिका के भीतर मिलने वाले पदार्थ (Cell Contents) को प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) का नाम दिया।

कोशिका सिद्धान्त के अनुसार प्राणी एवं वनस्पति कोशिका एवं कोशिका द्वारा उत्पादित पदार्थों के बने होते हैं। (All the animals and plants are composed of cells and cell products) कोशिका जीवधारियों की संरचना एवं कार्यिकी (physiology) की मूल इकाई है (The cell is the fundamental unit, both structural and physiological in all organisms)। जीवन काल के समय कोशिका में निरंतर पदार्थ और शक्ति का आदान प्रदान होता रहता है। बहुकोशी (multicellular) जीवधारियों में समुचित कार्य करने के लिए विभिन्न कोशिकाओं के विशेष एकीकरण पाये जाते हैं। जब कि एक कोशीय (unicellular) जीवधारियों में एक कोशिका का ही जीवन की सभी क्रियाएं पूरी

करनी होती है। एक बहुकोशी प्राणी भी अपना जीवन एक कोशिका के रूप में ही प्रारम्भ करता है और धीरे धीरे बारम्बारित विभाजन (repeated division) के परिणामस्वरूप बहुकोशीय शरीर प्राप्त करता है।

बनावट (Structure)

एक कोशिका प्रोटोप्लाज्म का ऐसा पुञ्ज है जो चारों ओर कोशिका झिल्ली (cell membrane) से घिरा होता है तथा जिसके भीतर नाभिक (nucleus) विद्यमान रहता है। नाभिक और कोशिका द्रव्य (cytoplasm) की उत्पत्ति पूर्व स्थित (pre existing) कोशिका के विभाजन (division) से ही होती है। अपवाद स्वरूप कुछ ऐसी कोशिकायें भी मिलती हैं जिनमें आगे चलकर नाभिक नष्ट हो जाता है, जैसे स्तनपोषियों (mammals) के लाल रक्त कण (red blood corpuscles) में नाभिक उत्पत्ति के समय ही मिलता है। इसी तरह रेखंकित मांसपेशियां (striated muscles) की कोशिकाओं में अनेक नाभिक पाये जाते हैं। ऐसी कोशिकाओं को बहुनाभिक कोशिका (multi nucleated cell) कहते हैं।

साधारणतया एक कोशिका बहुत सूक्ष्म होती है। उसकी नाप की इकाई माइक्रोन (micron) कहलाती है। एक माइक्रोन $\frac{1}{1000}$ मिलीमीटर (millimetre) के बराबर होता है। माइक्रोन को ग्रीक भाषा के शब्द म्यू—μ के द्वारा प्रदर्शित करते हैं। मनुष्य के लाल रक्त कण का व्यास (diameter) लगभग 7·5 μ होता है। अन्य साधारण कोशिकाओं का आकार 10 से 60 μ तक होता है किन्तु बड़े प्राणियों में चेता-कोशिका (nerve cell) की लम्बाई कई फुट तक पहुँच जाती है।

यद्यपि अधिकांश कोशिकायें गोलाकार अथवा अंडाकार होती हैं, तथापि वे अन्य आकारों की भी पाई जाती हैं।

एक सामान्य कोशिका के दो भाग किये जा सकते हैं—(१) कोशिका द्रव्य वाला भाग तथा (२) नाभिक वाला आन्तरिक भाग।

कोशिका-द्रव्य वाला भाग (cytoplasmic portion) साधारणतया नाभिक (nucleus) के चारों ओर होता है। इसकी बाहरी सीमा कोशिका भिल्ली से परिसीमित रहती है। प्राणियों की कोशिका भिल्ली वनस्पतियों की कोशिका भिल्ली की अपेक्षा बहुत पतली होती है। वनस्पतियों की कोशिका भिल्ली में सैल्यूलोज (cellulose) पाया जाता है जिसके कारण उनकी मोटाई बहुत अधिक बढ़ जाती है। कोशिका भिल्ली का मुख्य काम कोशिका के आन्तरिक अवयवों की रक्षा करना तथा ऐसे पदार्थों का आदान प्रदान होने देना है जो कोशिका के विभिन्न कार्यों के लिये आवश्यक होते हैं।

कोशिका भिल्ली के भीतर कोशिका द्रव्य (cytoplasm) होता है। कोशिका द्रव्य साधारणतया पारभासक (translucent) तथा गाढ़ा (viscous) होता है। इसमें अनेक प्रकार के अन्य अवयव पाये जाते हैं, जिनमें सेन्ट्रासोम (centrosome), माइटोकोन्ड्रिया (mitochondria), गोलगाइ बोडीज (Golgi bodies) मुख्य हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

(१) सेन्ट्रोसोम (Centrosome)—नाभिक के पास एक गोलाकार अवयव होता है जिसे सेन्ट्रोसोम कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि कोशिका के विभाजन के समय सेन्ट्रोसोम का महत्वपूर्ण कार्य होता है, किन्तु वनस्पति कोशिकाओं में सेन्ट्रोसोम होता ही नहीं है।

(२) माइटोकोन्ड्रिया (mitochondria)—ये छोटे-छोटे कणों (granules) अथवा रेशों (Filaments) के रूप में पाये जाते हैं। अनुमान है कि विभिन्न प्रकार के रासायनिक यौगिक, मुख्य रूप से प्रोटीन्स के निर्माण के लिये इनकी विशेष आवश्यकता होती है।

(३) गोलगाइ बोडीज (golgi bodies)—सेन्ट्रोसोम के पास ही इनका स्थान होता है। ये छोटे-छोटे कणों के समूह अथवा जाल के रूप में

मिलती हैं। ऐसा समझा जाता है कि विभिन्न प्रकार के स्राव (secretions) के निर्माण में इनका योग होता है।

उपरोक्त अवयवों के अतिरिक्त कोशिका द्रव्य में चर्बी के कण (Fat globules), रसधानी (vacuoles) प्रोटीन के कण, स्राव कण (secretion granules), आदि भी पाये जाते हैं जिनका कोशिका-कार्यिकी (cell-physiology) से विशेष सम्बन्ध रहता है।
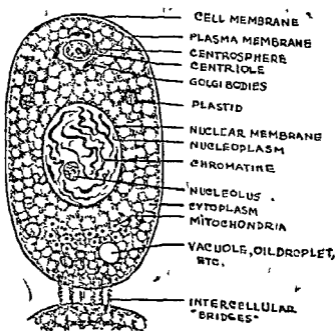
Fig 8 : Structure of a typical animal Cell

नाभिक (Nucleus)

साधारणतया नाभिक गोलाकार अथवा अण्डाकार होता है। कभी-कभी यह लम्बाकार अथवा अन्य आकारों का भी होता है। अधिकतर यह कोशिका के केन्द्र में स्थिर रहता है; किन्तु कभी-कभी इसकी स्थिति अन्यत्र भी होती है। बाहर की ओर यह एक स्पष्ट झिल्ली द्वारा परिसीमित रहता है। यह झिल्ली नाभिक-झिल्ली (nuclear membrane) कहलाती है। नाभिक झिल्ली के भीतर नाभिक-द्रव्य (nucleoplasm) भरा होता है।

नाभिक का सबसे महत्वपूर्ण अङ्ग क्रोमेटिन (chromatin) होता है। यह एक प्रकार के जाल (network) के रूप में पाया जाता है। कोशिका विभाजन के समय क्रोमेटिन का जाल छोटे छोटे टुकड़ों मे टूट जाता है। ये टुकड़े ही पित्र्यसूत्र (chromosom s) कहलाते हैं। पित्र्यसूत्र पैतृक गुणो (hereditary characters) के वाहक (carriers) समझे जाते हैं (chromosomes are the carriers of heredity) क्रोमेटिन के अतिरिक्त नाभिक मे एक सूक्ष्म गोलाकार अवयव भी मिलता है जिसे अणु-नाभिक (nucleolus) कहते हैं। अणु नाभिक chromosomes के लिये आवश्यक nucleic acid के भंडार का कार्य करता है।

नाभिक कोशिका के द्वारा संचालित विपचन सम्बन्धी क्रियाओं (metabolic activities) का नियमण करता है। नाभिक के बिना कोशिका अधिक समय तक जीवित नही रह सकती है। इसी प्रकार बिना कोशिका-द्रव्य (cyoplasm) के नाभिक भी व्यर्थ ही रहता है। प्रायः नाभिक और कोशिका द्रव्य की तुलना राजा और उसके राज्य क्षेत्र से की जाती है।

कोशिका की संरचना (structure) और कायिकी (physiology) के अध्ययन को साइटोलोजी (cytology) कहते हैं।

प्रश्नावली

(१) कोशिका क्या है ? उसके इतिहास पर प्रकाश डालिये ।

(२) एक सामान्य कोशिका संरचना का वर्णन कीजिये ।

"Science is vastly more stimulating to the imagination than are the classics"

—J. B. S. Haldane.

१० पोषाहार [Nutrition]

पोषाहार क्या है ?—हम यह पढ़ चुके हैं कि जीवधारियों में कुछ ऐसी विशेषतायें होती हैं जो निर्जीव वस्तुओं में नहीं मिलती हैं। उनमें से पोषाहार भी एक है। जीवधारी अपनी क्रियाओं को चलाने के लिए शक्ति का व्यय करते हैं। यह शक्ति उन्हें अपने शरीर-पदार्थ में होने वाले रासायनिक परिवर्तनों से प्राप्त होती है। इन परिवर्तनों के पश्चात् शरीर पदार्थ त्याज्य हो जाता है। मगर शरीर पदार्थ को त्यागने का यह क्रम चलता रहे तो कुछ समय पश्चात् जीवधारी का अन्त हो जाना स्वाभाविक है। शरीर पदार्थ की कमी की पूर्ति तथा वृद्धि के लिये जीवधारी अपने वातावरण से ऐसे पदार्थों को ग्रहण करता है जो विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के पश्चात् शरीर पदार्थ में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी महत्वपूर्ण क्रिया को पोषाहार (nutrition) कहते हैं।

भोजन क्या है ?—वैज्ञानिक दृष्टि से जीवपदार्थ कोई ईश्वरीय चमत्कार अथवा दैवीय रहस्य नहीं है। जीवपदार्थ के विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि वह लगभग बीस तत्वों से मिलकर बना हुआ अत्यन्त जटिल पदार्थ है। इन तत्वों में (१) हाइड्रोजन (२) कार्बन (३) ऑक्सीजन (४) नाइट्रोजन (५) सल्फर (६) सोडियम (७) पोटैशियम (८) कैलशियम (९) फॉस्फोरस (१०) तांबा (११) लोहा (१२) क्लोरीन (१३) ब्रोमीन (१४) आयोडीन (१५) फ्लोरीन (१६) मेगनेशियम आदि मुख्य हैं। प्रकृति से जीवधारी इन तत्वों को भिन्न भिन्न रासायनिक यौगिकों के रूप में ग्रहण करता है। वे सब पदार्थ, जो

जीवधारी के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं तथा जो अधिकाश रूप से समुचित रासायनिक क्रियाओं के पश्चात् शरीर पदार्थ मे बदल जाते है, भोज्य पदार्थ (food materials) अथवा खाद्य पदार्थ कहलाते हैं।

पोषाहार की श्रेणियां (types of nutrition)—भोजन ग्रहण करने की विधियां भिन्न भिन्न होती हैं। यद्यपि भोजन विभिन्न प्रकार से ग्रहण किया जाता है तथापि उन सबका प्रयोजन और परिणाम समान होता है। भोजन ग्रहण करने की विधियां (methods of nutrition) के अनुसार प्राणियों और वनस्पतियों को holophytic, holozoic, parasitic अथवा paraphytic कहा जाता है।

Holophytic nutrition वनस्पति वर्ग की विशेषता है। अधिकाश पेड पौधे अपने आसपास के वातावरण से सरल यौगिकों के रूप में आवश्यक तत्व प्राप्त करते हैं तथा उन्हें कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन्स, चर्बी, विटामिन्स आदि जटिल भोज्य पदार्थों मे बदलते हैं। वे सब जीवधारी जो अपने भोजन के लिए कार्बन डाईआक्साइड, पानी, नाइट्रेट्स आदि सरल पदार्थों का उपयोग कर सकते हैं उन्हें holophytic कहते हैं। Holophytic nutrition के लिये photosynthesis जैसी रासायनिक क्रिया का होना आवश्यक है।

Holozoic nutrition प्राणी वर्ग की विशेषता है। इस प्रकार के पोषाहार में कार्बन-डाइ-आक्साइड और पानी जैसे सरल पदार्थों का उपयोग जटिल खाद्य पदार्थ बनाने के लिये नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार के पोषाहार मे बने बनाये कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन्स, फैट्स, विटामिन्स आदि का ही उपयोग होता है। अत प्राणीवर्ग का वनस्पति वर्ग के द्वारा निर्मित जटिल खाद्य पदार्थों पर ही निर्भर रहना पडता है। ये जटिल खाद्य पदार्थ प्राणियों के शरीर मे पाचन क्रिया से प्रभावित हो कर सरल पदार्थों में बदलते है तथा पुन जटिल बनकर शरीर पदार्थ में बदल जाते हैं। इन्हीं क्रियाओं को हम

digestion और assimilation कहते हैं। वनस्पति वर्ग में भी कुछ ऐसे पौधे मिलते हैं जो छोटे मोटे कीड़े, मकोड़ों का भोजन के रूप में उपयोग करते हैं। इन्हें कीट-भोजी पौधे (insectivorous plants) कहते हैं। इनकी पाचन क्रिया और प्राणियों की पाचन क्रिया में अत्यधिक समानता होती है।

Parasitism - ऐसे जीवधारी जो अपना आहार अन्य जीवधारी से प्राप्त करते हैं परजीवी (parasites) कहलाते हैं। वनस्पति वर्ग और प्राणी वर्ग दोनों में ही पर जीवी पाये जाते हैं। प्राणी वर्ग में खटमल, जूँ, जोंक, मलेरियाणु (malarial parasite), टेपवोर्म (tapeworm) लिवर फ्ल्यूक (liver fluke) आदि प्रसिद्ध परजीवी हैं। इसी प्रकार वनस्पति वर्ग में अमर-बेल (dodder), गेहूं पर लगने वाला गेरुआ (rust and smut), potato blight, आदि मुख्य परजीवी हैं। पर जीवियों में सामान्य जीवधारियों की अपेक्षा कुछ आश्चर्यजनक विशेषतायें होती हैं। परजीवी अन्य जीवधारी के पचे हुए भोजन अथवा उसके शरीर पदार्थ पर जीवन यापन करते हैं। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें उन्हें बिना परिश्रम किये प्रायः तैयार भोजन (ready made food) मिल जाता है। इस परिस्थिति के सानुकूल उनकी शरीर रचना में विशेष रूपान्तर (modifications) पाये जाते हैं। ये रूपान्तर parasitic adaptations कहलाते हैं। अध्ययन की दृष्टि से parasitic adaptations बहुत ही महत्वपूर्ण तथा रोचक होते हैं। मलेरिया के मच्छर (*female anopheles*) तथा खटमल का मुँह एक नुकीली ट्यूब के समान होता है जिसके द्वारा हमारी त्वचा के भीतर से रक्त चूसते हैं। उनके मुँह के विभिन्न भागों (mouth-parts) का नुकीली ट्यूब के रूप में होना एक प्रकार का parasitic adapatation है। सेकुलाइना (sacculina) नाम का एक परजीवी प्राणी केंकड़े (crab) पर पूर्ण रूप से आश्रित रहता है। उसमें शारीरिक रूपान्तर (structural modification) इस सीमा तक पहुँच जाता है कि सेकुलाइना शरीर पदार्थ की एक गोलो मात्र (round body) रह जाता है।

Fig. 9 : Sacculina on Crab

Saprophytism (सैप्रोफाइटिज्म)–इस प्रकार के पोषाहार में जीवधारी जीवन धारन के लिए सड़े गले कार्बनिक पदार्थों (decaying organic material) का उपयोग करते हैं। Saprophyte का शाब्दिक अर्थ sapros=rotten or decaying+phyton=plant) rotten plant होता है वे जीवधारी जो मृतजीवियों के शरीर पदार्थ का भोजन के रूप में उपयोग करते हैं saprophytes कहलाते हैं। Saprophytes सामान्य तौर से वनस्पति वर्ग में पाये जाते हैं। रोटी, आचार, चमड़े आदि पर छा जाने वाली फफूँदी (fungus) जैसे mucor, rhizopus कई प्रकार की बैक्टीरिया (bacteria) तथा penicillium आदि महत्वपूर्ण saprophytes हैं।

आहार कितना और कैसा हो ?--आहार शरीर की दो आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसके द्वारा दैनिक क्रियाओं के लिये ईंधन (fuel) प्राप्त होता है तथा शरीर के ढाँचे को यथावत् बनाये रखने अथवा उसकी वृद्धि करने के लिये नवीन शरीर पदार्थ प्राप्त होता है। हमारा शरीर एक प्रकार की मशीन है। जैसे मशीन के निर्माण एवं रिपेयर के लिये धातु, रबर आदि की आवश्यकता होती है तथा मशीन को चलाने के लिये ईंधन की आवश्यकता

होती है उसी तरह जीवधारियों के शरीर की आवश्यकतायें होती हैं। यही कारण है कि हमारा काम उस प्रकार के भोजन से नहीं चलता है जो शरीर में केवल ईंधन का काम दे। उसके अतिरिक्त हमारे भोजन में ऐसे अंश भी होते हैं जो शरीर की टूट-फूट को मरम्मत (repair) करते हैं तथा शरीर वृद्धि में सहायक होते हैं। ऐसा भोजन जो शरीर की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, संतुलित भोजन (balanced diet) कहलाता है।

सामान्य तौर से भोजन की मात्रा को ताप अथवा शक्ति की मात्रा के अनुसार निर्धारित करते हैं। शारीरिक क्रियाओं के लिए जितने ताप की आवश्यकता होती है उसे food calories में नापा जाता है। एक food calorie एक हजार साधारण कैलोरीज* के बराबर होती है। विभिन्न प्रकार के काम करने वाले व्यक्तियों को भोजन की विभिन्न मात्रा की आवश्यकता होती है। अधिक शारीरिक परिश्रम करने वाले किसान, श्रमिक आदि को इतने भोजन की आवश्यकता होती है जिसका कैलोरी मूल्य ४५०० से ५००० फूड कैलोरीज तक होता है।

शारीरिक श्रम कम और मानसिक काम अधिक करने वाले युवक को ३००० से ३५०० कैलोरीज की जरूरत होती है। एक व्यक्ति की प्रतिदिन औसतन आवश्यकता ३००० फूड कैलोरीज मानी जाती है। उपयुक्त भोजन की दृष्टि से खाद्य पदार्थों के अनेक वर्ग हैं। ताप प्राप्त करने के लिए प्रमुख रूप से कार्बोहाइड्रेट्स और चर्बीयुक्त पदार्थ काम में आते हैं तथा प्रोटीन्स एवं खनिज पदार्थों का उपयोग शरीर पदार्थ निर्मित करने के लिये होता है।

विभिन्न खाद्य पदार्थ

मोटे तौर से खाद्य पदार्थों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता

---

*एक साधारण कैलोरी, ताप की वह मात्रा है जो एक ग्राम पानी का तापक्रम १ सेंटीग्रेड बढ़ा देती है।

है—(१) कार्बनिक खाद्य पदार्थ (organic foods) और (२) अकार्बनिक खाद्य पदार्थ (inorganic foods)

कार्बनिक खाद्य पदार्थों मे कार्बोहाइड्रेट्स, चर्बी (fats) प्रोटीन्स (proteins) तथा विटामिन्स (vitamins) की गणना होती है और अकार्बनिक भोजन मे पानी तथा विभिन्न खनिज लवणों (mineral salts) की गिनती होती है। भिन्न भिन्न खाद्य पदार्थों के अपने-अपने कार्यक्षेत्र हैं और अपने-अपने महत्व हैं। अब हम सभी खाद्य-पदार्थों का विशेष अध्ययन करेंगे।

(१) कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates)—कार्बोहाइड्रेट्स, कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का अनुपात प्राय. वही होता है जो पानी (H_2O) मे होता है, जैसे गन्ने की शक्कर (Cane sugar) का सूत्र $C_{12} H_{22} O_{11}$ तथा ग्लूकोज और फ्रक्टोज का सूत्र $C_6 H_{12} O_6$ होता है। प्रकृति में कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण पेड पौधों द्वारा किया जाता है। ये स्टार्च (starch), शक्कर (sugar) तथा सैल्यूलोज (cellulose) के रूप में पाये जाते हैं।

सैल्यूलोज वनस्पति वर्ग में पाया जाता है। वह वनस्पतियों की कोशिकाओं की दीवार (cell walls) का प्रमुख अङ्ग होता है। प्राणीवर्ग के लिये सैल्यूलोज साधारणतया खाद्य महत्व (food value) नहीं रखता है। किन्तु सैल्यूलोज का रासायनिक महत्व बहुत अधिक है। इससे कपडा, कागज, कृत्रिम सिल्क, सैल्यूलोइड (celluloid) सिनेमा-फिल्म, गन कोटन जैसे उपयोगी पदार्थ बनाये जाते हैं।

स्टार्च (starch) भी प्रमुख रूप से वनस्पति वर्ग मेंह मिलता है। यह उनमें अघुलनशील कणों के रूप मेंसंचय हो जाताहै और आवश्यकता के अनुसार घुलनशील शक्करों में बदलकर पेड पौधों के काम आता रहता है। शक्करों की अपेक्षा स्टार्च का अणुभार बहुत अधिक होता है। स्टार्च का सूत्र ($C_6H_{10}O_5$)n होता है। 'n' $C_6H_{10}O_5$ की उस संख्या को

बतलाता है जो आपस मे मिलकर स्टार्च का एक अणु बनाती हैं। आलू, चाँवल, गेहूँ, साबूदाना इत्यादि मे स्टार्च पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। हमारे भोजन में स्टार्च की काफी मात्रा होती है। यह विशेष (enzymes के द्वारा ग्लूकोज मे परिवर्तित होकर शरीर के उपयोग मे आता है। Animal starch ग्लूकोज से ही प्राप्त होता है। इसे ग्लाइकोजन (glycogen) कहते हैं। यह प्राय लिवर (liver) मे एकत्रित रहता है तथा आवश्यकता के समय पुन ग्लूकोज मे बदलकर शरीर के विभिन्न भागो मे पहुँच जाता है।

शक्करें (sugars)—शक्करों के रूप मे भी हम कार्बोहाइड्रेट्स का काफी उपयोग करते हैं। canesugar (sucrose), milk sugar (lactose), malt sugar (maltose) grapesugar (glucose), fruitsugar (fructose) आदि के रूप में sugar carbohydrates का खूब उपयोग होता है। हम शकर किसी भी रूप मे उपयोग मे लायें हमारी पाचन प्रणाली (digestive system) मे वह glucose मे बदल जाती है। शरीर मे ग्लूकोज ईंधन का काम देती है। वह ऑक्सीजन के साथ मिलकर carbondioxide और पानी मे बदल जाती है जो हमे विभिन्न कार्य करने की क्षमता प्रदान करती है।

कार्बोहाइड्रेट्स का मुख्य प्रयोजन शरीर पदार्थ का निर्माण करना नही है बरन् शारीरिक क्रियाओ के लिए शक्ति प्रदान करना है। इनका ताप मूल्य (heat value) साधारण ही है। १ ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स लगभग ४.१ फूड केलोरीज ताप उत्पन्न करते है। अत हमारे भोजन मे कार्बोहाइड्रेट्स पर्याप्त मात्रा मे होने चाहिये। शहद एक आदर्श कार्बोहाइड्रेट्स है। यह ग्लूकोज और फ्रक्टोज का मिश्रण होता है जिसे हमारी पाचन प्रणाली सरलता से ग्रहण कर लेती है।

कार्बोहाइड्रेट्स विभिन्न प्रकार के अनाज आलू शकरकद, चुकदर, शलजम, शहद, गुड, शक्कर, फल इत्यादि मे प्राप्त होते हैं। सन् १८४० में वैज्ञा-

निक हेन्स (Hanes) द्वारा पहली बार कृत्रिम स्टार्च तैयार किया गया था। यह स्टार्च ग्रालू मे मिलने वाले स्टार्च के समान होता है।

(२) चर्बी (fats)—कार्बोहाइड्रेट्स के समान fats भी कार्बन, हाइड्रोजन ग्रौर ग्रॉक्सीजन के बने हुए होते हैं। इनमे ग्रन्तर इतना ही है कि fats में ग्रॉक्सीजन की मात्रा कार्बोहाइड्रेट्स की ग्रपेक्षा बहुत कम होती है। कार्बोहाइड्रेट्स में प्राय ग्रॉक्सीजन ग्रौर कार्बन के परमाणुग्रो की सख्या लगभग बराबर होती है, जब कि fats मे कार्बन ग्रौर ग्रॉक्सीजन के परमाणुग्रो की सख्या मे बहुत ग्रधिक ग्रन्तर होता है। Tristearin [C_3H_5 (C_{17}-$H_{35}COO$)$_3$] नाम के fat के सूत्र मे हम मालूम कर सकते हैं कि उसके एक ग्रणु में कार्बन के ५७ परमाणु हैं जब ग्रॉक्सीजन के केवल ६ परमाणु हैं।

रासायनिक दृष्टि से fats ग्लिसरीन ग्रौर उच्च कोटि के fatty acids के यौगिक होते हैं। साधारणतया fats में stearic glyceride, oleic glyceride, palmitic glyceride ग्रादि मिले होते हैं। देशी तेल, घी, मक्खन एव जानवरो में मिलने वाली चर्बी ग्रादि की गणना fats में ही होती है। घी ग्रौर तेल में विशेष ग्रन्तर यही है कि घी जैसी चर्बी का द्रवणाक (melting point)२०° सेंटीग्रेड से ग्रधिक होता है ग्रौर तेलो (तिल्ली, सरसो, ग्रलसी, इत्यादि) का द्रवणाक २०°C से कम होता है।

पाचन क्रिया के पश्चात् fats, fatty acids ग्रौर glycerine में जाते हैं। Fatty acids शरीर के विभिन्न भागो मे पहुँच कर पुन fats में बदल जाते हैं। शरीर मे वे fats के रूप मे सचित होते रहते हैं। यही कारण है कि ग्रधिक fats बढ जाने के कारण मोटापा ग्राजाता है।

कार्बोहाइड्रेट्स की भाँति fats भी ईधन का काम देते हैं, किन्तु ईधन के लिये fats की ग्रावश्यकता उसी समय पड़ती है जब शरीर में कार्बोहाइड्रेट्स की कमी हो जाती है। भूख हडताल ग्रथवा उपवास ग्रादि करने वाले

व्यक्तियों में संग्रहित fats ही ईंधन का काम देते रहते हैं। Fats का केलोरी मूल्य कार्बोहाइड्रेट्स की अपेक्षा लगभग दुगुना होता है। एक ग्राम fats से लगभग ६ फूड केलोरीज प्राप्त होती हैं।

कृत्रिम ढंग से fats तैयार करने की विधि प्रथम महायुद्ध मे जर्मनी के द्वारा मालूम की गई थी, किन्तु इसके प्रचुर साधन होने के कारण कृत्रिम विधि को बड़े पैमाने पर काम में लाने की आवश्यकता नही पड़ती है।

(३) प्रोटीन्स(Proteins)—प्रोटीन्स प्रोटोप्लाज्म मे बहुलता से मिलने वाले कार्बनिक यौगिक हैं। ये अत्यधिक जटिल तथा बहुत अधिक अणु-भार वाले यौगिक पदार्थ होते हैं। प्रोटीन्स को जीव पदार्थ का आधार-द्रव्य माना जाता है। यह प्रमाणित हो चुका है कि वाइरस (virus) जैसे सरल जीवाणु प्रमुख रूप से प्रोटीन्स के ही बने हुए होते हैं। प्रोटीन्स के निर्मित करने वाले तत्वों में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन तथा गन्धक मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त उनमे फोसफोरस, लोहा, आयोडीन आदि तत्वों का भी समावेश हो सकता है। प्रोटीन का अणु बहुत भारी होता है। जिलेटिन (gelat in) का अणुभार ३५,००० (पैंतीस हजार) तथा हीमोसायनिन (haemocyanin) का अणुभार लगभग पांच लाख होता है। प्रोटीन्स की संरचना की इकाई (structural unit) एमिनो एसिड (amino acid) कहलाती है। एमिनो एसिड में एमिनो रेडिकल 'NH_2' आवश्यक रूप से होता है। इससे स्पष्ट है कि नाइट्रोजन प्रोटीन्स की आवश्यक अङ्ग है।

जटिल संरचना के कारण विभिन्न प्रकार के प्रोटीन्स की बहुत बड़ी संख्या मिलती है। सरल प्रोटीन्स मे milk albumen, egg albumen, blood serum आदि की गिनती होती है, जबकि keratins, haemoglobins, haemocyanin, gelatin आदि की गिनती जटिल प्रोटीन्स में होती है। कुछ मुख्य प्रोटीन्स तथा उनके स्रोत इस प्रकार हैं:—

(१) एलबुमिन (Albumen) दूध, अण्डे तथा अनाजों से प्राप्त होता है। दूध के एलबुमिन को केसीन (casein) भी कहते हैं।

(२) ग्लोबुलीन (globulin) नाम के प्रोटीन्स रक्त, अण्डे, स्नायु एवं पेड़ पौधों में पाये जाते हैं।

(३) प्रोटेमीन (protamine) सरल प्रोटीन्स होते हैं जो मछलियों से प्राप्त होते हैं। जिलेटिन नाम के प्रोटीन्स हड्डी और कार्टिलेज (cartilage) से तथा फॉस्फो प्रोटीन्स (Phospho proteins) दूध से मिलते हैं।

हमें दूध, दाल, अण्डे, मांस, मछली एवं अनाजों से आवश्यक प्रोटीन्स प्राप्त होते हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि प्रोटीन्स शरीर पदार्थ के मुख्य आधार हैं। अतः प्रोटीन्स का मुख्य प्रयोजन शरीर पदार्थ का निर्माण करना है। पाचन क्रिया के फलस्वरूप जटिल प्रोटीन्स amino acids में बदलकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँच जाते हैं। वहाँ वे पुनः प्रोटीन्स में बदल कर भिन्न-भिन्न प्रकार के तन्तुओं (tissues) का निर्माण करते हैं। विभिन्न जीवन क्रियाओं के फलस्वरूप शरीर पदार्थ की टूट-फूट होती रहती है। प्रोटीन्स के टूटने से एमोनिया जैसे हानिकारक पदार्थ की उत्पत्ति होती है। एमोनिया और कार्बन डाइ-ऑक्साइड मिलकर 'यूरिया' नाम के यौगिक में बदल जाते हैं। यूरिया अपेक्षाकृत कम हानिकारक होता है। यह पेशाब के साथ शरीर के बाहर निकल जाता है।

प्रोटीन्स का ताप मूल्य कार्बोहाइड्रेट्स के बराबर ही होता है। नये शरीर निर्माण के लिये प्रोटीन्स की परम आवश्यकता होती है।

(४) जीवन तत्व (vitamins)—विटामिन्स ऐसे कार्बनिक यौगिक होते हैं जो शरीर में होने वाली विभिन्न जीवन क्रियाओं पर नियन्त्रण रखते हैं। इनकी अल्पमात्रा औसतन स्वास्थ्य वृद्धि एवं प्रजनन शीलता के लिए आवश्यक होती है। इनके महत्व को देखते हुए विटामिन्स सम्बन्धी खोज बहुत

गहराई और सलग्नता के साथ की जाती रही है। अभी तक लगभग बीस से अधिक विटामिन्स की जानकारी प्राप्त की जा चुकी है। विटामिन्स के नाम अ ग्रेजी वर्णमाला के अनुसार रखे गये हैं। इनमे विटामिन A, B, C, D, E और K अधिक महत्वपूर्ण साबित हुए हैं।

यह अभी भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है कि शरीर मे विटामिन्स किस प्रकार कार्य करते हैं। अनुमान है कि विटामिन्स मुख्यतया उत्प्रेरक (Catalysts)❋ के रूप मे कार्य करते हुए शरीर मे होने वाली विभिन्न रासायनिक क्रियाओ को उचित गति प्रदान करते हैं। इनकी अनुपस्थिति के कारण रासायनिक क्रियाय सुचारू रूप से नही हो पाती हैं जिसके परिणामस्वरूप शरीर के सामान्य (normal) मेटाबोलिज्म मे बाधा पड जाती है। यही कारण है कि विटामिन्स की कमी के कारण भिन्न भिन्न प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। ऐसी बीमारियों को अभाव रोग (deficiency diseases) कहा जाता है।

साधारणतया सभी प्राकृतिक खाद्य पदार्थों मे भिन्न-भिन्न प्रकार के विटामिन्स पाये जाते हैं। सभी प्रकार के विटामिन्स को आवश्यक मात्रा मे प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि हमे समुचित मात्रा मे 'सन्तुलित भोजन' प्राप्त हो। हमारे देश मे निर्धनता एव दोषपूर्ण आहारविधि के कारण प्राय ऐसा नही हो पाता है। यही कारण है कि हमारा औसतन स्वास्थ्य खराब पाया जाता है। विटामिन्स दूध, घी, तेल, अण्डा, मछली, साग-सब्जियो, गाजर, फल, खमीर (yeast), छिलके युक्त चावल, अनाज, दाल, नीबू, आँवला, मास आदि से प्राप्त होते हैं।

❋उत्प्रेरक वे पदार्थ होते हैं जो स्वय बिना बदले हुए रासायनिक क्रियाओ की गति बढाने अथवा कम करने म सहायक होते हैं।

आवश्यक विटामिन्स के महत्व, उनकी कमी से होने वाले रोग तथा उनके स्रोत सम्बन्धी रूप रेखा नीचे दी जाती है :—

विटामिन 'ए' (Vitamin 'A')

विटामिन 'ए' क्रमोन्नति एवं विकास में सहायक होता है। यह epithelial tissues को स्वस्थ रूप में रखता है तथा रोगों के कीटाणुओं से सामना करने की शक्ति देता है। विभिन्न प्रकार के रंगों को पहचानने की सामर्थ्य (colour vision) पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

इसकी कमी से नेत्र रोग, रतौन्धी (night blindness) नाटा कद, वजन में कमी तथा श्वास आदि के रोग हो जाते हैं।

विटामिन 'ए' के स्रोत—यह दूध, मक्खन, मलाई, पनीर, अंडे, मछली के तेल, ताजी हरी सब्जी, टमाटर, गाजर आदि में मिलता है। गाजर (carrot) में तो यह इतनी अधिक मात्रा में पाया जाता है कि इसका नाम Carotene ही डाल दिया गया है।

विटामिन 'बी' (Vitamin 'B')

इस विटामिन की शरीर के सर्वाङ्गीण विकास के लिये आवश्यकता होती है। इसकी अनेक प्रकार की श्रेणियाँ पाई जाती हैं जो विटामिन B_1, B_2, B_6, B_{12} आदि के नाम से पुकारी जाती हैं।

विटामिन 'बी' की कमी से भूख में कमी हो जाती है जिसका सामान्य स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शरीर में कार्बोहाइड्रेट्स के मेटाबोलिज्म में कमी पड़ जाती है तथा रक्त की कमी naemia) हो जाती है। इसकी कमी के कारण बेरीबेरी (beriberi) नाम की बीमारी हो जाती है। इस बीमारी में हाथ पैरों में सूजन तथा सुन्नता आ जाती है और हृदय में भी सूजन

(oedema of heart) आने की आशंका रहती है। इसकी कमी से एक और बीमारी हो जाती है जिसे pellagra कहते हैं। इस बीमारी मे ऐसा चर्मरोग होता है जो चेता-प्रणाली (nervous system) पर बुरा प्रभाव डालता है।

विटामिन 'बी' के स्रोत खमीर (yeast), छिलकेयुक्त अनाज, हरी सब्जियाँ, टमाटर, फल, मूली, गोभी, मूँगफली, लिवर, अण्डे, दूध, मांस इत्यादि हैं।

विटामिन 'सी' (Vitamin 'C')

विटामिन 'सी' को (ascorbic acid) भी कहते हैं। इसकी साधारण कमी से स्वास्थ्य गिरने लगता है तथा दुर्बलता आ जाती है। अधिक कमी के कारण 'स्कर्वी' (scurvy) नाम की बीमारी हो जाती है। इस बीमारी मे मसूड़ों एवं दाँतों के रोग पाइरिया (pyorrhaea) आदि हो जाते हैं तथा आमाशय मे घाव शरीर के आन्तरिक भागों मे रक्तस्राव (haemorrhage) एव मुँह में छाले इत्यादि भी हो जाते हैं।

विटामिन 'सी' के स्रोत नींबू, नारङ्गी, आँवला, अनन्नास, अमरूद, पपीता, टमाटर, शलजम, आलू आदि हैं।

विटामिन 'डी' (Vitamin D')

हड्डियों के समुचित विकास के लिये विटामिन 'डी' की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसकी कमी से शरीर में केलशियम और फासफोरस का शोषण (absorption) नहीं हो पाता है। केलशियम और फॉस्फोरस, दोनों ही हड्डियों के निर्माण के लिये आवश्यक खनिज तत्व हैं। यही कारण है कि विटामिन 'डी' की कमी से हड्डियों के निर्माण में विघ्न पड़ जाता है। बच्चो के भोजन में इस विटामिन की विशेष आवश्यकता होती है। इसकी विशेष कमी से रिकेट (Rickets) नाम की बीमारी हो जाती है। रिकेट से

के पाँव टेढ़े पड़ जाते हैं पेट बढ़ जाता है, दाँत खराब हो जाते हैं तथा स्वास्थ्य गिर जाता है। दूसरी बीमारी osteomalacia कहलाती है जिसके कारण हड्डियाँ नरम होकर टेढ़ी मेढ़ी हो जाती हैं और दाँत खराब हो जाते हैं।

विटामिन डी के स्रोत—यह विटामिन काड मछली के तेल में, अण्डे के पीले भाग में तथा थोड़ा बहुत दूध, घी, मक्खन आदि में पाया जाता है। इस विटामिन का सबसे अच्छा स्रोत ultra violet किरणें हैं। हमारी त्वचा में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो सूर्य से प्राप्त होने वाली अल्ट्रा वायलेट किरणों की उपस्थिति में विटामिन 'डी' का निर्माण करते हैं। इस तथ्य को देखते हुए इस बात का बहुत महत्व है कि हमारी त्वचा को यदा-कदा सूर्य की किरणें प्राप्त होती रहें।

विटामिन 'ई' (Vitamin 'E')

विटामिन 'ई' का मनुष्य के लिये क्या विशिष्ट-महत्व है यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। ऐसा समझा जाता है कि विटामिन 'ई' प्रजनन-शक्ति के लिए आवश्यक होता है तथा बाँझपन (sterility) को दूर करता है।

विटामिन 'ई' हरी सब्जियाँ, दलों तथा, अन्न, दूध तथा अण्डे से प्राप्त होता है।

विटामिन 'क' (Vitamin 'K')

विटामिन 'क' prothrombin नाम के पदार्थ के निर्माण के लिये आवश्यक होता है। जब शरीर से रक्त बहने लगता है तब कुछ ऐसी रासायनिक क्रियायें होती हैं जो बहते हुए खून को गाढ़ा बना देती हैं जिससे थोड़ी देर पश्चात् खून का बहना बन्द हो जाता है। इन महत्वपूर्ण क्रियाओं में prothrombin प्रमुख भाग लेता है। अतः रक्त प्रवाह को रोकने के लिये तथा clotting के निर्माण के लिये विटामिन 'क' आवश्यक है।

यह विटामिन हरी सब्जियाँ, टमाटर, अण्डे इत्यादि में प्राप्त होता है।

विटामिन चार्ट

विटामिन का नाम	स्रोत	अभाव रोग (कमी का प्रभाव)
ए	हरे पत्ते, गाजर, मछली के लिवर का तेल, दूध, अण्डे की जर्दी आदि।	(१) आयुओं की कमी (२) रतौन्धी (night blindness) (३) सामान्य दृष्टि पर प्रभाव
बी	खमीर (yeast), अनाज के अंकुर, अण्डे की जर्दी, लिवर दूध, मास, छिलके युक्त अनाज आदि।	(१) बेरीबेरी नाम की बीमारी (i) हाथ पैर की सूजन और सुन्नता। (ii) हृदय की सूजन (२) भूख की कमी (३) चर्म रोग (४) रक्त की कमी, मुँह के छाले आदि।
सी	टमाटर, नीबू, नारङ्गी, आँवला, शलजम आदि।	(१) स्कर्वी (Scurvy) (i) एनीमिया (ii) कमजोरी (iii) मसूडे फूलना, सूजना, रक्त बहना (iv) छाले होना (v) शरीर के विभिन्न भागो मे रक्तस्राव (haemorrhage)

डी	मछलियों के लिवर का तेल, अन्य प्रकार के तेल-चर्बी-घी, चमड़ी, (skin) पर सूर्य की ultra violet rays का प्रभाव।	(१) रिकेट्स (Rickets) (i) हड्डियों का नरम रह जाना तथा विरूपता आजाना। (२) कैलशियम और फॉस्फोरस का नहीं पचना।
ई	हरे पत्ते और वनस्पति तेलों में	चूहे, खरगोश, मुर्गे आदि प्राणियों के प्रजननसंबंधी विकास में कमी (मनुष्य में अनिश्चित)
के	हरे पत्ते।	खून का न जमना (No-clotting)

(४) खनिज पदार्थ (mineral salts)—खनिज पदार्थ भी भोजन के आवश्यक अङ्ग हैं। वैसे हमारे शरीर को लगभग एक दर्जन विभिन्न खनिज तत्वों की आवश्यकता होती है, किन्तु मुख्य रूप से केलशियम, फॉस्फारस, लोहा तथा पोटेशियम और सोडियम अधिक आवश्यक होते हैं।

केलशियम (Calcium)

केलशियम की आवश्यकता हड्डियों और दांतों के समुचित विकास के लिये, हृदय की गति को नियन्त्रित रखने के लिये तथा रक्त के जमने (clotting) के लिये होती है। बाल्यावस्था में केलशियम अधिक मात्रा में आवश्यक होता है। फॉस्फोरस की क्रियाशीलता के लिये भी केलशियम की आवश्यकता होती है।

यह दूध, दही, पनीर, अण्डे, फल, हरी सब्जियों आदि से प्राप्त होता है।

फॉस्फोरस (phosphorus)

केलशियम की भाँति फॉस्फोरस भी हड्डियों और दाँतो के निर्माण के लिये आवश्यक है। हड्डियों मे प्रमुख खनिज यौगिक calcium phosphate [$Ca_3 (Po_4)_2$] मिलता है जो केलशियम, फॉस्फोरस और ऑक्सीजन का यौगिक है। यह हमे छिलके युक्त दालों, दूध, चावल, तिलहन आदि से प्राप्त होता है।

लोहा (Iron)

हमारे रक्त के लाल कणों का लाल रंग 'लोहे' के कारण ही होता है। लाल कणो में haemoglobin नाम का लाहे का एक जटिल यौगिक होता है। होमोग्लोबिन के कारण ऑक्सीजन शरीर के विभिन्न भागो मे पहुँच पाती है। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे शरीर के लिये लोहा कितना आवश्यक तत्व है ? यह हमें अन्न, दाल, फल, हरी तरकारियाँ, मांस, मछली आदि से प्राप्त होता है।

सोडियम और पोटेशियम (Sodium and Potassium)

जिस प्रकार रक्त के लाल कणों के लिये लोहा आवश्यक होता है उसी प्रकार रक्त-द्रव्य (blood-plasma) के लिये सोडियम और पोटेशियम की आवश्यकता होती है। ये तत्व plasma में कार्बोनेट्स (carbonates) के रूप में पाये जाते हैं। ये शरीर के विभिन्न भागों से carbon-di-oxide) एकत्र करके फेफड़ो तक लाते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों के लिये भी इनकी आवश्यकता पड़ती है।

हरी तरकारियो, फल, नमक आदि से इन तत्वों की प्राप्ति होती है।

इनके अतिरिक्त गंधक, आयोडीन, क्लोरीन, मैगनेशियम आदि की आवश्यकता होती है जो मुख्य रूप से तरकारियों से प्राप्त होते हैं।

(६) जल (water)—पानी हमारे शरीर पदार्थ (protoplasm) का लगभग ५०% से ९५% भाग बनाता है। रक्त जैसे द्रव्य और हड्डियों जैसे ठोस पदार्थों में पानी आवश्यक रूप से मिलता है। पानी की अन्य विशेषतायें इस प्रकार हैं :—

(१) पानी एक उत्तम घोलक है, इसमें विभिन्न भोज्य पदार्थ घुलकर सरलता से पच जाते हैं।

(२) शरीर के विभिन्न भागों में पदार्थों के आवागमन का साधन है।

(३) शरीर में होने वाली विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के लिये पानी विशेष माध्यम है।

(४) शरीर में उत्पन्न होने वाले हानिकारक पदार्थों को बाहर निकाल फैंकने में पानी बहुत योग देता है।

(५) शरीर में उत्पन्न ताप को वितरित करने तथा शरीर के तापक्रम को नियंत्रित रखने के लिये पानी आवश्यक होता है।

उपरोक्त आवश्यकताओं को देखते हुए हम पानी के महत्व को समझ सकते हैं। यही कारण है कि अच्छे स्वास्थ्य के लिये हमें स्वच्छ पानी का उचित मात्रा में उपयोग करना चाहिये। पानी के द्वारा अनेक प्रकार के कीटाणु शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। इसलिए जन-स्वास्थ्य की दृष्टि से शुद्ध किये हुए पानी की व्यवस्था होना आवश्यक है। साधारणतया नगरपालिकायें तथा सार्वजनिक कार्य विभाग (P. W. D) पीने के शुद्ध पानी का प्रबन्ध करते हैं। फिटकरी, क्लोरीन आदि के द्वारा शुद्ध किया हुआ तथा वैज्ञानिक तरीके से छना हुआ पानी शहरों में वितरित किया जाता है।

सन्तुलित भोजन की मात्रा

एक औसत व्यक्ति के लिये भोजन के विभिन्न अंशों की दैनिक मात्रा नीचे तालिका में दी जाती है —

अंशों में	मात्रा (छटांकों में)
(१) अनाज—गेहूं, चावल, ज्वार आदि	... ७
(२) दालें	... १$\frac{1}{2}$
(३) तरकारियाँ—हरी एवं जड़दार	... ५
(४) फल	... २
(५) दूध	... ५
(६) शक्कर	... १
(७) घी, तेल, मक्खन आदि	... १
(८) पानी	आवश्यकता के अनुसार।

प्रश्नावली

(१) पोषाहार किसे कहते है ? उसकी मुख्य श्रेणियाँ क्या हैं ?

(२) आदर्श भोजन अथवा सन्तुलित भोजन कैसा होना चाहिये ?

(३) विटामिन्स पर विस्तृत लेख लिखिये।

(४) फूड कैलोरी, उत्प्रेरक, अभाव रोग तथा शक्करों पर नोट लिखिये।

"Science deals with a "public" world, whereas art is concerned with a "private" world. A colour blind man for instance, would not appreciate painting, a whereas man born blind could master the whole theory of optics"

—N. Sullivan

११ विपचन

(Metabolism)

विपचन की परिभाषा—प्रत्येक जीवधारी का जीवन विशेष प्रकार के शृंखलाबद्ध रासायनिक और भौतिक परिवर्तनों से युक्त होता है। जीवधारी अपने आस-पास के वातावरण से पदार्थ और शक्ति को ग्रहण करते हैं, उनको अपने प्रयोजन के लिए दूसरे रूप में परिवर्तित करते हैं तथा कुछ समय तक संग्रहित रख कर वापिस बाह्य जगत को लौटा देते हैं। पदार्थ और शक्ति के लेन देन तथा पारस्परिक रूपान्तर के सिलसिले मे अनेक महत्वपूर्ण रासायनिक क्रियायें भाग लेती हैं। इन सब रासायनिक क्रियाओं के सामूहिक रूप को ही विपचन (Metabolism) कहते हैं। (The sum total of all the chemical processes which living protoplasm undergoes is known as metabolism)।

मेटाबोलिज्म शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा से हुई है जिसका अर्थ होता है—"throwing about"। चूंकि जीवधारी के द्वारा पदार्थ और शक्ति के लेन देन तथा रूपान्तर को मेटाबोलिज्म कहा जाता है हम 'throwing about' (इधर-उधर फेंकना) अर्थ की उपयुक्तता को समझ सकते हैं। विपचन के दो भाग (१) चपय (Anabolism) और (१) अपचय (Katabolism) होते हैं। चपय का अर्थ 'throwing up' और अपचय का अर्थ 'throwing down' होता है। अतः चपय रचनात्मक तथा अपचय विनाशात्मक भाग है। सजीव संसार दो मुख्य वर्गों मे विभक्त किया गया है। (१) वनस्पति

वर्ग (plant kingdom) और (२) प्राणी वर्ग (Animal kingdom)। इन दोनों वर्गों के विपचन की विधियों मे विशेष अन्तर है। अतः हम plant metabolism और Animal metabolism का अध्ययन अलग-अलग रूप से करेंगे। वैसे विपचन के मूल उद्देश्य समान हैं। वनस्पति वर्ग भी आस-पास के वातावरण से पदार्थ और शक्ति को ग्रहण करके अपने उपयोग के योग्य बनाता है (Anabolism) तथा इसी उपयोगी पदार्थ को तोड़-फोड़ कर अपनी क्रियाशीलता के लिए शक्ति प्राप्त करता है और हानिकारक पदार्थों का त्याग करता है (Katabolism)। इसी प्रकार प्राणी वर्ग मे भी यह क्रिया चक्र चलता है।

Plant metabolism

Plant metabolism का महत्वपूर्ण भाग Anabolism, प्राणी वर्ग के जीवन का प्रमुख आधार है। जीवधारियों का मुख्य भोजन तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—(१) Carbohydrates (२) proteins और (३) Fats। वनस्पति वर्ग एक प्रकार की वे प्रयोगशालायें है जिनमे कार्बनडाइ ऑक्साइड (CO_2), पानी (H_2O), नाइट्रोजन, गंधक आदि साधारण पदार्थों की सहायता से भोजन की उपरोक्त श्रेणियाँ तैयार की जाती हैं। यह भोजन न केवल वनस्पति वर्ग के पोषाहार के काम आता है वरन् प्राणी वर्ग को भी इस पर निर्भर रहना पड़ता है। हमारे मुख्य भोजन का प्रारम्भिक निर्माण plant anabolism की महत्वपूर्ण देन है।

Plant Anabolism—संसार के अधिकांश पेड़ पौधे हरे रंग के होते हैं। उनका हरा रंग एक विशेष प्रकार के जटिल रासायनिक यौगिक की उपस्थिति के कारण होता है। इस यौगिक को Chlorophyll (पर्णहरित) कहते हैं। पर्णहरित (chlorophyll) तथा पूर्ण प्रकाश की उपस्थिति में पेड़ पौधे कार्बन डाइऑक्साइड और पानी को कार्बोहाइड्रेट्स में परिवर्तित कर देते हैं। इस क्रिया को photosynthesis (प्रकाश संश्लेषण) कहते हैं।

Photosynthesis—सूर्योदय होते ही हरे पेड़ पौधों के पत्ते वायु मण्डल से कार्बन डाइ ऑक्साइड का शोषण करने लगते हैं। पत्तों में जड़ों के नेत्र से आया हुआ पानी उपस्थित रहता है। हरे पत्तों में क्लोरोफिल भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। ज्योंही प्रकाश की किरण पत्तों पर पड़ती हैं उनके अन्दर एक रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है जिसके फलस्वरूप पत्ते CO_2 और H_2O को शक्ति सहित शक्कर में परिवर्तित करने लग जाते हैं। सामान्य तौर से उपरोक्त रासायनिक क्रिया के दो क्रम होते हैं।

(1) $CO_2 + H_2O + \text{Energy} = HCHO + O_2$
Formaldehyde + oxygen

(2) $6\ HCHO = \underset{\text{(Glucose)}}{C_6H_{12}O_6}$
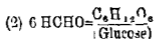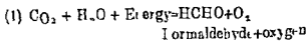
पहली क्रिया में CO_2 और H_2O मिलकर Formaldehyde तथा oxygen बनाते हैं और दूसरी क्रिया में Formaldehyde के ६ अणु (Six molecule) मिलकर ग्लूकोज शक्कर का अणु बनाते हैं। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन क्रियाओं के समय शक्ति का शोषण कर लिया जाता है तथा क्लोरोफिल केवल उत्प्रेरक (catalyser) का कार्य करता है। यह शक्कर घोल के रूप में वनस्पति के दूसरे भागों में पहुँच जाती है। वहाँ शक्ति प्राप्त करने के लिए इसका उपयोग Katabolic activities के लिए हो जाता है अथवा यह अघुलनशील (insoluble) रूप में starch बन कर संग्रहित हो जाती है। इसमें Katabolism के कारण होने वाली Carbohydrates की हानि की पूर्ति होती रहती है। जब भी starch का उपयोग होता है वह विशेष प्रकार के पाचक रस (Enzymes) के द्वारा पुनः घुलनशील रूप अर्थात् शक्कर में बदल जाता है।

Manufacture of Proteins and Fats प्रोटीन्स में कार्बो हाइड्रोजन ऑक्सीजन के अतिरिक्त नाइट्रोजन गंधक आदि तत्व भी होते हैं।

Carbohydrates में नाइट्रोजन, सल्फर आदि मिलकर amino-acids बना देते हैं Amino-acids प्रोटीन्स के निर्माण की इकाई (Building units) होते हैं।

Fats (चर्बी) भी Carbohydrates की तरह कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन के बने होते है। इनमें यह अन्तर होता है कि चर्बी में आक्सीजन की मात्रा कम होती है। ये fatty acids तथा glycerine नाम के रासायनिक पदार्थों की क्रिया से बनते हैं। उदाहरण के लिए stearin नाम का Fat ग्लीसरीन तथा स्टियरिक (stearic acid) से मिलकर बना होता है। इसका अणुसूत्र C_{57} H_{110} O_6 है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चर्बी Carbohydrate की अपेक्षा काफी जटिल होती है।

भोजन निर्माण के अतिरिक्त Anabolism के अन्तर्गत खाद्य पदार्थों का पाचन (Digestion) तथा स्वीकरण (Assimilan) भी आता है। पाचन एक ऐसी क्रिया है जिसके फलस्वरूप जटिल खाद्य पदार्थ सरल एवं घुलनशील रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। तत्पश्चात् वे जीवधारी के विभिन्न अङ्गों में पहुँचते हैं तथा वहां protoplasm के रूप में बदल जाते हैं। पचे हुए खाद्य पदार्थों का protoplasm (शरीर पदार्थ) में बदलना ही स्वीकरण कहलाता है। Assimilation (स्वीकरण) के द्वारा ही विघटित protoplasm की पूर्ति होती है तथा जीवधारी की वृद्धि (growth) के लिए अतिरिक्त शरीर पदार्थ प्राप्त होता है। यद्यपि Digestion की क्रिया में खाद्य पदार्थों की टूट-फूट होती है तथापि इस टूट फूट का परिणाम शरीर पदार्थ के निर्माण में होता है अतः Digestion की क्रिया का Anabolism के अन्तर्गत रखना ही अधिक उपयुक्त है। *Digestion* और *Assimilation* के समय विभिन्न प्रकार की ऐसी महत्वपूर्ण रासायनिक क्रियायें होती हैं जो विशेष प्रकार के रासायनिक पदार्थों के द्वारा ही सम्पन्न होती हैं। इन पदार्थों को Enzymes कहते हैं। जीवधारियों में होने वाली रासायनिक क्रियाओं में

जो organic compounds उत्प्रेरक (Catalysts) का काम करते हैं वे ही Enzymes कहलाते हैं। सबसे पहले Zymase नाम के enzyme की खोज हुई थी। यह enzymeएक कोशीय yesat नाम की वनस्पति मे पाया जाता है। इसकी सहायता से शक्कर को शराब तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड मे बदला जाता है।

$$C_6H_{12}O_6=2C_2H_5OH+2CO_2$$
(Alcohol)
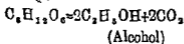
प्राणियों की पाचन क्रिया के अध्ययन से अनेक Enzymes के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

Photosynthesis के अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह प्राणी-जीवन के लिए कितनी महत्वपूर्ण क्रिया है। Photosynthesis से प्राणी जगत को carbohydrates, proteins, fats आदि खाद्य पदार्थ प्राप्त होते हैं तथा वायुमण्डल में बढ़ती हुई कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा कम होती है और आक्सीजन की मात्रा बढ़ती है।

Plant Katabolism--वनस्पति वर्ग की गतिविधि प्राणी की अपेक्षा बहुत कम होती है। यही कारण है कि पेड़ पौधों को शक्ति की इतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी प्राणी वर्ग को होती है। विभिन्न जीवन-क्रियाओं की सम्पन्नता के लिए शक्ति शरीर पदार्थ की टूट फूट से सम्बन्ध रखने वाली क्रियायें प्रमुख रूप से श्वसन (Respiration) और उत्सर्जन (Excretion) के द्वारा सम्पन्न होती हैं। इन सबको सामूहिक रूप से (Katabolism) कहते हैं।

श्वसन (Respiration)—साधारण तौर से श्वसन क्रिया का अर्थ यह समझा जाता है कि जीवधारी वायुमण्डल से आक्सीजन खींचता है तथा कार्बन-डाइ-आक्साइड बाहर निकलता है (Respiration is a gaseous exchange in which the living organisms take in

oxygen from the atmosphere and give out carbon dioxide) ।-यह परिभाषा Respiration को पूरी तरह समझने मे सहायता नही करती है। शरीर के भीतर आक्सीजन का क्या उपयोग होता है यह समझ लेने पर ही श्वसन क्रिया का वास्तविक महत्व समझ मे आता है।

सामन्यतया सभी पेड पौधे अपने पत्तो मे मिलने वाले छिद्रो (stomata) के द्वारा वायु मण्डल से निरतर ऑक्सीजन ग्रहण करते तथा कार्बन डाइ-आक्साइड बाहर फेंकते रहते हैं। ऑक्सीजन शरीर के प्रत्येक भाग मे पहुंचती है जहा उसका उपयोग Tissue Respiration के लिए होता है। Tissuerespiration के समय ही ऑक्सीजन की सहायता से प्रोटोप्लाज्म की टूट फूट होती है। मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट्स आक्सीजन के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया करके CO_2, H_2O तथा शक्ति मे बदल जाते हैं।

$$C_6H_{12}O_6+6O_2=6CO_2+6H_2O+Energy$$
(Glucose) (Carbon di-oxide)
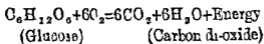
इस क्रिया को देखने से हमारा ध्यान photosynthesis की क्रिया की ओर आकर्षित हो जाता है। उसमें CO_2, H_2O तथा शक्ति की सहायता से Glucose बनती है तथा Respiration मे, उसके विपरीत क्रिया होती है। इस क्रिया से प्राप्त 'शक्ति' के द्वारा जीवधारी अपनी विभिन्न आवश्यक क्रियायें पूरी करता है।

Yeast जैसी कुछ ऐसी वनस्पतियाँ भी होती हैं जो शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से ऑक्सीजन का उपयोग नही करती हैं। वे अन्य प्रकार की रासायनिक क्रिया के द्वारा शक्ति प्राप्त करती हैं। इस क्रिया के द्वारा Glucose एलकोहल, कार्बन डाइ-ऑक्साइड और शक्ति मे बदल जाती है।

$$C_6H_{12}O_6 \longrightarrow 2C_2H_5OH+2CO_2+E$$
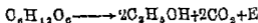
चूँकि इस क्रिया मे जीवधारी को शक्ति प्राप्त होती है अतः यह भी एक प्रकार की श्वसन क्रिया (Respiratory activity) ही है।

वह Respiration जिसमे Oxygen की आवश्यकता होती है aerobic respiration कहलाता है तथा जिसमे Oxygen की आवश्यकता नहीं होती है वह anaerobic respiration कहलाता है।

उत्सर्जन (Excretion)—श्वसन क्रिया के फलस्वरूप शरीर मे कार्बन डाइ-ऑक्साइड के अतिरिक्त पानी तथा एमोनिया जैसे पदार्थ भी काफी मात्रा में उत्पन्न होते हैं। इन पदार्थों का अधिक समय तक शरीर मे रहना हानिकारक होता है। इन्हें waste products कहते हैं। अतः जिस विधि के द्वारा इन पदार्थों का त्याग किया जाता है उसे उत्सर्जन (Excretion) कहते हैं। वनस्पतियो में ऐसे विशिष्ट उत्सर्जन अङ्ग नहीं होते हैं जैसे प्राणियो मे Kidneys, Nephridia, skin आदि के रूप मे पाये जाते हैं।

जहाँ तक कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का प्रश्न है वह stomata के द्वारा बाहर वायुमण्डल में फेंक दी जाती है। इसी प्रकार अतिरिक्त पानी भी भाप बन-बनकर बाहर निकलता रहता है। अन्य प्रकार के हानिकारक पदार्थ प्राय पेड़ की छाल के नीचे एकत्र होते रहते हैं अथवा ऐसे स्थानो मे एकत्र हो जाते हैं जहाँ से वे जीवन क्रियाओ के सचालन में बाधा नही डाल सकें।

Animal Metabolism

विपचन की विभिन्न क्रियाओ का अध्ययन प्राणीवर्ग मे अधिक स्पष्ट तथा विस्तृत रूप से हुआ है। इसका कारण वनस्पतिवर्ग की अपेक्षा प्राणीवर्ग में उच्चकोटि के आंगिक सगठन (Specialization of organs) का होना है। अधिकतर प्राणियो मे भिन्न भिन्न मुख्य क्रियाओ के लिए भिन्न-भिन्न अंग पाये जाते हैं। ये अङ्ग पारस्परिक सहयोग एवं नियंत्रण के साथ अपने

अपने कार्यों को पूर्ण करते हैं। इन अंगों की बनावट तथा इनके कार्यों के अध्ययन से Animal Metabolism को गहराई से समझने में अत्यधिक सहायता मिली है।

Animal Anobolism

प्राणी वर्ग में भोजन ग्रहण (Ingestion), भोजन नली (Digestive canal) में पाचन क्रिया (Digestion), पचे हुए भोजन का भोजन-नली की दीवारों द्वारा शोषण (Absorption) तथा शरीर के विभिन्न भागों में पहुँच कर शरीर पदार्थ में परिवर्तन आदि क्रियायें anabolism के अन्तर्गत आती हैं। इनमें Ingestion तथा Absorption यान्त्रिक क्रियायें हैं और Digestion तथा assimilation रासायनिक क्रियायें हैं। प्रायः निम्न श्रेणी के प्राणियों में यान्त्रिक क्रियायें सरल रूप से सम्पन्न हो जाती हैं किन्तु अधिकांश प्राणी वर्ग में वे जटिल विधि से ही पूरी होती है। यहाँ हम केवल रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन करेंगे।

पाचन (Digestion)—प्राणी वर्ग का भोजन जटिल होता है। वे वनस्पति वर्ग की भाँति कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, पानी, नाइट्रोजन आदि सरल पदार्थों से कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, चर्बी जैसे जटिल खाद्य पदार्थ बनाने में असमर्थ हैं। अतः उन्हें अपने भोजन के लिए पूर्ण रूप से वनस्पति वर्ग पर निर्भर रहना पड़ता है। प्राणियों के मुख्य खाद्य पदार्थ, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा चर्बी के रूप में लिए जाते हैं। पाचन की क्रिया के द्वारा ये खाद्य पदार्थ जटिल अवस्था से सरल अवस्था में बदल जाते हैं। सरल अवस्था का तात्पर्य यह है कि उनके बड़े अणु छोटे अणुओं में टूट जाते हैं तथा वे घुलनशील बन जाते हैं।

Carbo-hy-drates—विभिन्न प्रकार के starches और sugars की गणना कार्बोहाइड्रेट्स में होती है। प्राणियों के शरीर में अनेक प्रकार के

ऐसे Enzymes मिलते हैं जो स्टार्च तथा जटिल शक्करों को ग्लूकोज, फ्रक्टोज शक्कर (Fructose) जैसी सरल शक्करो मे बदल देते हैं।

थूक-ग्रन्थियो (Salivary Glands) से थूक के साथ ptyalin नाम का Enzyme निकलता है। ptyalin स्टार्च को माल्टोज(maltose) नाम की शक्कर मे बदल देता है। इसी प्रकार sucrase नाम का enzyme गन्ने को शक्कर (sucrose) को Glucose और Fructose मे, lactase नाम का enzyme दूध की शक्कर (lactose) को glucose और galactose, मे तथा maltase enzyme माल्टोज को ग्लूकोज में बदल देता है। Glucose, Fructose जैसी सरल शक्करें छोटी आंतो (Small Intestines) की दीवारों में होती हुई रक्त कोशिकाओ (Blood capillaries) मे पहुँच जाती हैं। वहां से वे लिवर (Liver) मे जमा हो जाती हैं। ये सरल घुलनशील शक्करें लिवर मे ग्लाइकोजन नाम के अघुलनशील स्टार्च के रूप मे जमा रहती है। यह आवश्यकता के अनुसार पुनः सरल शक्करो मे बदल कर रक्त के साथ शरीर के विभिन्न भागों मे पहुँचती हैं। कार्बोहाइड्रेट्स के Katabolism से शक्ति प्राप्त होती है।

Proteins—प्रोटीन्स अत्यन्त जटिल खाद्य पदार्थ होते हैं। ये शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है। प्रोटीन्स अनेक प्रकार के होते हैं। Albumin (egg protein), casein (Milk Protein), myosin (Meat Protein), glutin, आदि प्रमुख प्रोटीन्स हैं।

Pepsin, Rennin, Trypsin, Erepsin आदि Enzymes के द्वारा प्रोटीन्स का पचन होता है। वे Amino acids जैसे सरल रूप में बदल जाते हैं। Amino acids आसानी से रक्त-नलियो (blood vessels) मे पहुँच जाते हैं। रक्त द्वारा वे शरीर के विभिन्न भागो में पहुँचकर पुनः ऐसे जटिल प्रोटीन्स मे बदल जाते हैं जो शरीर पदार्थ बनाते हैं।

चर्बी (fats)—चर्बी शरीर में प्रायः संग्रहित रहती है तथा असाधारण आवश्यकता के समय शक्ति प्राप्त करने के काम में आती है। Fats रासायनिक दृष्टि से fatty acids और glycerine के यौगिक पदार्थ होते है। इनके पाचन का अर्थ यही होता है कि वे enzymes के द्वारा fatty acids और glycerine में विभाजित हो जायें। Lipase, steapsin आदि enzymes के द्वारा fats सरल पदार्थों में टूट जाते हैं। पचे हुए fats पहले lymph vessels मे पहुँचते हैं। फिर रक्त-नलियों में होते हुए शरीर के विभिन्न भागों में पुनः fats के रूप में जमा हो जाते है।

स्वीकरण (assimilation)—जीवधारियो के लिये स्वीकरण एक अद्भुत एवं अत्यन्त आवश्यक क्रिया है। पचा हुआ भोजन शरीर के विभिन्न भागो में पहुँच कर प्रोटोप्लाज्म के रूप में बदल जाता है। इस परिवर्तन के समय भी आवश्यक रासायनिक क्रियायें होती हैं। स्वीकरण विधि से प्राप्त प्रोटोप्लाज्म शक्ति उपार्जन में व्यय हुए शरीर पदार्थ की पूर्ति करता है तथा वृद्धि काल में अतिरिक्त शरीर पदार्थ का निर्माण करता है।

Animal Katabolism

Katabolism से सम्बन्ध रखने वाली श्वसन एवं उत्सर्जन की क्रियायें प्राणियों में स्पष्ट रूप से समझी जा सकी हैं।

श्वसन (respiration)—श्वसन की क्रिया केवल ऑक्सीजन और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के विनिमय (exchange) को ही नही कहते हैं। श्वसन वह रासायनिक क्रिया है जिसके द्वारा शरीर पदार्थ का विघटन होता है तथा जिसके परिणाम स्वरूप शक्ति का विमोचन होता है। यही शक्ति जीवधारियों को कार्यक्षमता प्रदान करती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, श्वसन क्रिया दो प्रकार की होती है।

उनमें एक aerobic respiration कहलाती है और दूसरी anaerobic respiration कहलाती है।

Aerobic respiration में ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। इस क्रिया के अन्तर्गत शरीर पदार्थ में मिलने वाली ग्लूकोज ऑक्सीजन की सहायता से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड तथा पानी में बदल जाती है। इस क्रिया का वर्णन पहले किया जा चुका है। जब यह क्रिया होती है तब शक्ति का विमोचन होता है। उसकी सहायता से विभिन्न जीवन क्रियायें (life activites) चलती रहती हैं।

उच्चवर्गीय प्राणियों में श्वास के द्वारा ग्रहण की गई ऑक्सीजन रक्त में मिल जाती है। रक्त में haemoglobin नाम का जटिल रासायनिक यौगिक होता है जिसमें ऑक्सीजन से मिलने की तीव्र सामर्थ्य पाई जाती है। ऑक्सीजन और हीमो-ग्लोबिन मिलकर oxy-haemoglobin नाम का नया यौगिक बनाते हैं। शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचने पर, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का दबाव अधिक होने के कारण oxy-haemoglobin पुनः oxygen और haemoglobin में टूट जाता है। ऑक्सीजन का उपयोग ग्लूकोज के साथ रासायनिक क्रिया करने में हो जाता है Haemoglobin वापिस श्वसन क्षेत्र में लौट आता है और ऑक्सीजन को लेकर पुनः शरीर के दौरे पर चल देता है।

Anaerobic respiration—

ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होने वाली श्वसन क्रिया प्रायः प्राणियों की मांसपेशियों (muscles) में सम्पादित होती हैं। मांसपेशियों की क्रियाशीलता के समय ग्लूकोज टूट कर Lactic acid ($C_3H_6O_3$) में बदल जाती है।

$$C_6H_{12}O_6 \rightleftharpoons 2\ C_3O_6O_3 + \text{Energy}$$
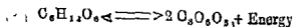
इस क्रिया से शक्ति उत्पन्न होती है जो muscles की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक है। जब muscles आराम की अवस्था में होते हैं तब वे श्वास के द्वारा आई हुई ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं। उनकी क्रियाशीलता के फलस्वरूप निर्मित कुछ lactic acid ऑक्सीजन के साथ मिलकर पानी और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड में बदल जाता है।

$$C_3H_6O_3+3\ O_2=3\ CO_2+3\ H_2O+E$$
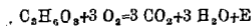
उपरोक्त क्रिया से भी शक्ति प्राप्त होती है। इस शक्ति का उपयोग शेष lactic acid को ग्लूकोज में बदलने के लिये होता है।

$$2\ C_3H_6O_3 + E = C_6H_{12}O_6$$
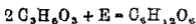
जब ग्लूकोज पुन. lactic acid में बदलती है तब उसमें संग्रहित शक्ति बाहर निकल आती है और जैसा हमने देखा है कि यही शक्ति muscles को क्रियाशील बनाती है।

Anaerobic respiration का वह उदाहरण हम देख ही चुके है जिसमें ग्लूकोज अलकोहल और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड में बदल कर शक्ति विमोचित करती है। आन्तरिक परजीवी (internal parasites) में इस प्रकार की श्वसन क्रिया मुख्य रूप से पाई जाती है।

उत्सर्जन (excretion)—श्वसन की क्रिया के फलस्वरूप शरीर में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और पानी बनते हैं। प्रोटीन की टूट-फूट के कारण मुख्य रूप से एमोनिया (NH_3) जैसी हानिकारक गैस बनती है। इसमें सामान्यतया पानी हानिकारक नहीं है; किन्तु उसकी अति (excess) अवश्य हानि पहुँचा सकती है। ऐसे हानिकारक पदार्थों के त्याग की क्रिया को ही उत्सर्जन (excretion) कहते हैं। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और पानी की काफी मात्रा तो श्वास के साथ ही बाहर निकल जाती है, किन्तु एमोनिया को बाहर निकालने की

विधि सरल नहीं है। एमोनिया और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड रासायनिक क्रिया करके यूरिया नाम के अपेक्षाकृत कम हानिकारक पदार्थ में बदल जाते है।

$$2NH_3+CO_2 = \underbrace{NH_2\text{-}CO\text{-}NH_2} + H_2O$$
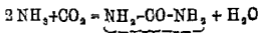
Ammonia+Carbon-di-oxide urea+water

यूरिया पानी मे घुलनशील होता है। रक्त के द्वारा यह kidneys अथवा nephridia जैसे उत्सर्जन अङ्गों मे पहुँच जाता है तथा वहाँ से पेशाब के रूप मे बाहर निकल जाता है।

अनावश्यक पदार्थों को त्यागने की अन्य विधियाँ भी हैं; किन्तु महत्व-पूर्ण रासायनिक क्रिया उपरोक्त विधि मे ही पाई जाती है। उत्सर्जन की क्रिया मे मुख्य रूप से लिवर, गुर्दे (kidneys), त्वचा, (skin), फेफड़े (lungs) आदि के द्वारा महत्वपूर्ण भाग लिया जाता है।

मेटाबोलिज्म के अध्ययन से वनस्पति वर्ग और प्राणीवर्ग की पारस्परिक निर्भरता स्पष्ट हो जाती है। अपने जटिल खाद्य पदार्थों के लिये प्राणीवर्ग को मूल रूप से वनस्पति वर्ग पर ही निर्भर रहना पड़ता है। एक ओर प्राणीवर्ग के द्वारा निरन्तर त्यागी जाने वाली कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का उपयोग photosy-nthesis के रूप मे वनस्पति वर्ग करता रहता है तो दूसरी ओर photosy-nthesis के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली ऑक्सीजन प्राणीवर्ग के जीवन की आधार ही है। इस क्रिया से वायुमण्डल में ऑक्सीजन और Carbon-di-oxide का अनुपात सन्तुलित बना रहता है। इसी प्रकार नाइट्रोजन गैस का चक्र भी चलता रहता है। प्रोटीन्स के निर्माण के लिये नाइट्रोजन गैस की आवश्यकता होती है। इसे वनस्पति वर्ग पृथ्वी से ऐसे लवणों के रूप में प्राप्त करता है जिसमें नाइट्रोजन मिली होती है। जीवधारियों के अनेक उत्सर्जित पदार्थ तथा उनके शरीर के सड़ने गलने से नाइट्रोजन वायुमण्डल मे पहुँचती है अथवा

पृथ्वी में पहुँच जाती है। वहाँ से वह अनेक रासायनिक क्रियाओं के कारण नाइट्रोजन के लवणों (salts) में बदल जाती है और वनस्पति वर्ग के द्वारा प्रोटीन्स बनाने के लिये काम में ली जाती है।

प्रश्नावली

१. मेटावोलिज्म (विपचन) की परिभाषा अच्छी तरह से समझाइये।
२. Plant metabolism का विवेचन कीजिये।
३. Animal metabolism का वर्णन कीजिये।
४. मेटावोलिज्म के अध्ययन के आधार पर बतलाइये कि वनस्पति वर्ग और प्राणीवर्ग किस प्रकार एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

"Liberty is the conciousness of social necessities and science is the way to achieve that".

—Christopher Caudwell.

१२ प्रजनन
[Reproduction]

प्रजनन (Reproduction) की सामर्थ्य जीवधारियों की मूल विशेषता है जो सभी वनस्पतियां (Plants) और प्राणियों (animals) में पाई जाती है। अरस्तु (Aristotle) और प्रारम्भ के अन्य जीवशास्त्री यह पूरी तरह समझते थे कि उच्चकोटि के प्राणियों में प्रजनन किस प्रकार होता है। किन्तु जन-साधारण सदियों तक यह विश्वास करते रहे कि अनेक प्रकार के जीवधारी निर्जीव पदार्थों से "आकस्मिक सृजन" (spontaneous generation) के द्वारा उत्पन्न होते हैं। आजकल भी अनेक देशों में इसी प्रकार के भ्रामक विचार मिल जाते हैं। मिश्र के निवासी ऐसा समझते थे कि नील नदी के कीचड़ से मगरमच्छ पैदा होते हैं। यह अति प्रचलित विश्वास रहा है कि सड़ी-गली वस्तुओं और कीचड़ आदि में कीड़े-मकोड़े, बिच्छू, मेंढक आदि उत्पन्न होते हैं। सत्रहवी शताब्दी में फ्रांसिस्को रेडी नाम के एक इटेलियन वैज्ञानिक ने यह प्रमाणित किया कि अगर मांस जैसे सड़ने गलने वाले पदार्थों पर मक्खियों को अण्डे नहीं देने दिया जाये तो उनमें कृमि (सट–Maggots) पैदा नहीं होंगे। आगे चलकर फ्रांस के महान् वैज्ञानिक लुई पास्टर (Louis Pasteur) ने सन् १८६१ में यह निश्चित रूप से प्रमाणित किया कि निर्जीव पदार्थों से कीड़े-मकोड़े तो क्या जीवाणु (Bacteria) जैसे सूक्ष्म जीव भी पैदा नहीं होते हैं। लुई पास्टर के प्रायोगिक प्रमाणों के द्वारा आकस्मिक सृजन (spontaneous generation) का भ्रामक सिद्धान्त जिस रूप में माना जाता था वह तो पूर्ण रूप से त्याग दिया गया किन्तु रूस के कुछ आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित

करने का प्रयत्न किया है कि भोजन के निर्जीवी पदार्थ किस प्रकार शरीर के सजीव पदार्थ में परिवर्तित होते हैं।

सामान्यतया यह माना जाता है कि नये जीवधारी पुराने जीवधारियों से ही प्राप्त होते हैं। (New life originates from the preexisting life .. 'omne vivum exvivo") इस सिद्धान्त को ही Biogenesis (life begetting life) अर्थात् प्रजनन कहते हैं।

जीवधारियों में प्रजनन की दो विधियाँ पाई जाती हैं—

१—अलिंगी प्रजनन (asexual reproduction)

२—लिंगी प्रजनन (sexual reproduction)

अलिंगी प्रजनन—प्रजनन की ऐसी विधि जिसमें केवल एक ही जीवधारी (individual) की आवश्यकता पड़ती हो तथा जिसके लिए विशिष्ट प्रजनन अङ्गो (reproductive organs) की आवश्यकता नहीं होती है उसे अलिंगी प्रजनन कहते हैं। प्रजनन की अलिंगी विधि वनस्पति वर्ग (Plant Kingdom) मे निम्न श्रेणी के प्राणी जैसे Proto zoans, Coelenterates, annelids आदि मे भी पाई जाती है।

Asexual Reproduction in Plants

वनस्पति वर्ग मे अलिंगी प्रजनन—यह कहा जा चुका है कि वनस्पतिवर्ग में अलिंगी प्रजनन की विधि बहुत बड़े पैमाने पर पाई जाती है।

इस अलिंगी प्रजनन की मुख्य रूप से दो विधियाँ हैं—

१—वर्धी-प्रचारण (Vegetative propagation) के द्वारा।

२—बीजाणुओ (spores) के द्वारा।

(१) वर्धी-प्रचारण—वर्धी-प्रचारण का कार्य वर्धी काया (Vegetative Parts) के द्वारा सम्पन्न होता है। वर्धी काया में जड़ (Roots) स्तम्भ Stem) और पत्तों (Leaf) की गिनती होती है। वर्धी-प्रचारण का उपयोग कृषकों और मालियों (horticulturists) के द्वारा सदियों से किया जा रहा है। कलम लगाने (cutting) और कलम करने (grafting) की प्रथा

बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। गुलाब और आम की cuttings और graftings सर्व विदित हैं। गुलाब की टहनियाँ काट कर बगीचे में लगा दी जाती हैं। थोडे समय पश्चात् ये जड पकड़ लेती हैं और उनसे पत्ते फूट निकलते हैं। इस विधि को कलम लगाना कहते हैं। गुलाब के स्तम्भ को काटकर दूसरे ऐसे गुलाब के पेड में लगा दिया जाता है जिसका ऊपरी हिस्सा हटा दिया गया हो। इस प्रकार प्राप्त होने वाला नया पौधा बहुत अच्छी किस्म का होता है। इस विधि को grafting कहते हैं।

मोगरे की टहनियों को झुकाकर मिट्टी के सम्पर्क में लाने से थोडे समय पश्चात् जड़ें फूट जाती हैं और फलस्वरूप नया पौधा उत्पन्न हो जाता है। ब्रायोफाइलम (Bryophyllum) के पत्ते मिट्टी के सम्पर्क में आकर नये पौधे को जन्म देने में समर्थ हो जाते हैं। आलू, अद्रक हल्दी जैसे पौधे की खेती भी साधारणतया अपने स्तम्भ के कन्दो (tubers) द्वारा ही होती है। बड (Banyan) का पेड विशेष प्रकार की जडो के द्वारा अपना प्रसार करता रहता है। इन जडो को prop roots कहते हैं। ये जड़े शाखाओं से निकलकर झूलती हुई पृथ्वी में प्रवेश कर जाती हैं।
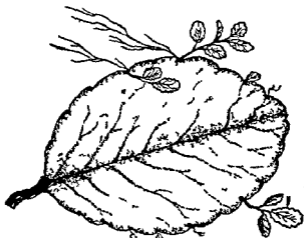
Fig 10 Leaf of Bryophyllum

(२) बीजाणुओं (spores) के द्वारा—वनस्पतियों में अलिंगी प्रजनन प्राय विशेष प्रकार के एक कोशीय सूक्ष्मांगो (unicellular structures)

के द्वारा होता है। इन्हें बीजाणु (spores) कहते हैं। इनके निर्माण में लिंगी-प्रक्रिया (sexual process) की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वनस्पति वर्ग में बीजाणुओं के द्वारा प्रजनन बहुत बड़े पैमाने पर होता है। साधारणतया बीजाणु structures ऐसे होते हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों (adverse conditions) का सामना करने में अत्यन्त सक्षम होते हैं। जब अनुकूल परिस्थितियाँ (favourable conditions) प्राप्त होती हैं तब बीजाणु अगली पीढ़ी को जन्म दे देते हैं और इस प्रकार वंश-वृक्ष चलता रहता है। वनस्पति वर्ग के विशाल उपवर्ग जैसे बैक्टीरिया, फंगाई (fungi), एलगी (algae), मोसेज (mosses), फर्न्स (ferns) आदि में बीजाणुओं द्वारा उत्पत्ति विशेष रूप से प्रचलित है।

इसके अतिरिक्त मुकुलन प्रक्रिया (Budding process) के द्वारा भी वर्धी-प्रचारण होता है। वर्धी-कलिका (vegetative bud) वस्तुतः पौधे का सूक्ष्म रूप (miniature) होती है। अधिकांश पेड़ पौधों की वृद्धि वर्धी-कलिकाओं के द्वारा होती है। कुछ पेड़ पौधों में ऐसी कलिकायें भी पाई जाती हैं जो अपने पैतृक पौधे से अलग होकर नये पौधे को जन्म देने में समर्थ होती हैं।

Asexual reproduction in Animals—प्राणी वर्ग में अलिंगी प्रजनन निम्नवर्ग के प्राणियों में बहुत अधिकता से पाया जाता है। यह विभिन्न विधियों जैसे (१) द्विभंगी भाजन (Binary fission) (२) बहुभङ्गी भाजन (multiple fission) (३) मुकुलन (budding) तथा (४) पुनर्जनन (regeneration) आदि द्वारा सम्पन्न होता है।

(१) द्विभंगी भाजनः—एक कोशीय प्राणी (Protozoans) सामान्यतया द्विभङ्गी भाजन द्वारा ही अपनी संख्या में वृद्धि करते हैं। इस प्रक्रिया के समय प्राणी स्वयं दो भागों में विभाजित हो जाता है। तत्पश्चात् दोनों भाग बढ़ते हुए सामान्य आकार प्राप्त कर लेते हैं। एक कोशीय प्राणी के शरीर कोश में एक नाभिक (nucleus) होता है और उसके चारों ओर कोशिका-द्रव्य (cytoplasm) होता है। द्विभंगी-भाजन के समय पहले नाभिक के दो

भाग हो जाते हैं। तत्पश्चात् कोशिका-द्रव्य दो भागों में विभाजित होकर दो नये एक-कोशीय प्राणियों को जन्म देता है।

Fig. 11 Diagram showing Binary fission

(२) बहुखण्डी भाजन (multiplefission)—कुछ ऐसे एक-कोशीय प्राणी भी होते हैं जिनका नाभिक अनेक छोटे-छोटे नाभिक कणों (daugher-nucl. i) में विभाजित हो जाता है। प्रत्येक नाभिक कण के चारों ओर कोशिका द्रव्य भी विभाजित होकर एकत्र हो जाता है। इन सब के अलग-अलग होनेपर एक कोश से अनेक छोटे-छोटे कोश प्राप्त हो जाते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों के समय ये छोटे-छोटे कोश बीजाणु (spores) के समान कार्य करते हैं। अनुकूल परिस्थितियों के आगमन पर ये नवीन जीवन प्रारम्भ कर देते हैं।

(३) मुकुलन (budding)—प्रजनन की यह एक विधि है जिसमें पुराने प्राणी के शरीर पर सूक्ष्म नवीन प्राणी उद्वर्ध (outgrowth) के रूप में उत्पन्न होता है। आगे चलकर यह सूक्ष्म प्राणी बड़े प्राणी का सामान्य आकार (normal form and size) धारण कर लेता है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले प्राणी या तो अनेक पैतृक प्राणी के शरीर (Parent body) से अलग हो जाते हैं अथवा उसी पर अपना वयस्क जीवन (adult life) व्यतीत करते हैं। Sponges Coelenterates, Bryozoans और Tunicates आदि प्राणियों में मुकुलन पद्धति के कारण colonies की colonies बढ़ती जाती हैं। कुछ Sponges में आन्तरिक कलिकायें (internal buds) उत्पन्न होती हैं। यह बहुकोशीय होती हैं। इन्हें gemmules कहते हैं जो इधर-उधर प्रसारित होने पर नये प्राणी को जन्म दे देती हैं।

(४) पुनर्जनन (Regeneration)—पुनर्जनन प्राणियों की उस
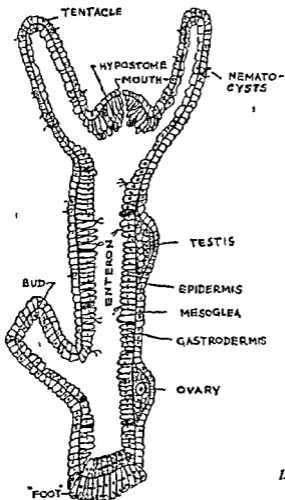
Fig 12 · Diagram of Hydra Showing Buds.

क्षमता को कहते हैं जिसके द्वारा वे अपने अङ्गों की हानि को पूरा कर लेते हैं (ability to repair damage is known as regeneration)

पुनर्जनन का यह गुण समस्त प्राणी वर्ग में पाया जाता है किन्तु निम्न श्रेणी के प्राणियो मे यह विशेष रूप से मिलता है। ज्यों-ज्यों हम विकास की उच्चतर श्रेणी की ओर बढते हैं पुनर्जनन की क्षमता कम होती जाती है। प्रोटोजोआ, पोरीफेरा, सीलेन्ट्रे टा, एनेलिडा, ओथ्रपोडा आदि प्राणियों मे पुनर्जनन का गुण प्रधानरूप मे मिलता है। पृष्ठवंशी प्राणिया (vertebrates) मे इसकी उत्तरोत्तर कमी होती जाती है। प्रयोगात्मक अध्ययन के आधार पर देखा गया है कि हाइड्रा (Hydra), प्लेनेरियन (Planarians) आदि प्राणियो के सिर को बीच से काटकर अनेक सिर वाले प्राणियो मे बदला जा सकता है। हाइड्रा प्राणी का नाम तो इसी गुण के कारण बाइबिल में वर्णित Hydra नाम के एक ऐसे राक्षस के आधार पर रक्खा गया है जिसका एक सिर कटने पर दो सिर उत्पन्न हो जाते थे। रामायण मे उल्लेखित रावण मे भी कुछ इसी प्रकार की विशेषता बतलाई गई है। केंचुवे (earth worm) के दो टुकडे कर दिये जायें तो प्रत्येक टुकडा पुन नये केंचुवे मे परिवर्तित हो जाता है। यह भी देखा गया है कि पुनर्जनन की क्षमता सिर वाले हिस्से (Anterior part) मे अधिक पाई जाती है।

Fig 13 Planarian Developing two heads.

Bath Sponge नाम के प्राणी के इस गुण का तो व्यापारिक उपयोग किया गया है। Bath Sponge के टुकडे करके उसी तरह से उगाये जा सकते है जैसे गुलाब की कलमे लगाई जाती हैं Starfishes, मोती उत्पन्न करने वाले सीप (perarl oysters) को नष्ट कर देती हैं। Pearl oysters को पालनेवाले starfishes के दो टुकडे करके यह समझकर फेंक देते थे कि उन्होंने उन्हें नष्ट कर दिया है किन्तु starfishes के वे टुकडे पुन पूर्ण प्राणियो मे विकसित होकर दुगनी संख्या

में उपस्थित हो जाते थे। जब starfishes के पुनर्जनन की क्षमता का ज्ञान हुआ तब से उन्हें पानी के बाहर निकालकर खाद के काम मे लेने लगे है।

इसी प्रकार मेंढक, छिपकली आदि में भी पुनर्जनन की क्रिया काफी सीमा तक देखने में आती है। चिपकली की पूँछ टूटने पर पुनः उत्पन्न हो जाती है फिर भी उच्च वर्गीय प्राणियो मे यह क्षमता बहुत कम होती है क्योंकि उनकी कोशिकाओ का अत्यधिक विशिष्टीकरण (Cell specialization) हो जाता है। हम में घाव इसी क्रिया के फलस्वरूप भर पाते हैं। हमारे किसी अङ्ग का पुनर्जनन नही होता है। अगर हमारी अंगुली कट जावे तो उसके स्थान पर नई अंगुली उत्पन्न नही होती।

वस्तुतः पुनर्जनन (Regeneration) वैसी ही क्रिया है जो वनस्पति वर्ग मे वर्धी प्रचारण (Vegetaive propigation) के रूप मे पाई जाती है।

Sexual Reproduction in Plants—लिंगी प्रजनन मे मूलभूत आवश्यकता दो ऐसे विशिष्ट कोषों की होती है जिनकी संसृष्टि (Fusion or union) से अगली संतति का जन्म होता है। यह कोष युग्मक (game-tes) कहलाते हैं। युग्मक दो प्रकार के होते है। १. नर युग्मक (Male gametes) और २. मादा युग्मक (female gametes) वनस्पति वर्ग मे नर युग्मक को प्रायः Antherozoid तथा मादा युग्मक को oosphere or ovum कहते हैं। निम्न वर्ग के जीवधारियों मे ऐसे नर युग्मक और मादा युग्मक भी पाये जाते हैं जिनमें कोई स्पष्ट अन्तर नही होता है। ऐसे युग्मक को समयुग्मक (Isogametes) कहते है। इनमे विशेष अन्तर यही होता है कि नर युग्मक मादा युग्मक की अपेक्षा अधिक क्रियाशील अथवा गतिशील (actiue or mutile) होता है। समयुग्मक की संसृष्टि (Fusion of isogametes) को ही युग्मन (Conjugation) कहते है। म्यूकर (Mucor) और स्पाईरोगाइरा (spirogyra) जैसी वनस्पतियों मे युग्मन (Conjugation) की

१. स्वयं परागण (Self pollination)—इसमे एक पुष्प के पराग कण ही उसी पुष्प के वर्तिकाग्र पर पहुँच जाते है।

२ पर परागण (Cross pollination)—जिसमे पराग कण दूसरे पुष्पो से प्राप्त होने है। परागण क्रिया मुख्य रूप से तीन साधनों द्वारा सम्पादित होती है। ये साधन वायु, कीट (insect) एव जल हैं। विभिन्न साधनो द्वारा परागण क्रियाओ को सफल करने के लिये पुष्पो की सरचना (structure) मे मिलने वाले रूपान्तर (Modifications) अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त रुचिकर एव महत्वपूर्ण होते हैं। परागण की दृष्टि से ही कीट जगत हमारे लिये अत्यन्त महत्व का हो जाता। मधुमक्खी, तितली, भौरे आदि एक फूल से दूसरे फूल तक अनजाने मे ही पराग कण पहुँचा कर निसेचन (Fertilization) की क्रिया में अपूर्व योग देते हैं।

परागण के पश्चात् वर्तिकाग्र पर पराग कण का उद्भेदन (germination) हाता है। वह एक पराग नलिका (Polle ntube) बनाता है जिसके द्वारा नर युग्मक अण्डाशय (ovary) मे प्रवेश करके बीजाण्ड (ovule) मे स्थित मादा युग्मक के साथ मिल जाता है। इस प्रकार पुष्पीपाद (flowering plants) मे निसेचन की क्रिया पूरी होता है। तत्पश्चात् अण्डाशय मे विशेष परिवर्तन होते हैं। जिनके फलस्वरूप वह फल (fruit) मे बदल जाता है तथा निषिक्त बीजाण्ड (fertilized ovules) बीज मे परिवर्तित हो जाते हैं।

Sexual Reproduction in Animals)

यह कहा जा चुका है कि लिंगी प्रजनन के लिये विशेष कोशा की आवश्यकता पड़ती है। प्राणी जगत (Animal Kingdom) मे प्रजनन कोश (reproductive units) का शुक्राणु (sperms) और अण्डकोश (ovum) कहते हैं। शुक्राणु नर युग्मक (male gametes) तथा अंडकोश

मादा युग्मक (female gametes) होता है। कुछ ऐसे एक कोशीय प्राणी भी मिलते हैं जो स्वय नरयुग्मक और मादा युग्मक का काम करते हैं। उनमे बाह्य अन्तर प्राय नही होता है अत उनका मिलना (union) भी युग्मन (conjugation) ही कहलाता है। पैरामिसियम (Paramaecium) नाम के एक कोशीय प्राणी मे युग्मन प्रजनन की एक विशेष विधि है।

सामान्य तौर से प्राणियो मे लिंगी प्रजनन शुक्रकोश (sperm) और अ डकोश (ovum) की ससृष्टि (union) से होता है। शुक्रकोश आकार मे बहुत छोटा तथा गतिशील होता है, इसके विपरीत अ डकोश आकार म बडा तथा स्थिर प्रकृति (non motile) का होता है। अ डकोश मे सग्रहित भोजन (Reserve food) एकत्र रहता है।

शुक्र कोश को उत्पन्न करने वाले अङ्ग वृषण (Testes) कहलाते हैं। ये नर प्राणियो मे पाये जाते हैं। वृषण का मुख्य कार्य शुक्रकोश तथा शुक्र द्रव (semen) का निर्माण करना है। उनका यह कार्य विशेष अवस्था के पश्चात ही प्रारम्भ होता है। शुक्रकोश भिन्न भिन्न रूप और आकार के होते हैं किन्तु सामान्य तौर पर उनकी तुलना सूक्ष्म सर्प के आकार से की जा सकती है।

शुक्रकोश एक ही कोश का बना होता है। उसका सिर वाला भाग नाभिक (nucleus) का प्रतिनिधित्व करता है जब कि पूँछ वाला भाग कोशिका द्रव (cytoplasm) का बना होता है। अपनी लम्बी कामन पूँछ के सहारे वे द्रव माध्यम मे गति करते रहते हैं। शुक्राणु बहुत अधिक संख्या म उत्पन्न होते हैं।

अण्डकोश (ovum) अण्डाशय (ovary) में उत्पन्न होते हैं। अण्डाशय सभी मादा प्राणियो (females) मे मिलते हैं। अण्डकोश आकार म बडे तथा गोल होते हैं। वे गतिहीन होते हैं। उन तक पहुँचने का काम शुक्रकोश का

होता है। अण्डकोश में प्राय ऐसा स्थान बना हुआ होता है जिसमें होकर शुक्रकोश का सिर अण्डकोश में प्रवेश कर जाता है। यह स्थान receptive spot कहलाता है। शुक्रकोश के प्रवेश कर जाने के पश्चात् अण्डकोश के नाभिक का मिलन हो जाता है। इस क्रिया के द्वारा निषेचन (Fertilization) का क्रम पूरा हो जाता है। निषिक्त अण्डकोश (Fertilized ovum) अथवा zygote में नये प्राणी में विकसित होने की क्षमता होती। विभिन्न प्राणियों में वृषण और अण्डाशय की विभिन्न व्यवस्था देखने में आती है। साधारणतया ऐसे प्राणियों को जिनमें Testes और ovaries अलग-अलग प्राणियों में पाई जाती है उन्हें द्विलयक (dioecious) अथवा (unisexual) कहते हैं। कुछ ऐसे प्राणी भी पाये जाते हैं जिनमें एक ही प्राणी Testes और ovaries दोनों प्रकार के प्रजनन अंग रखता है। ऐसे प्राणियों को एकलयक (Monoecious) अथवा (Hermophrodite) कहते हैं जैसे Hydra, esthworms, Leeches आदि। मछलियाँ, मेढक आदि ऐसे प्राणी हैं जिनमें निषेचन (fertilization) शरीर के बाहर होता है। इसके विपरीत सरीसृप, पक्षी, स्तनपोषी आदि ऐसे प्राणी हैं जिनमें निषेचन शरीर के भीतर होता है। इनमें अधिकांश ऐसे प्राणी होते हैं जो निषेचन के पश्चात् अण्डों को बाहर डाल देते हैं। ऐसी अवस्था में भ्रूण विकास (Embryonic development) शरीर के बाहर ही होता है। किन्तु स्तनपोषी प्राणियों में ऐसा नहीं होता है। निषेचन के पश्चात् निषिक्त अण्डे स्त्री-प्राणी के शरीर में ही रहते हैं। स्त्री-प्राणी के शरीर का वह भाग जिसमें निषिक्त अण्डकोश (Fertilized ovaum) रहते हैं तथा जहाँ भ्रूण विकास होता है उसे गर्भाशय (uterus) कहते हैं। इन विभिन्न परिस्थितियों की अनुकूलता के अनुसार प्राणी जगत की प्रजनन प्रणाली में जटिल रूपान्तर (Complicat-d modifications) पाये जाते हैं। सबसे जटिल प्रजनन प्रणाली (repr.buct ve system) स्तनपोषी प्राणियों में ही होती है। इनमें आवश्यक अंग (Testes) और ovaries के अतिरिक्त अनेक सहायक अंग (Accessory organs) पाये जाते हैं। कुछ

ऐसे स्तनपोषी प्राणी भी मिलते हैं जो निषिक्त अण्डों को शरीर मे न रखकर बाहर निकाल देते हैं। ये प्राणी मुख्य रूप से आस्ट्रेलिया मे पाये जाते है जिनम echidna, platypus आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। इन प्राणियो का अत्यधिक शैक्षणिक महत्व है। ये प्राणी इस बात की साक्षी देते हैं कि सरीसृप (Reptiles) और स्तनपोषी (Mammals) मे विकास-क्रम (evolutionary) का सम्बन्ध है। स्तनपोषियो की प्रजनन-प्रणाली को चित्र की सहायता से समझाया जा सकता है।

विशेष प्रकार का लिंगी प्रजनन—

कुछ प्राणियो में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनके अण्डे बिना निषेचन के ही अगली पीढी को जन्म दे देते हैं। ऐसी विधि को अनिषिक्तजनन (Part-
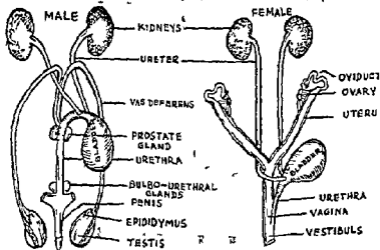
Fig. 14 a : b : Urino-genital organs of a cat.

henogenesis) कहते हैं। ऐसे उदाहरण प्राय राटिफर्स (rotifers), थ्रिप्स (thrips), चींटियो, मधुमक्खियो, एफिड्स (aphids) आदि में पाये

जाते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने मेंढक (frogs) और खरगोश (rabbits) जैसे उच्च वर्गीय प्राणियों के साथ भी बाह्य उद्दीपकों (external stimuli) की सहायता से अनिषिक्त-जनन सम्बन्धी प्रयोग सफलता पूर्वक किये हैं।

कुछ उभयचारियों (amphibians) और पृथु कृमियों (platyhelminthes) के लार्वों (Larvae) मे लिंगी अंग विकसित हो जाते हैं और वे अगली पीढ़ी को जन्म देने लग जाते हैं। शैशव काल में इस प्रकार लिंग विकास होने एवं प्रजनन क्षमता आजाने को पीडोजिनेसिस (paedogenesis) कहते हैं।

वस्तुत: वनस्पति वर्ग और प्राणी वर्ग की प्रजनन सम्बन्धी अंगों और क्रियाओं मे इतनी अधिक विलक्षणतायें पाई जाती हैं कि यह अत्यन्त रुचिकर विषय हो जाता है।

प्रश्नावली

१. प्रजनन किसे कहते हैं ? उसकी विभिन्न विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

२. वनस्पति वर्ग मे अलिंगी प्रजनन किस प्रकार होता है ?

३. वनस्पति वर्ग के लिंगी-प्रजनन का सविस्तार वर्णन कीजिये।

४. प्राणी वर्ग मे होने वाले अलिंगी प्रजनन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये।

५. प्राणी वर्ग में लिंगी प्रजनन किस प्रकार होता है ?

"Remember that science requires of an individual the price of his whole life".

—Pavlov

द्वितीय खण्ड

सामाजिक विज्ञान

(SOCIAL SCIENCE)

१ समाज की क्रमिक उन्नति

"मानव की अज्ञानता सत्य की ओर बढ़ती चली जा रही है जिससे कि मानव जिसके लिए सब कुछ अज्ञात सा है सर्वज्ञ बन जाय।" — श्री अरविन्द

(१) आदि क्रम (Early processes)

विषय प्रवेश—मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। उसके मस्तिष्क में बहुधा यह प्रश्न आकर टकराता है कि इस सृष्टि का निर्माण कब और कैसे हुआ ? ये नक्षत्र, सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा, जल-थल, वनस्पति, जीव जन्तु और मनुष्य कहाँ से कब और क्यों आये ? सबसे पहला मानव कैसा था ? क्या खाता था आदि प्रश्न उसकी चेतना में सिहरन एवं गति पैदा करते रहे हैं। अलग-अलग विद्वानों ने अपने विभिन्न दृष्टिकोण मानव के सामने उपस्थित किये हैं। धार्मिक दृष्टिकोण वाले विद्वानों का कहना है कि सृष्टि की रचना सर्व शक्तिमान परमेश्वर ने की है। वह संसार का स्रष्टा, पालक और रक्षक है, सृष्टि का सृजन और विनाश करने वाला है। समेटिक (ईसाई, यहूदी आदि) धर्मों की कल्पना है कि ईसा के ४००४ वर्ष पूर्व ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की। उसने पहले दिन रात, जमीन आसमान बनाये, फिर वनस्पति, अनेक जीव जन्तु और फिर मानव का निर्माण किया उसे पृथ्वी को निर्माण करने में ६ दिन लगे और ७वें दिन उसने आराम किया। सृष्टि की रचना के विषय में इस्लाम की धर्म पुस्तक कुरान की भी यही मान्यता है। पारसियों की धर्म पुस्तक 'जेन्दावास्ता' के अनुसार भी एक व्यक्तित्व परमात्मा अहुरमज्द ने सृष्टि की रचना की हिन्दू कल्पना के अनुसार ब्रह्मा सृष्टि की रचना करता है विष्णु उसका

मरण पोषण और महेश उसका संहार करता है। किन्तु आधुनिक युग में उपरोक्त विचारों की महत्ता कम हो गई है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले विद्वानों का कहना है कि सृष्टि का शनैः शनैः विकास हुआ है सृष्टि का आविर्भाव होने के पहले केवल भूत द्रव्य अपनी आदि स्थिति में विद्यमान था। धीरे-धीरे भूत-द्रव्य में से असंख्य नक्षत्र उत्पन्न होकर घूमने लगे। उन्हीं नक्षत्रों में से एक सूर्य था। दो अरब वर्ष पूर्व सूर्य में से एक अंश-पृथ्वी छीटक कर अलग हुआ। पहले पृथ्वी आग की तरह गरम थी, वह धीरे-धीरे ठण्डी हुई। उसके चारों ओर की भाप का पानी बन गया, उस पानी से समुद्र बना। पानी में पहले घास की तरह के जीव बने और उन जीवों से मछलियां या घोंघे बने। फिर इनसे कछवे, मेंढ़क आदि बने, जो जल में भी रह सकते हैं और थल पर भी ज्यों ज्यों जमीन की हालत बदली, त्यों त्यों उस पर रहने वाले पशु पक्षी भी बदलते गये। ये परि-वर्तन लाखों वर्षों मे हुए। सबसे अन्तिम पशु, बन्दर और वन मानुष हैं। उन्हीं से बदलकर आदमी बना। विकास की यह कहानी अत्यन्त रोचक है। हमें इसका ज्ञान होना ही चाहिए।

सृष्टि की उत्पत्ती—वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सृष्टि में हम जो आज अनेक रूप वैचित्र्य देखते हैं —विपुल नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, पहाड़, झीलें, समुद्र, वनस्पति, जानवर एवं मानव है—इन सब की स्थिति के पूर्व, रूप रंग आकार-विहीन केवल एक घनीभूत, तेजोमय भूत द्रव्य का अस्तित्व था। "जो अपने आप में मानो खूब घना सा सिमटा हुआ, दबा हुआ, केन्द्री भूत सा था, वही भूत अपनी ही अन्तर्मूत शक्ति से मानो विस्फरित होने लगा। ज्वलंत वाष्प (गैस) के रूप में अभिव्यक्त और परिव्याप्त होने लगा, वह भूत स्वयं अपने आकाश और काल का, अणु परमाणु का नक्षत्र और ग्रह का निर्माण करता चला जाता और फैलता जाता था।" इस ज्वलत वाष्प का क्षेत्र कितना रहा होगा कोई नहीं कह सकता है। इतनी ज्वलंत गर्मी इसमें व्याप्त थी कि उस समय विश्व के सभी पदार्थ गैस के रूप में थे। करोंड़ो वर्षों तक वह व्याप्त रहा तथा फिर शनैः शनैः ठण्डा होना प्रारम्भ हुआ। गर्मी कम होते–

होते एक ऐसी अवस्था आई जब उस ज्वलंत वाष्प से छोटे-छोटे टुकड़े घन होकर टूट पड़े। इन घन कणों की गोलाई लाखों मील थी तथा इनमें इतना तेज व्याप्त था कि वे भी एक प्रकार से वाष्प के ही घनकण थे। इन घन कणों को ही हम आकाश में तारों के रूप में बिखरा हुआ देखते हैं। "वे ही आदि विपुल-संख्यक कण तारों के आकार में दल बांध कर निहारिका गठित किए हुए हैं, और अप्रतिहत गति से घूम रहे हैं। 'आकाश गंगा'—वह दूर तक फैली हुई तारामों की बनी हुई सड़क सी जो कि अन्धेरी रात में आकाश में दिखलाई देती है ऐसी ही एक निहारिका है और हमारा सूर्य इसी आकाश गंगा के बीच एक तारा है।" सूर्य एक भयंकर, धधकता हुआ कल्पनातीत तीव्र गति से चक्कर काटता हुआ आग का गोला है जिसका घेरा ८, ६४, ३६७ मील है। इसकी गति ६७,००० मील प्रति घन्टा है। इसकी सतह का तापमान ६०००. डिगरी सेण्टीग्रेड है, जहाँ न केवल लोहा, ताँबा तथा अन्य ठोस से भी ठोस धातु या पदार्थ भाप बन जाती है बल्कि हाइड्रोजन गैस भी गैस रूप में न रहकर टूट कर विद्युत-कण बन जाता है। यह अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा बड़ा इसलिए दीखता है कि अपेक्षाकृत यह हमारे नजदीक है। अभी तक पृथ्वी, चन्द्र, ग्रह इत्यादि का कुछ भी पता नहीं था।

नक्षत्रगण एक दूसरे से करोड़ों मील दूर रह कर अप्रतिहत गति से घूमते हैं, अतएव इनमें परस्पर टक्कर होने की सम्भावना नहीं है। किन्तु २०० करोड़ वर्ष पहिले ऐसी ही एक दुसम्भव घटना हो गई थी। सूर्य के निकट एक विशाल व शक्तिशाली नक्षत्र आ पहुँचा था। इस नक्षत्र के आकर्षण से सूर्य के भीतर प्रचण्ड वेग से ज्वार की तरंग लहरा उठी। प्रचण्ड आकर्षण के वेग से कोई-कोई तरंग इतनी बढ़ी कि वह सूर्य से पृथक होकर एक जेट की शकल में बाहर निकल आई तथा उस नक्षत्र के आकर्षण के फल स्वरूप उधर को बढ़ने लगी। सूर्य और उस नक्षत्र का मार्ग भिन्न था। नक्षत्र अपने कक्ष में तीव्र गति से दौड़ता हुआ अपनी राह पर चल दिया। तरंग लम्बे जेट की शक्ल में तो रह नहीं सकती थी। अतएव जेट में से छोटे बड़े ज्वलंत वाष्प के टुकड़े

टूट–टूट कर गिर गये। अन्त में गैस की ये बूंदें, ये भीमकाय ग्लोब सूर्य के प्रबल आकर्षण व तेज चाल के झोंके के प्रभाव में आकर अपने जनक सूर्य के चारों ओर हो चक्कर लगाने लगे और करोडो वर्षों में ठंडे होकर, अपना प्रकाश खोकर ग्रह कहलाये। पृथ्वी उनमे से एक है, जो सूर्य मे ९ करोड़ ३० लाख मील दूर आकर पडी। ऐसे नव ग्रह हैं जो पृथ्वी, शुक्र, बुद्ध, मंगल, बृहस्पति, शनि, वरुण, नेपच्यून, प्लूटो कहलाते हैं सम्भव है इनकी संख्या इसमे भी अधिक हो किन्तु अभी तक इनका पता नही चला है। प्लूटो का पता सन् १९३० मे एक विशेष शक्तिशाली दूरबीन की सहायता से लगा है। इन नव ग्रहों में बृहस्पति सबसे बड़ा, मंगल सबसे छोटा और पृथ्वी मझले कद की है। इस गोल पृथ्वी नामक पिंड का व्यास ७९१३ मील है और इसका क्षेत्रफल २५,००० मील है। १७० हजार सख के वजन का जल मिट्टी, पहाड़, पत्थर आदि अनेक विभिन्न ठोस एवं तरल पदार्थों से निर्मित यह ग्रह १०४० मील प्रति घन्टे की चाल से लट्टू के सदृश्य अपनी धुरी पर घूम रहा है। जिस प्रकार सूर्य में उद्रेक पैदा होने से ग्रह उत्पन्न हुए, उसी प्रकार पृथ्वी अभी जब गैस रूप में थी, उसमें भी उद्रेक हुआ, उसी नियम से जिस प्रकार सूर्य मे हुआ था। और उसी प्रकार वाष्प देही पृथ्वी से एक गैस पिंड टूट कर पृथ्वी से अलग हुआ और पृथ्वी के चारों और घूमने लगा। यह चन्द्रमा कहलाया। पृथ्वी के जिस भाग में से चन्द्रमा निकला वहाँ जो गड्ढा बन गया वही आज अमेरिका और जापान के मध्य का प्रशान्त महा सागर है। चन्द्रमा पृथ्वी से २,५०,००० मील दूर है।

सूर्य के चारों ओर इन ग्रहों के घूमने का रास्ता चक्र रेखा के समान गोलाकार है। किसी-किसी का सूर्य से बहुत दूर है। किसी ग्रह को सूर्य का चक्कर लगाने मे साल भर से भी कम समय लगता है और किसी को सौ साल से भी ऊपर। पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा पूरी करने मे ३६५ दिन लगते हैं। इस घूमने का निश्चत नियम है जिसका अतिक्रम नहीं होता। सूर्य परिवार के सभी ग्रहों को पश्चिम से पूर्व की ओर प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। वैज्ञानिकों ने

अनेक परीक्षणो के पश्चात् यह भी अनुमान लगाया है कि पृथ्वी को छोड़ कर अन्य आठ ग्रह (मंगल के विषय मे अभी तक कोई निश्चित मत स्थिर नही किया गया है) इतने ठंडे हो गये हैं कि उन पर किसी भी प्रकार के जीवन का अस्तित्व बिलकुल ही सम्भव नही। प्रो॰ रामेश्वर गुप्ता लिखते हैं, "आप कल्पना करने की कोशिश तो कीजिए—अपनी यह सूर्य मण्डली है, जिसके केन्द्र मे है विशाल सूर्य जिसके चारो ओर करोड़-करोड, अरब-अरब मील दूर तक चक्कर लगा रहे हैं अपने नव ग्रह, और फिर इस सूर्य एवं नव ग्रहो के मध्य मे भी अचिन्त्य शून्य आकाश। इतने कल्पनातीत विशाल क्षेत्र मे चेतन अनुभूति करते हुए प्राण है केवल पृथ्वी की सतह पर।" चन्द्रमा को पृथ्वी का चक्कर लगाने मे लगभग २७ दिन लगते हैं। पृथ्वी के सम्बन्ध मे इसकी स्थिति ही ग्रहण का कारण है।। कभी-कभी यह पृथ्वी से सूर्य के किसी भाग के दिखाई देने में बाधा बन जाती है तब सूर्यग्रहण होता है। पृथ्वी पर उसकी छाया पड़ जाय तो चन्द्रग्रहण हो जाता है।

पिछले पृष्ठो मे हमने इस बात का जिक्र किया कि लगभग दो अरब वर्ष पूर्व सूर्य मे से निकले ग्रह आरम्भ मे अग्निमय वाष्प खंड ही थे तथा शनैः शनैः ठंडे होने लगे। हमारी पृथ्वी को भी आरम्भ मे यही दशा थी। वह भी सूर्य के समान ही तरल अग्निमय गैस पदार्थो का एक पिंड अथवा पिघली हुई धातुओ का एक भीषण पहाड़ सा था। सब खनिज, चट्टानें धातु, गैस आदि गर्म वाष्प रूप में ही थी। ठंडी होने पर ही पृथ्वी ने लगभग १५० करोड़ वर्षों मे अपना आधुनिक रूप लिया। धातु कुण्ड का मैल ऊपर आकर धीरे-धीरे जम कर कठोर होगया। भारी पदार्थ नीचे की ओर जमा होता रहा, हल्का पदार्थ उससे ऊपर और अधिक हल्का उससे भी ऊपर। ठंडी होती रहने से पृथ्वी मे झुरियां पड़ने से ऊँचे उठे स्थान पर्वत बने और नीचे स्थान गड्ढे बने जो बाद मे महासागर बन गये। जैसे-जैसे ऊपर की अग्नि शीतल होने लगी तो उस तरल पदार्थ का जलीय भाग जो इतने दिनो तक भाप बन कर पृथ्वी के चारो ओर आकाश में जमा हुआ था, उसने धरातल पर भयंकर वृष्टि के रूप

मे बरस पड़ा। इस प्रचण्ड वर्षा का जल स्वभावतः पहाड़ो पर भी पड़ा जो भीषण धाराओ मे तीव्र वेग से नीचे बहते समय चारों ओर के पत्थरो को पीसता, तोड़ता, काटता आदिम समुद्रो में जाकर तलछट बिछाता रहता था। पहाड़ो के नीचे आ जाने व पानी का वेग कम हो जाने से पत्थरों के सूक्ष्म कण पानी के मार्ग मे जमने लगे, अर्थात बीच-बीच में कीच जमने लगा और धीरे-धीरे कीच जमते-जमते उसी से समतल भूमि का निर्माण हुआ तथा पानी पाँच महासागरो में जमा हुआ। पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने के पूर्व पृथ्वी की रूप रेखा कई बार परिवर्तित होती रही है। जहाँ आज समुद्र है वहाँ स्थल, जहाँ आज स्थल है वहाँ कभी समुद्र लहरा चुके हैं। अनेक उत्पातों के पश्चात् आज से लगभग ५० करोड़ वर्ष पूर्व यह पृथ्वी इस स्थिति को प्राप्त हुई और ऐसी भौतिक परिस्थितिया उत्पन्न हुई। वह रंगमंच बना जिस पर प्राण एवं चेतना का उदय सम्भव हो पाया। सर्वप्रथम जीव कोष की उत्पति राख और धूल मिले पहाड़ों के मध्य की घाटियों के कीचड़ मे, जहाँ सूर्य की किरणें आकर पड़ती थी, रासायनिक प्रक्रिया द्वारा हुई।

जीवों के विकास का इतिहास—उक्त प्रक्रिया द्वारा न्यूनतम विकसित केवल एक कोष वाले प्राणियो का प्रादुर्भाव हुआ जो न तो निश्चित रूप से पशु ही कहे जा सकते हैं और न वनस्पति ही। उन पर न कोई खोल था और न कोई हड्डी। इन छोटे-छोटे न्यूनतम विकसित, केवल एक जीव कोष वाले कीटाणुओ से शनैः-शनैः अधिक पेचिदा एवं अधिक विकसित जीवों का प्रादुर्भाव होता गया। इन जीवों के क्रमिक इतिहास का पता लगाने का श्रेय इग्लैण्ड के प्रसिद्ध मनीषी चार्ल्स डार्विन को है। अनेको वर्षो तक सामुद्रिक यात्रा करते हुए तथा विभिन्न द्वीपो मे निवास करते हुए इस मेधावी मानव ने हजारों प्रकार के पशु,पक्षी,जल जीव और अन्य जानवरों के रहन-सहन, स्वभाव और शारीरिक निर्माण का अध्ययन कर जीवों के विकास का इतिहास अपनी युगान्तकारी पुस्तक 'ओरीजन ऑफ दी स्पीसीज' मे १८५६ मे प्रकट किया। इन जीवो के क्रमिक विकास को विद्वानो ने विभिन्न महाकालों मे विभक्त किया है।

प्रथम महाकाल के जीव—कैम्ब्रियन काल के जीवो की आकृति बहुत कुछ पेड पौधो से मिलती-जुलती थी। उस युग के प्राणी बहुकोषीय स्पंज जैसे जीव, कोरली, जैली मछली, फूल रूपी समुद्री ऐनीमोन, भीगा तथा बिच्छू जैसे आदि त्रिखण्डी जीव, केकडे और मू गे इत्यादि थे। वह सबके सब पानी मे निवास करने वाले जलचर ही थे। थल पर इस समय जीव का आगमन नही हुआ था। ये विचित्र रूप वाले त्रिखडी जीव अब नहीं मिलते है। इन जीवों का अगला भाग ढाल के समान एक कडे गिलाफ से ढका रहता था, जिसमे लम्बे सीग निकले रहते थे। उनके शरीर मे बहुत सी फाके अथवा वृत होती थी जो एक दूसरे से जुडी हुई होती थी। इसके मुंह व पेट वाले धरातल पर कई टागे होती थी जिनके द्वारा वह समुद्र की रेतीली भूमी पर चल फिर सकते थे। इनमें से अधिकाश जीव तो बहुत छोटे होते थे, किन्तु कोई-कोई बहुत बडे करीब एक फुट लम्बे होते थे। सहस्रों वर्षों तक ये त्रिखडी जीव जीवित रहे। किन्तु उनमें कुछ दोष आ जाने से वे सभी मर गये तथा आज इस लोक मे उनका एक भी प्रतिनिधि बाकी नही है।

सिलूरियन युग मे केंचुआ जैसे गडेदार शरीर वाले कृमियो काटेदार खाल वाले सितार मछली, समुद्री खीरे तथा फूलो जैसे दडीदार ओनाइट या प्रस्तर कमल जैसे जीवों का प्रादुर्भाव हुआ। इनके अलावा घोंघे, सीपी, शख आदि की तरह के पेचदार लम्बे छिलका से सुरक्षित एक दूसरे प्रकार के जीव और थे। जिनकी लचीली भुजाओ पर अपने शिकार को पकडने के लिए, चिपटने वाले कुण्डल हाते थे। यह सब छोटे प्राणी, केकडे व जल बिच्छू (जो ६ फीट तक लम्बे होते थे) के से जीव सहस्रा वर्षों तक इस धराधाम पर अपना एकछत्र राज्य और अधिपत्य जमाये रहे।

डिवोनियल काल मे रीढ़दार जीवो की वृद्धि हुई। इन रीढ़दार प्राणियो का चमडा हड्डी के समान कडा होता था जो बडे-बडे बिच्छूओ से उनकी रक्षा करता था। इन जीवा में फुर्ति नाममात्र को भी न थी तथा इनकी लम्बाई दो

तीन हाथ से अधिक नहीं होती थी। शनैः शनैः अनुकूल वातावरण मिलने से इन पुराने जनचरों में चुस्ती आने लगी तथा वे पानी एवं सामुद्रिक भाग में शीघ्रता से यहां-वहां आने जाने लगे। उनका चमड़ा शनैः-शनैः नर्म हो गया। उनके दाँत और आँख आदि अवयव स्पष्ट रूप से विकसित हो गये। इनमें कुछ ऐसी जाति की मछलियाँ भी थीं जो २०-२० फीट लम्बी थीं। ये मत्स्य इस युग में बहुतायत से पाये जाते थे अतः इस समय को मत्स्य काल भी कहा जाता है।

कार्बन काल के जीव—शनैः शनैः अर्धजलचर प्राणी जब बिच्छू, कनखजूरे, केकड़े, रीढ़ की हड्डी वाले अनेक जानवर, मेंढ़क और रेंगने वाले प्राणी इत्यादि अनेक प्रकार के जीव पेड़ पौधों के साथ-साथ दलदल भूमि में फैल गये इन प्राणियों में जल से बहुत दूर अधिक सूखी भूमि, पहाड़ या पठारों पर रहने की क्षमता नहीं थी। उन्हें अण्डे देने के लिए सरक कर जल में ही जाना पड़ता था। इस प्रकार जीव जन्तुओं ने अपने वास्तविक घर सागर को त्याग कर झीलों तालाबों, दलदलों और नम किनारों पर रहना प्रारम्भ किया तथा स्थल पर विजय प्राप्त की। नाना प्रकार के पतंगे व अन्य कीड़े मकोड़े जैसे बिच्छू, मकड़ी, कनखजूरे, गिजाई आदि उन दिनों ऊंचे व घने वृक्षों में छिपे रहते थे। बड़ी-बड़ी मक्खियाँ जो पर फैलाने पर ३० इंच लम्बी हो जाती थीं, हवा में उड़ने फिरने लगीं। झाड़ियों में दैत्याकार तिलचटे बड़े-बड़े बिच्छू और वातरे रेंगते फिरते थे। दलदलों और थल पर रहने वाले प्राणियों में गलफड़ों की जगह हवा से सांस लेने के लिए फेफड़े बन गये। छिपकली, मगर या सर्प जैसे पेट के बल रेंगने वाले उरंगम श्रेणी के जीव अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हो पाये थे। उरंगम श्रेणी के जीव हमें परमियन युग में मिलते हैं किन्तु प्रारम्भ में ये जीव बड़े आकार के नहीं होते थे।

सरीसृप जाति के प्राणी - प्रथम काल के अन्त होते-होते पृथ्वी की भौगोलिक अवस्था और जलवायु में अनेक परिवर्तन हुए। पृथ्वी का तापमान गिरता गया तथा हजारों वर्षों तक इसके अनेक भाग ठण्डे बर्फ से ढके रहे। फलस्वरूप पृथ्वी जीव तथा वनस्पति से हीन हो गई। समय बीतने के साथ

पृथ्वी का तापमान फिर साधारण अवस्था में आया और अनेक प्रकार के पेड़ और नये प्रकार के जीवों का प्रादुर्भाव हुआ। ये प्राणी सरीसृप जाति के जीव थे, जैसे बड़े बड़े सर्प, मगरमच्छ, कछुए आदि। इन नये प्रकार के जीवों को अण्डे देने के लिए अब जल में नहीं जाना पड़ता था। इनमें से एक जाति के प्राणी मास खाते थे दूसरी जाति के प्राणी वनस्पति। बड़े-बड़े अद्भुत रूप के उरंगम, लम्बी गरदन वाले प्लावोसोरस, कछुआ जैसे चपटे शरीर तथा भारी भरकम अङ्गों वाले सूस की शक्ल के इक्थियोसोरस, से यह पृथ्वी भरी पड़ी थी। ये निराले जीव ४० फीट तक लम्बे होते थे। इनमें से कई अपने अन्य समुदाय वालों की तरह अण्डे नहीं देते थे, बल्कि उनके बच्चे पैदा होते थे। इन जीवों के अलावा विभिन्न प्रकार के जानवर सागर तथा नदियों की तहों में पड़े रहते थे। थल पर भी भांति-भांति के रूप वाले भयंकर जीव विद्यमान थे, जिसमें से कुछ बहुत बड़े आकार के थे। इन थलचर प्राणियों में ब्रोन्टो-सोरस, डायनोसोर्स, एटलान्टोसोरस आदि तो साठ फीट से भी अधिक लम्बे और १५ फीट ऊंचे हुआ करते थे। कोई-कोई जीव जैसे ब्रिप्रोसारस तो ८४ फीट तक लम्बे होते थे। ये विशालकाय सरीसृप बहुत ही सुस्त और शाकाहारी होते थे तथा भूमि पर ही रहते थे। उनमें से अनेक समुद्र की ओर लौट आये और वहीं समुद्र में रहने लगे। इन सरीसृप प्राणियों की खोपडी और मस्तिष्क उनके शेष शरीर की अपेक्षा अधिक छोटे थे अतः वे अवश्य ही बुद्धिहीन रहे होंगे।

एक और अन्य प्रकार के प्राणी इस मध्य युग (सरीसृप कल्प) में रहते थे। वे सरीसृप रेंगने वाले जानवर तो थे ही, किन्तु उनके अगले पैर चमगादड़ की तरह के होते थे और चमगादड़ के पंखों के समान अवयव भी। वे फुदक २ कर चलते थे तथा थोड़ा-थोड़ा उड़ सकते थे। रीढ़ की हड्डी रखते हुए ये पहले बड़े प्राणी थे। प्राणीशास्त्रियों ने इनको टेरोडेक्टाइल नाम दिया है। ये चील या उससे भी बड़े होते थे। अब इस प्रकार के प्राणियों के दर्शन नहीं होते। वे प्रायः लुप्त हो गये हैं।

नव जीव युग के प्राणी—लाखों वर्षों तक वह भयङ्कर और भीमकाय सरीसृप जीवित रहे और इस पृथ्वी पर उनका अखण्ड राज्य रहा। ८ से ४ करोड वर्ष पूर्व-पृथ्वी पर भयंकर परिवर्तनो के कारण-जीवित रहने के लिए जीव जातियों को, अपने आपको प्रकृति के परिवर्तन के अनुरूप बनाने के लिए, घोर संघर्ष करना पड़ा। प्रकृति में परिवर्तन के क्रम मे अनेक प्रकार की नई जातियों का विकास हुआ। उनमे अधिक गर्म रक्त प्रवाहित होता था व उनका शरीर घने पर अथवा रोएं से ढका था। प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण सरीसृप जाती मे से दो शाखाओं का विकास हुआ प्रथम जाति ने सर्दी तथा अन्य जानवरो से बचने के लिए पेड़ों अथवा पहाडों को ऊंचाई तक पहुंचने हेतु पंख और उड़ने के लिए परो का विकास कर लिया। इस जाति के प्राणी पक्षी कहलाये। सबसे पहली चिड़िया कबूतर के बराबर बड़ी थी और उसमें उरगमो और पक्षियों के लक्षण का अनोखा मिश्रण था। उड़ने के अतिरिक्त वह चिड़िया रेंग भी सकती थी सरीसृप जाति मे से जो दूसरी शाखा का विकास हुआ वह स्तनधारी थी।

प्रारम्भिक स्तन-पोषित प्राणीः-ये प्राणी द्वितीय जीवों की भांति छोटे थे और उनके बच्चे अण्डो मे पैदा होते थे। इनके पश्चात् थैली वाले प्राणियों का प्रादुर्भाव हुआ जो अण्डे तो नहीं देते किन्तु उनके बच्चे क्षुद्र एवं अपूर्ण अवस्था मे जन्म लेते और अपनी माताओं की पेट की थैली मे या जिनके थैलो नही होती उनके पेट के बालों मे छिपे स्तनों से लटकते रहते थे। जब उनके अङ्गों की पूरी वृद्धि हो जाती तब वे माताओं की थैली या स्तनो को छोडकर पृथ्वी पर कूद-फाद करने लगते। इन प्राणियों के पूर्व जितने भी लाखों प्रकार के प्राणी इस सृष्टि में आये थे, जन्म होते ही जन्म देने वाले प्राणीयों से अलग हो जाते थे और स्वयं अपना निर्वाह करने लग जाते थे। जन्म देने वाले प्राणीयो को भी अपनी संतान से किसी भी प्रकार की संवेदना अथवा सामाजिक सम्बन्ध की अनुभूति नहीं होती थी। अब ऐसे जीवधारियों का आगमन हुआ जिनके बच्चों का गर्भ मे ही विकास हो जाता था और जन्म लेने के पश्चात् भी उन बच्चो को

अपनी रक्षा, निर्वाह भोजन आदि हेतु कुछ काल के लिए अपनी जन्मदात्री पर निर्भर रहना पड़ता था इस प्रकार जन्मदात्री और उसकी संतान में एक समवेदनात्मक पारिवारिक सम्बन्ध सा विकसित हुआ। इस संवेदना और सामाजिकता के भावों को वे किसी न किसी बोली अथवा चिल्लाहट से परस्पर प्रकट कर देते थे। यही 'वाणी' का पहला रूप माना जा सकता है। इस नई चेतना के साथ-साथ मस्तिष्क का धीरे-धीरे विकास हुआ। इसी मस्तिष्क और चेतना के विकास के कारण ये जीव सरीसृप जीवों से बिल्कुल भिन्न जाति के हुए। इस जाति की एक और विशेषता थी कि सर्दी मे रक्षा करने के लिए इनके शरीर पर बालो का विकास हुआ—सृष्टि में ये सर्वप्रथम बाल धारी प्राणी थे इनमें से कुछ घासाहारी चार पैरो वाले जीव थे, जो थल पर विचरण करते रहे, कुछ जल की ओर उन्मुख हुए तथा कुछ ऐसे प्राणियों का विकास भी हो रहा था जो पेड़ों पर कूदते-फादते फिरते थे। यही सब आज के संसार के घोड़े, ऊंट, हाथी, कुत्ता, चीते, शेर, लंगूर, बन्दर, गाय, बैल, भेड़ बकरी इत्यादि जानवरो के पूर्वज थे। इन सभी प्रकार के प्राणियों ने शरीर तथा अवयवो की पूर्णता प्राप्त कर ली थी। किन्तु उनमें अभी तक मस्तिष्क और बुद्धि का विकास नहीं हो पाया था।

मानव का उदभव—उपरोक्त पशु कई प्रकार के थे जिनमे बन्दर भी एक था। बन्दरो की भी अनेक जातियां थी। किन्ही-किन्ही वन्दरों जैसे-चिम्पौजी, गोरिला, ऐप आदि की शरीर रचना मनुष्य के शरीर से इतनी मिलती-जुलती है कि कुछ विद्वानों के मतानुसार उन्ही मे मनुष्य का विकास हुआ है। विद्वानों की मान्यता है कि मनुष्य का पूर्वज पेड़ों पर कूदने-फादने वाला नहीं बल्कि पृथ्वी पर चलने वाला एक बिना पूंछ वाला बन्दर था, जो चट्टानों से इधर-उधर छिपा फिरा करता था तथा अखरोट आदि सूखे फलों को तोड़ने में पत्थर का प्रयोग करता था। अनुमान है कि इस 'निपुच्छ कपि' के पूर्वजों ने मध्य युग में आज से ६ करोड़ वर्ष से पहले ही पेड़ों पर रहना छोड़ दिया था,

यद्यपि उनकी एक पृथक शाखा आज जैसे बन्दरों की भांति पेड़ों पर कूदने-फादने वाली बनी रही।

अर्द्ध मानव— विद्वानों का अनुमान है कि करोड़ों वर्ष पूर्व एक ऐसा कपि भी पृथ्वी पर रहा जो मानव के बहुत ही अधिक नजदीक नहीं था। इस कपि से, एक ऐसे प्राणी का विकास हुआ जो मानव सम देहधारी तो था किन्तु कुछ बातों में अपूर्ण था। वह दो टांगों पर चलने वाला कपिसम प्राणी था। विद्वानों ने इस कपिसम प्राणी को अर्द्ध मानव का नाम दिया है। जर्मनी के हिडलबर्ग नगर के निकट लगभग ८० फीट गहराई के खड्डे में एक जबड़े की हड्डी मिली है। जो ढाई या तीन लाख वर्ष पुरानी है। १९२१ में इंग्लैण्ड में ससेक्स प्रान्त में एक खोपड़ी की हड्डियों के कुछ अवशेष मिले हैं। इनको लगभग एक लाख वर्ष पुराना बताया जाता है। इन अस्थियों के आधार पर जिस प्रकार के मानव का अनुमान लगाया जाता है वह मानव पूर्ण विकसित मानव नहीं है। इसके माथे की हड्डि बहुत मोटी हैं, अतएव मस्तिष्क रखने के लिए स्थान कम है। जर्मनी के निडरथल नामक स्थान में प्राप्त हड्डियों से अनुमान लगाया जाता है कि वह मोटी हड्डियों के ढांचे का एक प्राणी था जो कुछ-कुछ आगे को झुका रहता था तथा अपने सिर को सीधा खड़ा न कर सकता था। अफ्रीका में प्रोकनट्रिल नामक स्थान पर ऐक प्राणी की हड्डियाँ और प्राप्त हुई है। यह प्राणी निडरथल आदि मानव और पूर्ण विकसित वास्तविक मानव के बीच की कड़ी प्रतीत होता है। अर्द्ध मानव वास्तविक मानव के सीधे पूर्वज नहीं थे। मानव के पूर्वज भी उन दिनों जब अर्द्ध मानव के रूप में थे, कहीं ईधर-उधर छिपते हुए रहा करते थे। वे (हमारे पूर्वज) नीडरथल मानव से अधिक सभ्य और सौम्य थे। वे अलग ही कहीं निपुच्छ कपि से सम्बन्धित चले आ रहे थे। अर्द्ध मानव अपना समय और जीवन समूहों में बिताते थे। वृद्ध, युवा, बच्चे, स्त्री और पुरुष सब कार्य करते थे। मांस अथवा फल उनके भोजन के मुख्य अङ्ग थे। पहले ये अर्द्ध मानव नंगे रहते थे किन्तु कालान्तर में चमड़े को लपेटना सीख गये। मोटी हड्डी होने से माथे के

लिए स्थान कम था अतः अर्द्ध मानव में सोचने समझने की शक्ति कम थी। इन लोगों को अग्नि का प्रयोग ज्ञात हो गया था। लगभग ५ लाख वर्ष पूर्व से २५ हजार वर्ष पूर्व तक पृथ्वी पर समय समय पर हिम युग आते रहे, पृथ्वी के अधिकांश भाग बर्फ से आच्छादित रहे। अतः बहुत से प्राणी जलवायु की कठोरता सहन न कर सके एवं मृत्यु को प्राप्त हुए, कुछ भविष्य में भी जिन्दा रहे। इन हिम युगों के अन्तिम काल के पश्चात् तक पहले के अर्द्ध मानव प्रायः लुप्त हो चुके थे।

आधुनिक मानव—वर्तमान मानव अर्द्ध मानव के सम्बन्धी थे अर्थात चचेरे भाई थे, सगे नहीं। हिम युग से अब तक के चार चरणों में से अन्तिम चरण के कुछ पहले और बाद में तो ये काफी भूभाग पर व्याप्त थे उस समय पृथ्वी का नक्शा आज के नक्शे में बिल्कुल भिन्न था। उत्तरी भारत में मैदान नहीं था। दक्षिणी पठार, पश्चिमी एशिया, अफ्रीका, साइबेरिया, कुछ यूरोप, कुछ अमेरिका के भू-भाग थे। भू-मध्य सागर के स्थान पर भी कुछ टापू थे। ऐसे ही भू-भागों में से कुछ पर २५ हजार वर्ष पूर्व मानव अवतरित हुआ था। शायद सर्वप्रथम वह मध्य एशिया में विकसित हुआ। सम्भव है पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका व भूमध्य सागर के कुछ टापुओं पर भी साथ ही साथ उसका उदय हुआ हो। उस समय नीडरथल पृथ्वी पर विद्यमान था, हीडलबर्ग और इओनथोरस तो रंग मंच पर आकर अपना नाटक दिखाकर जा चुके थे।

सर्वप्रथम जिस समय होमोसेपाइन्स (आधुनिक मानव) मानव इस भूभाग पर दृष्टिगोचर हुआ, शायद उसी समय से वह दो उपजातियों में विभक्त हुआ था— क्रोमेगनन जाति व ग्रिमाल्डि जाति (इन जातियों के नाम जिन स्थानों की गुफाओं में मानव के अवशेष मिले, उन्हीं पर रख दिये गये हैं।) क्रोमेगनन जाति के अवशेष फ्रांस के क्रोमेगनन स्थान में सन् १८६८ में मिले हैं ग्रिमाल्डि जाति के अवशेष मेनटोन के नजदीक ग्रिमाल्डि गुफा में मिले।

क्रोमेगनन का शरीर ग्रिमल्डि जाति के लोगों से अधिक विकसित था। क्रोमेगनन पुरुष ६ फीट से भी अधिक लम्बे होते थे। स्त्रियां आज की स्त्रियों से अधिक लम्बी होती थी। उनके मस्तिष्क आज के लोगों के मस्तिष्क से बड़े होते थे। ग्रिमाल्डि जाति के लोग क्रोमेगनन जाति के लोगों से बिल्कुल भिन्न थे। वे आजकल के हब्शी जैसे थे। इन दोनों जातियों के मस्तिष्क का अग्र भाग जिसमें वाणी, बुद्धि एवं स्मरण शक्ति का निवास होता है, हमारे ही समान विकसित था तथा हमारे ही तरह से उनके हाथ थे। क्रोमेगनन लोग गुफाओं में रहते थे जानवरों का शिकार करते थे, मुर्दों को दफनाते थे। चित्र बनाना, खुदाई करना तथा सुन्दर और मजबूत हथियार बनाना जानते थे। रंगों से भी परिचित थे। मुखिया का बड़ा दबदबा था। संसार की सभी मानव जातियां इन्हीं 'होमोसेपियन' प्राणी से अवतरित हुई हैं।

इस प्रकार करीब ५० करोड़ वर्ष पूर्व, पहले जीव अंकुराया, फिर रेंगने लगा, फिर स्थल पर आया, नेत्र बने, पैर आये, स्तनधारी बना फिर मानव समाज बन्दरों की जीव प्रणाली चली और अन्त में आज से २५ हजार वर्ष पूर्व सृष्टि की एक महत्वपूर्ण अवस्था में इस धरायाम पर मानव का प्रादुर्भाव हुआ।

नीचे की तालिका में जीव विकास एवं उन का काल क्रम स्पष्ट किया गया है:—

कल्प	भूगर्भीय कल्प विभाग		आज से लगभग कितने वर्ष पूर्व	जीवपरम्परा
चतुर्थ	सर्वनूतन			
			२० हजार	आधुनिक (मेधावी) मानव की सभ्यता
	प्र. नूतन	चतुर्थ हिमयुग	२५ हजार	... राहुन)
		प्रथम तीन हिमयुग	१० लाख	
नव जीवयुग तृतीय	अति नूतन		१½ करोड़	
	मध्य नूतन		२½ करोड़	... व, एप्स
	आदिनूतन		५ करोड़	... र्सी वानर
	प्रादिनूतन		७ करोड़	
मध्य जीवयुग द्वितीय	क्रिटोसियस		१२ करोड़	... चारी प्रारम्भ
	जूरसिक		१५ करोड	... बाहुल्य
	टायसिक		१६ करोड़	
प्रारम्भिक जीवयुग प्राथमिक	परामयन		२२ करोड़	... या का उदय
	कारबोनोफरस		२८ करोड़	... का आगमन-मेढ़क, टाडपान
	डेवेनियन		३२ करोड़	... रों
	सिल्यूरियन		३५ करोड़	
	आंर्डोविसियन		४० करोड	
	कम्ब्रिन		५० करोड	... हुल्य
			६०-७० करोड़	प्र ...
			[illegible] करोड़	सब कुछ अचेतन अप्राण

[२] प्राचीन जन समूह (Primitive Societies)

आदि मानव की प्रारम्भिक अवस्था— अपनी प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य तत्कालीन जीवधारियों में सबसे असहाय और अरक्षित था। पृथ्वी पर विचरण करने वाले अनेक प्रकार के खूंखार एवं विशालकाय जानवरों, जैसे शेर, हाथी, रैनडियर, गैंडे, जंगली घोड़े आदि से उसे अपनी शरीर की रक्षा करनी पड़ती थी। इन भीमकाय तथा भयंकर जीवधारियों का मुकाबला करने के लिए उसके पास न तो शक्तिशाली पंजे, न सुदृढ़ दांत और न सींग ही थे। यह प्रारम्भिक दशा शोचनीय व दयनीय थी जब कि आदि मानव को अपना तन ढकने के लिए कपड़े का, सर्दी से बचने के लिए और भोजन बनाने के लिए आग का, खूंखार जानवरों से अपनी रक्षा के लिए किन्हीं अस्त्र शस्त्र का, अपने भावों को व्यक्त करने के लिए किसी सुगठित भाषा का अथवा पशुपालन का संक्षेप में उन्नत एवं सभ्य जीवन के किसी भी उपकरण का उसे कोई ज्ञान नहीं था। अपने सब कार्यों के लिए उसे एक मात्र हाथों का ही भरोसा था। किसी प्रकार वर्षा, धूप और शीत से अपनी रक्षार्थ पर्वतीय गुफाओं और कन्दराओं में बसे इन आदिम मानवों को प्राकृतिक परिस्थियों से निरन्तर संघर्ष करते हुए तथा कन्दमूल, जंगली फलों, पत्तियां तथा मृत पशुओं और जन्तुओं का मांस खाकर अपने आप को जीवित रखना था। उस प्रारम्भिक अवस्था में न मनुष्य झोपड़ी बना सकता था, न उसे चाक पर मिट्टी के बर्तन बनाना आता था और न उसमें किसी प्रकार के सामाजिक और आर्थिक संगठन का ही श्रीगणेश हुआ था। कच्चा मांस या कन्दमूल फल खाने वाला तथा पहाड़ों और जंगलों में नग्न प्राय सा अपने से निर्बल और छोटे पशु पक्षियों का शिकार करते हुए फिरने वाला यह आदि मानव भी पशु समान ही था। पर अन्य पशुओं की अपेक्षा—मनुष्य का दिमाग अधिक बड़ा था। उसके पास बुद्धि नामक एक ऐसी वस्तु थी जो अन्य जन्तुओं के पास नहीं थी। उसने अपनी बुद्धि का प्रयोग कर हथियारों का निर्माण किया तथा शनैः २ प्रगति

प्रारम्भ की तथा अन्य प्राणियों तथा प्रकृति पर विजय प्राप्त की। पहले वह शिकारी बना उसके बाद पशु पालने लगा तथा उसके उपरान्त खेती प्रारम्भ की। मानव के प्राथमिक समाज को हम प्रस्तर युग के नाम से पुकारते हैं। पाषाण (प्रस्तर) युग दो भागों में विभाजित किया जाता है। (१) पूर्व पाषाण (२) उत्तर पाषाण युग।

पुरातन पाषाण युग से हमारा तात्पर्य उस युग से है कि जब मानव केवल पत्थर ही के अस्त्र-शस्त्र जैसे कुल्हाडी, खुर्पी, भाले, बर्छी बनाता था जो मोटे और भद्दे होते थे। वह गुफाओं में निवास करता तथा पत्थर को रगड़ कर आग उत्पन्न करता था। शिकार की खोज में वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करता था। जंगल में जो विविध प्रकार के कन्द मूल, फल आदि प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होते हैं, उनमें से कौन से भक्ष्य हैं, इसका भलि भाति ज्ञान था। इन कन्द, मूल, फलों को खोद कर निकालने के लिए उसने अनेक प्रकार के औजारों का निर्माण किया था। पृथ्वी पर अनेक प्रकार के अन्न प्राकृतिक रूप से पैदा होते हैं, उनका उपयोग भी उसे ज्ञात था। इन अन्नों को वह इकट्ठा करता था। इन्हें काटने के लिए एक प्रकार की दरांती का प्रयोग करता था और एकत्र हुए अन्न को भून कर व पीसकर प्रयुक्त करने का उसे ज्ञान था। उसे मछली पकड ने का ढंग भी मालूम था तथा इसके लिए उसने कई उपकरणों का निर्माण किया था। ज्यों ज्यों मनुष्य के चरण उन्नति की ओर बढ़ते गये त्यो त्यों उसके पत्थर के औजारों में भी सुधार होता गया। वह पत्थर के परिष्कृत औजार बनाने लगा तथा हड्डी, सींग, लकड़ी आदि का भी अपने उपकरणों के लिए प्रयोग करने लगा। प्रारम्भ में वह पत्थर आदि फेंक कर शिकार करता था, बाद में उसने धनुष बाण बनाये। धनुष के लिए उसने लकड़ी और सींग का प्रयोग किया और बाण के आगे हड्डी, पत्थर और सींग के फलकों को बांधना प्रारम्भ किया।

आदिम मानव वृक्षों की शाखाओं पर अथवा गुफाओं में निवास करता था। शनैः शनैः उसने अपने रहने के लिए चमड़े के बने तम्बुओं का निर्माण

कर लिया। हड्डी, हाथी दांत व सींग की बनी सुइयों से स्वयं को सर्दी व धूप से बचाने के लिए चमड़े के वस्त्रों का भी निर्माण कर लिया था। खाल को धोकर, साफ करके एवं सुखा कर काम में लेते थे। ये लोग टोलियां बनाकर रहते थे अतएव सम्भावना है कि इन टोलियों का संगठन भी विद्यमान हो, टोली के सब सदस्य अपने किसी मुखिया का शासन मानते हों, और यह मुखिया टोली का सबसे वृद्ध, अनुभवी या शक्तिशाली व्यक्ति होता हो। इस मुखिया के नेतृत्व में ही पुरातन पाषाण युग की टोलियां भोजन की खोज में एक जगह से दूसर जगह पर भ्रमण करती रहती थी। इस युग का मानव धर्म और परलोक के सम्बन्ध में भी अपने कुछ विचार रखता था। उनका मत था, कि मृत्यु के साथ मनुष्य का अंत नहीं हो जाता तथा मृत्यु के पश्चात् भी उसे उन वस्तुओं की आवश्यकता रहती है जिनका वह जीवन काल में उपयोग करता था। अतएव वे मृत शरीर को गाड़ने के साथ ही साथ औजार, माँस, अन्न, भोजन आदि को भी गाड़ देते थे, ताकि मृत व्यक्ति आवश्यकता के अनुसार उनका उपयोग कर सके। इस युग के मानव जादू टोने में भी विश्वास करते थे। हिरन आदि जंगली पशुओं की वृद्धि के उद्देश्य से वे लोग उनके चित्रों के नीचे दीपक जलाते थे तथा अनेक विधि के अनुष्ठान करते थे। अदृश्य आत्माओं और देवताओं को तृप्त करने के लिए पशुओं को भारी पत्थर के नीचे दबाकर बलि दी जाती थी। कला के क्षेत्र में भी इन्होंने बहुत अधिक उन्नति की। गुफाओं की दीवारों पर कोयले व रंगीन मिट्टी से अनेक प्रकार के चित्र बनाकर प्राचीन पाषाण काल के मानव अपने मनोभावों को प्रकट करते थे, सन् १८७९ ई० में एक स्पेनिश सामंत विद्वान ने उत्तरी स्पेन में अल्टामीर नामक स्थान पर एक ऐसी गुफा देखी जिसकी दीवारों पर बड़ी सुन्दर चित्रकारी हो रही थी और जिन जानवरों के चित्र बने हुए थे उनसे प्रकट होता था कि इनको बनाने वाला बड़ा ही चतुर चित्रकार था। और भी कई ऐसी गुफाएं मिली हैं जिनकी दीवारों पर हिरण, जंगली भैंस हाथी घोड़े व सूअर आदि के चित्र हैं। कहीं कहीं मोटी स्त्रियों के भी चित्र

प्राप्त हुए हैं। यद्यपि ये गुफाएं लगभग १६ हजार वर्ष पुरानी हैं परन्तु इनके चित्र ऐसे सही, सुडौल और सुन्दर है कि जैसे आजकल के चित्रकार भी नही बना सकते हैं। इनमे जो रंग लगाये गये हैं वह ऐसे पक्के है कि वे फीके भी नही पडे हैं। चेकोस्लोवेकिया मे हाथी, जगली घोड़े व बारहसिंगो की पत्थर की बनी मूर्तिया प्राप्त हुई है। कुछ मूर्तिया, हड्डी, हाथी दात और मिट्टी की भी बनी पाई गई है। ये लोग संगीत से भी अपरिचित नही थे। इनके बनाये हुए कतिपय वाद्ययन्त्र जैसे सीटी आदि प्राप्त हुए है, जो प्राय. हड्डी के बने हुए हैं।

परन्तु अभी मानव ने इतनी उन्नति नही की थी कि उसको सभ्य मान लिया जाय। उत्तर पाषाण काल मे इसकी उन्नति की गति काफी तीव्र हो गई, उसने कई नई खोज और आविष्कार किये। पुरातन पाषाण युग मे तो वह शिकार करता था, अस्त्र-शस्त्र बनाता था, आग जलाकर भोजन को भूनता था, किन्तु आर्थिक उत्पत्ति नही करता था। उत्तर पाषाण युग मे उसने खेती करना, कातना, बुनना, मिट्टी के बर्तन व मकान बनाना, भेड बकरी, गाय, कुत्ते सुअर आदि को पालना और पहिये वाली गाडी व नावें बनाना आदि सीख लिया। पुरातन पाषाण युग मे उसे बोलना ही आता था। पर अब उसने अपने विचारो को चिन्ह रूप मे प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया। यह युग अब से पन्द्रह हजार वर्ष पहले प्रारम्भ हो चुका था।

ईराक, पैलेस्टाइन, मिस्र, ईरान, फ्रास, स्वीट्जरलैण्ड आदि देशों मे प्राप्त अवशेषो के आधार पर इस युग के मनुष्यो के जीवन का भली भाँति पता चलता है। इस काल के मनुष्य की आजीविका के मुख्य साधन कृषि और पशु पालन थे। मनुष्य गाय, कुत्ता, सुअर, बैल, भेड, बकरी आदि पालने लगा था। सम्भवत. शिकारी अवस्था में भी मनुष्य कुत्ते को पालता था। पशुओ को पालतू बनाने के पश्चात मनुष्य आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त हो गया। अब उसे प्रति दिन शिकार खोजने की आवश्यकता नही थी। वह जब चाहे अपने पालतू

पशुओं को भोजन के लिए प्रयुक्त कर सकता था साथ ही वह इन पशुओं को दूध, खाल व ऊन के लिए भी अनेक प्रकार के उपयोग में ला सकता था। कृषि के आविष्कार ने तो मानव के जीवन में क्रान्ति कर दी। प्रो० डयूरेंट के मतानुसार मानव का इतिहास दो क्रान्तियों के चूल पर ही घूमता है। एक तो उत्तर पाषाण काल में आखेट से कृषि की ओर मनुष्य का गमन और दूसरा आधुनिक युग में कृषि की ओर से मनुष्य का उद्योग धन्धे की ओर बढ़ना। कृषि के प्रारम्भ होने के साथ मनुष्य स्थायी रूप से घर बसा कर रहने लगा। जिन प्रदेशों में लकड़ी, पूंस आदि की सुविधा थी, वहा वह लकड़ी के मकान बनाता था। अन्य स्थानों पर कच्ची मिट्टी या पत्थर मकान बनाने के काम में लाये जाते थे। गाव छोटे छोटे १॥ एकड़ से ६॥ एकड़ तक के होते थे जिनमें २५ से लेकर ३५ तक मकान होते थे। इन झोपड़ों में अनाज को जमा करने के लिए मिट्टी की कोठियां बनाई जाती थी। गाँव के चारों ओर खाई और मोटी दीवार, शत्रुओं से गाँव की रक्षा करने के लिए बनाई जाती थी। ये खाइयाँ, दीवारें व गाँव के बीच की सड़कें व गलियां किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर सारे गाँव की सम्मिलित सम्पत्ति होती थी, और निर्माण भी ग्राम निवासियों के सामूहिक प्रयत्न द्वारा ही किया जाता था। पुरातन प्रस्तर युग की घुमक्कड़ टोलियाँ ही ग्राम के रूप में बस गई थी। इन टोलियों का संगठन इस युग में और अधिक विकसित हो गया था। शिकारी टोलियों का मुखिया अब ग्राम का नेता बन गया था जो 'ग्रामीण' कहलाता था। ग्रामीण सम्पूर्ण ग्रामवासियों पर एक प्रकार का शासन रखता था। इस प्रकार कृषि ने मनुष्य को एक जगह स्थाई बनाया तथा इससे मनुष्य में सहयोग की भावना का विकास हुआ। प्रारम्भ में मानव स्वयं अपने हाथ से जमीन खोदता था किन्तु आगे चल कर वह बैलों और घोड़े का प्रयोग हल चलाने के लिए करने लगा तथा इस युग के अन्तिम वर्षों में गाड़ी चलाने के लिए भी उनका प्रयोग करने लगा।

श्रम-विभाजन का भी प्रारम्भ इसी युग में हुआ। पुरातन प्रस्तर युग

मे केवल स्त्री-पुरुषों के मध्य ही श्रम विभाजन था पर उत्तर प्रस्तर युग मे बढई, कुम्हार आदि के रूप मे ऐसे शिल्पियों की पृथक श्रेणिया विकसित होना प्रारम्भ हुई, जो खेती न करके शिल्प द्वारा ही अपनी आजीविका कमाते थे। इस युग मे कुम्हार के चाक का आविष्कार हुआ तथा इसके द्वारा सुन्दर और सुडौल बर्तन बनाये जाने लगे। इन बर्तनो पर अनेक प्रकार की सुन्दर चित्रकारी भी की जाती थी तथा बर्तनो को सुन्दर रंगो द्वारा सुशोभित करने की कला का भी विकास हुआ और व्यापार की भी उन्नति हुई। एक ग्राम मे रहने वाले मनुष्य परस्पर अपनी वस्तुओं का विनिमय करते थे। बढ़ई या कुम्हार अपने शिल्प द्वारा तैयार की गई वस्तु के बदले में किसान से अनाज प्राप्त करता था। प्रत्येक गाव अपनी आवश्यकताओ को स्वय ही पूरी करने का प्रयास करता था। किन्तु आवश्यकता होने पर सुदूरवर्ती ग्राम से भी व्यापार किया जाता था। इस काल मे मनुष्य प्राय- 'मृत शरीर को जमीन मे गाडा करते थे। शवो को गाडने के लिए कब्रिस्तान थे किन्तु कही कही उन्हे मकानो के अन्दर या समीप गाडने की भी प्रथा थी। अनेक बस्तीया मे शव जलाने की भी प्रथा थी और राख को मिट्टी के बने कलश मे रख कर आदर के साथ जमीन मे गाड दिया जाता था। इस युग के मानव 'मातृ देवता' के उपासक थे। अनेक विद्वानो का मत है कि देवता को तृप्त करने के लिए बलि या कुर्बानी की प्रथा भी प्रारम्भ हो चुकी थी। जादू टोने और मन्त्र तन्त्र मे काफी वृद्धि हो गई थी। गले मे कुल्हाडा पहनने की प्रथा थी। कुल्हाडा शक्ति का प्रतीक था, और रक्षा कवच के रूप मे धारण करना उपयोगी माना जाता था। वस्त्र निर्माण कला इस युग मे काफी प्रगति कर चुकी थी। ऊन व रेशम के वस्त्र निर्माण के लिए तकुओ और खड्डियो का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। इस युग मे युद्ध की शंका बहुत अधिक थी अत प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक उत्पादक के साथ२ योद्धा भी होता था। सक्षेप मे नूतन प्रस्तर युग का प्राणी पुरातन प्रस्तर युग के प्राणी से सभ्यता मे मीलो आगे था। सेकडो वर्षों के पश्चात् उसे कुछ धातुओ का ज्ञान हो गया और इसके साथ ही उनकी उन्नति की गति बडी तीव्र हो गई।

(३) सामाजिक संस्थाओं की उत्पत्ति
(Origin of Social Institutions)

प्रारम्भ में मानव बिलकुल जंगली अवस्था में था। अन्य स्तनधारी जानवरों की भांति ही उनके बच्चे पैदा होते थे जो पैदा होने से कुछ बड़े होने तक माँ के सहारे पलते थे और फिर रेवड़ों में रहने लग जाते थे। मानव जानवरों की भांति नंगा घूमता फिरता था। किन्तु भौगोलिक परिस्थितियों ने शनैः शनैः उसे छाल या पत्तों से तन ढकना और गुफाओं में रहना सिखला दिया। इस समय उनकी मूलभूत आवश्यकता अपने निर्वाह करने की थी। उसे हर समय खाने-पीने की वस्तुएं तलाश करने की धुन रहती थी। मनुष्य को पीने के लिए पानी तो एक ही स्थान पर नदी या झरने से, बहुत दिनों तक प्राप्त हो सकता है, लेकिन खाने के लिए फल आदि बराबर नहीं मिल सकते। पौडे बहुत दिनों में पेडों के फल समाप्त होने पर उनकी खोज में उसे दूसरी जगह जाना पड़ता था। इसी भांति शिकार के लिए घूमना फिरना जरूरी था। बिना घूमे फिरे उसके पास जीवन का कोई साधन नहीं था। सुनसान जंगल में रहना या घूमने में कठिनाई होती है, इसलिए मानव को टोलियां बनाना ठीक जंचा अतः धीरे-धीरे वह समूह या यूथ बना कर रहने लगा। वह समूह या यूथ ऐसा था मानो कई मनुष्य प्राकृतिक विषम परिस्थितियों एवं जंगली पशुओं से अपनी रक्षा करने के लिए एक साथ समूह बनाकर रहने लगे। इस स्थिति को विद्वानों आदिम साम्यवाद के नाम से पुकारा है। इस समय में सभी मिलकर एक दूसरे की रक्षा करते थे, साथ मिलकर खाद्य वस्तुओं का संग्रह करते थे और स्त्रीपुरुष सब साथ ही परिश्रम करते थे। खाद्य सामग्री के अतिरिक्त और कोई सम्पत्ति नहीं होती थी। यह सम्पत्ति वैयक्तिक न होकर सामूहिक होती थी। समूह के व्यक्तियों में किसी प्रकार की असमानता नहीं थी, सब सदस्य बराबर माने जाते थे। आज्ञा देने और मानने का कोई प्रश्न नहीं था। स्त्री पुरुष का सम्बन्ध स्वतन्त्र था। समूह में कोई भी स्त्री पुरुष परस्पर मिल सकते थे, कुटुम्ब प्रणाली अभी तक प्रकाश में नहीं आई थी।

मातृप्रधान समाज—शनैः-शनैः परिवार का भाव जागृत होने लगा। इस भाव का प्रारम्भ स्त्री के सम्बन्ध से हुआ। स्त्री का किसी पुरुष से संपर्क होता व स्त्री के बच्चे उत्पन्न होते। बच्चे बड़े होते, उन बच्चों का वंशगत सम्बन्ध मां से जोड़ा ही जाता था, क्योंकि पिता का पता नही होता था। उस स्त्री और उसके पुत्र-पुत्रियों को मिलाकर एक पारिवारिक समूह बन जाता था। इस प्रकार सम्बन्ध का निर्णय करने मे प्रमुखता माता की रहती थी अतः ऐसे समाज को हम मातृप्रधान समाज के नाम से पुकारते हैं। प्रादिम युग में प्रत्येक व्यक्ति सब जगह इस सामाजिक स्थिति में हो कर गुजरा है। ऐसे समाज में सम्पत्ति अभी तक सामूहिक थी, एवं जीविका के प्रधान साधन फल संचय, मछली व जानवरों के शिकार थे। फल एकत्र करने और शिकार करने में स्त्री-पुरुष का हाथ बटाती थी। स्त्री व पुरुष के बीच कार्य का विभाजन नही हुआ था। सारे परिवार को मिलकर एकसाथ भोजन एकत्र करना या शत्रुओं से सामना करना पड़ता था। ऐसी स्थिति में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध परिवार के भीतर ही होता था अर्थात् परिवार की मुखिया स्त्री के पुत्र पुत्रियों में ही परस्पर स्त्री पुरुष का सम्बन्ध हो जाता था।

पितृ प्रधान समाज—मनुष्य व्यक्तिगत साम्यवाद की स्थिति से निकल कर पशुपालन एवं कृषि की स्थिति में पहुँचा। इस परिवर्तन के साथ-साथ मातृप्रधानता में भी परिवर्तन हुआ और उसका स्थान पितृप्रधान ने लिया। स्त्री का स्थान अब पुरुष से नीचा हो गया। स्त्री और पुरुष में कार्य का विभाजन हुआ। स्त्री को घर के अन्दर का कार्य और पुरुष को घर के बाहर का काम मिला पुरुष की प्रधानता के साथ-साथ स्त्री का स्थान नीचा होता गया। सम्पत्ति स्वामित्व का भाव पुरुष ने स्त्री पर भी किया एवं शनैः-शनैः 'विवाह प्रथा' का प्रचलन हुआ।

विवाह संस्था—आदि मानव में काम वासना नियमित थी परन्तु श्रम विभाजन और पुरुष में सम्पत्ति और स्वामित्व की भावना के साथसाथ आदमी

में धीरेधीरे काम वासना बढी , अब वह यहि प्रयास करने लगा कि सबमे अधिक सुन्दर और घर के काम-काज मे चतुर और उपयोगी स्त्री पर केवल उसी का अधिकार हो, स्त्री का स्वामित्व रहा करे । सभी पुरुषों का यही प्रयास रहता था अतएव एक ही स्त्री के लिए अनेक आदमियों में लड़ाई झगड़े होने लगे । इस अशान्ति एवं अव्यवस्था को दूर करने के लिए ही आवश्यकतानुसार विविध नियम बनाये गये और विवाह प्रथा प्रारम्भ की गई । विवाह का तात्पर्य था कि सार्वजनिक रूप से किसी विशेष स्त्री का किसी विशेष पुरुष से सहवास सम्बन्ध स्थिर कर लिया जाता था और यह स्वीकार कर लिया जाता था कि जिस स्त्री का सम्बन्ध निश्चित हो गया उससे दूसरे आदमी का सम्बन्ध न हो। किन्तु समाज में पुरुष की प्रधानता होने से पुरुष तो कई विवाह कर स्त्री को एक साथ रखने का अधिकारी हुआ, किन्तु स्त्री के लिए यह बात सम्भव न हो पाई । इस प्रकार विवाह प्रथा प्रचलन अति प्राचीन काल में ही हो गया था , जब से विवाह प्रथा प्रारम्भ हुई तब से आज तक, समय और परिस्थितियों के अनुसार विवाह के अनेक भेद रहे है और भिन्न भिन्न दृष्टि कोणों से विवा की भावना में विकास हुआ । प्रारम्भ में तो विवाह बलात्कार द्वारा हुआ होगा अर्थात किसी स्त्री के साथ बलात्कार किया और उसे अपनी पत्नी बना लिया । इसी प्रकार भिन्न भिन्न कालों और देशों मे हरण, क्रय, सम्बन्धियों द्वारा और प्रे म भाव द्वारा विवाह निश्चित होने की परम्परा चल पड़ी । धीरे धीरे विवाह संस्था के समयानुकूल विविध नियम भी बने । पहले विवाह एक गोत्र वंश या कुल में ही होता था, जिसमें भाई बहिन मामा, भांजी आदि का कोई अन्तर नहीं था । फिर सगोत्रक विवाह अमान्य ठहराया गया और गोत्र छोड़ कर विवाह होने लगे । विवाह प्रथा प्रारम्भ होने पर स्त्री, उसका पति एवं उनकी सन्तान परिवार में गिनी जाने लगी । बहुत प्राचीन काल मे ही दो तरह के परिवारों का विकास हुआ, एक तो मातृसत्ता प्रधान जिसमे वंश माता, नाना आदि के नाम से चलता था, सम्पति की उत्तराधिकारिणी स्त्री की बड़ी पुत्री होती थी । इस प्रकार का परिवार आजकल भी बर्मा और

मनावार की कई जातियों में पाया जाता है। पितृसत्ता प्रधान कुटुम्ब मे पुरुष की प्रधानता होती है और सम्पत्ति पर उसका एकाधिपत्य होता है। वश पिता और पितामह के नाम से चलता है। सम्पत्ति पर अधिकार पुरुष का होता है। तथा धन का उत्तराधिकारी जेष्ठ पुत्र होता है। पुत्री का कोई भी अधिकार मान्य नही होता। विद्वानो की मान्यता है कि मानव विकास में नव पाषाण युग तक विवाह और पितृप्रधान परिवार की स्थापना और उनका प्रचलन हो गया था।

कुल और कबीले—परिवार के पश्चात् मनुष्य के जिन सामाजिक सगठनो का विकास हुआ वे थे कुल और कबीले। कुल मे कई परिवार होते थे जो उपर्युक्त साम्यवादी आधार पर संगठित गृहस्थी मे रहते थे। प्रत्येक कुल में दो अधिकारी अथवा नेता होते थे। एक शान्तिकाल मे कुल की व्यवस्था करता तथा दूसरा युद्धकाल मे नेतृत्व करता था। कबीले मे कई कुल होते थे। यह कई स्त्री पुरुषो का एक समूह होता था जिसके पास अपना एक निश्चित प्रदेश होता जिस पर उस कबीले का सामूहिक स्वामित्व माना जाता था। कबीले की व्यवस्था करने, आपसी झगडो को दूर करने और सुलझानेके लिए एक कबीला परीषद् होती थी। यह परिषद् ही दूसरे कबीलो से युद्ध और शान्ति का निर्णय करती थी। उस समय राज्य संस्था की उत्पत्ति नही हुई थी, न कोई राजा था, न मन्त्री था, न राज कर्मचारी थे और न राजकीय सेना ही थी।

राज्य—राज्य की उत्पत्ति के विषय मे विभिन्न विचारको ने विभिन्न दृष्टिकोण हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं। दैवी सिद्धान्त के समर्थक राज्य को ईश्वर कृत मानते हैं। उनकी मान्यता है कि राज्य का काम चलाने के लिए ईश्वर ने राजा को नियुक्त किया है। अतः राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। जनता का कर्त्तव्य है कि राजा को ईश्वर का रूप समझ कर उसकी आज्ञा का पालन करे। राजा अपने कार्यों के लिए केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है।

राजा का विरोध ईश्वर का विरोध करना है। यह सिद्धान्त अनेक धर्मों में विद्यमान है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा कि 'मनुष्यों मे मैं राजा हूं।' महाभारत मे कहा गया है कि राजा को साधारण आदमी समझकर कोई उसका अपमान न करे, क्योंकि राजा इस भू-मण्डल पर मनुष्य के रूप मे देवता है। यहूदियों का विश्वास था कि परमेश्वर राजा को चुनता तथा पदच्युत करता है। इस सिद्धान्त ने शनैः शनैः राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का रूप ले लिया। किन्तु आज के युग में दैवी सिद्धान्त मे कोई विश्वास नही करता है। शक्ति सिद्धान्त वालों का विश्वास है कि राज्य की उत्पत्ति तथा विकास शक्ति के द्वारा हुआ। जब पृथ्वी का प्रारम्भ हुआ तो इस समय मनुष्यों के गिरोह भोजन की तलाश मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते फिरते थे। इन गिरोहों मे कई बार लडाई झगड़ा हो जाता था जब शक्तिशाली गिरोह ने दुर्बल गिरोह पर अपना अधिकार जमा लिया तो राज्य की उत्पत्ति हो गई, क्योंकि सबल गिरोह का नेता शासक या राजा बन गया और पराजित गिरोह को उसने अपनी प्रजा बना लिया। इस सिद्धान्त मे सच्चाई का अंश अवश्य है। इसमे सन्देह नहीं कि राज्य सस्था के विकास मे शक्ति का भी स्थान है। पर केवल शक्ति को ही राज्य का मूल मान लेना उचित नहीं शक्ति के अलावा अन्य तत्वों ने भी राज्य के विकास मे सहयोग दिया है। यह सिद्धान्त नैतिकता के भी विरुद्ध है, इसलिए सर्वमान्य नहीं हो सकता। सामाजिक समझौते का सिद्धांत मानने वालों का विश्वास है कि राज्य की स्थापना प्राकृतिक अवस्था मे रहने वाले आदिम मनुष्यों ने समझौते या अनुबन्ध के द्वारा की। प्राकृतिक अवस्था मनुष्य की वह आदिम अवस्था थी, जबकि वह जगल मे अकेला रहता था। उस समय न कोई कानून था, न कोई सामाजिक नियम, न कोई राजा था और न कोई प्रजा। मनुष्य स्वेच्छाचारी था। प्राकृतिक अवस्था कैसी थी इस बारे मे विद्वानों में मतभेद है। कुछ का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था काफी अच्छी थी, मनुष्य स्वतन्त्र और सुखी था अन्य का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था में जीवन बड़ा दुःखपूर्ण था। चाहे प्राकृतिक अवस्था बहुत अच्छी थी या बहुत

खराब, किसी न किसी कारण से मनुष्य को इसे छोड़ना पड़ा और सामाजिक संस्थाओं तथा सरकार का निर्माण समझौते द्वारा करना पड़ा। इस सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक हाब्स, लॉक और रूसो हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में भी राज्य की उत्पत्ति का यही सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त की १८वीं सदी में बहुत अधिक मान्यता थी। किन्तु अनैतिहासिक, अव्यवहारिक, अनियमित एवं अशुद्ध तर्क पर आधारित होने से यह सिद्धान्त स्थाई मान्यता प्राप्त नहीं कर सका। पैतृक तथा मातृक सिद्धान्त के अनुसार राज्य कुटुम्ब का ही विकसित रूप है। पहले-पहल सामाजिक संस्था केवल कुटुम्ब थी। बहुत से परिवार मिलकर वंश बनाते हैं, बहुत से वंशों से मिलकर एक जाति बन जाती है और बहुत सी जातियों से मिलकर एक राज्य बन जाता है। हेनरीमेन पैतृक कुटुम्ब को और मेक्लेनन, जैन्क्स, मारगन आदि मातृ पक्ष कुटुम्ब को राज्य का आधार मानते हैं। किन्तु इस सिद्धान्त में भी पूर्ण सत्यता नहीं है। यह सत्य है कि वंशगत अथवा रक्त सम्बन्ध ने वर्गों के सम्बन्धको स्थाई किया है परन्तु यह नहीं माना जा सकता कि इन्हीं की वजह से राज्य की उत्पत्ति हुई है। कोई ऐतिहासिक प्रमाण भी नहीं मिलता जिसके आधार पर राज्य को कुटुम्ब का विकसित रूप माना जा सके।

विकास सिद्धान्त राज्य की उत्पत्ति का सबसे अच्छा एवं सच्चा सिद्धांत है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। राज्य का जन्म सहसा नहीं हुआ, बल्कि धीरे-धीरे हुआ है। डा० गार्नर ने कहा है, 'राज्य न तो ईश्वर के हाथों गढ़ा गया, न पाशविक बल प्रयोग से बना, न वह समझौते द्वारा लोगों से संगठित किया गया और न यह केवल कुटुम्ब का बढ़ा हुआ रूप ही है। राज्य न कोई आविष्कार की हुई वस्तु है और न कोई बना-बनी मशीन। राज्य मनुष्य का ऐतिहासिक विकास है।" मनुष्य की जो सामुदायिक प्रवृत्ति पहले पहल रेवड़ या टोली के रूप में प्रकट हुई वह धीरे-धीरे विकास करती हुई परिवारों, कुलों एवं जनों के रूप में परिणित हुई। उसी से आगे चलकर राज्य संस्था का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु मनुष्य की इस सामु-

दायिक प्रवृत्ति के विकास में अन्य अनेक तत्वों ने भी सहायता पहुँचाई। वे तत्व हैं (१) रक्त सम्बन्ध (सजातता) (२) धर्म (३) शक्ति (४) सुरक्षा की भावना और (५) राजनैतिक चेतना।

(१) सजतता अथवा रक्त सम्बन्ध— मानव इतिहास के प्रारम्भिक समुदायों में यह भावना विद्यमान थी, कि एक समुदाय के अन्तर्गत सब व्यक्ति 'सजात' है। इसी भावना के कारण मत् सत्ताक टोलियों के सभी स्त्री, पुरुष अपने को बहन भाई समझते थे ये भावना केवल प्रारम्भिक अवस्था में ही विद्यमान न थी, जब कुल एवं जन बने तब भी यह भावन विद्यमान रही। यह सजाता या रक्त सम्बन्ध की भावना मनुष्य को एक दूसरे के समीप लाने में बहुत सहायक सिद्ध हुई। रक्त की एकता का विचार सब में विद्यमान था तथा इसने मनुष्यों में एकानुभूति उत्पन्न की।

धर्म—प्राचीन काल में धर्म का विशेष महत्व रहा है। मनुष्य धर्म भीरू थे। वे प्राकृतिक शक्तियां, नदी, पर्वत, सूर्य और चन्द्रमा आदि की उपासना तथा भक्ति करते थे। कुटुम्ब या कबीले का मुखिया धर्म पुरोहित भी होता था। एक कबीले के लोग एक ही पूर्वज की उपासना करते थे रक्त सम्बन्ध और धर्म एक ही वस्तु के दो पहलू थे। धर्म ने मनुष्यों में एकानुभूति उत्पन्न करने के साथ ही साथ अनुशासन उत्पन्न किया।

शक्ति—राज्य के जन्म तथा फैलाव में शक्ति ने भी महत्वपूर्ण कार्य किया। प्राचीन काल में शक्तिशाली कबीलों ने कमजोर कबीलोंपर अपना अधिकार जमा लिया और स्वयं राजा बन बैठा। कबीले का सरदार राजा कहलाया और बाकी उसकी प्रजा। आज भी राज्य को बनाये रखने तथा राज्य में सुरक्षा और शान्ति रखने के लिए सेना व पुलिस की आवश्यकता रहती है।

सुरक्षा की भावना—पशुपालन के साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रादुर्भाव हुआ अतः लोगों में ईर्ष्या और झगड़े बढ़ने लगे। बाहर के आदमी सम्पत्ति

को हथियाने के लिए हमला करने लगे ग्रतः शान्ति रखने, झगड़े न होने देने तथा बाहर वालों से ग्रपनी रक्षा करने के लिए एक संगठन बनाना ग्राव-श्यक समझा गया सुरक्षा की भावना ने लोगों को संगठित होने के लिए प्रेरित किया।

राजनैतिक चेतना— यद्यपि इसमें सन्देह नहीं है कि राज्य निर्माण में रक्त सम्बन्ध तथा धर्म ने बहुत कार्य किया तथापि राज्य का निर्माण राज-नैतिक चेतना के बिना नहीं हो सकता था। जब लोगों ने यह महसूस करना प्रारम्भ कर दिया कि वे किसी हिंसक जानवर या बर्बर शक्ति से ग्रपनी रक्षा केवल संगठित होकर ही कर सकते हैं, तो उनमें राजनैतिक संगठन की भावना उत्पन्न हुई। यह राजनैतिक चेतना राज्य के विकास की मुख्य हेतु बनी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य की सामुदायिक प्रवृत्ति के कारण उसने समूह व समुदाय बनाकर रहना प्रारम्भ किया। सजतता ग्रथवा रक्त सम्बन्ध ग्रौर धर्म की एकता ने इन समुदायों को संगठित होने में सहायता प्रदान की। शक्ति ग्रौर सुरक्षा की भावना ने उन्हें संगठित होने में योग दिया ग्रौर देश काल की भिन्नता ने इन राज्यों में एकतन्त्र, राजतन्त्र व गणतन्त्र का रूप लिया पहले ग्राम राज्य स्थापित हुए, फिर गणनेता या राजा के ग्रधीन नगर राज्य ग्रौर फिर बड़े राष्ट्रों व साम्राज्यों का विकास हुग्रा।

सामाजिक विकास में मुख्य तत्व

(Principal Factors in Social Growth)

मनुष्य प्रारम्भ से ही सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना मानव जीवन की कल्पना भी ग्रसम्भव है। राजनीति दर्शन के पिता ग्ररस्तू ने सैंकड़ों वर्ष पूर्व इस सनातन सत्य को प्रकट किया था कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा ग्रपने स्वभाव ग्रौर ग्रावश्यकता की पूर्ति हेतु वह समाज में

रहता है।" मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है जो बिना किसी और मनुष्य के जीवन के साथ के जीवित नही रह सकता है। मनुष्य में सामाजिक प्रवृति अन्तर्जात होती है जो उसे अन्य मानवा के साथ रहने को प्रोत्साहन देती है। उसे अकेले रहना अच्छा नही लगता। वह चाहता है कि 'मेरे कुछ संगी साथी हो, में अपनी मण्डली मे रहकर खेलूं-कूदूं और जी बहलाऊं।' अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भी उसे समाज मे रहना पड़ता है। अपने जन्म, पालन पोषण, सुरक्षा, शिक्षा,सांस्कृतिक विकास के लिए भी उसे दूसरो की सहायता और सहयोग पर निर्भर करना पडता है। इसी सामाजिक भावना से मानव जीवन शनैं. शनैः संगठित होने लगा तथा उसके विकास में निम्न तत्व सहायक हुए, यथा-रक्त सम्बन्ध, धर्म, जीवन रक्षा, मनुष्य की कल्पना शक्ति, वश परम्परा भौगोलिक, परिस्थितिया, आदि।

रक्त सम्बन्ध--रक्त सम्बन्ध से प्राचीन काल मे मनुष्यों मे एकता उत्पन्न हुई। जब दो कुटुम्बो मे रिश्तें नाते हो गये तो वे कुटुम्ब बढ़ने लगे। अतः कुटुम्बो मे परिवार, परिवारो मे गोत्र और कई गोत्रो के मिलने से जन उत्पन्न हुए। रुधिर की एकता का विचार सब में विद्यमान था। सब स्त्री पुरुष यह समझते थे कि "हमारा मूल पूर्वज एक जोड़ा (दम्पति) था, उसकी सन्तान हुई, सन्तान की फिर सन्तान हुई, इस प्रकार परिवार, गोत्र और जन बने।" यह सजातता अथवा रक्त सम्बन्ध की भावना मनुष्यों को एक दूसरे के समीप लाने मे बहुत सहायक सिद्ध हुई। इसने मनुष्यो मे एकानुभूति उत्पन्न की एवं उन्हें सुदृढ संगठन व समुदायों मे संगठित होने के लिए प्रेरित किया मि० मेक्यावर ने कहा है, "सजातता समाज का निर्माण करती है। (Social kinship creats Society)"

धर्म--प्राचीन युग मे धर्म का विशेष महत्व था। मनुष्य जीवन का प्रत्येक क्षेत्र धर्म से आच्छादित था। आदिम अवस्था में मनुष्य अशिक्षित और जंगली था। वह जादू टोनो मे विश्वास करता था। वह प्राकृतिक शक्तियो से

करता था और नदी, पहाड, अग्नि, सूर्य, चाँद और बादल आदि की उपासना करता था। वह अपने पूर्वजो की भी पूजा किया करता था। जिन व्यक्तियो के देवता एक होते थे उनमे एकानुभूति की भावना जागृत हुई। एक ही धर्म को मानने वाले व्यक्तियो मे प्रेम और सहयोग बढा। जिन लोगो का धर्म एक था, जिनके विश्वास, देवी देवता व विधि विधान एक थे, वे अधिक सुगमता से एक संगठन मे सगठित होने लगे। सक्षेप मे धर्म ने उन्हें सुदृढ सगठन व समुदायो मे सगठित होने के लिए प्रेरित किया।

जीवन रक्षा—मनुष्य अपनी रक्षा अकेले नही कर सकते थे। वर्षा, आधी, तूफान, जगली जानवरो तथा खूंखार हिंसक शत्रुओ से अपनी रक्षा के लिए लोगो ने मिलकर रहना उपयुक्त समझा। मनुष्य अपनी भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति भी अकेला नही कर सकता था। अत उसने यूथ बनाकर रहना उचित समझा। इस प्रकार जीवन रक्षा और भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति ने सुदृढ समुदायो मे सगठित होने के लिए बाध्य किया।

वश परम्परा—प्राणी का यह गुण है कि वह अपने ही प्रकार के प्राणियो की सृष्टि करता है। किन्तु मानव मे एक विशेषता और यह है कि वह अपने सीखे हुए गुणो को अपने वशजो को देता रहता है, जिसमे यह नई पीढी अपने पूर्वजो के गुणो को तो प्राप्त करती ही है साथ ही नये गुण भी सीखती है और इस प्रकार पीढी दर पीढी मानव मे इन गुणो की वृद्धि होती रहती है तथा ये गुण सामाजिक विकास मे निरन्तर सहयोग देते रहते हैं।

मनुष्य की कल्पना शक्ति—मानव की कल्पना शक्ति कृषि यंत्र और अग्नि आदि आविष्कारो ने भी उसके सामाजिक विकास को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया और मनुष्य स्थायी रूप से एक स्थान पर रहने लगा जिससे सामाजिक विकास को बल मिला।

उपरोक्त वर्णित तत्वो के अतिरिक्त भाषा और भौगोलिक परिस्थितियाँ

भी सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योग दिया । दो मन एक दूसरे को समझ लें इसका माध्यम भाषा है। अरस्तू ने लिखा है कि "प्रकृति कोई वस्तु व्यर्थ नहीं बनाती और मनुष्य ही केवल ऐसा पशु है जिसको उसके द्वारा बोलने का उपहार प्रदान हुआ है।" भाषा से मानवों का संसर्ग बढ़ा तथा सुदृढ सामाजिक संगठन का विकास सम्भव हो सका।

[५] औद्योगिक विकास

(Abvancement of Technology)

समाज की उन्नति मे औद्योगिक विकास का अत्यधिक महत्व है। आदि काल से लेकर आज तक की सामाजिक उन्नति परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से औद्योगिक विकास का ही परिणाम कही जा सकती है। व्यक्तिगत साम्यवाद की अवस्था में मानव को कठोर श्रम करना पड़ता था। उसने जगली पशुओं को मारने तथा मछलियों को पकड़ने हेतु अनेक नये उपाय सोचे। पहले पत्थर फिर नुकीले पत्थर, फिर हड्डियों से निर्मित अस्त्र-शस्त्र, धनुष बाण आदि से काम लेना प्रारम्भ किया। मछलियां पकड़ने के उद्देश्य से नाव का निर्माण किया। पशुपालन युग मे नये नये यन्त्रों का आविष्कार किया। लकड़ी काटने के यन्त्र, भोजन खाने के बर्तन, पशुओं को रखने के लिए बड़े बड़े घेरे (बाड़े) बनाये। कृषि अवस्था मे मानव ने हल, फावड़ा, कुदाली, कुम्हार का चाक आदि अनेक नये उपकरणों का निर्माण किया। धातुओं के ज्ञान ने सामाजिक जीवन की गति को और भी तीव्र कर दिया। रहन सहन, वेष भूषा, खान पान, मनोरंजन, श्रृंगार प्रसाधन, भवन निर्माण, आदि के क्षेत्र मे महान उन्नति हुई।

पुनर्जागृति के युग मे आधुनिक विज्ञान की नींव पड़ी और तभी से चमत्कारिक आविष्कार होने लगे। १८वीं शताब्दी मे औद्योगिक क्रान्ति का श्री गणेश हुआ। औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुई तथा फिर यूरोप के अन्य देशों में हुई। सामन्तशाही का स्थान पूंजीवाद ने लिया। बड़े बड़े कल कारखाने स्था-

पित हुए। माल बहुतायत से तैयार किया जाने लगा तथा कच्चे माल की भी कमी प्रतीत हुई। तैयार माल बेचने तथा कच्चा माल प्राप्त करने के लिए यूरोपीय देशो मे एशिया व अफ्रीका के देशों म अपना प्रभुत्व स्थापित करने की होड बढी तथा ये देश बडे-बडे साम्राज्य स्थापित करने मे सफल हुए। उपनिवेशों के निवासियो का शोषण प्रारम्भ हुआ तथा परतन्त्र देशों की अर्थ व्यवस्था का विनाश किया गया। औद्योगिक क्रान्ति के साथ-यातायात के साधनो मे भी वृद्धि हुई। बडे २ व्यापारिक जहाज समुद्र की लहरो को चीरते हुए ससार के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंचने लगे। व्यापार में अत्यधिक उन्नति हुई। राष्ट्रीय मडिया का स्थान अन्तर्राष्ट्रीय मडियो ने ले लिया। राज्य-शक्ति मध्यम वर्ग के हाथों मे पहुंच गई तथा प्रजातन्त्र शासन की स्थापना हुई। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप एक शोषित मजदूर वर्ग का जन्म हुआ। मजदूर वर्ग एव पूजीपति वर्ग मे सघर्ष प्रारम्भ हुआ। मजदूर वग की शक्ति बढने लगी तथा १९१७ मे रूस मे राज्य शक्ति मजदूरों के हाथो में पहुच गई। यूरोप एव ससार के अन्य देशो मे आज मजदूर वर्ग काफी शक्तिशाली है तथा राज्य शक्ति अपने हाथ मे लेने के प्रयत्न में है। १९वी सदी के अन्तिम वर्षों और २०वी सदी मे विज्ञान ने बडी तेज गति से उन्नति की यथा हवाई जहाज, रेडियो टेलीविजन अणु और उदजन बम आदि का आविष्कार हुआ जिन्होने हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को ही बदल दिया है। आज मानव सारी पृथ्वी का भ्रमण कर सकता है, घर बैठे-बैठे दूर-दूर के लोगो से बातें कर सकता है उनके विचारो को पढ सकता है, लोगों तक अपने विचार पहुचा सकता है। देश विदेश की सीमायें समाप्त हो गई। आज विश्व के सभी मनुष्य एक ही विश्व समाज के सदस्य हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम" की उक्ति चरितार्थ हो गई है। सक्षेप मे औद्योगिक विकास ने समाज के विकास तथा उन्नति मे महत्वपूर्ण भाग दिया। आधुनिक युग के कुछ महत्वपूर्ण आविष्कारो का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

भाप एञ्जिन और रेल—सन् १७६५ ई० मे जेम्सवाट ने सबसे पहले भाप एञ्जिन का निर्माण किया जो ब्रिटेन मे लोहे और कोयले की खदानो

में से पानी बाहर फेंकने के काम मे आता था। इसी भाप के एन्जिन में और सुधार हुए और सन् १७८५ ई० में यह कपड़े की मिल चलाने के काम में आने लगा। १८१४ ई० मे जार्ज स्टीफन ने कोयलों की खानों से कोयला ढोने वाली छोटी गाड़िया खींचने के लिए एन्जिन तैयार किया। इस एन्जिन में धीरे-धीरे और सुधार किये गये तथा १८२५ ई० मे जार्ज स्टीफन की देख रेख में स्टोक्टन और डार्लिंगटन (इंग्लैंड) के मध्य विश्व की सबसे पहली रेलगाड़ी (माल गाड़ी) बनाई गई। सबसे पहली पैसेन्जर गाड़ी का निर्माण लिवरपूल और मैनचेस्टर के मध्य किया गया। इस पैसेन्जर गाड़ी का इन्जिन 'राकेट' ३५ मील प्रति घंटा की रफ्तार से चलता था। इस रेलगाड़ी का निर्माण भी स्टीफन ने ही किया। इसके पश्चात तो इंग्लैण्ड मे रेलों का जाल सा फैल गया। यूरोप में सर्व प्रथम रेलवे बेलजियम में एक अंग्रेज इन्जिनियर द्वारा बनाई गई। यूरोप में १६ वीं सदी के मध्य तक कई रेलवे लाइनों का निर्माण हुआ।

भाप के जहाज—स्टीम एन्जिन के आविष्कार के साथ डांड और पतवार से चलने वाले जहाजों का युग समाप्त हुआ और उनकी जगह बोट चलने लगे। १८०७ ई० मे सर्व प्रथम जहाज में भाप के एन्जिन का प्रयोग एक अमेरिकन इन्जीनियर फिलटन ने किया। यह स्टीमर शुरू में गहरी नदियों में ही चलते थे। १८०६ ई० मे पहली बार स्टीमर ने अटलांटिक महासागर मे प्रवेश किया तथा उसको पार किया। धीरे-धीरे इनमें और सुधार किये गये तथा आज इनकी गति बहुत अधिक तेज हो गई है। स्टीम एन्जिन के निर्माण से माल लेजाने और लाने में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।

कताई और बुनाई की मशीनों का आविष्कार—सन् १७३८ ई० में लंकाशायर के निवासी 'जानके' ने नाचने वाली ढरकी का आविष्कार किया जिससे बुनने की कला में प्रगति हुई। १७६४ ई० में ब्लेक नगर के निवासी हारग्रीव्ज ने स्पिनिंग जेनी अथवा सूत कातने की जेनी का आविष्कार किया जिसमें साधारण चर्खे की अपेक्षा कई गुना सूत कातने की क्षमता थी। १७६६ ई० में रिचार्ड

मार्कराइट ने और सन् १७७५ ई० मे क्रोम्पटन ने कताई की अधिक विकसित मशीनो का आविष्कार किय । इसी समय डा० कार्टराइट ने एक नये प्रकार के करघे का निर्माण किया जिसका एक पहिया घुमा देने से कपडा अपने आप ही बुनना प्रारम्भ हो जाता है । ये मशीनें पहले घोडा द्वारा एव बाद मे जल शक्ति द्वारा चलाई गई । १७९२ ई० मे ह्विटन ने बिनौले अलग करने की मशीन का निर्माण किया जिसकी सहायता से एक व्यक्ति एक दिन मे एक हजार पौंड कपास साफ कर सकता था । १७७५ ई० में भाप शक्ति से चलने वाली दुनिया की सर्व प्रथम कपडे की मिल की स्थापना इग्लैंड के नोटिघम शहर मे हुई । फिर तो इग्लैंड मे धडाधड कपडे की बडी बडी मीलें खुल गई और मेनचेस्टर नगर कपडे के व्यवसाय का बहुत बडा केन्द्र बन गया । कुछ समय पश्चात् ऊनी कपडा भी मशीनों द्वारा बनाया जाने लगा । पश्चिमी दुनिया मे चर्खे और करघे प्राय समाप्त हुए और उनकी जगह लाखो आदमी मशीन द्वारा उत्पादित वस्त्र व्यवसाय मे लग गये ।

खान और धातु कार्य—सन् १८५८ ई० मे इग्लैंड के एक इन्जिनियर ने लोहे को फौलाद बनाने मे सफलता प्राप्त की । १८६१ ई० मे धातुओ को गलाने के लिए बिजली की भट्टी का आविष्कार हुआ । इस आविष्कार की वजह से बडी २ लोहे कीमशीनें, रेलवे इन्जिन तथा स्टीमरो का निर्माण सम्भव हुआ तथा लोहा गलाने और ढालने के काम मे तरक्की हुई ।

बिजली तार तथा टेलीफोन—१९वीं सदी के अन्तिम वर्षों में फैराडे, ने बिजली सम्बन्धी अनेक तथ्यो का उद्घाटन किया । सन् १८३१ में उसने डायनमो का आविष्कार किया । १८३५ ई० मे सबसे पहली तार की लाइन का निर्माण हुआ । १८५१ ई० मे फ्रान्स और इग्लैंड के मध्य सर्व प्रथम समुद्र मे केबल लगा कर समुद्र पार समाचार भेजने का सफल प्रयास किया गया । १८६७ ई० मे टेलीफोन का प्रयोग प्रारम्भ हुआ । शनै शनै. सब जगह जहाँ जहाँ रेलवे लाइन बनी टेलीफोन भी साथ-साथ लगाये जाने लगे । १८७८ ई० मे सर्व

प्रथम बिजली की रोशनी का प्रचार हुआ इसी वर्ष एडीसन ने विद्युत लैम्प का आविष्कार किया। तदुपरान्त बिजली शक्ति का प्रयोग भाप शक्ति के समान मशीनें और रेलगाडी इत्यादि के चलाने मे होने लगा।

मोटर और हवाई जहाज—१८८० ई० में पेट्रोल का पता चला तथा इनके द्वारा सडको पर मोटरें चलने लगी। १८६७ ई० मे प्रो० लोगवे ने सर्व प्रथम वायुयान का निर्माण किया। १९०३ मे राइट बन्धुओ ने सर्व-प्रथम हवाई जहाज मे उडान ली। १९०९ मे एक ऐसे हवाई जहाज का निर्माण हुआ जिसमे कुछ व्यक्ति बैठ सकते थे। प्रथम महायुद्ध मे गोलाबारी करने के लिए जर्मन वैज्ञानिक जेपलिन ने 'जेपलिन' नामक बडे हवाई जहाज का निर्माण किया। १९४० मे वायु यात्रा साधारण सी वस्तु हो गई। राइट बन्धुओ की उडान की चाल ३० मील प्रति घन्टा थी। १९४० म हवाई जहाज की गति ४७० मील प्रति घन्टा तक हो गई।

सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन—अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन ने १८७६ ई० मे ध्वनि रेकार्ड करने के लिए ग्रामोफोन का तथा १८९३ ई० में चल चित्र फिल्म का आविष्कार किया। १८९५ ई० फ्रान्सीसी वैज्ञानिक लूमेर ने फिल्म प्रोजेक्टर का आविष्कार किया। इस प्रकार शनै शनै चल चित्रो का आविष्कार हुआ। सन् १९०४ ई० मे इटली के विज्ञानवेत्ता मार्कोनी ने वायरलेस और रेडियो का तथा १९२६ ई० मे इग्लैण्ड के वैज्ञानिक बेयर्ड न टेलीविजन का आविष्कार किया। आज के वैज्ञानिक युग में आविष्कारो की प्रगति काफी तीव्र हो गई है।

प्रश्नावली

सृष्टि की उत्पत्ति पर संक्षिप्त नोट लिखिये।

करीब ५० करोड वर्ष पूर्व, पहले जीव अकुलाया फिर रेगने लगा, फिर स्थल पर आया, नेत्र बने, पैर आये, स्तनधारी बना फिर मानव समाज बन्दरो की जीव प्रणाली चली और अन्त मे आज स

५० हजार वर्ष पूर्व सृष्टि की एक महत्वपूर्ण अवस्था में इस धराधाम पर मानव का प्रादुर्भाव हुआ विवेचना कीजिए।

३. पूर्व और उत्तर पाषाण युगिय समाज पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

४. कुटुम्ब का प्रादुर्भाव कैसे हुआ ? विवाह प्रथा इसमें कहां तक सहायक सिद्ध हुई।

५. राज्य की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों का परिचय दीजिए।

६. 'राज्य ऐतिहासिक विकास का परिणाम है' सिद्ध कीजिए।

७. सामाजिक जीवन के संगठन में सहायक तत्वों की विवेचना कीजिए।

८. आधुनिक युग में किए गये वैज्ञानिक आविष्कारों का परिचय दीजिए।

९. "प्रत्येक व्यक्ति समाज का निर्माता है और समाज की उपज भी" इस कथन की व्याख्या कीजिए। रा. वि. १९५९।

२ मानव की संगठित सभ्यताएँ

"दुःख एवं विपत्तियों के समुद्र को पार करता हुआ और भूल-भ्रान्तियों के बीच में होकर मनुष्य ने धैर्य और साहस के साथ अपने यात्रा-पथ का अतिक्रमण किया है। मानव जाति की सभ्यता के इतिहास में हम मनुष्य को पीछे की ओर लौटते हुए नहीं पाते हैं। आदिम युग में जो जय-यात्रा प्रारम्भ हुई थी, वह अब तक अविराम रूप से चल रही है।"

—जगन्नाथप्रसाद मिश्र

[१] संस्कृति और सभ्यता का विकास

प्रकृति द्वारा प्रदत्त पदार्थों, तत्वों और शक्तियों का उपयोग कर मनुष्य ने भौतिक क्षेत्र में जो असाधारण उन्नति की है, उसी को हम सभ्यता कहते हैं। मनुष्य की यह भौतिक उन्नति शनैः शनैः हुई है। प्रारम्भ में मानव अन्य पशुओं के समान वन में रहता था। उस समय न वह वस्त्र पहनता था और न ही अपने निवास के लिए मकानों का निर्माण करता था। पेट भरने के लिए अन्न व अन्य भोज्य पदार्थों का उत्पादन भी वह स्वयं नहीं करता था। प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होने वाले कन्द मूल फल आदि को एकत्र कर व पशुओं का शिकार करके ही वह अपनी क्षुधा को शान्त करता था। धीरे धीरे इस दशा में परिवर्तन आया शुरू हुआ और उसने सामाजिक जीवन प्रारम्भ किया। उसके बाद उसकी प्रगति की तीन अवस्थाएं रही हैं। (१) जंगली अवस्था-इस अवस्था में मनुष्य के सामने मुख्य कार्य यह था कि वह अपने जीवन निर्वाह

की वस्तुएं प्राप्त कर सके, इसमें जो भौगोलिक या प्राकृतिक बाधाएं हों उन्हें दूर कर सकें। इस अवस्था का पहला सोपान उस समय समाप्त हुआ, जब मनुष्य ने अग्नि का आविष्कार किया और उसका उपयोग करना सीखा। अब मनुष्य कन्द-मूल फल के अतिरिक्त मास को भून कर खाने लगा। पहले मनुष्य पत्थर के जैसे तैसे हथियार काम में लेता था, धीरे-धीरे वह पत्थर की धार और नोक तेज करके उसकी छुरी और बर्छी बनाने लगा। इनसे दूर का निशाना नही लगता था अतः जगली अवस्था का दूसरा सोपान समाप्त होने तक उसने धनुष बाण का आविष्कार कर लिया। बाद मे उसने मिट्टी के बर्तन बनाने और उन्हें आग मे पकाने की बात मालूम की। इस प्रकार जगली अवस्था के तीसरे सोपान मे मनुष्य अपनी खाने की वस्तुओ को भूनने के बजाय मिट्टी के बर्तन मे पकाने लगा। (२) असभ्य अवस्था—इस अवस्था मे मानव की विजय का क्षेत्र पशु, पक्षी, वनस्पति और खान से निकलने वाली वस्तुओं तक पहुँच गया इस अवस्था का पहला भाग पशुपालन के साथ समाप्त हुआ। अब पशुओं की सहायता से मनुष्य खेती करने लगा उसकी घुमक्कड़ वृत्ति कम हुई तथा वह घर बनाकर एक स्थान पर रहने लगा। लोहे के अनेक औजार, हथियार, सवारियां और घरो के सामान बनाने लगे, यह असभ्य अवस्था का द्वितीय सोपान था। बर्बर अवस्था के तीसरे सोपान मे व्यापार बढने के साथ पत्र व्यवहार की भी आवश्यकता हुई। अपने विचार दूर रहने वालों पर प्रकट करने के लिए लेखन शैली का आविष्कार हुआ। पहले चित्र लिपि का उपयोग हुआ। अक्षर या वर्ण लिपि असभ्य अवस्था के अन्त और सभ्य अवस्था के प्रारम्भ मे प्रचलित हुई। (३) सभ्य अवस्था—बर्बर अवस्था के पश्चात मनुष्य ने सभ्य अवस्था मे प्रवेश किया। अब मानव की विजय का क्षेत्र अधिक सूक्ष्म और मानसिक हो गया। वह स्थूल पदार्थों के अतिरिक्त प्रकृति की शक्तियों का भी अध्ययन और प्रयोग करने लगा। इस अवस्था के प्रथम सोपान का अन्त होने तक उसने बारूद का आविष्कार किया। दूसरे सोपान मे भाप एन्जिनो का प्रयोग किया। तीसरा सोपान अभी चल ही रहा है जिसमे गैस, बिजली और

प्रणुशक्ति से चलने वाले नित्य नये यत्रों का निर्माण हो रहा है, जिसके द्वारा समय और दूरी को मिटाने का प्रयत्न हो रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव पत्थर के भद्दे व मोटे औजार का प्रयोग करना प्रारम्भ कर अब इस स्थिति में पहुंच गया है कि वह धातुओं का, विद्युत और परमाणु शक्ति आदि प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग करने लगा है। प्रगति का यह चरण रुका नहीं है बल्कि निरन्तर उन्नति कर रहा है।

मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को संस्कृति कहते हैं। सभ्यता के समान संस्कृति का प्रसार भी शनैः शनैः हुआ है। इस बात का तो पता नहीं चलता कि संस्कृति का आविर्भाव किस समय हुआ किन्तु यह सत्य है कि जब से मानव ने सामाजिक एवं व्यवस्थित जीवन प्रारम्भ किया उसी समय से संस्कृति का भी विकास प्रारम्भ हुआ। जहां मनुष्य भौतिक सुखों के साधन जुटाने में तत्पर हुआ, वहां साथ ही वह धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी तत्व ज्ञान के चिन्तन के लिए भी प्रयत्नशील हुआ प्रकृति के विविध कोपों—आंधी और तूफान, भूकम्प, दावानल को देखकर उसने सोचा, कि वायु, अग्नि, जल आदि ऐसी दैवी शक्तियां हैं जिन्हें सन्तुष्ट व तृप्त रखे बिना वह कभी अपने हित का सम्पादन नहीं कर सकता। अतएव उसने वायु, अग्नि, नदी आदि को देवता मान कर उनका पूजन प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार धर्म का प्रारम्भ हुआ। मनुष्य विवेकशील प्राणी है अतएव वह विचार करने लगा कि इस सृष्टि का निर्माण किसने किया? क्या ऐसा भी समय आयेगा जब यह सृष्टि नहीं रहेगी? क्या यह जीवित जागृत प्राणी शरीर से भिन्न है, तो इसका क्या स्वरूप है? इस प्रकार के विचारों द्वारा 'दर्शन शास्त्र' का प्रादुर्भाव हुआ। मनुष्य स्वभावतः सामाजिक प्राणी है। अतः उसके लिए यह प्रश्न अत्यन्त महत्व का था, कि वह समूह में रहते हुए अन्य व्यक्तियों के साथ क्या सम्बन्ध रखे, उसने अपने विवेक द्वारा इस प्रश्न पर विचार किया और शनैः शनैः उन राजनैतिक व सामाजिक संस्थाओं का विकास किया, जिन पर उनका हित अनेक अंशों पर निर्भर है।

परिवार, जन, कुल, राज्य आदि जिन विविध संस्थाओं का मनुष्य ने विकास किया, वे सब उसके सामूहिक और सामाजिक जीवन को प्रकट करती है। अपने सामूहिक जीवन पर बुद्धिपूर्वक विचार करके ही मनुष्य अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र, आचार-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, आदि सामाजिक विज्ञानों का विकास करने मे समर्थ हुआ। इसके साथ ही साथ मनुष्य ने अपने जीवन का अधिक सरल और सौन्दर्यमय बनाने का प्रयत्न किया तथा संगीत-कला, चित्र-कला, वास्तु-कला और सुन्दर साहित्य का निर्माण किया। संक्षेप मे मनुष्य ने धर्म का विकास कर, साहित्य, संगीत और कला का सृजन कर, सामूहिक जीवन को हितकर एवं सुखी बनाने के लिए संस्थाओं व प्रथाओं का विकास कर, संस्कृति के विकास मे योग दिया। सभ्यता की भांति संस्कृति के विकास की भी तीन अवस्थायें रही है—जंगली अवस्था, असभ्य अवस्था और सभ्य अवस्था तथा इसके विकास का क्रम भी सभ्यता के विकास के क्रम के अनुरूप ही रहा है। डा० मोरगन ने भी संस्कृति के विकास की तीन अवस्थाओं को स्वीकार किया है।

[२] प्राचीन और मध्यकालीन सभ्यताएँ

नदी-घाटी सभ्यता—मानव की दो परम आवश्यकताएँ भोजन एवं जल है और ये दोनों चीजें नदियों की घाटियों मे आसानी से मिल जाती है। इसलिए विश्व के सभी भागों मे सभ्यता का सबसे पहले विकास नदियों की घाटियों मे ही हुआ जैसे चीन मे यागत्से कियाग और ह्वागहो की घाटी मे, भारत मे सिन्ध की घाटी मे, मैसोपोटामिया मे दजला और फरात की घाटियाँ और मिस्त्र मे नील की घाटी मे। इन घाटियों की विकासशील सभ्यता ही मनुष्य जाति की प्राचीनतम सभ्यताएं हैं।

मेसोपोटामिया की सभ्यता

(सुमेरियन, बेबीलोन, असीरियन सभ्यता)

मेसोपोटामिया का प्रदेश और प्राचीन सभ्यताएं—मेसोपोटामिया का प्राचीन प्रदेश उत्तर पश्चिम से आती हुई दो नदियां यूफ्रेटीज (इजल) और टाइग्रीस (फारत) के बीच में स्थित है, ये दोनों नदियां उत्तर पश्चिम से दक्षिण की ओर बहती हुई फारस की खाड़ी में गिरती है। पानी की प्रचुरता और भूमि उपजाऊ होने के कारण प्राचीन काल से अनेक जातियां इस प्रदेश में आकर बसी। अतः इस प्रदेश में सभ्यताओं का विकास और पतन होता रहा, प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि इन प्राचीन सभ्यताओं में सुमेरिया, बेबीलोन और असीरिया की सभ्यतायें विशेष उल्लेखनीय हैं।

मेसोपोटामिया के दक्षिण में सुमेर नाम का एक राज्य था। इसके उत्तर में अक्काद प्रदेश था। जिसकी राजधानी बेबीलोन थी। उससे भी उत्तर में असीरिया का देश था। सुमेर अक्काद और असीरिया के सम्मिलित प्रदेश को मेसोपोटामिया कहते हैं। काल क्रम के अनुसार क्रमशः तीनों प्रदेशों में, सबसे पूर्व सुमेरिया उसके बाद बेबीलोन और फिर असीरिया की सभ्यता का विकास हुआ। यद्यपि ये प्राचीन सभ्यतायें आज सर्वथा लुप्त हो गई हैं किन्तु इनका ज्ञान हमें उस समय के शिला लेख संग्रह, शिक्षा-ग्रन्थ, निर्देश-ग्रन्थ, मूर्तियों, मुद्राओं द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त खुदाइयों से प्राचीन नगर, सड़कें, कुये, मन्दिर, महल, मिट्टी के बर्तन, खिलौने, आभूषण आदि प्राप्त हुए हैं जो उस काल की सभ्यता का चित्र हमारे सामने पेश करते हैं।

सुमेर सभ्यता के निर्माता सुमेरिया—आधुनिक अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि आज से लगभग ६००० वर्ष पूर्व मेसोपोटामिया के दक्षिणी भाग में एक प्राचीनतम सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ जिसे सुमेर सभ्यता की संज्ञा दी जाती है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ये द्राविड नस्ल के थे तो दूसरे उन्हें आर्य नस्ल के मानते हैं। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि ईसा से छः सात हजार वर्ष पूर्व सिन्ध से ही कुछ लोगों ने मेसोपोटामिया में जाकर सुमेर सभ्यता की नींव डाली। कतिपय विद्वानों का मानना है कि सुमेर लोग

भूमध्य सागरीय नस्ल के थे जो स्पेन से लेकर पूर्व में प्रशान्त महासागर तक फैले हुए थे। कुछ लोग इन्हे अरब के रेगिस्तान के आदि निवासी बताते हैं। सुमेर सभ्यता के निर्माता लोग भूरे या गहरे बादामी रंग के थे। उनकी मुखाकृति अण्डाकार, आखें धंसी हुई तथा होठ मोटे होते थे। कद छोटा, नाक उँची और नुकीली, माथा दबा हुआ और सिर मुंडे हुए होते थे। इनमे कुछ तो दाढी रखते और कुछ मुंडा देते थे।

राजनीतिक इतिहास– सुमेरिया का प्राचीन इतिहास दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम जब वहां स्वतन्त्र नगर राज्य थे जिनमें पुरोहित राज करते थे। द्वितीय, जबकि स्वतन्त्र नगरो का दमन होकर वहाँ बड़े साम्राज्य की स्थापना हुई। प्रत्येक नगर का एक मुख्य देवता होता था और उस देवता का एक मन्दिर होता था। उस मन्दिर का पुरोहित ही नगर का शासक होता था, किन्तु वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी न था। पुरोहित केवल महापुरुष समझा जाता था। उसे धार्मिक तथा सामाजिक नियमो का उलंघन करने का अधिकार न था। पुरोहित कृषि की उन्नति तथा उद्योग धन्धों का निरीक्षण करता, फसल बोने तथा काटने का समय निश्चित करता था। किन्तु यह व्यवस्था अधिक काल तक निश्चित न रह सकी। धीरे २ सुमेर मे सगठित समाज का अभ्युदय हुआ। नगर राज्य एक दूसरे के पारस्परिक संम्पर्क मे आने लगे, व्यापार बढने लगा त्यो-त्यो भिन्न-भिन्न नगर राज्यो मे आपसी युद्ध होने लगे। ऐसी अवस्था मे एक केन्द्रीय शक्ति की आवश्यकता होने लगी, जो युद्धो का संचालन कर सके और शासन कार्य भी चला सके। इस प्रकार शनैःशनैः पुरोहित पुजारी वर्ग से पृथक ही शासन वर्ग का उत्थान हुआ। उसके नीचे प्रभावशाली कर्मचारियो का वर्ग उत्पन्न हुआ। अब मन्दिरो की अपेक्षा राजाओ के दरबार अधिक महत्वशाली हो गये और केवल उनके बनाये हुए नियमो का ही परिपालन होने लगा।

सुमेर के नगर राज्य सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न थे। अमेरिकन पुरातत्ववेत्ताओ ने उस काल के कई प्रसिद्ध नगर

खोद निकाले हैं, जिनमें उर, लागश, उम्म, निपुर किश, और बेबीलोन प्रसिद्ध हैं। ये नगर राज्य परस्पर लड़ते रहते थे। किश के तिसरे राजवंश के समय की ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो गयी है जो उस समय की राजनैतिक व्यवस्था का निरूपण करने में काफी सहायक सिद्ध हुई है। इस वंश का चौथा राजा अपने आपको संसार का अधिपति मानता था। लागश नामक नगर राज्य ने काफी अच्छी उन्नति की। इस नगर राज्य के सबसे प्रसिद्ध राजा उरकगिन ने अनेक मन्दिर, इमारतें तथा नहरें बनवाईं। उसने अपनी प्रजा को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी। लागश का पतन उम्म नगर के आक्रमण से हुआ था। लगभग २७७२ ई० पू० से २७१७ ई० पूर्व तक सेमेटिक वंश के सारगन ने लागश पर अधिकार कर लिया। उसने ५७ नगरों को जीत कर अपना राज्य भूमध्य सागर तक बढ़ा लिया और वह अपने को संसार का सम्राट कहने लगा। कहा जाता है कि संसार का सबसे प्रथम सबसे बड़ा साम्राज्य यही था और सारगन संसार का पहला सम्राट था। उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी उत्तर की ओर से आने वाली अर्ध सभ्य जाति गुत्तियम लोगों कोन-रोव सके और लागश नगर का पतन हो गया। लागश के पश्चात् उर नामक नगर राज्य का विकास हुआ, इसके राजा 'उरएङ्गुर' ने पश्चिम-एशिया को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। उसने सारे सुमेरिया के लिए कानून बनाये, जिनको आगे चलकर बेबीलोन के सेमेटिक सम्राट हमूरबी ने भी अपनाया। इस राज्य का अन्तिम राजा इबीसिन था जिसके समय में साम्राज्य छिन्नभिन्न हो गया। इस साम्राज्य के पतन के साथ ही साथ सुमेरियन स्वतन्त्रता और सभ्यता का भी अवसान हो गया।

शासन पद्धति—प्रत्येक नगर राज्य का एक शासक होता था जो 'पटेसी' कहलाता था। राजा को देवता का प्रतिनिधि माना जाता था और प्रत्येक वर्ष उसका राज्याधिकार पुन स्वीकृत होता था राजा न्याय अथवा कानून का स्रोत नहीं माना जाता था, वरन् उसके पालन करने वाला सेवक होता था। राजा का मुख्य कर्त्तव्य था कि साधारण जनता को धनी तथा

बलवानो के अनुचित हस्तक्षेप से बचावे, प्रजा से कर वसूल करे व्यापार के लेन देन की स्वीकृति प्रदान करे तथा वाह्य आक्रमणो से नगर की रक्षा करे।

कालान्तर मे विशाल साम्राज्य के बनने पर शासक की सुविधा के लिए सुमेर को कई प्रान्तो मे विभाजित कर दिया था। प्रत्येक प्रान्त पर राज प्रसाद के पुत्र' को शासन करने के लिए नियुक्त किया जाता था।

कानून गरीब और विधवाओ का सरक्षण करता था। धनिक लोग निर्धन और अनाथ बालक या किसी विधवा पर अत्याचार नही कर सकते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमेरिया ने शासन प्रबन्ध मे व्यक्ति के अधिकारो की सम्यक् रक्षा होती थी। न्याय मन्दिरो मे होता था। यौन तथा व्यापार सम्बन्धी समस्याओ का विशेष महत्व होता था। राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था।

नगर राज्यो को प्राय आन्तरिक और बाह्य शत्रुओ से युद्ध करना पडता था। व्यापारिक एव जल मार्गो के प्रश्न को लेकर घमासान युद्ध होते थे अत इन राज्यो को सगठित सेना की आवश्यकता रहती थी। नगर रक्षा का भार राजाओ पर होता था जो युद्ध के समय सेना का सगठन करता तथा युद्ध भूमि मे सेना का सचालन भी करता था। उनके सैनिक ताँबे के शीर्षत्राण पहिनते थे। उनके मुख्य हथियार भाला, धनुष बाण, तलवार आदि होते थे। वे लोग व्यूह बना कर युद्ध करते थे। पराजित लोगों को गुलाम बना लिया जाता था। कभी कभी वाह्य जातियो के आक्रमण का सामना करने के लिए सुमेर नगर राज्य संयुक्त हो जाते थे। परन्तु अधिकाशत आपसी द्वन्द्व मे ही लगे रहते थे।

सामाजिक सगठन—सुमेरियन समाज के तीन मुख्य वर्ग थे (१) उच्च वर्ग मे राजवंश के सदस्य उच्च राजकीय कर्मचारी, पुरोहित आदि थे (२) मध्य वर्ग मे व्यापारी तथा भूमिपति लागों की गणना होती थी (३) निम्न वर्ग मे दासो की गिनती थी जिन पर सारे समाज के उत्पादन का बोझा था। अन्य सभ्यताओ के समान सुमेर समाज म भी दासो की स्थिति शोचनीय थी इनके

अतिरिक्त समाज में सैनिक, विद्वान और कारीगर थे। दासों और स्वतन्त्र लोगों में बहुत कम अन्तर था। किन्तु गरीबों एवं धनियों का भेद अवश्य स्पष्ट था। समाज में पुरोहित का पर्याप्त सम्मान था, वे विद्या, बुद्धि और ज्ञान के खजाने समझे जाते थे। पुरोहित जनता को शिक्षा भी देते थे। मन्दिरों में स्थित शिक्षालयों का प्रबन्ध भी पुरोहित ही करते थे।

स्त्रियों की दशा—सुमेरिया के समाज में नारी का स्थान उच्च था उन्हें धन और सम्पत्ति पर निजी अधिकार प्राप्त था। पहले उन्हें तलाक का भी अधिकार प्राप्त था, किन्तु सभ्यता की पिछली शताब्दियों में उनसे यह अधिकार छीन लिया गया। स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भर न थी। अपितु उदर पूर्ति के लिए वे स्वतन्त्र व्यवसाय भी करती थी। व्यक्ति मनुष्य एक ही पत्नी रखते थे, किन्तु स्त्री के चरित्र पर सन्देह होने पर दूसरा विवाह भी कर सकते थे। पत्नी अपने पिता से पाये दहेज पर अधिकार रखती थी। बच्चों पर पति पत्नी दोनों का समान अधिकार था। कर्जा अदा करने के लिए पुरुष को अपने बच्चों एवं स्त्री को बेच देने का अधिकार प्राप्त था। मन्दिरों में भी स्त्रियाँ रखी जाती थीं। देवताओं के निमित्त कन्या दान करना अहो भाग्य माना जाता था।

रहन सहन—सुमेरियन निवासियों का रहन सहन अत्यन्त साधारण था। ये लोग ऊन तथा रुई के कपड़े पहिनते थे। लोग गेहूँ, जौ, मक्का आदि का प्रयोग करते थे अनाज हाथ से पीसा जाता था। और ईंट के चूल्हे पर रोटी पकाई जाती थी। खजूर तथा फल भोजन के अंग थे। यहाँ के निवासियों को खाद्य पदार्थों की बिल्कुल कमी न थी।

आर्थिक दशा—सुमेरियन निवासियों का मुख्य धन्धा खेती तथा पशुपालन था। अत्यन्त उर्वरा भूमि होने के कारण तथा पानी की प्रचुरता ने यहाँ के निवासियों का ध्यान कृषि कार्य की ओर ही आकृष्ट किया। सिचाई का प्रबन्ध उन्नत दशा में था। वे नदियों पर बाँध बनाकर नहरों का निर्माण करते थे। गेहूँ, जौ, दाल तथा सब्जी यहाँ की मुख्य पैदावार थी। बैलों से

खेती की जाती थी। कुछ विद्वानो का विचार है कि गेहूँ की खेती सर्वप्रथम इसी प्रदेश में हुई। ये लोग गाय, भेड़, बकरी सुग्रर, गधा आदि पशुओं को पालते थे। घोड़ों के प्रयोग से अनभिज्ञ थे। पुजारी लोग बोने एवं फसल काटने का शुभ मुहूर्त बतलाते थे। व्यापार के क्षेत्र मे सुमेर निवासियों ने अत्यन्त उन्नति की। वस्तुओं की अदला बदली से व्यापार होता था। सिक्कों का प्रचलन नही था। धनिक वर्ग सोने चांदी के टुकडो का प्रयोग करते थे। सुमेर में सोना चादी, पत्थर, आदि नहीं निकलता था, अतएव बाहर से आयात किया जाता था। सुमेरियन अपनी जरुरतो की वस्तुओ का आयात करते थे उनके बदले में औद्योगिक वस्तुएँ एवं सूती कपड़े चमड़े का सामान तथा भोजन की सामग्री देश के बाहर भेजते थे। व्यापार संबंधी ढङ्ग उनको विदित था बहुत से धनिक ब्याज पर ऋण देने का व्यवसाय करते थे जिसकी दर २९% से ३५%प्रतिशत होती थी। सुमेर निवासी स्थल एव जल मार्ग द्वारा मिस्र, चीन एव भारत जैसे सुदूर देशों से भी व्यापार करते थे। आवागमन के साधनों का यद्यपि अधिक विकास नही हुआ था, परन्तु सुविधा हेतु सड़कें एवं मार्ग बने हुए थे। ये लोग पहियेदार गाड़ियां एवं रथों से परिचित थे तथा इनके आविष्कार का श्रेय इनको है। व्यापार के अतिरिक्त ये अन्य कई प्रकार के व्यवसाय एवं उद्योग धन्धों से भी परिचित थे। जुलाहे, बढई, रंगरेज, स्वर्णकार, कुम्हार आदि छोटे घरेलू धन्धे करते थे। परन्तु ये लोग दक्ष कारीगर नही थे। लकड़ी, हाथीदात एव मिट्टी का कार्य अधिकता से होता था। मिट्टी पर सुन्दर चित्रकारी का कार्य किया जाता था। ये लोहे को छोड़कर अन्य धातुओं का प्रयोग जानते थे। धातुओं का प्रयोग हथियार एवं औजार बनाने में किया जाता था। अधिकतर औजार तांबे के ही होते थे। सूई एवं दूसरी पैनी व नुकीली वस्तुएँ हड्डीयों से बनती थी। कपड़े बुनाई का कार्य बड़े पैमाने पर होता था, एवं इसकी देख रेख के लिए राजा के बड़े कर्मचारी नियुक्त थे। खुदाई से हजारों की संख्या मे मिट्टी तथा धातुओं की बनी मुद्रायें प्राप्त हुई हैं जिन पर बने वर्णाक्षर सुमेरियन जन जीवन एव इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

लेखन कला— लगभग ४००० ई० पू० भी सुमेरियन को लेखन कला का ज्ञान था। इनको लेखन कला का आविष्कार करने का श्रेय प्राप्त है। यहाँ की लेखन कला चित्र लिपि के रूप में थी। वे लोग मिट्टी की ईंटों पर चित्र कुरेदते थे और फिर इनको धूप में सुखा देते थे जिससे कि वे सुरक्षित रहे। आगे आकर चित्रों से अक्षरों का बोध भी किया जाने लगा। इस प्रकार अक्षरों का विकास होने लगा। इनकी लिपी 'पच्चड़' लिपी कहलाती थी। लेखन शैली चिन्हों के रूप में थीं एक खास चिन्ह किसी घटना विशेष के लिए नियुक्त था। इस प्रकार के कुल ३३० संकेत थे।

स्थापत्य कला— इस कला में सुमेरियन निवासी पिछड़े हुए थे। पत्थरों के अभाव में मकान ईंटों के बनते थे। ईंटें पकाने की कला से ये लोग अनभिज्ञ थे तथा उनको धूप में सुखाते थे। मकान अधिक टिकाऊ नहीं थे। मकानों के दरवाजे लकड़ी के बनाये जाते थे जिनकी चूल्हे पत्थर की होती थी। उन्हें मन्दिर बनाने का भी शौक था। मुख्य मन्दिर के चारों ओर छोटी छोटी ईमारतें एवं आंगन बने हुए होते थे। महराब, खम्भों एवं गुम्बज का प्रयोग सबसे पहले सुमेरिया में ही हुआ। नाले एवं नहरें बनाने का ढंग भी पहले पहल इन्होंने ही अपनाया। बर्तनों एवं हथियारों पर सुन्दर नक्काशी का कार्य होता था। शिल्पी लोग उच्च वर्ग वालों के भवन बनाने में व्यस्त रहते थे जिन पर सजावट का कार्य बड़ा कलापूर्ण होता था। सुमेर निवासी मूर्ति कला में अधिक उन्नति न कर सके थे। मूर्तियां भोंडी एवं भद्दी होती थी जिनमें सौन्दर्य और कलात्मकता का सर्वथा अभाव था। मन्दिरों में देवताओं, वीरों और पशुओं की मूर्तियां रखी होती थी।

ज्ञान विज्ञान— सुमेरियन निवासियों ने वस्तुओं के वजन को तौलने के लिए माइना (Mina) नामक बाटों का आविष्कार किया। माइना को ६० भागों में बांटा गया। कुम्हार के चाक का आविष्कार सम्भवतः यहीं हुआ। ये लोग पहिले व्यक्ति थे जिन्होंने वैज्ञानिक ढंग से भाषा विज्ञान, गणित तथा

प्राकृतिक विज्ञान् का अध्ययन किया तथा उसका लेखा रखा। उन्होंने अनेक नक्षत्रों एवं उनका मानव जीवन पर क्या प्रभाव होता है उसका भी पता लगाया। सोने चांदी से वस्तुओं का मूल्य निश्चित करने का आविष्कार भी यहीं हुआ। लेखन कला की रचना के पश्चात् सुमेर निवासियों ने व्यापार सम्बन्धी लिखा पढ़ी की विधि चलाई। पुस्तकालय तथा पाठशालाओं की स्थापना की। गद्य पद्य रचना भी प्रारम्भ हुई। सौन्दर्यवर्धक अनेक उपादान भी सुमेर में प्रचलित थे। मन्दिर एवं महलों का निर्माण प्रारम्भ करने का श्रेय भी सुमेर निवासियों को है। वर्ष को सौर गणना अनुसार १२ महिनों में विभाजित किया तथा एक महीने में ३० दिन रखे। वर्ष के अन्तिम ५ दिन पांचवें वर्ष हर छटे वर्ष में एक मास जोड़ कर पूरा कर देते थे। वर्षों का नामकरण किसी प्रमुख घटना अथवा प्रसिद्ध व्यक्ति के नाम पर किया जाता था। जादू टोने में विश्वास होने से ये लोग औषधि विज्ञान में अधिक प्रगति (उन्नति) न कर सके खगोल और ज्योतिष विद्या की भी काफी उन्नति हुई।

धर्म—सुमेरिया वासी प्रकृतिपूजारी थे। सहस्त्रों देवी देवताओं को प्रकृति का प्रतिनिधि माना जाता था प्रत्येक जिग्गुरात में विचित्र शक्ल सूरत वाले देवी देवताओं की उपासना होती थी कृषि की उपज से सम्बन्ध रखने वाले देवताओं का समाज में अधिक आदर था, जैसे पृथ्वी, वायु, सूर्य। कनिष्ट देवता वायु होता था। निपुर में इसका सबसे बड़ा 'जिग्गुरात' था। सुमेरियन वासियों का विश्वास था कि देवताओं की कृपा से अच्छी फसल होती है एवं उनके प्रकोप से कष्ट होता है। जिग्गुरात ही इस काल के ज्ञान, साहित्य, कलाकौशल एवं शिक्षा के आधार अथवा केन्द्र होते थे। पुजारियों का समाज में बहुत आदर था जो शकुनों द्वारा भविष्य जीवन के विषय में जानने का दावा रखते थे। मन्दिरों में देवदासियों को रखने की प्रथा थी। देवताओं को प्रसन्न करने हेतु बलि भी दी जाती थी। यदा कदा नर बलि भी होती थी। स्वर्ग नरक के बारे में ये अनभिज्ञ थे। मुर्दों को जमीन में गाड़ते थे, शव के साथ उसकी

प्रिय वस्तुओं को भी दफनाया जाता था। उनकी ऐसी धारणा थी कि इससे मृत व्यक्ति प्रसन्न होगा। वे इस बात में भी विश्वास करते थे कि मृतक व्यक्ति की आत्मा अगर सन्तुष्ट नहीं हुई तो घर के चारो ओर भी चक्कर लगा सकती है।

- मानव सभ्यता की अनेक बातों में अग्रणी होते हुए भी सुमेर वालों ने एक सत्तावाद, दासता, सैनिक अत्याचार और पुरोहित सत्ता की नींव ही नहीं बल्कि उनको अत्यन्त सुदृढ़ बना दिया था। यद्यपि उनकी सभ्यता के इतिहास का पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं हो रहा है त भी यह निश्चित है कि इस सभ्यता का दौरदौरा तीन चार हजार वर्षों तक कायम रहा।

बेबीलोन

बेबीलोन सभ्यता के संस्थापक— बेबीलोन सभ्यता के निर्माता सुमेरिया के पश्चिमी और दक्षिणी भाग में रहने वाले सेमेटिक जाति के लोग थे। इनका मूल निवास स्थान अरब माना जाता है। सेमेटिक लोग एक जाति के न होकर अनेक जाति के थे। जिनमें आर्यों के समान अन्य जाति का मिश्रण था लगभग २८०० वर्ष ई० पूर्व से ही सेमेटिक लोगों का सुमेरियन निवासियों से संघर्ष होता आ रहा था तथा शनैः शनैः यह जाति (सेमेटिक) सुमेरियन का अनुकरण कर वहां बसने लगी थी। लगभग २५० वर्षों में सुमेरियन तथा अक्कादी लोगों में ऐसा मेल हो गया कि वे मिलकर बेबीलोन राज्य और सभ्यता के संस्थापक बन गये। किन्तु इस मिश्रित सभ्यता का पूर्ण विकास भी न होने पाया था कि अक्कादियों का पतन प्रारम्भ हो गया। राजनैतिक शक्ति सेमेटिकों की एक अन्य उपजाति 'एमोराइट' के हाथ मे चली गई। यह उपजाति सीरिया के ओर से आई और बेबीलोन पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस प्रकार २२०० वर्ष पूर्व अक्काद सुमेरिया राज्य का अंत हो गया और एक नये राजवंश की नींव पड़ी। इसी नवीन राजवश के प्रतापी भूप 'सुमुअबू' ने

बेबीलोन नगर को अपनी राजधानी बनाया, अतएव यह साम्राज्य बेबीलोन साम्राज्य कहलाया। इस वंश का प्रसिद्ध नरेश 'हमरब्बी' था जिसका शासन काल लगभग २१०० वर्ष ई० पूर्व माना जाता है। एमोराइट अक्कादियों की भांति पिछड़े हुए न थे। इन्होंने सुमेर और सेमेटिक संस्कृतियों और सभ्यता का मिश्रण कर एक नई सभ्यता और संस्कृति को जन्म दिया।

राजनैतिक व्यवस्था राजा स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश होता था। जो ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। असली शासक परमेश्वर को माना जाता था। पुरोहित एवं महाजनों का उस पर दबाव रहता था। राजा का मुख्य कर्तव्य प्रजापालन तथा धर्म, न्याय करना, विद्या और कलाकौशल की प्रगति करना था। राजा स्वयं अपना पदाधिकारी चुनता था। सारी भूमि राजा की होती थी एवं वह जिसको चाहता भूमि दे सकता था। राजकीय कार्य में पुरोहित, जमींदार, धनिक लोग राजा की सहायता करते थे। साम्राज्य अनेक अर्ध-स्वतन्त्र छोटे राज्यों या प्रान्तों में विभाजित था जिनका शासन स्थानीय परम्परा के अनुसार होता था। इस संगठित और शक्तिशाली साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक हमरब्बी था। उसने दक्षिण तथा उत्तरी बेबीलोन में बसे स्वतन्त्र राज्यों को जीता और एकता के सूत्र में बांध कर एक केन्द्रीय शासन व्यवस्था को प्रारम्भ किया। बेबीलोन नगर की खुदाई से हमरब्बी के ५५ पत्रों का संग्रह तथा शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि हमरब्बी निरंकुश शासक था और बड़ी कठोरता से शासन करता था। इन पत्रों में राज्य के विभिन्न विभागों के अफसरों को दिये शासन सम्बन्धी आदेश लिखे मिलते हैं; एक लम्बे शिलालेख पर हमरब्बी के कानून भी अंकित मिले हैं। हम सम्राट हमरब्बी को संसार का प्रथम कानून संग्रहकर्ता कह सकते हैं। इस संग्रह में २८० कानून थे। कानून की नजरों में गरीब एवं अमीर का कोई भेद नहीं था, सभी समान समझे जाते थे। हमरब्बी के उपलब्ध पत्रों तथा कानूनों से विदित होता है कि बेईमान न्यायाधीशों एवं भ्रष्ट उच्च कर्मचारियों को भी सजा देने के स्पष्ट नियम थे।

न्याय प्रबन्ध—न्याय करने के लिए प्रत्येक नगर में एक न्यायाधीश होता था जिसको 'रबीमनु' के नाम से जाना जाता था। वह अपने क्षेत्र में शान्ति एव रक्षा के लिए उत्तरदायी होता था। चोरी तथा डाके का माल बरामद करवाना भी उसी का कार्य था। रविमनु की सहायता के लिए प्रमुख व्यक्तियो की एक छोटी समिति थी। मुख्य न्यायाधीश को 'शकनक्कू' कहते थे। रविमनु के फैसले की अपील 'शकनक्कू' के पास की जाती थी। मुख्य न्यायाधीश के सहायतार्थ भी ६ या १० व्यक्तियो की एक समिति होती थी। अन्तिम अपील राजा के पास की जाती थी। न्यायालयो में घूस ली जाती थी तथा अपराधियो को देवता की शपथ दिलाई जाती थी।

न्याय प्रतिशोध के सिद्धान्त पर आधारित था। प्राणदण्ड साधारण बात थी। व्यभिचारी स्त्री व पुरुष को मृत्यु दण्ड मिलता था। भागने वाले दास को शरण देना अपराध था। अपहरण, डकैती, चोरी, बलात्कार, वर्जित सहवास, जहर देना, दूसरो के गुलामो को छिपाना, शत्रु के सामने कायरता, अपने पद का दुरुपयोग, शराब विक्रय नियमो का उल्लघन करना आदि अपराधो के लिए प्राण दण्ड दिया जाता था। सत्य असत्य का निर्णय जल परीक्षा अथवा शपथ से किया जाता था। जायदार के अधिकार, लेन-देन, सूद आदि के भी नियम बने हुए थे। कुछ अ श तक वस्तुओ के मूल्य, वेतन व महन्ताना भी नियन्त्रित होते थे। हम्मुरबी के कानून संग्रह के अनुसार यदि किसी कारीगर की लापरवाही से मकान गिर जाय और मकान मालिक का पुत्र दब कर मर जाय तो उसको अधिकार था कि वह राज्य द्वारा कारीगर के पुत्र को मृत्यु दण्ड दिलवा दे। नहरो को खराब करने वालो को कडी सजा दी जाती थी। घूस लेने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था। महाजन तथा साहूकारो से किसान की रक्षा की जाती थी। ऋण लेने वाले के साथ उदारता का व्यवहार किया जाता था। अधिक ब्याज लेने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था।

सामाजिक व्यवस्था—बेबीलोन का समाज पाच श्रेणियो में विभक्त

था। सर्वोच्च श्रेणी में धर्मरक्षक अथवा पुरोहित होते थे, दूसरी श्रेणी मे योद्धागण, तृतीय श्रेणी में धनिक तथा व्यापारी वर्ग, चतुर्थ श्रेणी में साधारण निर्धन लोग एवं पांचवी श्रेणी में गुलाम अथवा दास होते थे।

उपरोक्त सामाजिक वर्गीकरण के अतिरिक्त कानून की दृष्टि से भी समाज के तीन मुख्य वर्ग थे। प्रथम वर्ग के लोग 'अमूल कहलाते थे जो अपने ऊपर किये गये शारीरिक आघातों का प्रतिकार कर सकते थे, किन्तु यदि वे स्वयं कोई अपराध करते तो उन्हें कड़ा दण्ड दिया जाता था। दूसरा वर्ग मजदूर, कारीगर, व्यापारी, शिक्षकगण व दरबारी लोगों का था जो 'मुश्किनु' कहलाता था। इनको जायदाद और गुलाम रखने की अनुमति थी, किन्तु हथियार नही बाध सकते थे। इन्हें शारीरिक हानि के बदले में केवल रुपया ही मिल सकता था। अपराध करने पर इनके कोड़े भी मारे जा सकते थे। तीसरी श्रेणी 'अरदू' कहलाती थी, इसमें अधिकांश दास तथा युद्ध बन्दी या अपहरण किये हुये व्यक्ति होते थे। इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय होती थी। दास अमीरों की निजी सम्पत्ति के रूप में थे। उनसे नहरों, सड़कों तथा सेनाओं में बेगार ली जाती थी। गुलामों को उनके स्वामी गिरवी रख सकते थे या बेच सकते थे। अधिक लाभ की सम्भावना होने पर दास को मार भी दिया जाता था। कुछ परिस्थितियों में दास स्वतंत्रता भी प्राप्त कर सकते थे। राज्य में भी गुलामों की संख्या काफी अधिक थी। पहिचानने के लिये गुलामों को दाग दिया जाता था। आगे चल कर इनके लिये मिट्टी के विशेष चिन्ह बांधना अनिवार्य कर दिया गया था।

परिवारिक जीवन—बेबीलोन का गृहस्थ जीवन व्यवस्थित था। कुटुम्ब में माता पिता का स्थान सर्वोच्च था तथा उन्हें अपनी सन्तान पर पूर्ण अधिकार था। रुष्ट होने पर सन्तानों के साथ माता पिता गुलामों सा व्यवहार कर सकते थे और उत्तराधिकार छीन सकते थे। लड़के लड़कियों को पिता के आदेशानुसार विवाह करना पड़ता था। मृत्यु उपरान्त माता पिता की सम्पत्ति

व जायदाद उनके पुत्र पुत्रियों में बराबर बांट ली जाती थी। विधवा स्त्री को भी बराबरी का हिस्सा प्राप्त होता था।

समाज मे कानूनी विवाह भी होते थे जिनमे गवाहों के सामने कानूनी तौर से नाम दर्ज करने मात्र से ही विवाह हो जाता था। विवाह के पश्चात् वधु का श्वसुर के घर रहना कर्त्तव्य समझा जाता था। सगाई होने पर यदि लडका विवाह न करे तो लड़की का पिता नजराने की रकम हड़प सकता था तथा लड़की इन्कार करे तो उसके पिता को दूनी रकम देनी पड़ती थी। कानूनी विवाह के पूर्व कभी कभी ट्राइल मैरिज भी होती थी।

स्त्रियों की दशा— समाज मे स्त्रियों का सम्मान होता था। प्रायः लोग एक ही विवाह करते थे। यद्यपि कभी २ स्त्री के बांझ, पागल या दुष्ट स्वभाव वाली होने पर पुरुष दूसरी स्त्री रख सकता था। विवाह जीवन भर का एक पवित्र बन्धन माना जाता था, परन्तु स्त्री और पुरुष दोनों को तलाक देने का भी अधिकार था। पति के अत्याचारी होने पर पत्नी अपना माल धन व दहेज लेकर पिता के घर चली जाती थी। दीर्घकाल तक रोगी रहने पर पुरुष पत्नी का त्याग कर सकता था। व्यभिचारिणी स्त्री को मीनार से ढकेल दिया जाता था। जीविका का उचित प्रबन्ध न होने पर युद्ध में गये या व्यापार के लिए विदेश गये पुरुष की पत्नी दूसरा विवाह कर सकती थी। दास स्त्रियों से भी विवाह कर सकते थे परन्तु उन्हें पत्नी के पूर्ण अधिकार प्राप्त नही होते थे। उच्च श्रेणी की अविवाहित नारियां व्यापार कर सकती थीं तथा मन्दिरों मे पुजारिन बन सकती थी। स्त्रियों की दिनचर्या साधारणतः बच्चों को पालना, घर की सफाई करना, जल भरना, भोजन बनाना, अनाज पीसना तथा बुनना इत्यादि थी। पर्दे की प्रथा थी। धनिकों की स्त्रियां जनानखाने मे रहती थी तथा उनकी सेवा के लिये 'खोजा' रहते थे।

आर्थिक जिवन— लोगो का मुख्य धन्धा खेती था। गेहूँ बहुतायत से पैदा किया जाता था। ये लोग फलों तथा मेवे की खेती भी करते थे। खजूर,

बतून, अंगूर आदि की खेती होने के प्रमाण भी मिले हैं। अंगूर व सेव से चीनी व शराब बनाई जाती थी ताड़ व खजूर के पत्तों से रस्से व मकान बनाने की सामग्री बनती थी। ये लोग लगभग साठ प्रकार की साग तरकारियाँ उपजाते थे। राज्य की ओर से सिंचाई के लिये नहरों का प्रबन्ध था। पशु पालन तथा दूध का धन्धा विकसित दशा में था। वहां के लोग गधे, ऊँट, भैंस, बैल, बकरी, कुत्ते और चिड़िया पालते थे। घोड़े के प्रयोग से भी ये लोग अनभिज्ञ न थे। जंगली जानवरों का भय रहता था। मन्दिर मे भी पुजारी पशु पालते थे।

कृषि प्रधान देश होते हुए भी यहां के निवासियों ने उद्योग धन्धो में पर्याप्त उन्नति कर ली थी। भूगर्भ से तेल, तांबा, शीसा, लोहा, सोना आदि खोद निकाला गया था। इन धातुओं से हथियार, औजार, आभूषण आदि बनाये जाते थे। सूती एवं ऊनी कपड़े बुने जाते थे। ऊनी कपड़ों का अधिक चलन था। रंगाई एवं बेल-बूटो का काम बहुतायत से होता था। मिट्टी के बर्तन, कुर्सी, आदि बनाये जाते थे। जुलाहे, रंगरेज, सुनार, बढ़ाई, मूर्तिकार, दर्जी आदि के उल्लेख वहां के लेखो मे मिलते है। कुछ उद्योग धन्धो के संघ बने हुए थे। कुछ धन्धे बड़े पैमाने पर चलते थे। और उनके कारखाने भी बन गये थे। जिनका संचालन राज्य तथा मंदिरों द्वारा होता था। दासों से दस्तकारी आदि में सहायता ली जाती थी। नगर का व्यापारिक जीवन उन्नत दशा मे था आन्तरिक व्यापार पशुओं व बैल गाड़ियों के द्वारा होता था। विदेशी व्यापार पूर्व मे भारत तथा पश्चिम मे मिस्र और भूमध्य सागरीय प्रदेशो तक फैला हुआ था। बाहर से आने वाली वस्तुओं मे मुख्यतः कच्ची धातु, देवदारु, अखरोट और मकान बनाने का सामान थे। अन्न. वस्त्र, सूखी मछली और धातुओं का सामान निर्यात होता था। सिक्को का प्रचलन न होते हुए भी सोने के कई किसम और वजन के टुकड़ों को लेन देन के काम में लाया जाता था। सबके छोटा टुकड़ा 'शकल' कहलाता था। ६० शकलो का एा 'मीन' और ६० मीनाओं का एक 'टैलेन्ट' होता था। व्यापारिक कार्यों के लिये इकरारनामा

लिखा जाता था जिसकी आधुनिक ढङ्ग पर रजिस्ट्री होती थी तथा उल्लंघन करने पर दण्ड दिया जाता था। क्रय-विक्रय के मामले गवाहों के सामने होते थे। प्रायः वस्तुओं का मूल्य और सूद की दर राज्य की ओर से निश्चित की जाती थी। बैंकों के अभाव में सेठ साहूकार २०% सालाना की दर से ऋण दिया करते थे।

निर्माण कला—भवन प्राय. ईंटों के बनाये जाते थे। मकान झाड़ की टट्टियों से दीवारों को छा कर बनाये जाते थे। दीवारों पर कई रंगों से सजावट करने के लिए रंगीन चीनी के टुकड़ों को लगा देते थे। नगर निर्माण कला उत्कृष्ट थी। हेरोडोटस के मतानुसार बेबीलोन नगर के चारों ओर चौड़ी और गहरी जल से भरी हुई खाई थी और दो सौ हाथ ऊँची पचास हाथ चौड़ी दीवार थी। नगरके परकोटे में चौखटे सहित सौ पीतल के द्वार बने हुए थे। शहर में मकान प्रायः दो तीन मंजिल के होते थे। मंदिरों के निर्माण में बेबीलोन वाले विशेष निपुण थे। बादशाह के महल, किले, कचहरियाँ और ऊंचे जिग्गुरात नगर के मध्य में बने हुए थे। मन्दिरों एवं भवनों में महराब बनाई जाती थीं। स्तम्भों का प्रयोग नहीं होता था। भग्नावशेषों से प्रकट होता है कि 'उर' नगर में एक जिग्गुरात ६५७ फीट ऊंचा था, एक ३५० फीट ऊंची मीनार भी मिली है।

ललित कला—इनकी चित्र कला व मूर्ति कला अधिक कलात्मक नहीं थी। इनकी मूर्तियों में स्पष्टता, सौन्दर्य और आकर्षण का सर्वथा अभाव था इन मूर्तियों में शरीर का आकार विशाल और भारी होता था। चित्रकारी यहां मन्दिरों और स्मारकों में केवल सजावट के लिये होती थी। अतः इस कला का स्वतन्त्र रूप से विकास नहीं हुआ। चित्रों में प्रायः सुन्दरता का अभाव रहता था। चित्रों के विषय धार्मिक एवं काल्पनिक पशु-पक्षी, प्राकृतिक दृश्य आदि होते थे।

संगीत—संगीत का खूब विकास हुआ था। मन्दिरों तथा धनी परि

थारों में गाना बजाना होता था बांसुरी, बीन, मशक, बाजा, तुरही, भोंपू, ढोल, वीणा, मजीर और खंजरी आदि वाद्य यन्त्रों के चिन्ह मिले हैं।

शिक्षा-और साहित्य—शिक्षा का बेबीलोन समाज में बहुत महत्व था। एक प्राचीन कहावत (बाबुली) में कहा गया है कि 'जो पट्टी पर लिखने में दक्ष होगा वह संसार में सूर्य की भांति चमकेगा'। शिक्षा प्रायः मन्दिरों में दी जाती थी। 'नबू' विद्या का देवता माना जाता था। ये लोग मिट्टी की स्लेटों पर धातु की कलमो से लिखते थे। तथा लिखित पंक्तियों को पत्थर या लकड़ी के टुकड़ों से रगड़ कर मिटा भी सकते थे। प्रत्येक पाठशाला में छात्रों को लिपि सम्बन्धी ३५० चिन्हों का पूर्ण बोध कराया जाता था। बेबीलोन निवासियों ने प्रारम्भ से सुमेरियन लेखन कला को ही अपनाया तथा कालान्तर में उसका काफी विकास किया। पट्टियों पर लिखी पुस्तककार अनेक साहित्य रचनायें मिली हैं, जिनमें महाकाव्यों तथा दन्तकथाओं का विशेष रूप से समावेश था। उन लोगों में प्रचलित सृष्टि रचना एवं महा. प्रलय की एक कहानी चट्टान पर खुदी हुई प्राप्त हुई है। इसी प्रकार की अनेक बेबीलोन गाथायें एक महाकाव्य में संग्रहीत है जिसे 'गिलगमिश' के नाम से जाना जाता है। इस महाकाव्य मे मानव जीवन के संघर्षों का सजीव वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त पूजा, गीत और उपदेशों के रूप में बहुत सा साहित्य मिलता है। बेबीलोन वालों की भाषा सुमेरियन तथा सेमेटिक भाषाओं के मिश्रण से बनी थी। उसको समझने के लिये उन्होंने अनेक प्रकार के कोष एवं व्याकरण का भी निर्माण किया था। इनको शब्द कोष और भाषा विज्ञान के प्रणेता माना जाता है।

विज्ञान—कला की अपेक्षा बेबीलोन निवासियों ने विज्ञान के क्षेत्र मे विशेष प्रगति की। चन्द्रमा और अन्य ग्रहों व नक्षत्रों की गति-विधि जानकर ये लोग भविष्य की घटनाओं को भांक लेते थे। लोग भविष्य जानने के लिये उत्सुक रहते थे। बलि दी गई भेड़ के जिगर पर अंकित रहस्यमय चिन्हों, तथा नक्षत्र और सितारों की गति से भविष्य की घटनाओं को बताने का पुरोहित दावा

करते थे। जमीन का क्षेत्रफल निकालने की विधि भी इन्हें ज्ञात थी। इस प्रकार यहां खगोल विद्या का खूब विकास हुआ। गणित के क्षेत्र में भी इन्होंने उल्लेखनीय उन्नति की। गणना के लिए सौ, दस, एक, इन तीन अंक का आविष्कार किया। आधा, तिहाई और चौथाई का भी इन्हें ज्ञान था। चन्द्र-गण गणना के अनुसार इनका साल कभी १२ महीनों का तो कभी १३ महीनों का होता था। उनके छः महीने ३१ दिन के एवं छः महीने २८ दिन के होते थे। वे चार सप्ताह का एक महीना एवं सात दिन का एक सप्ताह मनाते थे। समय जानने के लिए वे लोग जल-घड़ी और धूप-घड़ी का प्रयोग करते थे। नाप तोल के विधान भी उन्हें मालूम थे। चिकित्सा के क्षेत्र में वनस्पति और जड़ी बूटियों के अलावा तेल और आसव का प्रयोग करते थे। मंत्रादि से भी चिकित्सा की जाती थी।

धार्मिक दशा— बेबीलोन में अनेक देवी देवताओं की आराधना होती थी। इन लोगों ने सुमेरियन वासियों के कई देवताओं के नाम बदलकर अपना लिये थे। इनका मुख्य देवता 'मार्डुक' था। देवियों में 'इश्टर' देवी विशेष रूप से पूजी जाती थी। वह युद्ध एवं प्रेम दोनों की ही देवी थी। अनेक देवताओं को पूजने वाली बाबुलियनों ने कभी एक परमेश्वर की कल्पना नहीं की। देवताओं के लिये देव गृह बनाये जाते थे। प्रत्येक मन्दिर में कई देवताओं की मूर्तियों के होते हुए भी केवल एक देवता प्रमुख होता था। वे देवताओं की चेष्टा एवं वासनायें मनुष्य सी मानते थे। मंदिरों में देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिये पशु बलि दी जाती तथा अनेक गवैये, वाद्य बजाने वाले, देव दासियां आदि रखे जाते थे। इन्हीं की आड़ में वेश्यायें और मदिरा बेचने वाली अपना कुत्सित व्यवसाय भी करती थीं। धनिक मंदिरों को बड़े-बड़े दान देते, जिस धन से पुरोहित लोग व्यापारादि करने लगे एवं जनता और राजा पर अपना रोब रखने लगे। बड़े-बड़े राजा एवं धनी लोग अपनी पुत्रियों को देवता को समर्पित कर देते थे। बेबीलोन वाले देवताओं से इसी संसार और

जीवन में सुखों की कामना करते थे । स्वर्ग में उनका विश्वास न था। वे मानते थे कि मरने पर लोग पृथ्वी के नीचे अन्धकारपूर्ण लोक में हाथ पैर बांधे पड़े रहते थे । अतः अपने वंशजों से श्राद्ध की सामग्री पाने के लिये भी वे लालायित रहते थे। बेबीलोन में प्रत्येक स्त्री को एक बार मन्दिर में आकर किसी अपरिचित व्यक्ति से काम सिद्धि करनी पड़ती थी।

बेबीलोन वासी सृष्टि की उत्पत्ति जल तत्व से मानते थे। नियति एवं देवी इच्छा में इनका दृढ़ विश्वास था। इनकी आराधना में भक्तिभाव की प्रधानता थी। देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए ये लोग भावमय स्तुतियां और गीतों की रचना करते थे। मन्त्र-तन्त्रादिक क्रियाओं मे इनका पूर्ण विश्वास था और पाप व रोग का शमन करने के लिए ऐसी अनेक क्रियायें करते थे। व्यभिचार को पाप समझा जाता था, परन्तु पतन काल में इसमें काफी वृद्धि हो गई थी।

बेबीलोन साम्राज्य का पतन--बेबीलोन का यह प्राचीन साम्राज्य हमरब्बी की मृत्यु के साथ ही छिन्न-भिन्न हो गया। उसके उत्तराधिकारियों में एक भी योग्य एवं शक्तिशाली न था, अतः शासन अव्यवस्थित होता गया। इस साम्राज्य की निर्बलता देखकर अनेक सेमेटिक जातियों ने इस पर आक्रमण किये जिनमें केसाइट, हिराइट और असीरी जाति के लोग थे। ये आक्रमण जातियां युद्ध प्रणाली मे अधिक पटु और बलशाली थी। अतः इनके आक्रमणों को बेबीलोन वाले न रोक सके। फलस्वरूप ईसा के लगभग ११०० वर्ष पूर्व असीरिया वालों ने बेबीलोन वालों की प्रभुता का अन्त कर अपना साम्राज्य स्थापित किया।

असीरिया

असुर साम्राज्य का उत्कर्ष—बेबीलोन से लगभग ३०० मील उत्तर की ओर दजला नदी के तट पर ईसा से ३५०० वर्ष पूर्व सुमेरियन लोगों ने

'असुर' नामक देवता की एक पहाड़ी चट्टान पर स्थापना की। कालान्तर में यहां एक बड़ा नगर बस गया, जिसका नाम भी 'असुर' पड़ा। इसी नगर के नाम पर आगे चल कर यहा के साम्राज्य का नाम भी 'असीरिया' हो गया। सुमेरिया वालो के क्षीण हो जाने पर वहां क्रमश: मित्तानी आदि अन्य जातियो के लोग आकर बस गये। किन्तु ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व से सेमेटिक जाति का यहा अधिक प्राबल्य रहा। सेमेटिक जाति के ये लोग बहुत वीर, युद्ध-प्रिय तथा क्रूर थे। बेबीलोन साम्राज्य के क्षीण होने पर असुर लोग मेसोपोटामिया के उत्तरी हिस्से में आये तथा ईसा के ११०० वर्ष पूर्व उन्होने बेबीलोन पर आक्रमण कर उसे जीत लिया और एक नवीन साम्राज्य की नींव डाली। असीरिया वाले बड़े लडाकू थे। इन्होंने युद्धो में लोहे, घोडों एवं रथों का प्रयोग सीख लिया था, इसी कारण समस्त पश्चिमी एशिया इनसे भयभीत रहता था। इन लोगों का लक्ष्य भी समस्त पश्चिमी एशिया के प्रदेशो पर अधिकार करना था। किन्तु लगभग ४०० वर्षों तक ये लोग अधिक प्रगति नही कर सके। असुरो का वास्तविक उत्थान दवीं शताब्दी ई० पूर्व में ही हुआ, जब इन्होने सीरिया, इजराइल, फिनीशिया एलाम तथा मिस्र साम्राज्य के कई भागो पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस विस्तृत साम्राज्य की स्थापना करने का श्रेय इनके नेता 'टिगथल पिलसेर तृतीय' तथा 'सारगन द्वितीय' को है। सारगन द्वितीय तथा उनके पुत्र 'सेनाकरिब' के शासन काल में असीरिया अपनी शक्ति की चरम सीमा पर था। सेनाकरिब ने केल्डिया, बेबीलोनिया और यहूदियों का दमन किया। सेनाकरिब का पोत्र असुर-बनी-पाल भी बड़ा पराक्रमी एवं योग्य शासक था। उसने ई० पूर्व ६६८ से ६२६ तक राज्य किया। यह समय असीरिया के इतिहास का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। यह राजा प्रसिद्ध विजेता होने के साथ-साथ विद्या-प्रेमी और विद्वानों व कलाकारों का आश्रय-दाता भी था।

शासन व्यवस्था—यह विशाल साम्राज्य हिंसा एवं सैनिक बल पर ही आधित था। इनके पहिले इतनी विशाल और युद्धकुशल सेना का निर्माण कोई

नहीं कर सके थे। इनका साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों अथवा स्वतन्त्र नगर राज्यों का समूह मात्र न था। इस सम्पूर्ण विस्तृत प्रदेश पर एक ही केन्द्र से राजा शासन करता था जो (सूर्य) का पुत्र अथवा अवतार माना जाता था। प्रत्येक कार्य के लिए राजा देवता की अनुमति पूछता था तथा सारे सैनिक और असैनिक कार्यों का संचालन करता था। राजा के अधिकार असिमित और अनियन्त्रित होते थे। राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना 'असुर' को रुष्ट करने के समान पाप माना था। राजा को कर देना, उसकी आज्ञा पालन करना तथा उसके लिए युद्ध करना प्रजा का धर्म था।

साम्राज्य कई प्रान्तो मे विभक्त था। जिसका शासन प्रबन्ध राजा द्वारा नियुक्त गवर्नर करते थे। इन गवर्नरो के दर्जे भी निश्चित होते थे तथा उनकी सहायता के लिए पदाधिकारी होते थे। कर वसूल करना और सैनिक भर्ती करना इत्यादि गवर्नरों के मुख्य कर्तव्य थे। प्रान्त जिलो में विभक्त होते थे। जिलो के हाकिम हकनू कहलाते थे। प्रान्तो तथा दूरस्थ स्थानों की सूचना जासूस निरन्तर राजा के पास भेजा करते थे। राज्य का शासन सुसंगठित और व्यवस्थित था। सम्पूर्ण शासनाधिकार सम्राट के हाथो मे केन्द्रित होता था। विद्रोह का दमन बलपूर्वक किया जाता था। जनसाधारण के हित के लिए डाक चौकियो की अच्छी व्यवस्था थी। शासन सम्बन्धि समाचार डाक द्वारा राजा के पास भेजने की व्यवस्था थी।

देव मन्दिर न्यायालयो का कार्य देते थे, वहां छोटे मोटे झगड़ो का निर्णय पुजारी करते थे। समाज मे कानूनो का आदर था। नियम काफी कठोर थे असीरिया के न्यायालय मे जज होते थे जो 'सारतैम' कहलाते थे। मुकदमो के फैसले सीधे न्यायालय में ही होते थे। गवाहो को शपथ खानी पड़ती थी। झूंठी शपथ खाने पर जबान काट ली जाती थी, अथवा मृत्यु दण्ड दिया जाता था। अपील की प्रथा थी। दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार की अपील राजा के पास जाती थी। असीरिया का दन्डविधान क्रूर व हिंसात्मक

था। वेगार लेने तथा कोड़े मारने की सजा दी जाती थी। छोटे-छोटे अपराधों के लिए नाक काट लिए जाते थे। अङ्ग विच्छेद के अलावा जहर देना, पानी में डुबोना, जीवित जला देना आदि दन्ड देने का विधान था। जेलों में कठोर यातनायें दी जाती थी। व्यभिचारी तथा चोरों को प्राण दण्ड तक दिया जाता था। इतनी कठोर व्यवस्था होते हुए भी कुछ न कुछ उपद्रव होते रहते थे, जो इस राज्य के विनाश का मुख्य कारण बने।

सैनिक व्यवस्था - असीरिया की शक्ति का मुख्य आधार सेना थी सेना मे धार्मिक जोश और जातीय उत्साह के साथ-साथ समुचित संगठन और युद्ध कौशल भी उच्चकोटि का था। असीरिया के प्रत्येक युवक के लिए सेना में प्रवेश लेना आवश्यक था। कृषकों को भी संकट के समय सैनिक कार्य करना पड़ता था। लूट के माल का एक निश्चित भाग सैनिकों में बाट दिया जाता था जिससे उनमें उत्साह कम न हो। सेना में (१)अश्वरोही(२)रथा रोही और (३) पैदल वर्ग थे। सम्पूर्ण सेना दस दस और पचास २ के जत्थो मे श्रेणीबद्ध थी। ये लोग कई प्रकार के हथियार प्रयोग करते थे। संसार में सर्वप्रथम इन लोगो ने ही लोहे के हथियारों का प्रयोग किया तथा युद्ध के लिए घोड़ो को शिक्षित किया। इनके प्रधान अस्त्र शस्त्रों में लोहे का भाला, बर्छी, तीर, कमान, घेरा डालने के यन्त्र आदि प्रमुख थे। अस्त्रों द्वारा दीवरो को तोड़ना, सुरंग लगाना आदि का इन्हे अच्छा ज्ञान था। युद्धकाल में रसद आदि का प्रबन्ध सरकार करती थी। पराजित शत्रुओ के साथ बडी निर्दयता का व्यवहार किया जाता था, उन्हें गुलाम बनाना, देवताओ के सम्मुख बली दे देना, शारीरिक दण्ड देना तथा रक्तपात करना असीरिया वालो के लिये साधारण सी बात थी।

सामाजिक जीवन— असीरिया का समाज दो भागो मे विभक्त था— एक स्वतन्त्र और दूसरा गुलाम। स्वतन्त्र समुदाय की निम्न तीन श्रेणियाँ थीः (१) सामन्त (२) उम्मानी (कारीगर) और (३) सर्वसाधारण। राज्य की

सारी शक्ति सामन्त वर्ग के हाथ में रहती थी। इन्ही लोगों मे से शासक, धर्माधिकारी तथा सेनापति नियुक्त होते थे। कारीगर तथा अन्य उद्योग धन्धे में लगे लोग 'उम्मानी' कहलाते थे। ये लोग अपने वंशानुगत पेशो में लगे रहते थे। इस वर्ग में साहूकार, बढ़ई, कुम्हार आदि की अनेक श्रेणियां बनी थी जिनका अपना स्वतन्त्र संघीय संगठन होता था। तीसरे वर्ग के लोग या तो खेती करते थे या सेना मे भर्ती होते थे। सर्वसाधारण वर्ग प्रायः निर्धन होता था।

समाज के विभिन्न कार्यों में गुलामों की उपयोगिता को ध्यान में रख-कर उनके साथ निर्दयता पूर्ण व्यवहार नही किया जाता था। उन्हें जायदाद रखने का अधिकार प्राप्त था, तथापि उनसे बेगार और सस्ती मजदूरी ली जाती थी। कानून की दृष्टि से उनके अधिकार नहीं के बराबर थे।

स्त्रियों की दशा—असुर समाज में स्त्रियों को अधिक सम्मान व स्वतन्त्रता प्राप्त न थी। पर्दे की प्रथा प्रचलित थी। विवाहित स्त्रियों को बाहर आने जाने की स्वतन्त्रता बिल्कुल नही थी। पतिव्रत धर्म का पालन करना पत्नी का परम कर्तव्य माना जाता था। राजा के अन्तःपुर में अनेकों स्त्रियां रहती थी जो पराधीनता पूर्ण जीवन व्यतीत करती थी वैश्यावृत्ति का समाज में प्रचलन था तथा राज्य की ओर से उन पर नियन्त्रण रखा जाता था। वैश्यायें घूंघट नही निकाल सकती थी। कन्याओं का क्रय-विक्रय होता था। बहुधा विवाहित स्त्रियां भी अपने पितृ गृह पर ही रहती जहाँ उनका पति उनसे मिल जाता था। व्यभिचार करने, चोरी करने, पति की बिना आज्ञा व्यापार करने वाली स्त्रियों को प्राण दण्ड दिया जाता था। यह सब होते हुए भी उच्च वर्ग की स्त्रियों के लिए राजनैतिक क्षेत्र मे उन्नति का मार्ग बन्द न था। 'सम्मूरमत' और 'नकीया' नामक रानियों ने शासन संचालन भी किया। श्रेष्ठ वर्ग की नारियां गवर्नर भी नियुक्त की जा सकती थी।

शिक्षा और साहित्य—इनकी विशेष उन्नति नही हुई। मन्दिर शिक्षा

का केन्द्र था जहाँ बालकों को शिक्षा दी जाती थी। पुजारी लोग ही अध्यापकों का काम करते थे। विद्यार्थियों को पूजा विधि, वनस्पति शास्त्र तथा पदार्थ विज्ञान आदि की शिक्षा दी जाती थी। अक्षरों की रचना को सरल एवं सुन्दर बनाने का प्रयत्न भी किया गया था। इसका सबसे प्रसिद्ध कार्य पुस्तकालयों का संस्थापन और प्राचीन साहित्य का संरक्षण करना था। असुरबनिपाल ने मिट्टी की तख्तीयों पर खुदी हुई पुस्तकों का संग्रह कर एक बड़ा पुस्तकालय बनाया था जो एशिया का सर्वप्रथम पुस्तकालय था। इसमें २२ हजार मिट्टी की पट्टियां थी जिन पर उनके साहित्य, धार्मिक तथा वैज्ञानिक विचार खुदे हुये थे। ये पट्टीयां अब भी लन्दन के म्यूजियम में सुरक्षित हैं।

स्थापत्य कला—ये स्थापत्य कला एवं वास्तु कला के बड़े प्रेमी थे। भवनों में बड़ी भव्य और ऊँची महराबों का प्रयोग किया जाता था। बड़ीबड़ी मूर्तियां व अन्य शिल्पी कलाओं से सुसज्जित महराबदार फाटक इन भवनों की विशेषता होती थी। जो अन्य किसी प्राचीन सभ्यता मे नही मिलती। राज्य-प्रसादों के मुख्य द्वारों पर पशुओं की भीमकाय मूर्तियां बनाने में ये लोग बड़े दक्ष थे। छतों एवं दीवारों पर प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों से सजावट की जाती थी तथा नक्काशी का काम बहुत होता था। ये लोग ईंटों, पत्थरों, और संगमरमर का प्रयोग करते थे। महल प्रायः दो तीन मंजिल के बनते थे। पत्थर पर भी खुदाई का बड़ा सुन्दर कार्य होता था।

ललित कलायें—असीरिया निवासियों की ललित कला मे भी काफी रुचि थी। ये लोग मानव आकृतियों की अपेक्षा पशुओं का चित्रण अधिक सुन्दर सजीव और सही अनुपात में करते थे। मानव आकृतियों के सिर लम्बे, गर्दन तंग और लम्बी दाढ़ी बनाते थे। सैनिक जीवन के दृश्यों को चित्रों एवं मूर्तियों में अंकित किया जाता था। कलाकार प्रायः सिंह, गधे, बकरे, कुत्ते, हिरन, आदि के शिल्प चित्र बनाने में बड़े दक्ष थे। पंख युक्त नृसिंहाकार मूर्तियां भी बनाई जाती थी।

धार्मिक जीवन—असीरिया की सैन्य प्रधान सभ्यता मे धर्म का काफी महत्व था। इनका मुख्य देवता 'असुर' था परन्तु 'मार्दुक' तथा 'इश्टर' की भी उपासना होती थी। असुरो की प्रमुख देवी 'नीना' थी जो प्रेम की अधिष्ठात्री मानी जाती थी। इसके अतिरिक्त अन्य देवता भी होते थे जिन्हें जादू एवं मन्त्रो द्वारा प्रसन्न किया जाता था। युद्ध में विजयी होने के पश्चात 'असुर' को प्रसन्न करने के लिए काफी बन्दियों की बली दी जाती थी। पैशाचिक शक्ति और दान में उनका विश्वास था। भूत प्रेतो को दूर करने के लिए अनेकों मन्त्र और टोटकों का प्रयोग किया जाता था तथा आत्म रक्षार्थ तावीज यन्त्र बाँधे जाते थे। ये लोग शुकुन में भी विश्वास रखते थे। देवताओं का सदा इनको भय बना रहता था और उन्हें प्रसन्न करने के लिए ये अनुष्ठान और प्रार्थना किया करते थे। इन लोगो का विश्वास था कि मृत्यु के पश्चात आत्मा 'नरगा' और 'अलाग के राज्य में प्रवेश करती है। 'अलाट' नामक राक्षसी इनके द्वार पर खडी रहती है जो दूषित आत्माओ को यातना देती हैं। ये लोग धार्मिक विचारो में बडे कट्टर थे और उनकी रक्षा के लिए क्रूरता और असहिष्णुता से काम लेने में भी संकोच नही करते थे।

आर्थिक दशा—असीरिया कृषि प्रधान देश था। उच्च वर्ग के लोग खेती करवाते अथवा जमींदारी करते थे। राज्य की मुख्य आय कृषि के द्वारा होती थी। व्यापार को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। कई जगह सिचाई का प्रबन्ध भी राज्य की तरफ से किया जाता था। खेतों की मुख्य उपज गेहूँ, जो, बाजरा, सरसों और शाक भाजियां आदि होती थी। जैतून, अंगूर, लहसुन, प्याज, चुकन्दर, शलगम, ककडी मूली आदि भी पैदा किये जाते थे।

असीरिया वालोने बहुत से उद्योग धन्धो का भी विकास कर लिया था। धातुओं का प्रचुर प्रयोग होता था। सोना, चांदी, तांबा, कांसी इत्यादि के अलावा लोहे का प्रयोग सबसे पहिले असीरिया वालों ने ही किया। विभिन्न उद्योग संगठित हो गये थे और नगर के निश्चित भाग में इनके कारखाने थे।

राज्य की ओर से उद्योगो को पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। औद्योगिक नगर कभी २ कर मुक्त भी कर दिये जाते थे। घरेलू धन्धों मे कपड़े की रंगाई, ईंटें बनाना, लकड़ी व शीशे का काम मुख्य था।

पतन के कारण—तीव्र तम हिंसा और सैनिक शक्ति द्वारा निर्मित यह सुविशाल राज्य अधिक दिनो तक न टिक सका और विनाश को प्राप्त हुआ। निरन्तर युद्धों, रक्तपात, अत्याचार, क्रूरता, और दास प्रथा ने इस साम्राज्य की जड़ों को खोखला कर दिया। स्त्रियों को हीन दशा तथा सामाजिक असमानता ने भी इसे काफी धक्का पहुँचाया। शासन की निरंकुशता और साम्राज्य की विशालता ही इसके पतन के मुख्य कारण थे।

केल्डिया [खल्द] सभ्यता

इस साम्राज्य का सबसे महान् सम्राट नेबूकाडेजार था जिसने असीरियन साम्राज्य काल मे विध्वंसत पुराने बेबीलोन नगर को फिर मे बनवाया और उसे अपने साम्राज्य की राजधानी चुना।। पड़ोस की सब छोटी-छोटी जातियों को जीतकर इस सम्राट ने अपने आधीन किया। जूडिया के यहूदी लोगों को यहाँ से हटा कर वह अपनी राजधानी बेबीलोन ले गया और वहीं उनको बसाया। सम्राट ने नगर मे एक बहुत सुन्दर एवं विशाल महल बनवाया। अपनी रानी को प्रसन्न करने के लिए उसने संसार प्रसिद्ध झूलते बाग भी बनवाये। इस सम्राट का शासन काल ६०४-५६१ ई० पू० था।

झूलते बाग (Hanging gardens)— प्राचीनकाल के लोग अनेक देवी देवताओं को पूजते थे। देवताओं के सुन्दर विशाल मन्दिर बनवाते थे। जिनमें बड़े-बड़े पुजारी एवं पुरोहित लोग रहते थे। बहुधा शासक प्रधान पुरोहित होता था। बेबीलोन के सम्राट नेबूकाडूजार ने एक बहुत विशाल स्तम्भ शैली का मन्दिर बनवाया। यह मंदिर बहुत ही ऊंचा था और इसके

अनेक खण्ड थे। प्रत्येक खण्ड के बारजों (Balconies) में सुन्दर २ पुष्पित पौधे, वृक्ष एवं उद्यान लगाये गये थे। मानों मुख्य भवन के भिन्न २ खण्डों के बाहर की ओर झरोकों में ये पुष्पित पौधे और उद्यान ऐसे लग रहे हों जैसे आकाश में लटक रहे हैं। आश्चर्यजनक इंजीनियरिंग ढङ्ग से एक नहर बनाई गई थी जो कि मंदिर के चारों ओर शिखर से एड़ी तक बहती रहती थी। झरोकों पर लगे उद्यानों को सींचती और मंदिर के समस्त भवन को ठण्डा और खुशनुमा बनाये रखती थी। ये झूलते बाग प्राचीन दुनियाँ की सात आश्चर्यजनक चीजों में से एक हैं। इनकी प्रसिद्धि इस काल के सभी प्रदेशों में फैली हुई थी। पिछले कुछ वर्षों में जब ऐतिहासिक खुदाइयाँ ईराक में हो रही थी तब इन झूलते उद्यानों के अवशेष मिले थे।

केल्डियन साम्राज्य काल में कला कौशल एवं व्यापार की बहुत उन्नति हुई। बेबीलोन उस समय का दुनिया का एक बहुत ही धनी एवं समृद्धिशाली नगर माना जाता था। केल्डियन लोगों ने नक्षत्र विद्या में उन्नति की। इन लोगों को १६ राशियों का ज्ञान था एवं जूपीटर, मार्स, वीनस, मर्करी एवं शनी ग्रहों का भी इन्हें ज्ञान था।

मिस्र

राजनैतिक इतिहास—मेसोपोटामिया की सभ्यता के साथ २ नील नदी की घाटी में मिस्र की प्राचीन सभ्यता का विकास हो रहा था। प्रारम्भ में मिस्र में कई स्वतन्त्र जातियाँ थी जिनमे नगर राज्यों की शासन प्रणाली प्रचलित थी। ये नगर राज्य आपस मे लड़ते रहते थे। कई शताब्दियों में ये नगर राज्य आपस में मिल गये और, ऐसा अनुमान है कि ईसा से लगभग ४००० वर्ष पूर्व तक मिस्र में केवल दो राज्य रह गये थे तथा सारा मिस्र प्रदेश सिर्फ दो राज्यों उत्तरी और दक्षिणी मिस्र में बट गया। ईसा से ३४००० वर्ष पूर्व दक्षिणी मिस्र के सम्राट मीने ने उत्तरी मिस्र के राज्य को जीत कर एक बड़े संयुक्त राज्य की स्थापना की। मिस्र का सुनिश्चित राजनैतिक इतिहास का

प्रारम्भ इसी समय से होता है। मिस्र का राजनैतिक इतिहास तीन युगो में बांटा जा सकता है।

(१) पिरामिडो का युग (३४०० ई० पू० से २७०० ई० पू०) इसे प्राचीन राज्य काल भी कहा जाता है।

(२) सामन्त सत्ता काल (२७०० ई० पू० से १८०० ई० पू०) इसे मध्य राज्य काल भी कहा जाता है।

(३) नवीन साम्राज्य काल (१८०० ई० पू० से ६५४ ई० पू०)

पिरामिडों का युग- सम्राट मीमे के शासन काल से ही पिरामिडों का युग प्रारम्भ होता है। दस राजवंशों ने इस युग मे मिस्र मे राज्य किया। राजा जोसेर (३१५० ई० पू०) के राज्य काल मे शायद सर्वप्रथम सुज्ञात ऐतिहासिक पुरुष हुआ जिसका नाम 'इम होतेप' था। इम होतेप महान औषध चिकित्सा शास्त्री, वास्तुकार एवं अनेक कलाओं और विद्वानों का संस्थापक था उसी ने वास्तु कला की परम्परा स्थापित की जिसके आधार पर ही मिस्र मे अद्भुत पिरामिडों का निर्माण हुआ एवं अनेक प्रस्तर मूर्तियों का भी। चौथे राजवंश के पहिले सम्राट खुफू ने सर्वप्रथम गीजे में पहिला पिरामिड बनाया, उसी के उत्तराधिकारी सम्राट खफरे ने दूसरा विशाल पिरामिड बनवाया। इस वंश के राजाओं के समय में कला-कौशल, स्थापत्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला तथा व्यापार की बहुत अधिक वृद्धि हुई। मिस्र के शासक 'फरोआ' कहलाते थे एवं अपने को परमेश्वर का पुत्र मानते थे। शासन मे जनता का प्रतिनिधित्व बिल्कुल नहीं था। शासक स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश थे। साधारण जनता का जीवन दुख पूर्ण था। सम्राट मीने के उत्तराधिकारियों ने फोनेशिया, फिलिस्तान तथा सीरिया आदि देशों को जीतकर अपने साम्राज्य मे मिला लिया। छठे वंश के राजा पेपी द्वितीय के शासन काल मे स्थानीय जमीदार, सरदार तथा सामंत स्वतन्त्र हो गये, नतीजा यह हुआ कि मिस्र अनेक छोटे २ राज्यों का समूह बन गया।

सामन्तवादी युग—लगभग ३०० वर्ष तक मिस्र का इतिहास अशांति एवं अन्धकारपूर्ण रहा। पिरेमिड काल के पश्चात कई दुर्बल राजा मिस्र के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। सम्राट का अधिकार केवल नाममात्र का रह गया। सामन्तशाही प्रथा देश में प्रचलित हो गई और पुरोहित वर्ग ने अपनी शक्ति काफी बढ़ाली। ये छोटे-छोटे सामन्त आपस में लड़ा करते थे। इसी समय उत्तर से हिकासों तथा दक्षिण से नुबियनों के संगठित आक्रमण हुए, जिन्होंने कुछ काल के लिए मिस्र पर अपना अधिकार भी कर लिया। किन्तु राजनैतिक अशान्ति ने मिस्र के सांस्कृतिक विकास में अधिक बाधा नहीं डाली। इस युग का सबसे प्रसिद्ध एवं प्रतापी राजा आमेनहोतप तृतीय था। उसने अनेक गढ़ तथा बाँधों का निर्माण करवाया। फैयूम मे प्रसिद्ध भूलभूलैया तथा स्फीन्क्स् का निर्माण करने का श्रेय इसी को है। होतप की मृत्यु के पश्चात् राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तथा हिकासों का मिस्र पर आधिपत्य हो गया।

नया साम्राज्य काल—आहमीज फरोआ के नेतृत्व में थीब्ज नगर के वीर निवासियों ने १६०० ई० पूर्व के लगभग हिकासो आदि विदेशियों को मिस्र से बाहर निकाल दिया। आहमीज ने दक्षिण के विद्रोहियों और नुबियनों का दमन करके मिस्र को एकता के सूत्र में बाँध दिया। समस्त भूमि राज्य के अन्तर्गत ले ली गई और सामन्तों की शक्ति का ह्रास हो गया। इसने शक्तिशाली बेड़े का निर्माण कर सीरिया, फिलिस्तीन, साइप्रस आदि पर हमला किया। इस काल में मिस्र में एक नए ढंग की स्थायी सेना का निर्माण किया गया जो घोड़ों, रथों चर्म एवं शस्त्रों से सुसज्जित थी। राज्य मे शान्ति थी। आर्थिक स्थिति बड़ी अच्छी थी। कला एवं विद्या की अभूतपूर्व उन्नति हुई। आहमीज का शासनकाल मिस्र के स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अहमीज के पश्चात थुतमस प्रथम (१५४५ ई० पूर्व से १५१४ ई० पूर्व) महान् विजेता हुआ जिसने मिस्र के साम्राज्य का बहुत विकास किया तथा उसको नील नदी के चोथे प्रपात तक पहुँचा दिया। थुतमस प्रथम की मृत्यु के पश्चात उसकी पुत्री 'हेतशेप्सुत' रानी बनी जो बड़ी पराक्रमी और तेजस्वी थी।

यह संसार की प्रथम महान स्त्री शासक कही जा सकती है। इसके शासनकाल में चित्र कला और वस्तुकला ने विशेष उन्नति की। रानी ने अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया। इसकी मृत्यु के पश्चात इसका पति थुतमस तृतीय मिस्र के सिंहासन पर बैठा। यह बड़ा पराक्रमी एवं योद्धा था। इसने सूडान, फिलीस्तीन, सीरिया तथा पश्चिमी एशिया के अन्य देशों पर अपना अधिकार कर लिया। यह मिस्र के नेपोलियन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कारनाक के प्रसिद्ध मन्दिर की दीवारों पर इसी सम्राट के वीर कृत्यों को चित्रों में अङ्कित किया गया है। इसका तीसरा उत्तराधिकारी आमेनहोतप चतुर्थ (१३७५ ई० पूर्व से १३५८ ई० पूर्व) शान्ति और धर्म का प्रेमी था। उसके विचार काफी क्रान्तिकारी थे। मन्दिरों की अगणित देवदासियों को वह निन्दनीय समझता था। उसने मिस्र में एकेश्वरवाद के सिद्धान्तों का प्रचार किया। वह अतोन का उपासक था। इखनातोम नामक एक नवीन नगर का निर्माण करवाया और स्वयं भी इखनातोम नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसने मन्दिरों और पुजारियों को कोई महत्व नहीं दिया। इसकी मृत्यु के बाद मिस्र को गद्दी पर कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं बैठा। फलस्वरूप मिस्र के साम्राज्य का ह्रास एवं पतन प्रारम्भ हुआ।

इस प्रकार मिस्र में लगभग चार हजार या इससे भी अधिक समय तक 'राजवंश' स्थापना के पूर्व के राजा एवं छिन्न-भिन्न राज्य वंशों के शासक शासन करते रहे। इन चार हजार वर्षों में उत्तर में मैसोपोटेमिया के बेबोलोन एवं असीरियन राजाओं से मिस्र के फेरो के युद्ध हुए, अनेक सन्धियां हुई। कभी मिस्र के फेरो का राज्य विस्तार हुआ, कभी बेबीलोन साम्राज्य का विस्तार। एक बार मिस्र पर अरब के अर्द्ध सभ्य बद्दु के घोर आक्रमण भी हुए, यहां तक की उन्होंने १८०० ई० पूर्व के आसपास समस्त मिस्र पर अधिकार जमा लिया और कई शताब्दियों तक वे यहां पर राज्य करते रहे इन्होंने जिस राज्य कुल की स्थापना की वह 'हिक्सो' कुल कहलाया। कई शताब्दियों तक मिस्री लोग इनके अधीन रह कर, उठे तथा

हिक्सो राजाओं को मिस्र से निकाल बाहर किया और फिर प्राचीन मिस्री फेरो शासक बने। रेमीसस तृतीय ने पुनः मिस्र को संगठित और दृढ बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसके अयोग्य और कमजोर उत्तराधिकारियों के काल में साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। अरबों के अतिरिक्त मिस्र निवासियों का संपर्क तत्कालिक अन्य जातियों से भी हुआ। कहते हैं कि लगभग २००० ई० पूर्व में बेबीलोन साम्राज्य के एक प्रसिद्ध नगर 'उर' के निवासी संत अबराहम अपने स्वतन्त्र विचारों के कारण एवं तात्कालिक अनेक देवी देवताओं एवं मन्दिरों में विश्वास के विरुद्ध केवल एक ईश्वर में निष्ठा रखने के कारण अपने नगर से निकाल दिए गए और उन्होंने मिस्र में जाकर शरण ली। वे वहाँ पर कुछ वर्ष रहे। एक मिस्री स्त्री से विवाह किया और अन्त में अरब लौट कर आ गए, जहाँ उनके इस्माइल नामक सन्तान पैदा हुई। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यहूदी जाति इन्हीं अबराहम की सन्तान है। ये ही यहूदी अरब से फैल कर उत्तर में जूडियां और इजराइल प्रदेशों में जाकर बसे थे एवं अपना राज्य कायम कर लिया था। इन्हीं यहूदी लोगों से, भिन्न जाति के सीरियन लोगों से एवं फारस के आर्यन लोगों से मिस्री फेरो के अनेक युद्ध हुए। चार हजार वर्षों तक एक विकसित समाज एवं सभ्यता का विकास चलता रहा। अनेक विशाल नगर, मन्दिर भवन, महल, अद्भुत स्तूप बने, कला कौशल, पठन-पाठन साहित्य, चिकित्सा, गणित की प्रतिष्ठा हुई, शासकों ने अनेक शासन नियम बनाए, अनेक संधियां की जिनके रेकार्ड इनके लेखों में मिलते हैं। लगभग १००० ई० पूर्व में मिस्री साम्राज्य एवं सभ्यता का ह्रास होने लगा। अन्त में अलक्षेन्द्र महान के नेतृत्व में यूनानी लोग यहां ३२२ ई० पूर्व आये और उन्होंने मिस्र के ३१ वें राजवंश का जो वहां शासन कर रहा था उसका अन्त किया एवं यूनानी राज्य स्थापित किया।

सामाजिक संगठन—मिस्र का समाज तीन खण्डों में विभाजित था। (१) उच्च वर्ग—इस वर्ग में फरोआ शासक, राज दरबारी, सरदार, पुरोहित सामन्त तथा राज्य के उच्च अधिकारी एवं कार्यकर्ता आदि थे। मिस्र में फैरो

का पद केवल एक शासक या पुजारी के ही समान नहीं होता था। वह एक देवता अथवा देवता वंशज माना जाता था और ये राज-घराने में ही राजा का विवाह हो सकता था। इन फेरो की शक्ति निरंकुश होती थी। कोई भी उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकता था। फेरो के नीचे उन्हीं के वंशज राजकुमार होते थे जो फेरो के अधीन रहकर भिन्न-भिन्न प्रांत या प्रदेशों का राज्य करते थे, या केन्द्रीय शासन व्यवस्था में ही उच्च पदाधिकारी होते थे।

पहिले तो शासक लोग ही मन्दिरों में पुजारी होते थे किन्तु शासन व्यवस्था जटिल होने से और शासकों के राजकीय कार्यों में अधिक व्यस्त होने से पुजारियों की एक अलग जाति ही बन गई। इन पुजारी लोगों का धार्मिक मामले में लोगों से सीधा सम्पर्क था और इसी कारण बड़े-बड़े मन्दिरों के पुजारियों की लोक शक्ति भी कम नहीं थी कभी-कभी इन पुजारियों की मदद के बिना शासन प्रबन्ध का चलना कठिन हो जाता था। ऐसे भी विवरण प्राप्त हुए हैं कि पुजारियों के मन्तव्य के अनुकूल चलने वाले राज्य घराने के किसी विशेष व्यक्ति के पक्ष में शासकों के विरुद्ध षडयन्त्र भी चलते थे।

फेरो पुजारी एवं राज्य कर्मचारी आदि उच्च वर्ग के लोग बहुत ही अमीरी ढंग से रहते थे। अनेक लोग इनके नौकर एवं गुलाम होते थे। इन लोगों के रहने के लिए सुन्दर २ महल और मकान बने हुए थे जिनमें ऐहिक जीवन के सुख एवं आनन्द की सभी सामग्रियां संग्रहीत रहती थीं। मकानों में अलग-अलग शौचालय स्नानघर होते थे। स्त्रियों के शृंगार के लिए अनेक सुगन्धपूर्ण साधन विद्यमान थे। महीन सुन्दर २ कपड़े पहिने जाते थे एवं स्वर्ण और मोतियों के आभूषण धारण किए जाते थे। ऐशो आराम से जिन्दगी बीतती थी।

(२) मध्यम वर्ग—इस वर्ग में स्वतन्त्र कारीगर, कृषक, ठेकेदार, व्यापारी, मुखिया आदि होते थे। सीरिया, जूडिया, फारस, भारतीय समुद्र तट, मेसोपोटामिया, अरब आदि देशों से स्थल एवं जल मार्ग से व्यापार

होता था। सोना, हाथी दांत, तांबा, लकड़ी इत्यादि आयात होता था। शिल्पी लोग सुन्दर २ मिट्टी के बर्तन, घड़े इत्यादि बनाते थे, उन पर पोलिश एवं रंग किया जाता था। धातुओं के बर्तन बनाए जाते थे। मिस्र में विशेष काम कांच का होता था। यहां की कांचकी बनी वस्तुएं बेबीलोन के बाजार में खूब बिकती थी। इन शिल्पी लोगो का समुदाय राजाओं एव बड़े २ घराने के चारो तरफ इकट्ठा हो जाता था और उन्ही उच्च वर्ग के लोगो के लिए और सर्वथा उन्ही के अधीन इन लोगो क कार्य चलता था।

(३) निम्न वर्ग—इस वर्ग मे दास, किसान थे जो काफी गरीब होते थे। उन पर अनेक सामाजिक प्रतिबन्ध थे तथा जिनके साथ पशुवत् व्यवहार किया जाता था। दास या निम्न वर्ग पर खेती, कला, कौशल, तथा उत्पादन का भार था। मिस्र के अधिकांश प्राचीन विशाल भवन, पिरेमिड, राजप्रसाद दास वर्ग द्वारा ही निर्मित किए गए हैं। इन दास कार्य कुशल कारीगरो के श्रम पर उच्च वर्ग के लोग विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। उनकी आय का १% से २० प्रतिशत कर के रूप मे राज्य द्वारा ले लिया जाता था। राज्य कर्मचारियो मे घूंस की प्रथा प्रचलित थी। साधारण जनता की आर्थिक दशा पिरेमिड तथा सामन्तवादी युग मे अत्यन्त शोचनीय थी। उच्च वर्ग के लोगों की सेवा के लिए अनेक सेवक सेविकायें रहती थी। राजा, रानी तथा सामन्तों के शवों के साथ २ कभी २ जीवित वफादार सेवक भी दफना दिए जाते थे। मे युद्ध हारे हुए बन्दियो को गुलाम बना लिया जाता था एवं क्रय विक्रय किया जाता था। समाज का वर्गीकरण कठोर नही था, कोई भी व्यक्ति एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जा सकता था।

स्त्रियों की दशा—स्त्रियो की दशा समाज में उन्नत थी। स्त्रियो को पुरुषों के समान राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियों का सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार होता था तथा जायदाद की उत्तराधिकारिणी स्त्रिया ही मानी जाती थी। मिस्र के सिंहासन पर रानियां भी बैठ सकती

थी। विवाह के मामले मे भी स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। तलाक या विवाह विच्छेद की प्रथा प्रचलित नही थी। बहु विवाह की प्रथा का चलन नही था। परन्तु राजा एवं सामन्त इसके अपवाद थे। मिश्र के राजा अपने वंश की रक्त शुद्धि के लिए कभी २ अपनी बहिनों और पुत्रियों से भी विवाह कर लेते थे। विवाह के समय पुरुष के लिए स्त्री की बात मानने की शपथ लेना आवश्यक था, व्यभिचारिणी स्त्रियों को पुरुष घर से निकाल देते थे। स्त्रियों को आने जाने की स्वतन्त्रता थी। प्रेम प्रगट करने में स्त्रियां पुरुषों की प्रतीक्षा किए बिना ही अग्रसर होता थी। कामुक चर्चा स्वतन्त्र रूप से होती थी। मन्दिरों मे देव दासियें तथा वेश्याऐं मनोरंजन का साधन समझी जाती थी। कानून की दृष्टि से स्त्री पुरुष समान थे। मेक्समूलर का कथन है कि नील नदी के निवासियों को छोड़कर किसी प्राचीन समाज ने नारी को इतना ऊंचा कानूनी स्तर प्रदान नही किया है। मिश्र के प्राचीन चित्रों में नारी पुरुष के साथ आमोद प्रमोद करती हुई तथा भोजन करती या स्वतन्त्रता से विचरण करती अंकित की गई है। मातृ प्रधान होने की वजह से मिश्र के समाज मे कतिपय मामलों मे स्त्रियों का पद पुरुषों से भी ऊंचा था।

रहन सहन—साधारण एवं अधिकांश जनता का खान पान सादा एवं साधारण था। वे लोग अनाज, मछली और मांस खाते थे। भोजन अनेक प्रकार से बनाया जाता था। मिश्र के इतिहास मे ८० तरह के मांस और २४ प्रकार के पेय पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। अमीर अच्छी शराब तथा गरीब जौ की मदिरा पीते थे। मिश्र के निवासी अपने रहन सहन मे अधिक हेर फेर नही करते थे। आदमी सूती या चमड़े के जांगिये पहिनते थे और औरतें सिर से पैर तक लबादे से ढकी रहती थी। जूते का प्रयोग भी मिश्र निवासी करते थे। साधारणतः स्त्री पुरुष दोनो कमर तक नंगे रहते थे एवं उनके नीचे वे लूंगी सी पहनते थे। बच्चे १२ वर्ष की उमर तक नंगे रहते थे। आगे चल कर स्त्रियां एवं पुरुष छाती ढकने लगे एवं चुस्त कपड़ों की जगह ढीले कपड़े पहिनने लगे। बालों मे कंघा करने का रिवाज था। हाथी दांत की पिने भी लगाई

जाती थी। स्त्रियां आंखों में सुरमा डालती थी एवं कान छिदवाती थी। स्त्रियों को बनावटी शृंगार के अनेक साधन ज्ञात थे। पुरुष दाढ़ी मूंछे मुंडवाते थे। नारी एवं नर दोनों को ही आभूषणों से प्रेम था। मिश्र निवासियों को खेल-कूद, मेलों एवं उत्सवों का बहुत शौक था। इनको कुश्ती, घूंसेबाजी और सांडों की लड़ाई में बड़ा आनन्द आता था। इस काल में पासों के खेलों का भी प्रचलन था। लोगों को नाचने गाने का शौक था। राजा और धनवान पुरुषों को रथों की दौड़ का शौक था। आमोद प्रमोद के लिये लोग बन्दर भी पालते थे। बच्चे तालाबों में तैरते अथवा गेंद खेलते थे।

शिक्षा और साहित्य—मिस्र वासियों ने शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति की। शिक्षा का उद्देश्य लिखना पढ़ना तथा व्यापारिक ज्ञान प्राप्त करना था। शिक्षा मन्दिरों में प्रदान की जाती थी। इसके पश्चात विद्यार्थी कचहरियों में कार्य सीखते थे। लेखक का पद प्राप्त करना बहुत श्रेष्ठ माना जाता था। अनेक प्रकार के अध्ययन मिस्र में प्रचलित थे। इस काल के बहुत से लेख विज्ञान, गणित इतिहास, वनस्पति तथा धातुओं पर थे। मिस्र-वासियों का अधिकांश साहित्य धार्मिक था जिसमें आतोन और फराओ की स्तुतियां आदि सम्मिलित थी। शिक्षा के लिये राजकीय पाठशालायें बनी हुई थी। पिरेमिडों से ईसा से २००० वर्ष पूर्व के पेपाइरी (कागज) पर लिखे हुये लेखों के पुलन्दे प्राप्त हुए हैं जिनमें किस्से कहानियां, धार्मिक विषय, प्रेम गीत, रण गान, कवितायें, पत्र, मंत्र तन्त्र, स्तुतियां ऐतिहासिक वार्ताएं, वंशावलियां, नीति के उपदेश आदि लिखे हैं। नाटक तथा पद्य-कथाओं को छोड़ कर मिस्र वालों ने साहित्य के सभी मुख्य अङ्गों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

विज्ञान—साहित्य के अलावा विज्ञान में भी मिस्र निवासियों ने बड़ी प्रगति की। सौर-काल गणना के अनुसार केलेन्डर का आविष्कार सबसे पहिले यहीं हुआ। ये ३६५ दिन का वर्ष मानते थे जो १२ महीनों में विभक्त होता

रा। ३० दिन का महिना एवं शेष पांच दिन वर्ष के अन्त में छुट्टी के माने जाते थे। आकाश मण्डल के तारों को इन लोगों ने भिन्न भिन्न नक्षत्रों में विभक्त किया तथा १२ राशियां भी स्थिर की। मिस्र का दूसरा महत्वपूर्ण आविष्कार शव को चीर कर मृत शरीर की ममी बनाकर हजारो वर्षों तक सुरक्षित रखना था। मृत शरीर को कई स्थानो से चीर कर उसके हृदय, मस्तिष्क तथा अन्य हिस्सों को सूक्ष्म यन्त्रो के सहारे निकाल लिया जाता था एवं शरीर के उन आन्तरिक भागों को कई दवाइयां और सुगन्धित पदार्थों से साफ कर स्वर्ण धातु तथा ठोस पदार्थ भर कर 'ममी' बनाकर श्रेष्ठ लकड़ी या धातु के सन्दूक में रखा जाता था। इस क्रिया से उन्हें शरीर की रचना का भी समुचित ज्ञान हो गया था। आयुर्वेद तथा चिकित्सा शास्त्र में वे लोग काफी प्रगति कर चुके थे। उन्हे अनेक रोगो तथा उपचार का पूरा ज्ञान था। जर्राह का भी उन्हें अभ्यास था। उनके लेखों मे ४८ प्रकार के आपरेशनों का उल्लेख मिलता है। उन्हें तापक्रम, नाड़ी देखना, गुर्दे को खाली करना आदि बातो का ज्ञान था। चिकित्सा विज्ञान में जादू टोनो का भी प्रयोग होता था। आपरेशन के बाद यदि रोगी की मृत्यु हो जाती तो चिकित्सक को कठोर दण्ड दिया जाता था। 'इम्होटप' प्राचीन मिस्र का प्रख्यात विद्वान और शरीर विशेषज्ञ था। गणित मे दशमलव का सिद्धान्त मिस्र की देन है। ये विभिन्न चिन्हों द्वारा संख्याओ को प्रदर्शित करते थे, इससे ज्ञात होता था कि संख्याओं को लिखने का तरीका बड़ा ही जटिल था। ये लोग जामेट्री से भी अनभिज्ञ नहीं थे। पिरेमिड जैसी विशाल इमारतों का निर्माण इसको प्रमाणित करता है। समय का पता लगने के लिये छाया घड़ी का प्रयोग मिस्र में होता था। उन्होंने सूर्य, तारिका–मण्डल तथा चन्द्र की गतिविधि का अध्ययन कर ज्योतिष विद्या का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था।

कलात्मक प्रवृत्तियां—मिस्र मे स्थापत्य कला, मूर्ति कला और लेखन कला का आश्चर्यजनक विकास हुआ। उस काल के मन्दिर, पिरेमिड और राज–महल को देखकर आज भी आश्चर्य होता है। गिजे का पिरामिड संसार के

सात आश्चर्यों में से एक है । पिरेमिडों के अतिरिक्त मिस्रवासियों को भव्य मन्दिर बनाने का भी काफी शौक था। कारनाक का मन्दिर कारीगरी की दृष्टि से अत्यन्त अद्भुत कृति है। इस मन्दिर की एक विशाल सुरंग इन्जीनियरी का अद्भुत नमूना है। सुरंग में १३६ पत्थर के चित्रित स्तम्भ हैं जो १६ पंक्तियों में खड़े हैं यह सुरंग एक हाल के रूप में है। मन्दिरों की दीवारों पर सुन्दर चित्र अङ्कित हैं जो उस काल की कला एवं इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। थीब्स तथा हेलियोपोलिस नामक स्थानों पर उस काल के अनेक मन्दिरों के चिन्ह प्राप्त हुये हैं। उन्नीसवें वंश के राजा रमेसिस द्वितीय ने अम्बूसिम्बेल नामक स्थान पर १८५ फीट लम्बा ९० फीट ऊंचा मन्दिर बनवाया जिसमें उदय होते सूर्य की प्रतिमा स्थापित कराई।

मूर्ति कला में मिस्र ने आश्चर्यजनक प्रगति की थी। मिस्र के शासकों की ८० से ९० फी० तक ऊँचा ठोस पत्थर को काट कर बनाई गई मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। गिजे के पिरमिड तक पहुँचने के पहिले एक विशाल मूर्ति आती है जिसका शरीर शेर का है और मुख मानव का। यह स्फीन्क्स कहलाती है। यह मूर्ति २४० फीट लम्बी तथा ६६ फीट ऊँची है।

मिस्र की चित्रकला अत्यन्त सजीव और भावपूर्ण होती थी। कारनाक के मन्दिरों के स्तम्भों और दीवारों पर अनेक प्रकार के चित्र अङ्कित हैं। भीति-चित्र बनाने में मिस्रवासी बड़े चतुर थे। कई प्रकार के रंगों का वे चित्रों में प्रयोग करते थे। रानी हेतेशेप्सुत को चित्रकारी का बड़ा शौक था। उस काल का एक चित्र मिला है जिसमें तीन जहाजों का अद्वितीय चित्रण है। पशु-प्रेमी होने के नाते मकानों पर बाज तथा अन्य जानवर पशुओं के चित्र भी बनाये जाते थे। चित्रों से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि इन लोगों को प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रेम था। चित्रकार चित्र के सौन्दर्य के स्थान पर भाव और विषय वस्तु पर अधिक जोर देते थे।

लेखन कला—कला के क्षेत्र में सबसे आश्चर्यजनक आविष्कार लेखन

कला का था जो सर्वप्रथम मिश्र में हुआ था। प्रारम्भ में चित्रलिपि का प्रयोग करते थे जो समय के साथ-साथ विचार लिपि में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार क्रमशः शब्दखण्ड संकेत लिपि और अन्त में वर्णमाला का विकास हुआ। धीरे-धीरे इस प्रकार ईसा से लगभग २००० वर्ष पूर्व उन्होंने २४ व्यंजनों का विकास कर लिया किन्तु मिश्र निवासियों ने स्वयं शुद्ध वर्णमाला का प्रयोग कभी नहीं किया। वे चित्र संकेत और वर्णों के मिश्रण से बनी हुई लिपि लिखते थे। वे कागज, कलम तथा स्याही को प्रयोग में लाते थे। यह कागज पेपरिस रीड से बनता था।

आर्थिक जीवन—प्राकृतिक सुविधाओं की वजह से ही मिश्र प्रारम्भ में ही एक कृषि प्रधान देश रहा है। दास कृषक खेती करते थे। उन्हें उपज का १०% से २०% भाग लगान के रूप में शासन को देना पड़ता था। सरकारी कर्मचारी और वैज्ञानिक सिंचाई के साधनों के निर्माण में सहायता देते थे तथा फसल बोने के समय को निश्चित करने के लिये कैलेन्डर बनाने तथा भूमि को नापने की व्यवस्था करते थे। खेतों को जोत कर बोना मिश्रवासी नहीं जानते थे। हल का प्रयोग भी नहीं जानते थे और न खेती के औजार ही अच्छी किस्म के थे। गेहूँ, मटर, चुकन्दर, जौ तथा प्याज मुख्य फसल थी। विविध प्रकार के फल, खजूर, अंजीर, जैतून और अंगूर भी पैदा करते थे। खजूर दैनिक भोजन का अङ्ग था। जैतून से तेल भी निकाला जाता था। पटसन की खेती भी की जाती थी। मिश्रवासी बन्दर और बैलों से बोझ ढोने का कार्य लेते थे। गायें काफी पाली जाती थी। बाढ़ के वक्त मछलियां पकड़ी जातीं थी। सुअरों से खेतों को कुचलवाया जाता था। सिंचाई नहरों के द्वारा होती थी। नील नदी पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने के लिये मिश्रवासियों ने विशाल मिट्टी के बांधों का निर्माण किया। नील नदी से निकली नहरों पर सामन्तों तथा मुखियाओं का पूर्ण अधिकार था जो लगान न मिलने पर पानी बन्द कर देते थे।

मिश्र निवासी उद्योग धन्धो में भी बहुत उन्नति कर चुके थे। मिश्री लोग ईंट, सीमेन्ट और पलास्टर बनाने में कुशल थे। पेपरिस नामक पेड से कागज, रस्सियां, चटाइया और चप्पल तैयार किये जाते थे। लकडी का काम, पत्थर काटना, छांगना, मिट्टी के सुन्दर बर्तन बनाना तथा नक्काशी का काम बहुतायत से होता था। वे कुर्सी, पलंग, सन्दूक तथा अन्य फर्नीचर बनाने में दक्ष थे। सण के बने हुये कपड़े जो ईसा से चार हजार वर्ष पुराने हैं, इतने सुन्दर एवं महीन है कि बिना उत्तम परीक्षा के उन्हें रेशम से भिन्न मानना कठिन है। जानवरो की खाल के कपड़े भी बनाये जाते थे। इस काल के आभूषणों पर कला के उत्कृष्ट नमूने मिले हैं। आभूषणों को रखने के लिये सुन्दर नक्काशी के सन्दूक बनाये जाते थे। मिश्र मे कांच का सुन्दर काम भी होता था। नौका, जहाज, और गाडियां बनाना भी उन्हें आता था। वे पशु चर्म से ढाल, तरकश इत्यादि वस्तुएं बनाते थे। उद्योग धन्धे आजाद और गुलाम कारीगर करते थे। धन्धे पुश्त दर पुश्त चला करते थे। कारीगरो के ऊपर ठेकेदार या मुखिया होते थे। मजदूरी उचित नही मिलने पर कभी-कभी मजदूर हड़ताल भी कर देते थे। सिक्कों के अभाव में मजदूरी जिन्स मे दी जाती थी।

मिश्रवासी कुशल व्यापारी नही थे। कुछ विदेशी व्यापार अवश्य होता था। नील नदी ही प्रमुख व्यापारी मार्ग था। व्यापार वस्तुओं की अदला-बदली से होता था। लेन देन के लिये धनवान व्यक्ति सोने के छल्लो तथा कड़ों का प्रयोग करते थे। हुण्डियों का प्रचलन था। मिश्र सभ्यता के अन्तिम काल में छोटे-छोटे सोने, चांदी के टुकड़े सिक्के के रूप में चलने लगे थे। अन्य देशों सीरिया भारत, मैसोपोटामिया, अरब तथा सूडान से व्यापारिक सम्बन्ध थे। सोना, मोती, हाथी दांत, तांबा, लकड़ी इत्यादि का आयात होता था एवं गेहूँ, जौ बाहर भेजे जाते थे।

शासन व्यवस्था—मिश्र में स्वेच्छाचारी शासन का प्रचलन था। राज्य की सारी शक्ति राजा के हाथ मे ही केन्द्रित होती थी। राजा अपने को

सूर्य का पुत्र मानता था एवं ईश्वर को साक्षी कर प्रजा के हितों का ध्यान रखता था। राजा की सहायता के लिये एक परिषद जो 'सरू' कहलाती थी बनी हुई थी। राजा इस परिषद के परामर्श को ठुकराने का अधिकार रखता था। राजा के अतिरिक्त मंत्री और कोषाध्यक्ष दूसरे महत्व पूर्ण पदाधिकारी होते थे। मंत्री सेना संचालन तथा न्यायाधीश का कार्य भी करता था। वह नीचे की अदालतों की अपीलें भी सुनता था। राजकीय नियमों और घोषणाओं को प्रचलित करना उसका कर्त्तव्य था। वही राजमहलों का आन्तरिक प्रबन्धक था तथा सरकारी भवनों का निर्माण भी उसी के निरीक्षण में होता था। साम्राज्य के विभिन्न भागों के समाचारों से अवगत कराने के लिए चार इन्सपेक्टर थे। वही राज्य का कर वसूल करते और जनगणना का प्रबन्ध भी। राज्य के क्षेत्र के बढ़ने पर एक के स्थान पर दो मंत्री रखे जाने लगे।

शासन की सुविधा के लिए सारा राज्य ४५ या ५० भागों में बंटा हुआ था जो 'नोम' कहलाते थे। प्रत्येक नोम का एक गवर्नर होता था जो न्याय बन्ध एवं कोष के लिए उत्तरदायी था। नगरों का प्रबन्ध राजाओं की ओर से प्रनियुक्त पदाधिकारी करते थे जिनकी सहायता के लिये बहुत से लेखक आदि होते थे। राजा को उन्हें अपनी इच्छानुसार हटाने या बर्खास्त करने का अधिकार था गांवों का प्रबन्ध सामन्तों के अधीन था जिनको पुलिस और न्याय सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। देश के प्रत्येक भाग में गुप्तचर घूमा करते थे जो राजा को इन नगर एवं गांवों की परिस्थितियों से परिचित कराते रहते थे। राजा मुख्य न्यायाधीश के रूप में अन्य न्यायालयों के विरुद्ध अपीलें सुनता था। कानून चालीस पुलन्दों में लिखे हुए थे। मुकदमों की सारी कार्यवाही लिखित होती थी। मुकदमों का फैसला तीन दिन में सुना दिया जाता था। दण्ड व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी। मृत्यु दण्ड, अंग भंग, देश निर्वासन तथा शारीरिक यातना दी जाती थी।

राज्य की अधिकांश भूमि सामन्तों के अधिकार में थी जो राजा को वार्षिक कर देते थे। किसानों से उपज का पांचवां भाग लगान के रूप में लिया

जाता था। राजा की आय व्यय का हिसाब सरकारी कर्मचारी रखते थे। सिक्कों का प्रचलन न होने के कारण मालगुजारी, पशु, अन्न, तेल, शहद, शराब और वस्त्र आदि के रूप में वसूल की जाती थी।

धर्म—प्राचीन मिश्र में अनेक जातियां थी जो भिन्न २ देवताओं को मानती थी। आकाश, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य आदि प्रमुख देवता थे और कभी २ नदी, वृक्ष, थलचर, जलचर, पशु पक्षियों में भी देवता की भावना मान ली जाती थी। लोगो का मानना था कि देवताओं का धड़ मानव शरीर जैसा था किन्तु उनका ऊपरी भाग जानवरों सा होता था। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पूजा एवं भेंट चढ़ाई जाती थी। बकरे की बलि देने की अधिक प्रथा थी। मीने के शासनकाल में समस्त जातियाँ 'रे' (सूर्य) की उपासना करने लगी। 'रे' सर्वोपरी माना जाने लगा, जिसके अन्य नाम 'आतोन', 'ताह', 'आमन' इत्यादि थे। आइसिस प्रमुख देवी थी जो सृष्टि की मातृ शक्ति मानी जाती थी। यद्यपि शासकों मे 'रे' की मान्यता बढ गई, साधारण पुरुष विभिन्न देवताओं को ही मानते रहे। इन्ही भिन्न २ विचित्र देवताओं की मूर्तियो की स्थापना के लिए, जिनको प्रसन्न करने, पूजा करने, भेंट चढाने से वे प्रसन्न होते थे और लोगो को सुख समृद्धि देते थे, तथा जिनके नाराज होने से लोगो को दुःख एवं कष्ट का सामना करना पडता था, बड़े-बड़े विशाल एवं सुन्दर मन्दिरों का निर्माण किया जाता था। इन मन्दिरो में एक विशेष बात देखी गई है कि मंदिर के अंतरिम भाग जिसमे मूर्ति स्थापित होती थी उसका द्वार ज्योतिष गणना के अनुसार किसी निश्चित् दिशा की ओर बना होता था जिससे कि वर्ष के निश्चित दिनो में सूर्य की किरणें द्वार मे से होती हुई सीधी मूर्ति के ऊपर पड़े। किसी एक मन्दिर का द्वार किसी निश्चित नक्षत्र की ओर अभि मुख करके बनाया जाता था। मन्दिर के आंतरिक भाग में मूर्ति की स्थापना होती थी। मूर्ति के सामने एक वेदी होती थी जिस पर भेंट या बलि चढ़ाई जाती थी। सभ्यता के प्रारम्भ के साथ ही साथ इन मन्दिरों का भी प्रारम्भ हुआ। मंदिरो में ये मूर्तियां पत्थरों या धातुओं की बनी होती थी। इन मूर्तियों को या तो स्वयं

देवता समझ लिया जाता था या देवताओ का प्रतीक। मंदिरों से संबंधित एवं देवताओं की पूजा से संबंधित अनेक पुजारी, मंदिरो के कर्मचारी इत्यादि होते थे। इन पुजारी लोगों की अपनी पृथक ही एक स्वतन्त्र जाति होती थी जिसका समाज में बहुत ऊँचा स्थान था। इन पुजारियो का मुख्य काम मन्दिरो मे देवताओं की पूजा एवं भेंट चढाना होता था। विशेष अवसरों पर जैसे बीज बोने के समय धान पक जाने के बाद विशेष सामूहिक पूजा और भेंट अर्पण का समारोह होता था। इन पूजाओं के निश्चित दिनों के आसरे से ही सर्वसाधारण लोग जानते थे कि अब बीज बोने, धान काटने आदि का समय आ गया है। किन्तु उस जमाने मे मंदिरों एवं पुजारियों का महत्व उक्त बातों के अतिरिक्त और भी कई बातो मे होता था इन्ही मदिरों मे राजाओं तथा जमाने की महत्व-पूर्ण घटनाओं का वर्णन सुरक्षित रखा जाता था। मंदिरो मे ही दीवारो पर चित्र अंकित किये जाते थे जो उस काल की कला और इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। दीवारो पर ऐसे अनेक चित्र अंकित है जिनमें किसी राजा को विजय यात्रा करके लौटता हुआ दिखाया गया है और कही देवता राजा को आशीर्वाद दे रहे हैं। इन्ही मंदिरो मे लेखन कला का प्रारम्भ हुआ एवं सूर्य और नक्षत्रो की चाल, काल गणना के ज्ञान का प्रारम्भ हुआ। पुजारी लोग केवल पूजा कर देना और भेंट चढ़ा देने का ही काम नही करते थे अपितु बीमारो का इलाज भी करते थे एवं जादू टोने द्वारा व्यक्तियों को सुख समृद्धि दिलाने का प्रयत्न भी करते थे। प्राचीन काल मे मन्दिर ही ज्ञान, विद्या, साहित्य एवं इतिहास के केन्द्र थे। साधारण जनता तो भोली अशिक्षित एवं अज्ञान के अन्धकार मे ही अपना जीवन व्यतीत करती थी।

मिस्र में एक प्रसिद्ध फेरो अोमन होतप चतुर्थ ने १३७५ ई० पूर्व मे मिस्र के धार्मिक जीवन मे क्रांतिकारी परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। उसने यह घोषित की कि फेरो देवता के वंशज नही किन्तु साधारण व्यक्तियों की भांति मानव ही है। इसने प्राचीन राजधानी थीबिज को छोड कर नई राजधानी 'तल अल अमरना' बसाई। होतप चतुर्थ का साम्राज्य मिस्र से सुदूर दक्षिण

भाग से लेकर मेसोपोटेमिया में यूफ्रेटीज नदी तक फैला हुआ था। इसने सब राज्यों के भिन्न २ देवताओं के मन्दिरों को बन्द करवा कर केवल एक देवता 'ग्रातन' की पूजा का प्रचलन करना चाहा क्योंकि ग्रातन ही सर्व व्यापक, दयालु, रक्षक, परमेश्वर की विभूति का द्योतक था। उसने ग्रातन के सिवाय सभी देवताओं की पूजा एवं नाम-निशान मिटाने की आज्ञा जारी की। पुजारियों की सम्पत्ति छीन ली। इखनातन (ग्रोमन होतप) ने ग्रातन देव की प्रसन्नता में ग्रनेक पद भी रचे थे।

मिस्र के स्तूप—मिस्र के व्यक्तियों का मृत्यु के विषय में ग्रपना ही एक विश्वास बना हुआ था। वे सोचते थे कि मृत्यु के पश्चात् भी प्राणी को गहरी नींद से जगाया जा सकता है और फिर से उसका जीवन चेतनामय बन सकता है। यह मरा हुआ जीव चेतन होकर देव लोगों के द्वीप के ग्रानन्द से अमर जीव का उपभोग करता है। इसी कल्पना की वजह से ही मृत शरीर की ममी बनाकर भव्य स्तूपों में रखी जाती थी जिनके अवशेष आज भी प्राप्त होते हैं। ममी, कब्र एवं कब्रों पर स्तूप केवल राजाओं एवं रानियों के लिए ही बनते थे। बड़े २ स्तूप की प्रथा मिस्र के तीसरे राजवंश से प्रारम्भ हुई। चौथे राजवंश के प्रमुख शासक चिग्रोस, चिफ्रेन एवं माईसरनीयस ने अपने २ लिए स्तूपों का निर्माण कराया। ई० पूर्व २७ वी शताब्दी की ये बातें हैं। उपर्युक्त तीन स्तूपों में से एक स्तूप महान कहलाता है। ये स्तूप काहिरा से कुछ दूर गिजे नामक स्थान पर हैं। इन स्तूपों तक पहुँचने के पहिले एक विशाल पत्थर की मूर्ति आती है जिसका शरीर 'शेर' है एवं मुंह मानव का। यह स्फीन्क्स कहलाती है। यह मूर्ति २४० फीट लम्बी एवं ६६ फीट ऊँची है और दूर से ही पथिक की ओर ऐसे देखती और कहती हुई प्रतीत होती है कि तुम्हारा पिरेमिड तक जाना न्याय संगत नहीं है। लगभग ३७०० वर्षों से यह अद्भुत मूर्ति दिन प्रतिदिन उदय होते हुए सूर्य को देख रही है। यह मूर्ति क्या है, किस का प्रतीक है और क्यों एक टक देख रही है? यह भी हजारों वर्षों तक रहस्य ही बना रहा। कुछ ही वर्ष पहले यह बात विदित हुई कि

इस मूर्ति का मुंह फेरोजिफ्रेन का है एवं फेरोजिफ्रेन ने ही इसे बनाया था। इस विशाल मूर्ति को पार करके ही स्तूपों तक पहुँचना पड़ता है। 'स्तूप महान' का आधार चबूतरा ७८० फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। इस आधार चबूतरे पर दूसरा चबूतरा है जो अपेक्षाकृत पहले से छोटा है एवं इस प्रकार एक के ऊपर दूसरा लघु से लघुतर और इस प्रकार बढ़ते २ इसकी ऊँचाई ४८० फीट तक चली गई है। २५ लाख पत्थरों का जिनमें प्रत्येक पत्थर का वजन ५६ मन है, यह स्तूप बना है। इस स्तूप के अन्दर दो सुन्दर कमरे बने हुए हैं एवं नीचे कब्रों तक पहुँचने के लिए उन स्तूपों में रास्ते कटे हुए हैं और प्रकाश और वायु के लिए अद्भुत इंजीनियरिंग की कुशलता से टनल बनी हुई है। यहां तक की कब्रों के पास में नील नदी की एक धारा प्रवाहित होती है। कब्रों तक जो मार्ग हैं उनकी दीवारें बहुत ही सुन्दर चिकने पत्थरों की बनी है जिन पर अनेक चित्र चित्रित हैं। इन रास्तों में मानो छत को आधार देते हुए अनेक सुन्दर २ स्तम्भ बने हुए हैं। ये रास्ते इस प्रकार चक्करदार, भूल-भुलैया के समान बनाये गये हैं कि कोई प्राणी फेरो की कब्र तक न पहुँच सके एवं किसी प्रकार की चोरी न कर सके। कब्र के कमरे अत्यन्त सुन्दर हैं। दीवारें अनेक चित्रों से चित्रित हैं। कमरों में राजा रानी के शव ममी के साथ अनेक बहुमूल्यवान आभूषण, सुन्दर कलापूर्ण बर्तन, हथियार, कपड़े, घड़ों में खाद्य पदार्थ रखे हुए हैं जिससे राजा और रानी को अपनी मृत्यु के पश्चात् स्वर्गीय जीवन में किसी भी चीज़ की कमी न रहे। कमरे में वाद्य यन्त्रों को बजाने वालों की, संगीतज्ञों की तथा अन्य सहचारियों की मूर्तियां भी हैं जिसमें स्वर्गिक जीवन में राजा को आनन्द के साधन उपलब्ध हों। प्रत्येक पिरामिड के पास ही उस फेरो का मन्दिर है। ये मन्दिर 'स्तम्भों के आधार पर स्थित छत' की शैली के बने हुए हैं।

हजारों वर्षों के पुराने राजाओं की इन प्रति-मूर्तियां एवं उस काल के इतिहास को सुरक्षित रखे हुए मिस्र के ये विशाल पिरामिड वास्तव में अद्भुत हैं। प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि विलियम मोरिस की कविता 'दी राइजिंग आफ दी

इमेज' में पिरोमिडों के अन्तर भाग में रखी हुई मूर्तियों, चित्रों एवं धन वैभव का ही कल्पना चित्र प्रतीत होता है।

चीन की प्राचीन सभ्यता

मिस्र, मेसोपोटामिया, भारत और चीन की सभ्यताएं संसार की सबसे प्राचीन सभ्यताएं मानी जाती हैं। चीनी लोग की उत्पत्ति के विषय मे अभी तक निश्चय पूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। फिर भी विद्वानों का मत है कि ये लोग मंगोल जाति के वंशज हैं। जब से इनके संगठित जीवन का पता लगा है, यह माना जाता है कि ये लोग गांवो मे रहते थे एवं खेती करते थे। धीरे धीरे इन छोटी छोटी ग्राम कम्यूनीटीज से सरदारो के छोटे छोटे राज्य बने। इन सामन्तशाही राज्यों से बाद में एक केन्द्रिय साम्राज्य का निर्माण हुआ। चीनी लोगों की एकता के पीछे कोई आर्थिक अथवा राजनैतिक शक्ति काम नही कर रही थी। केवल एक ही तत्व सांस्कृतिक एकता की भावना से प्रभावित होकर जाने या अनजाने में समस्त चीन वासी एक सूत्र में बंधे।

राजनैतिक इतिहास—विश्व प्रसिद्ध सम्राट हांगही ने चीन निवासियों को एक साम्राज्य के अन्तर्गत मिला देने का कार्य किया एवं २६९७ ई० पूर्व में केन्द्रीय साम्राज्य स्थापित किया। इसी समय से चीन का इतिहास प्रारम्भ होता है। इस सम्राट ने पूरे १०० वर्ष राज्य किया। इसी सम्राट को चीन राष्ट्र का निर्माता माना जाता है। यह सम्राट पण्डित, विद्वान एवं आविष्कर्त्ता था। इसने (१) टोपी और पहनावा (२) गाड़ी और नाव (३) चूना और रङ्ग (४) तीर-कमान (५) कुतुबनुमा (६) मुद्रायें और (७) कफन का आविष्कार किया। इसने ऋतु निर्देशक विद्या में भी सुधार किया। लेखन कला का भी पूर्ण विकास इसी सम्राट के प्रयत्नों से हुआ।

इस सम्राट के पश्चात दो और सम्राट हुए तांगयाओं और यू-शुन। इन दोनो सम्राटो ने अपनी अपूर्व आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से बहुत सुन्दर ढंग

से चीन मे राज्य किया। ई० पूर्व २२०६ मे सूई काल के प्रथम सम्राट यू महान ने देश की नदियों के मार्ग खोज कर उनका प्रवाह समुद्र की ओर मोडा जिससे वे नदियां समुद्र में गिरने लगी और देश भंयकर बाढ़ो से बच गया। इस सम्राट ने समस्त देश को ९ भागो में विभक्त किया, समस्त धातुओ को एकत्रित किया एवं प्रत्येक भाग में इन धातुओं के बने बडे-बडे ९ महान् कढ़ाइ रखे। सूई वंश के बाद चीन मे शाग वंश के सम्राट हुए। यह काल धातुओ के बने बर्तन तथा कला-कौशल की उन्नति के लिए प्रसिद्ध है। इसीकाल के सम्राटो ने जेड महल बनवाया। शाग वंश के बाद आने वाला चाऊ वंश के सम्राटो का युग स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल मे सभ्यता एवं संस्कृति के क्षेत्र में प्रगति हुई। चीन के प्रसिद्ध धर्म गुरु, विद्वान और महात्मा कनफ्यूसियस और लाओ तो इसी काल में हुए। धीरे २ चाऊ वंश कमजोर होता गया तथा शासन के केन्द्रीकरण की गति रुक गई। देश के अलग अलग क्षेत्रो के हाकिम स्वतन्त्र बन बैठे। अन्त मे एक स्थानीय हाकिम 'चीन के सरदार' ने प्राचीन चाऊ वंश को निकाल बाहर किया तथा चीन राजवंश की नीव डाली। चीन वंश के पहले ३ सम्राटो ने थोड़े वर्षो तक राज्य किया। २४६ ई० पू० चौथा सम्राट शाग चैंग हुआ जिसने अपना नाम शीह-ह्वागती रखा, जिसका तात्पर्य है पहला सम्राट। वह चाहता था कि लोग पुराने जमाने को भूल जायं इसलिए उसने पुराने जमाने की ऐसी पुस्तकें कनफ्यूसियस की रचनायें एवं इतिहास जलाने की आज्ञा प्रसारित की। अपने आज्ञा पत्र मे उसने लिखा- "जो लोग प्राचीनता का हवाला देकर वर्तमान काल को नीचे दर्जे का बताने की कोशिश करेंगें वे अपने सम्बन्धियों सहित कत्ल कर दिये जावेगें।" सैकड़ों विद्वान, जिन्होंने अपनी पुस्तकें छिपाने की कोशिश की जीवित जला दिये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी मृत्यु के पश्चात (२०९ ई० पू०) उसका वंश ही समाप्त हो गया। इसी सम्राट ने चीन की इतिहास-प्रसिद्ध दीवार का बनवाना प्रारम्भ करवाया था। शीह ह्वागती की मृत्यु के पश्चात् हन वंश ने शासन-सत्ता संभाली तथा ४०० वर्ष तक राज्य किया। इस वंश मे एक

सम्राज्ञी भी हुई। हन वंश का छठा सम्राट वून्ती शक्तिशाली शासकों में गिना जाता है। इसके काल में चीन एवं रोम में सम्पर्क स्थापित हुआ। इसी युग में बौद्ध धर्म एवं भारतीय कला का प्रसार चीन में हुआ। हन युग में चीन में लकड़ी के ठप्पों से छपाई की कला का आविष्कार हुआ तथा सरकारी नौकरियों के लिए परीक्षा प्रारम्भ हुई।

ईसा के पश्चात् तीसरी सदी में हन् वंश समाप्त हो गया और साम्राज्य के तीन टुकड़े हो गये किन्तु सातवीं सदी तक आते आते ताग वंश के सम्राटों ने चीन देश को फिर से मिला लिया तथा देश को एक शक्ति शाली राष्ट्र का रूप दे दिया। का ओ-लड सम्राट ने सन् ६१८ ई० में तांग वंश की नींव डाली तथा कैस्पियन सागर तक अपना साम्राज्य फैलाया। ताग सम्राट विदेशी व्यापार और विदेशी यात्रा को प्रोत्साहित करते थे। तांग वंश के प्रारम्भ में चीन में दो धर्म ईसाई और इस्लाम आये। चीन के सम्राट ने दोनों के साथ उदारता का बर्ताव किया तथा गिरजाघर एवं मसजिद बनाने की सुविधायें प्रदान की। इस युग में चीन की महानता का एशिया के अन्य भागों पर बहुत प्रभाव पड़ा। परन्तु सम्यता, धन सम्पत्ति एवं आर्थिक समृद्धि के कारण लोग बहुत विलासी बन गये तथा राज्य कार्य में बेइमानी का प्रवेश हो गया। परिणाम यह हुआ कि लोगों ने त्वांग वंश को समाप्त कर दिया।

लगभग ५० वर्षों तक छोटे २ शासकों की परम्परा चलती रही। सन् ६६० ई० में काओ-क्त ने सुङ्ग राज्य वंश की नींव डाली। इस समय बाहरी कौमों के आक्रमण हो रहे थे जिनसे चीनी लोग परेशान हो गये थे। खितन कौम के हमलों से परेशान होकर सुङ्ग राजवंश के लोगों ने किन या सनहरी तातर लोगों से मदद ली किन्तु ये लोग खितन को हराकर खुद ही चीन में ठहर गए। परिणाम स्वरूप उत्तरी चीन में किन या सनहरी तातर साम्राज्य हो गया और दक्षिण में सुङ्ग साम्राज्य। सन् १२६० में मंगोल लोगों ने आकर इन्हें समाप्त किया। इस तरह चीन खानाबदोश जातियों के

सम्मुख पस्त हो गया। परन्तु पस्त होते होते भी इसने उन खानाबदोशों को सभ्य बनाया।

सामाजिक एवं आर्थिक संगठन.—चीन के लोगो का प्रकृति और प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मे वास करने वाले अनेक देवी देवताओं मे सदा से ही विश्वास रहा है। चीनी लोग अपनी सुख समृद्धि के लिये इन देवताओं के सामने बलि चढाते रहे हैं। इनके सर्व प्रमुख देवता 'स्वर्ग पिता' है। चीन का सम्राट 'स्वर्ग पिता' का पुत्र माना जाता है राजा मुख्य पुरोहित भी है। चीन के प्रसिद्ध नगर एवं राजधानी पेकिंग मे 'स्वर्ग की देवी' नाम का एक विशाल और भव्य मन्दिर है जहा प्रति वर्ष चीन के सम्राट शीतकाल मे पूजा एवं पाठ करते और बलि चढाते रहे थे। यही चीनी का सम्राट एवं धर्म पुरोहित चीन के समाज का सर्व प्रथम व्यक्ति माना जाता है। सम्राट के नीचे ४ वर्ग के लोग थे—(१) मण्डारिन—यह चीनी समाज का एक विशेष वर्ग था। ये उच्च शिक्षा प्राप्त लोग होते थे जो प्राचीन साहित्य, दर्शन, संगीत, इतिहास गणित इत्यादि का अध्ययन करते रहते थे। चीन के समस्त ज्ञान विज्ञान की स्थिति और परम्परा इन्ही मण्डारिन लोगो मे निहित थी। इसी वर्ग मे से सरकार के सब उत्तरदायिकारी एवं कर्मचारी चुने जाते थे और इसी वर्ग के लोग पूजा एवं अन्य धार्मिक कार्य भी करवाते थे। मण्डारिन कोई निश्चित वर्ग नही था। यह वर्ग जन्म से नही माना जाता था। कोई भी व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके मण्डारिन वर्ग मे प्रवेश पा सकता था।

दूसरा वर्गः—भूमि जोतने वाला किसान

तीसरा वर्ग-—दस्तकारी करने वाले लोग।

चौथा वर्गः—व्यापारी वर्ग था।

इन वर्गों मे कोई क्षत्री अथवा सैनिक वर्ग नहीं रहा जिसका अर्थ यह है कि चीनी सभ्यता एक शान्तिप्रिय सभ्यता रही और वहा के राष्ट्रीय जीवन की

रचना कुछ इस प्रकार की हुई है कि उस जीवन मे युद्ध की बर्बरता के प्रति कुछ भी आकर्षण नहीं रहा है। चीन केवल शान्तिप्रिय देश ही नही रहा, किन्तु कला प्रिय एवं विद्या प्रिय देश भी रहा है। ची मे सदा से ही विद्वानों के आदर तथा कला और साहित्य रचना की परम्परा रही है। चीन में कोई दास वर्ग नहीं था।

समाज का बहुसंख्यक वर्ग किसानों का रहा है। चीन एक कृषि प्रधान देश रहा है। यहां मुख्यतः चाय, गेंहू, चावल, बाजरा, प्याज, सरसों और कपास की खेती हजारो वर्षो से होती रही है। घरो मे रेशम पैदा करना वहां का मुख्य गृहउद्योग रहा है। पुरुष खेतों मे और स्त्रियां घरो मे कपड़े की बुनाई तथा अन्य सब घरेलू काम करती है। कृषि भूमि पर प्राचीन काल से ही किसानो का स्वामित्व रहा है और वे उचित भूमि कर सरकार को देते रहे हैं। परिवार के स्वामी, पिता की मृत्यु पर, भूमि का बंटवारा बराबर भाईयों मे करने की प्रथा थी। राज्य एव किसानों के मध्य कोई बड़ा जमीदार वर्ग नही था। भाईयों का बँटवारा होते होते खेतों का छोटा हो जाने पर हजारो लोग अपने खेतो को बेच देते थे।

चीन के समाज मे हमेशा से ही परिवार एव पूर्वजो की पूजा की भावना प्रमुख रही है। चीन के महात्मा कनफ्यूसियम की शिक्षा कि जीवन सतत् बहने वाली धारा है और यह धारा तभी तक बहती रह सकती है जब तक समाज एवं राष्ट्र में परिवार की प्रतिष्ठा है, क्योकि परिवार मे ही नया जीवन प्रगट होता है, वही उसका पालन पोषण और विकास संभव है। परिवार मे ही मनुष्य जन्म जात स्वाभाविक भावनाओं और वृतियों की अभिव्यक्ति और पूर्ति सम्भव है। इस परिवार में पति पत्नि का सम्बन्ध प्रमुख है और इसी एक सम्बन्ध पर अन्य पारिवारिक संबंध आधारित है। चीन में जीवन की इकाई परिवार से मानी जाती है न कि व्यक्ति से। व्यक्ति राजा और समाज से बड़ा और अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था, किन्तु परिवार से अधिक

महत्वपूर्ण नहीं, क्योंकि परिवार से परे उसकी कोई पृथक स्थिति नहीं मानी है। पूर्वजों की पूजा चीन के सामाजिक और धार्मिक जीवन का एक अंग है। वर्ष में एक दिन निश्चित होता है जिस दिन बड़े समारोह और उत्साह के साथ राष्ट्र भर के परिवारों में कुछ सुन्दर बनी हुई पट्टियों की पूजा होती है, जिन पर पूर्वजों के नाम सुन्दर ढंग से अंकित होते हैं और जो पूर्वजों के नाम की स्मारक मानी जाती है। चाहे कोई किसी भी धर्म का अनुयायी हो पूर्वजों का यह धार्मिक समारोह तो राष्ट्र भर में चलता है।

समाज में स्त्रियों का स्थान।—प्राचीन चीनी समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत गौरवपूर्ण नहीं था। स्त्रियों को चल एवं अचल सम्पत्ति पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। कनफ्यूसियस के समय तक ये दशा थी कि पिता अपनी पुत्री तथा पत्नी को बेच सकता था। स्त्री को घर के अलग कमरे में रहना पड़ता था तथा सामाजिक जीवन में उसका कोई स्थान नहीं था। कन्याओं को अपने कौमार्य की सजगता पूर्वक रक्षा करनी पड़ती थी किन्तु नवयुवकों पर ब्रह्मचर्य पालन करने का कोई आग्रह नहीं था। पुरुष तो कई विवाह कर सकते थे, एक ही विवाह की स्थिति में उपपत्नियाँ भी रख सकते थे। अपनी स्त्री को किसी भी कारण तलाक दे सकते थे किन्तु स्त्री को यह सब स्वतन्त्रता नहीं थी। मानो स्त्री तो पुरुष के उपभोग का साधन हो। किन्तु स्त्री की एक नैसर्गिक महत्ता चीनी सभ्यता में परोक्ष या अपरोक्ष रूप में सर्वमान्य थी, वह यह कि केवल स्त्री ही परिवार का पालन और परिवार की वृद्धि करती है।

ज्ञान विज्ञान एवं कला कौशल—ई० पू० २५६ में चीन वंश के सम्राट शी हागटी 'प्रथम सम्राट' के काल से लेकर सन् १६४४ में मिंग वंश के राज्य काल तक, लगभग दो हजार वर्षों में, चीन में साहित्य, कला के क्षेत्र बहुत उन्नति हुई। इन दो हजार वर्षों के लम्बे काल में चाहे राजवंशों ने पलटा खाया हो, देश अनेक बार, छोटे-छोटे टुकड़ों और राज्यों में विभक्त हुआ हो किन्तु ज्ञान और विज्ञान, साहित्य एवं दर्शन की उन्नति निरन्तर होती रही।

चीनी परम्परा को माने तो कह सकते हैं कि गणित, ज्योतिष, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, जीव शास्त्र एवं भूगर्भ शास्त्र के प्रारम्भिक मूल तत्वों का ज्ञान चीनियों को हो चुका था। ये बातें तो ऐतिहासिक तथ्य है कि ई० पू० छठी शताब्दी तक वे सूर्य और चन्द्र ग्रहणों की सही-सही गणना करने लग गये थे। चीन में बहुत प्राचीन काल में ही लेखन कला का आविष्कार हो चुका था। ई०पू० तीसरी शताब्दी में लेखन के लिए ब्रश का, ई०पू० पहली या दूसरी शताब्दी में छपाई का एवं ई० सन् की दूसरी शताब्दी में कागज का आविष्कार हो चुका था। अतएव पुस्तकें काफी मात्रा में छपती थी। पाचवी शताब्दी मे दिग्सूचक यन्त्र एवं छठी शताब्दी में बारूद का आविष्कार भी हुआ। चीनी कारीगर बड़े-बड़े विलक्षण पुल बनाते थे, वे चीज गरम करने के लिए एवं खाना पकाने के लिए कोयले और गैस का प्रयोग भी करने लग गये थे। जल शक्ति से अनेक भारी काम जैसे आटे की चक्की चलाना इत्यादि कार्य करने लग गये थे। प्राचीन काल से ही उनके बड़े-बड़े समुद्री जहाज भी प्रचलित थे एवं प्राचीन बेबीलोन, मिश्र और भारत से व्यापार होता था। चमकदार रङ्गों के रेशम के कपड़े बुने जाते थे। लाख और हाथी दांत की खुदाई का बड़ा अच्छा कार्य होता था। चीनी मिट्टी की कला बहुत उन्नत दशा में थी। प्रत्येक युग में चीनी के कलाकार पक्की चीनी को मिट्टी के सुन्दर सुन्दर बर्तनों की रचना करते रहे हैं। वहाँ की यह कला अति प्राचीन है, इसकी यह प्राचीनता पूर्व प्रस्तर युग तक जाती है वहाँ के बर्तनों की कलापूर्ण आकृतियाँ, सुखद शीतल रङ्गों और उन पर चित्रित चित्रों ने देश विदेश के लोगों को हमेशा मोहित किया है। इस कला मे चीन अपना कोई सानी (मुकाबला करने वाला) नहीं रखता।

चीनी लोग काँसे तथा हाथी दाँत की सुन्दर मूर्तियां भी बनाते थे। शान तथा चाऊ युग की अनेकों सुन्दर मूर्तियां प्राप्त हुई है। यहाँ के निवासी स्त्री पुरुषों की मूर्तियों का निर्माण करना अनुचित समझते थे। पशुओं की आकृतियों का अंकन बड़ी ही सजीवता के साथ किया जाता था। बौद्ध धर्म के

प्रचार के पश्चात् चीन में मूर्ति कला की असाधारण उन्नति हुई। तांग युग में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की सैकड़ों सुन्दर मूर्तियां बनीं जो अब भी सुरक्षित हैं।

भवन निर्माण करने में चीनी लोग लकड़ी का अधिक उपयोग करते थे। बौद्ध धर्म के प्रचार के पश्चात् अनेक बौद्ध मन्दिर जिन्हें 'पगोडा' कहते हैं बनवाये गये। पेकिंग के समीप बौद्ध का एक मंदिर है जिसे कला समालोचक फरगुसन ने चीन की सर्वोत्तम वास्तुकलाकृति की संज्ञा दी है।

काव्य एवं कला--चीन की चित्रकला में एक अनुपम मौलिकता है जो विश्व के सभी देशों की कलाओं से सर्वथा भिन्न है। रेशम के कपड़ों, कागज पर अंकित चित्र, जिनमें न कोई रंगों की विशेष छटा है, न आकारों की विशेषता न मानव एवं पशु आकृतियों की वास्तविकता, सहसा हृदय पर एक सौम्य शांत भाव अंकित कर जाते हैं-मानों प्रत्येक चित्र एक कविता हो। चित्रों में फूल, पशुपक्षी, कीड़े एवं एकान्त झरने चित्रित किये गये हैं। सबसे यही आभास मिलता है कि मानो प्रकृति और जीव जगत की गति में एक रस होकर चले जा रहे हों।

जो भाव चीन की चित्रकला में अंकित हैं वे ही भाव वहां की कविता में भी व्यक्त होता है। दोनों की आत्मा एक ही है। जैसे प्रत्येक चित्र एक कविता है वैसे ही प्रत्येक कविता मानों एक चित्र है। वहां महाकाव्यों का विकास नहीं हुआ और न लम्बी कविताओं का। काव्य की दुनिया में वहां छोटे छोटे गीत हैं या छोटी छोटी कविताएं और वे भी शब्द, तुक एवं अलंकार के आडम्बर से रहित सीधे सादे छोटे छोटे चित्रशब्द जो किसी भाव का आभास मात्र करा जाते हैं। इतना हो गया तो कवि अपने उद्योग में सफल माना जाता है। कविता का विषय कभी भी गम्भीर दार्शनिक नहीं रहा। इसका विषय मानवीय मन की दैनिक सुख दुःख की बातें जगत की प्रत्येक वस्तु के प्रति आसक्ति का भाव और फिर प्रकृति में शान्ति पा लेने की प्रबल इच्छा आदि हैं। प्राचीन चीन के तीन महान चित्रकार वू-ताओ-जो, वागवी, लिनशी मुभांग एवं दी

महान् कवि, ली-पो, और थु फू अपनी कृतियों के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

भाषा और साहित्य--ऐसा अनुमान है कि चीनियों ने लेखन कला (लिपि) का आविष्कार २००० ई० पू० से भी पहले कर लिया था उनकी लिपि एक प्रकार की चित्रलिपि है, जिसमें प्रत्येक भाव, विचार और वस्तु को प्रकट करने के लिए चित्र के समान अलग अलग चिन्ह है, जो ऊपर से नीचे की ओर लिखे जाते हैं। ऐसे चित्रों की संख्या लगभग ४० हजार है। इस कठिन लिपि मे ही प्राचीन चीन के सभी ग्रन्थ लिखे गये हैं। चीन का प्राचीन साहित्य काफी विशाल है। मुख्य ग्रन्थ हैं (१) यी-चीन अर्थात् परिवर्तन के नियम, (२) शी-चीन, अर्थात 'गीतों के नियम' (३) ताओ ते चीन, अर्थात् 'पथ की पुस्तक' यी-चीन ग्रन्थ मे विश्व के रहस्य को समझाने का प्रयास करने वाले प्राचीन तात्त्विक विचार और अनुभूतियाँ संगृहित है। शी-चीन मे प्राचीन काल में छोटे २ गीतों एवं कविताओं का संग्रह है। ताओं-ते चीन तत्व दर्शन का एक प्राचीन चीनी ग्रन्थ है। महात्मा कनफ्यूशियस द्वारा प्रणीत या संपादित ५ ग्रन्थ जो पंच 'चिन' कहलाते हैं, एवं कुछ ग्रन्थ दार्शनिकों द्वारा प्रणीत ४ ग्रन्थ ग्रन्थ जो चार 'शू' कहलाते हैं। इस प्रकार कुल ९ ग्रन्थ प्राचीन चीनी साहित्य के नवरत्न कहलाते हैं। कनफ्यूशियस के प्रसिद्ध पाच ग्रन्थ हैं--(१) लीची-आचार के नियम (२) प्राचीन ग्रन्थ यीचिन का भाष्य (३) प्राचीन ग्रन्थ शी-चिन का संकलन (४) चुनचिऊ-कनफ्यूशियस के प्रदेश लू का इतिहास (५) शू-चिन (इतिहास के नियम) जिसमें प्राचीन चीन के इतिहास की शिक्षाप्रद एवं प्रेरणास्पद घटनायें संकलित हैं। ग्रन्थ दार्शनिको द्वारा प्रणित ४ ग्रन्थ हैं--(१) लुन-यू (२) ता-स्यूह (३) चुन युन (४) मैनसियस की पुस्तक। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इतिहासकारों के अनेक इतिहास ग्रन्थ इतने हैं कि चीन को इतिहासकारों का स्वर्ग कहा जाता है। दार्शनिकों के दर्शन ग्रन्थ कवियों के काव्य, एवं निबंधकारों के निबन्ध-संग्रह चीनी साहित्य को समृद्ध बनाते हैं। बुद्ध धर्म का प्रचार होने पर भारत के अनेक बौद्ध ग्रन्थ चीनी भाषा में अनुदित हुए। बौद्ध दर्शन पर स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना भी हुई।

चीन धर्म, दर्शन एवं जीवन दृष्टिकोण—प्राचीन चीनी लोग अदृश्य शक्तियों में विश्वास रखते थे। उनकी मान्यता थी कि प्रकृति के प्रत्येक व्यापार, प्रकृति की प्रत्येक घटना में देखते थे। धरती जो हमको अन्न देती है उसमें वह अदृश्य शक्ति मातृ रूप में विद्यमान है और इस प्रकार प्रत्येक पर्वत में, वृक्ष में नदी, में, यहां तक कि ग्रह के द्वार आदि प्रत्येक वस्तु में देवता वास करता है। इस देवता को प्रसन्न रखना चाहिए और वह बलि चढ़ाकर प्रसन्न रखा जा सकता है। अत्यन्त प्राचीन काल में तो मनुष्यों का बलिदान किया जाता था परन्तु शनैः शनैः यह प्रथा बन्द हो गई इन सब देवताओं के ऊपर "'स्वर्ग का पिता' या 'स्वर्ग का सम्राट ईश्वर' होता था। इस पृथ्वी का सम्राट, अर्थात चीन का सम्राट इस स्वर्ग के सम्राट का बेटा तथा पुरोहित था और पृथ्वी के समस्त लोग सुख शान्तिपूर्वक रहें, इसलिये पृथ्वी के सम्राट को भेंट चढ़ानी पड़ती थी। बलि में प्रायः अन्न, मदिरा, बैल चढ़ाये जाते थे एवं आदर और सत्कार से देव की पूजा की जाती थी।

अति प्राचीन काल से ही हमें चीनी लोगों में उच्च दार्शनिक विचारों की क्षमता के दर्शन होते हैं। 'यी–चीन' नामक ग्रन्थ में विश्व के रहस्य को समझने–समझाने के लिए चिन्तनशील और अनुभूत्यात्मक प्रयास है। चीन के प्राचीन महात्माओं ने विश्व और प्रकृति में एक अपूर्व सामंजस्य और समरसता की अनुभूति की और उन्हें यह भान हुआ कि जीवन की कला इसी में है कि विश्व एवं प्रकृति की इस समरस गति से मनुष्य भी अपनी लय मिला दे; अर्थात् मनुष्य को आनन्द की अनुभूति तभी हो सकती है जब वह प्रकृति की गति के साथ अपने जीवन का सामंजस्य स्थापित करले। विश्व अथवा प्रकृति में परिवर्तन होते रहेंगे' मनुष्य को चाहिए कि वह अवश्यम्भावी परिवर्तनों के साथ प्रवाहित होता रहे। वह विश्व एवं प्रकृति को गति को रोकने का व्यर्थ प्रयास न करे। समाज, राष्ट्र और व्यक्ति के जीवन में उत्थान-पतन होगा, परिवर्तन होते रहेंगे, अन्त में मृत्यु भी होगी इन सब बातों को प्रकृति की स्वाभाविक गति मान लेना चाहिए और सब घटनाओं की भवितव्यता को स्वीकार करते हुए

जीवन को सहज गति से प्रवाहित होने देना चाहिये। यह भाव चीनी राष्ट्र और व्यक्ति के मानस में संस्कार रूप से व्याप्त रहा है।

चीन के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन होते रहे, परन्तु प्रकृति की गति में धारणा गति का भाव हर युग और हर काल में बना रहा। कनफ्यूसियस एवं लाग्रोत्से चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं विचारक माने जाते है। ये महात्मा ई० पू० छठी शताब्दी में चीन मे पैदा हुए थे। दोनों ही विचारकों का प्रभाव चीनी जीवन एवं चरित्र पर पड़ा परन्तु कनफ्यूसियस को अधिक महत्वशाली माना जाता है। इस महात्मा का जन्म ५५१ ई० पू० एक उच्च राजकर्मचारी घराने में हुआ था। चीन के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने से इसका अद्भुत मानसिक विकास हुआ। कनफ्यूसियस ने जीवन में एक सामंजस्यात्मक और समरस गति लाने के लिए जीवन का व्यवहार कैसा होना चाहिए इस बात की शिक्षा दी। उसने शिक्षा दी कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, 'अति' का परित्याग करते हुए, साधारण 'मध्यम' रास्ते से चलना चाहिए, न तो अधिक अच्छाई अच्छी और न ज्यादा बुराई अच्छी। इस प्रकार मध्यम मार्ग पर चलते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए और प्राचीन शास्त्रों में विश्वास रखना चाहिए। उसने पारिवारिक जीवन को नियमित करने का विशेष प्रयत्न किया। माता पिता की सेवा पर विशेष जोर दिया तथा राजा और प्रजा के बीच पिता पुत्र के भाव को पुष्ट किया। समाज को नियमित करने के लिए उसने शील और सौजन्य को चरित्र का प्रमुख अंग माना। कनफ्यूसियस महान् बुद्धिवादी एवं व्यवहारिक था। उसका विश्वास था कि अखिल सृष्टि में एक केन्द्रीय शक्ति है जिसे वह 'स्वर्ग' कहता था, किन्तु किसी निश्चित साकार ईश्वर में उसका विश्वास नहीं था और न वह मृत्यु के उपरान्त आत्मा जैसा किसी अमर 'तत्व' या पुनर्जन्म मे विश्वास करता था। सामाजिक जीवन में किसी प्रकार का विप्लव न हो उसके लिए उसने परम्परा की रक्षा करने का उपदेश दिया और यह बतलाया कि परम्परा के भाव की रक्षा परिवार भावना मे होती है। कनफ्यूसियस की शिक्षायें सरकारी रूप में मान्य हुई, उसकी तमाम

पुस्तकें विद्यालयों में और परीक्षालयों में प्रमुख पाठ्य पुस्तकें मानी गई। लाओत्से (६०४-५१७ ई० पू०) ने भी चीन के प्राचीन ग्रन्थों को अपनी शिक्षा का आधार बनाया। इनके अतिरिक्त भी अनेक दूसरे महात्मा, विचारक, कवि और कलाकार चीन में पैदा हुए और चीन की संस्कृति को बनाने में उन्होंने योग दिया। चीन में बौद्ध धर्म भी आया और चीनियों ने उसे भी अपनाया। कनफ्यूसियस, लाओत्से और बौद्ध धर्म की शिक्षायें चीनी निवासियों के लिए 'उपदेश त्रय' बन गई। इन सब के समन्वय से चीन में एक विशेष जीवन दृष्टिकोण बना।

चीनी जीवन दृष्टिकोण—चीनी दृष्टिकोण सृष्टि व तथा मानव प्रकृति को यथावत् स्वीकार कर लेता है। प्राकृत् मानव वृत्तियों का दमन न करते हुए प्रकृति की प्राकृत् चाल का विरोध न करते हुए चलते रहना ही जीवन का लक्ष्य है। मानव जीवन में इच्छायें हैं, प्रेम और भय है, सुख दुःख और मृत्यु है। ये सब स्वाभाविक हैं एवं स्वाभाविक प्रकृति के विरुद्ध मनुष्यों को चलने की जरूरत नहीं। यदि उसने ऐसा किया तो वह जीवन के प्रवाह को और सृष्टि के प्रवाह को रोकेगा जो सम्भव ही नहीं है। यह सृष्टि है, इसमें न तो बहुत ऊंचे की आशा हो सकती है और न बहुत नीचे की। एक तरफ स्वाभाविक मृत्यु है और दूसरी तरफ कोई अमरता नहीं। न पूर्ण शान्ति एवं न पूर्ण आनन्द। मानवता का सार इसी में है कि मनुष्य आदर्श और यथार्थ के बीच मेल रखता हुआ चले।

यूनान की प्राचीन सभ्यता—मानव सभ्यता के प्रारम्भिक युगों में जब मैसोपोटामिया, मिश्र, चीन और भारत की सभ्यता फल-फूल रही थी, यूरोप महाद्वीप के अधिकांश भाग के निवासी वनमानुषों की भाँति बर्बर अवस्था में रहे थे। यूरोप में सर्वप्रथम सभ्यता का उदय उस छोटे से पहाड़ी प्रदेश में हुआ जिसे हम यूनान कहते हैं। यूनान प्रदेश बाल्कन प्रायः द्वीप के दक्षिण में स्थित है। इस प्रदेश के तीन तरफ समुद्र है और जल ने हर जगह स्थल में घुसने का प्रयत्न किया है जिससे अनेक छोटी-छोटी खाड़ियां एवं बन्दरगाह बन गये हैं।

बहुत से पर्वतों की श्रेणियों और नदियोंने इसको छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर दिया है। इन्ही प्रदेशों में लगभग सातवीं सदी ई० पू० में यूनानी सभ्यता का विकास प्रारम्भ हुआ। सभ्यता को जन्म देने वाले आर्य लोग अपने को एक जाति का न बताकर अलग-अलग जाति के, जैसे—एकियन्स' डोरियन्स आयोनियन्स और स्पार्टन्स कहते थे। प्रत्येक जाति अलग-अलग भाग में रहती थी और इसका एक छोटा सा नगर राज्य होता था। यहा के प्रसिद्ध प्राचीन नगर ऐथेन्स, थीब्ज, कोरिन्थ और स्पार्टा आदि थे। प्रत्येक नगर एक अलग ही जीवन व्यतीत करता था तथा यूनान में एक प्रकार की नगर सभ्यता थी। इन नगर राज्यों में ऐथेन्स और स्पार्टा अत्यन्त प्रसिद्ध थे। ऐथेन्स नगर राज्य ने पेरीक्लीज के नेतृत्व में अत्यधिक उन्नति की। पेरीक्लीज का युग एथेन्स का स्वर्ण युग माना जाता है किन्तु आपसी द्वेष से इन नगर राज्यों का पतन हो गया। किन्तु जिस सभ्यता का विकास इन नगर राज्यों में हुआ वह उत्कृष्ट श्रेणी की सभ्यता थी।

यूनानी सभ्यता विशुद्ध यूनानियों की ही देन नहीं है। उन्होंने बहुत सी बातें यथा कपड़ा बुनना, कृषि करना, पहिएदार गाड़ियां और घर बनाना, पत्थर की काट छांट करना और पशु पालन आदि पाषाण युग के लोगों से सीखा। यूनान में आकर बसने पर उन्होंने अपने पड़ोसी देश क्रीट, मिश्र और फीनेसिया से बहुत सा ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया। फीनेसिया वासियों से सामुद्रिक विद्या, वर्णमाला तथा व्यापार पद्धति, मैसोपोटामियां वालों से साम्राज्य व्यवस्था तथा शासन प्रबन्ध, मिश्रियों से विशाल भवन निर्माण और नक्षत्र विद्या, तथा क्रीट से कला और कारीगरी सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की। इन सब बाह्य बातों को यूनानियों ने संशोधन और परिवर्द्धन के पश्चात स्वीकृत किया तथा एक बिलकुल नवीन एवं मौलिक सभ्यता का विकास किया जिससे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने अपने रचनात्मक प्रतिभा के बल पर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के आदर्शों का समावेश कर मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया।

यूनानियों का सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन—ग्रीस मे आकर बसने के पूर्व ही नार्डिक आर्यों का समाज दो वर्गों में बंटा हुआ था—एक उच्च वर्ग, जो परम्परा से ही कुछ प्रतिष्ठित लोग थे । दूसरा साधारण वर्ग था। ग्रीस में बसने के बाद तीसरा वर्ग गुलामों का बना जिसमे यूनान के आदिवासी थे जिन्हें आर्यों ने युद्ध में परास्त कर अपना गुलाम बनाया। इन गुलामों को खेती, मजदूरी के कामों, जैसे भवन बनाना, घरेलू काम काज करना इत्यादि मे लगाया। धीरे-धीरे गुलाम वर्ग मे स्वयं ग्रीक जाति के लोग भी सम्मिलित किये जाने लगे (जो ग्रीक नगरों के मध्य होने वाले युद्ध में बन्दी बना लिए जाते थे) एथेन्स को छोड़ कर सभी नगर राज्यों में गुलामों के साथ कठोर व्यवहार किया जाता था। स्वतन्त्र यूनानियों मे समान व्यवहार प्रचलित था। व्यापार और दस्तकारी के कार्य प्रायः विदेशी और दास किया करते थे। विदेशियों की एक बड़ी संख्या यूनानी राज्यों में रहती थी। इनसे कर लिया जाता था तथा इनकी दशा भी अच्छी न थी। यूनानियों में जातीय अभिमान की मात्रा अधिक थी। वे अपने को सभ्य और गैर यूनानी लोगों को जंगली समझते थे।

यूनानी आर्यों का मुख्य धन्धा कृषि और पशुपालन ही था। कुछ लोग दस्तकारी के कार्यों, जैसे मकान बनाना, चित्रकारी, मूर्तिकारी, शस्त्र बनाना जहाज बनाना आदि मे व्यस्त रहते थे। सब नवयुवकों को अनिवार्यतः युद्ध में भाग लेना पड़ता था। प्रौढ़ होने पर लोग शासनतन्त्र मे भाग लेते, राष्ट्रसभा में वाद-विवाद करते तथा न्यायालय मे काम करते थे। लोगों को खेल कूद, व्यायाम, दौड़ और कुश्ती लड़ने का शौक था। लोगों का जीवन सादा तथा तड़क भड़क से दूर था। यूनानियों का भोजन प्रायः मांस, शराब, मछली आदि होता था। गरीब लोग शाकाहारी थे तथा अधिकतर जौ की रोटी खाते थे। भोजन के समय चम्मच का प्रयोग किया जाता था तथा इनमे चप्पल या खड़ाऊ पहनने का भी प्रचलन था। स्त्री और पुरुष दोनों की पोशाकें सादी

होती थी और केवल एक नीचे एक ऊपर के दो वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। मनोरंजन के अनेक साधन प्रचलित थे। स्वास्थ्य पर यूनानी लोग बहुत अधिक ध्यान देते थे।

यूनानियों को राजनैतिक विकास की अनेक परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ा। बहुत समय तक इन नगरों का राज्य स्वेच्छाचारी राजाओं के हाथ में रहा। फिर कुलीन तन्त्र की स्थापना हुई जिसमें शासन सत्ता सरदारों के हाथ में आई और पारस्परिक द्वेष के कारण प्रभुता के लिए संघर्ष होने लगे। कालान्तर में हिंसा के बल पर शक्तिशाली नेताओं ने बिना उत्तराधिकार के शासन पर अधिकार कर लिया और दूसरे लोगों की राय के बिना स्वेच्छा से राज करने लगे। फिर धीरे-धीरे राज्य के स्वतन्त्र व्यक्ति अपनी शक्ति का विकास करते गये और जनतन्त्रात्मक प्रणाली की स्थापना हुई। समस्त ग्रीस में छोटे बड़े स्वतन्त्र नगर राज्य थे, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि इन सभी राज्यों में उपरोक्त क्रम से ही राजनैतिक संगठन का विकास हुआ। ऐसा भी समय रहा जब एक ही काल में तीनों चारों प्रणालियाँ विभिन्न नगरों में उपस्थित रहीं। अधिकतर यूनानी नगरों में कुलीन तन्त्र का ही प्रचलन रहा। एथेन्स आदि राज्यों की शासन व्यवस्था कुछ अधिक जनवादी थी। यद्यपि वहाँ भी हर नागरिक को राज्य के हर कार्य में भाग लेने का अधिकार न था। दासों व विदेशियों के राजनैतिक अधिकार नगण्य थे। केवल अल्पसंख्यक स्वतन्त्र नागरिकों को स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अथवा निर्वाचित संस्थाओं द्वारा राज्य संचालन में भाग लेने का अधिकार था। प्रत्येक राज्य में एक सभा भवन होता था, जहां इन सीमित एवं थोड़ी आबादी वाले नगर राज्य के सभी नागरिक एकत्रित होकर राजनैतिक मामलों एवं समस्याओं पर विचार करते तथा सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति करते और कानून बनाते थे। नागरिकता के अधिकार प्राप्त करने के पूर्व 'नागरिकता की प्रतीज्ञा' लेनी पड़ती थी। जनसाधारण में राजनीति और नागरिक विषयों पर गम्भीर चिन्तन और वाद विवाद होता था। प्रायः सभी नागरिक महान् नागरिकता की भावना से ओत-

प्रोत होते थे और अपने नगर राज्य के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को गौरव समझते थे।

गुलाम और स्त्रियों की दशा—समाज मे दासों की दशा अच्छी न थी। शारीरिक श्रम एवं सेवा के सभी कार्य उन्हें करने पड़ते थे। गुलाम स्वामी की सम्पत्ति समझे जाते थे जिनका क्रय-विक्रय होता था तथा वे राज्य के नागरिक नही माने जाते थे यूनान में रहने वाले विदेशियों की दशा भी अच्छी न थी। स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर के भीतर था। वे पुरुषों की दास थी तथा दासो की तरह उन्हें भी कोई अधिकार प्राप्त न थे। वे अधिकतर घर में रहती थी या धार्मिक समारोहो में सम्मिलित होती थी। पुरुषो मे बहुविवाह का निषेध नही था, यद्यपि प्रायः एक ही पत्नी का नियम था। यह सामान्य विश्वास था कि स्त्रियो मे कोई योग्यता नहीं होती। वे पर्दे मे रहती, कपड़ा बुनती, सूत कातती, बेल बूंटे बनाती थी। विशेष प्रतिभाशाली स्त्री अपने विकास के लिए सुविधायें प्राप्त करने में सफल हो जाती थी। इन लोगो में 'सैफो' नामक एक महान् कवयित्री का बहुत आदर था।

शिक्षा—जन साधारण की शिक्षा के लिए आजकल की भाँति राजकीय विद्यालयों का प्रचलन नही था। बड़े-बड़े दार्शनिक एवं गुरुजन विद्यालय खोलकर बैठ जाते थे जिनमे उच्च वर्ग के लोगों के बच्चे और युवक शिक्षा पाते थे। शिक्षा का आदर्श मानव का सर्वतोमुखी विकास होता था। यूनानियों की धारणा थी कि सुन्दर शरीर मे ही सुन्दर मस्तिष्क रह सकता है अतएव शारीरिक विकास पर पूर्ण जोर दिया जाता था और अनेक खेल आदि प्रचलित थे। दार्शनिको के आश्रमों मे सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, एपीक्यूरस इत्यादि महान् विचारकों के साथ सृष्टि एवं जीव सम्बन्धी समस्याओं पर मुक्त बुद्धि से वाद-विवाद होते थे। समाज के सास्कृतिक उन्नति के साधन स्वरूप राष्ट्रीय थियेटरों, मन्दिरो और धार्मिक स्थानों पर समारोहो का आयोजन किया जाता था।

ग्रीक साहित्य—साहित्य के सभी क्षेत्रों मे यूनानियो ने अभूतपूर्व

उन्नति की। होमर और हेसीयोड़ यहा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं जो क्रमशः यूनान के वाल्मीकी और व्यास कहलाते हैं। अन्ध कवि होमर का समय १००० से ८०० ई० पू० का माना जाता है। इलिण्ड और ओडेसी इसके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं जिनमें प्राचीन वाणी में चली आती हुई वीर गाथाओ, जन विश्वासों एवं धार्मिक आदर्शों को सुव्यवस्थित संगीत और प्रवाहमय साहित्यिक रूप दिया गया है। हसियोड़ का समय ई० पू० आठवी सदी निर्धारित किया जाता है। उसने 'वर्क्स एण्ड डेज' नामक महाकाव्य मे मानव जीवन के प्रति दिन के व्यवहारिक चित्रो को अंकित किया है। यूनानी साहित्य में अनेक शैलियों का प्रचार था और देश प्रेम, युद्ध प्रेम, राजनीति दर्शन शास्त्र, इतिहास, विज्ञान, नाटक, काव्य शास्त्र आदि के ग्रंथ रचे जाते थे। इनमें आर्किलोक्स, मिस्मैमर्म, धर्म शास्त्री सोलन, कवि पिण्डार और कवयित्री सेफो के नाम चिरस्मरणीय हैं। यूनानी लोगो को संगीत से काफी प्रेम था। वीणा या बांसुरी द्वारा वे गीत काव्य गाया करते थे। सेफो ने अपने गीतों को सुन्दर शब्दो, मधुर संगीत तथा मनोहर प्राकृतिक दृश्यों से सजाया है। 'एनाक्रीयन' सुरा और सुन्दरी का उपासक था, उसके गीतो में युद्ध की निन्दा का दिग्दर्शन होता है।

यूनानी नाटक वहा के क्रमिक विकास का और सामायिक सामाजिक जीवन के द्योतक है। दुखान्त नाटको के रचियता में इस्कीलस, सोफेक्लीज तथा यूरीपीडीज के नाम बहुत विख्यात हैं। इस्कीलस एथेन्स निवासी था जो ४६५ ई० पू० मे पैदा हुआ था। वह दुःखान्त नाटको का जन्मदाता माना जाता है। 'प्रोमीथीयस बाउन्ड' और 'एगेमेम्नन' उसकी प्रसिद्ध कृतिया हैं। सोफेक्लीज ने एक सहस्र नाटक लिखे है जिनमें 'एन्टिगोने' तथा 'एलेक्ट्रा' अधिक प्रसिद्ध हैं। यूरीपीडीज संसार के शौक का कवि माना जाता है। अपने नाटक 'मेडियो' में उसने नारियो के पक्ष का समर्थन किया है। एरिस्टोफेनीज सुखान्त नाटक रचने वालो मे अधिक प्रसिद्ध है। उसने एथेन्स के समकालिक नगरों के जीवन की बुराइयों और कमियों का परिहास प्रहसनों के रूप मे किया है। उसका 'फ्रोगस' नाटक व्यंग, विनोद, कल्पना तथा गीत काव्यों से परिपूर्ण हैं।

यूनान के इतिहासकारों ने देश विदेश का भ्रमण कर अनेक जातियों और संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया और पुरातन रहस्यों की विवेकपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की, 'हेकेटियस' ने यूनानियों के उद्भव और प्रारम्भिक प्रसार का इतिहास लिखा। ग्रीस के प्रथम इतिहासकार 'हैरोडोटस' ने विभिन्न देशों की परिस्थितियों, यूनानियों और पारसियों के युद्ध का वर्णन किया है। 'थ्यूसी-डियस' ने स्पार्टा तथा एथेन्स के युद्ध का इतिहास लिखा। कानून ग्रन्थ लिखने में एथेन्स निवासी 'ड्रेको' का नाम सर्वप्रथम आता है। उसने परम्परागत यूनानी कानूनों का ई० पूर्व ६२१ में एक संकलन तैयार किया जो 'ड्रेकोनिज लाज' कहलाता है। आगे चल कर सोलन ने इसमें सुधार किया।

दर्शन और विज्ञान—यूनान निवासी तार्किक, जिज्ञासु तथा विवेकशील थे। अतएव यूनान में अनेक सूक्ष्मदर्शी दार्शनिक एवं वैज्ञानिकों का प्रादुर्भाव हुआ। ई० पूर्व छठी सदी से ई० पूर्व चौथी सदी का समय यूनान में दार्शनिकों वक्ताओं और अलंकार शास्त्रियों का स्वर्ण युग माना जाता है। एनेक्जीमेंडर नामक दार्शनिक ने बतलाया कि जगत के नियन्ता का स्वरूप असीम है। 'हिरे-क्लीटस' ने कहा कि विश्व और ईश्वर एक है तथा अनेकता मिथ्याज्ञान का आभास है। एम्पिडोक्लीज ने कहा कि प्रकृति अनन्त है। पाइथोगरस ने प्रकट किया कि पृथ्वी और अन्य ग्रहों का आकार गोल है। इसने रेखागणित और संगीत का वैज्ञानिक अध्ययन किया तथा पंचतत्वों और पुनर्जन्म में विश्वास व्यक्त किया। थेल्स रेखागणित तथा खगोल शास्त्र का ज्ञाता था। वह ग्रहण के कारण और ग्रहों की गति विधि को जानने से भविष्यवाणी कर देता था। पंच तत्वों में उसने जल तत्व की प्रधानता मानी। ल्यूसीपस एवं डेमोक्रिटस ने परमाणुवाद को व्यवस्थित रूप दिया और प्रकट किया कि संसार की समस्त वस्तुएं अदृश्य और निरन्तर गतिशील अणुओं के मिश्रण से बनी है। यूनान का महान डाक्टर 'हीपोक्रेटीज' यूनान में चिकित्सा शास्त्र का जन्म दाता था। उसकी प्रमुख रचना 'मेटीरिया मेडिको' भारतीय वैद्यक ग्रन्थों के आधार पर लिखी गई थी। जनता में भाषण देने की कला में सुकरात, आइसोक्रेटस,

डिमास्थिनीज बहुत कुशल थे। सुकरात महान् सुधारक तथा उपदेशक था जिसका समय ४६६ ई० पूर्व से ३६६ ई० पूर्व था। वह सामान्य जन शिक्षा और मानव सदाचार का विशेष समर्थक था। उसने प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया। सुकरात ने सम्यक ज्ञान और आत्मनिरक्षण को बहुत आवश्यक माना। लोगो को सहिष्णुता, मानवता, शान्ति तथा सत्यान्वेषण का पाठ पढ़ाया। सुकरात पर नवयुवको को पथभ्रष्ट करने का आरोप लगाया गया और इस महात्मा ने हंसते हंसते विषपान कर अपने जीवन का अन्त कर लिया। सुकरात का शिष्य प्लेटो महाप्रतिभाशाली व्यक्ति था जिसने सुकरात की शिक्षा की परम्परा जारी रखी और एथेन्स में एक शिक्षण-संस्था खोली। । प्लेटो ने मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धो को आदर्शमय बना कर उनके जीवन को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। उसने अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा विश्व विख्यात ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में एक आदर्श राज्य का चित्र प्रस्तुत किया। प्लेटों ने ईश्वर को संसार का निर्माता और सर्व व्यापी माना तथा आध्यात्मिक शक्ति को ही संसार की सबसे वास्तविक और चिरस्थायी वस्तुएँ बताया है। उसने ज्ञान के किसी क्षेत्र को अधूरा नही छोड़ा। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उसका शिष्य अरस्तू दार्शनिक एवं वैज्ञानिक दोनो ही था। वह सिकन्दर महान का गुरु था। भौतिक विज्ञान की नीव अरस्तू ने डाली। अल्प आयु मे ही अरस्तू ने ज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर काफी अधिकार कर लिया था। उसने भौतिक विज्ञान, तर्क शास्त्र, काव्य शास्त्र, राजनीतितत्वशास्त्र, आचार शास्त्र आदि पर पुस्तकें लिखी। यूनान की भूमि धन्य है जहा सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे सर्वतो-मुखी प्रतिभा वाले महान् व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ।

कला—यूनानी जाति संसार की सबसे अधिक कला प्रिय जातियों में थी। ग्रीक समाज में कलाकारो को उच्च स्थान प्राप्त था। उनकी कला मे बहुत से तत्व मिश्र और क्रीट कलाओं से ग्रहण किये गये थे तथापि यूनान कला और सौन्दर्यानुभूति एवं मौलिकता से परिपूर्ण थे। यूनानियों ने अपने नगरों में अनेक भव्य देव मन्दिरों का निर्माण किया। मिट्टी चूना, पत्थर के अतिरिक्त

संगमरमर के सुन्दर मन्दिर, किले, द्वार व ऊंचे भवन बनाये गये। स्तम्भों को एक ढङ्ग से सुसज्जित कतार पर भवन का निर्माण करना इनकी प्रमुख विशेषता रही है। स्तम्भों के आधार पर कला तीन भागों में विभक्त थी (१) आयोनिक, जिसके स्तम्भ कम भारी एवं सुन्दर होते थे। (२) डोरिक, जिसके स्तम्भ सादे और भारी थे। (३) कारिन्थियन में स्तम्भ काफी लम्बे और अलंकृत होते थे। डोरिक शैली का सर्वश्रेष्ठ नमूना एथेन्स की एक्रोपोलिस पहाड़ी पर बना 'पारथेनन' था। इसी पहाड़ी पर आयोनिक शैली का बना ऐरेचेथियम का प्रसिद्ध मन्दिर था। इसी शैली का एक प्रसिद्ध देवालय एफोसियस में 'डायाना' (चन्द्रदेवी) का था, जिसकी गणना संसार के सात आश्चर्यजनक वस्तुओं में होती है। कारिन्थियन शैली का सबसे श्रेष्ठ उदाहरण एथेन्स में लीसीक्रेटीज का स्मारक है। इनके अतिरिक्त मिसली मे देव नेपचून का प्राचीन मन्दिर, कोरिन्थ का विशाल मन्दिर और एपिडारस में यूनानी विशाल थियेटर जिसमे हजारों दर्शकों के बैठने के लिए प्रशस्त गैलरी बनी हुई है, इनकी स्थापत्य कला की कुशलता के द्योतक है। ग्रीक वास्तुकला मे नक्काशी और चित्रांकन का इतना महत्व नहीं जितना एक विशिष्ट समरसता एवं सुखद दृष्टव्यता का है। प्राचीन ग्रीस का कोई भी भवन या मन्दिर आज पूर्ण रूप से नहीं मिला है। उनकी कल्पना और विशेषताओं का अध्ययन उनके खण्डहरों पुस्तकों के अन्वेषण और रोमन की प्रतिकृतियों से ही किया जा सकता है।

यूनानी मूर्तियों मे भी सौन्दर्य और सजीवता पाई जाती है। ये नरम पत्थर, संगमरमर या धातु की मूर्तियां बनाते थे जो देवी देवताओं, दार्शनिकों, कवियों, योद्धाओं की होती थी। यूनान की प्राचीन मूर्तियां अधिकतर नष्ट कर दी गई थी। प्राचीन ग्रीक साहित्य मे यहा के देवताओं के राजा 'जियस' की स्वर्ण और हाथी दांत की ६० फीट ऊँची मूर्ति का विवरण प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार अद्भुत सौन्दर्यमयी ग्रीक देवी 'एफ्रोडाईटी' (सौन्दर्य की देवी) और अन्य देवी देवताओं की विशाल और सजीव मूर्तियों का भी विवरण प्राप्त हुआ है। रोड्स द्वीप में ई० पूर्व २८० के कांस्यधातु की सो फीट ऊँची मूर्ति

'अपीलो' (सूर्य देव) की बनाई गई जो प्राचीन संसार में एक आश्चर्य मानी जाती थी। यूनानी कलाकार शारीरिक सौन्दर्य, स्वाभाविकता, अवयवों की मासलता और सन्तुलन का विशेष ध्यान रखते थे। अतः इनकी कृतियों मे भावाभिव्यक्ति का अभाव था तथा उनकी कला फोटोग्राफी मात्र थी। देव मूर्तियों के अलावा कालान्तर ने वास्तविक जीवन की भांकियों को भी पत्थरों द्वारा व्यक्त किया जाने लगा। यूनानी तक्षण कला का सर्व प्रमुख कलाकार फिडियस था जिसने देवी एथेना की विशाल प्रतिमा बनाकर पारथेनन के मन्दिर में रखी। उसके बाद प्राक्जिटिलीट यूनान का निर्माता प्रसिद्ध कलाकार हुआ। उसकी कला मे परिष्कार और कोमलता अधिक है। स्कोपस ने भी मूर्तियों का निर्माण किया था।

ग्रीक चित्रकला के अधिकांश नमूने नष्ट हो गये। केवल मिट्टी एवं संगमरमर के पत्थर के बर्तनों पर एवं भवनों की दीवारों पर चित्रकला के कुछ अवशेष देखने को मिले हैं। पेरीक्लीज के युग मे ग्रीस ललित कलाओं की विशेष उन्नति हुई। पोलीग्रोटस प्रमुख चित्रकार था। किन्तु उसके चित्र अब प्राप्त नही है। माइकोन और अपीलीज भी प्रसिद्ध चित्रकार थे। यूनान में भी संगीत का काफी प्रचलन था। वहाँ के पौराणिक कथाओं में महान संगीतज्ञ 'आर्रफीयस' का नाम आता है जो अपने वाद्य के माधुर्य के लिए विख्यात था।

यूनानी धर्म—प्राचीन यूनानी लोग बहुदेववादी और मूर्ति पूजक होते थे तथा प्राकृतिक शक्तियों की आराधना करते थे। सूर्य, चन्द्र, वायु, आकाश, पृथ्वी, समुद्र, नदी सभी को देवता माना जाता था। उनके देवता मनुष्य ही थे तथा मानव जीवन के दोषो से युक्त थे। बहुधा यूनानी देवता कामुक, अनैतिक, झगडालू और स्वार्थी होते थे। केवल उनकी अमरता ही उन्हें मनुष्य से ऊपर उठाती थी। देवताओं के सम्बन्ध में ग्रीक वासियों की कल्पना आध्यात्मिक भावों से नितान्त शून्य थी। देवताओं के प्रति भय व शंकाओं के भाव यूनानियों में नहीं थे किन्तु उनसे निर्भयता, प्रेम और मैत्री के सम्बन्ध होते थे। ग्रीक

समाज धर्म रूढि नही परन्तु लौकिक था। ग्रीस मे धार्मिक परम्परा ऐहिक उन्नति, नैतिक विकास एवं विज्ञान की प्रगति में बाधक नही थी, वरन् स्वतन्त्र दार्शनिक चिन्तन एवं कलात्मक रचना दैवी गुण ही समझे जाते थे। यूनानी समाज पर पुरोहित वर्ग का आधिपत्य कभी स्थापित नही हो सका। प्रत्येक परिवार मे पिता ही पुरोहित समझा जाता था। वज्रधारी 'जीयस' ग्रीक आर्यों का सबसे महान् देवता था जो आकाश मे रहता था। वह देवताओं का जन्मदाता था। हेरो उसकी पत्नी थी। उसका सिंहासन ग्रोलिम्पस पर्वत पर स्थापित था। तथा उसकी सभा मे अनेक दूसरे देवीदेवता उपस्थित रहते थे। अग्नि का देवता 'वल्कन' युद्ध का 'मार्स' समुद्र का 'पोसीडन' प्रकाश और भविष्यवाणी का 'अपोलो' सुरा और उन्माद का 'डायोनिसस' आदि मुख्य थे। देवियो मे 'डेमिटर' पृथ्वी माता की, 'अथीना' विद्या की और 'अफ्रोडाईट' प्रेम की प्रतीक थी। प्रत्येक देवता का मन्दिर बनवाया जाता था। एपोलो के मंदिर डेल्फी और डेलोस ते थे। इनकी उपासना में गायन, खेल कूद, जलूस निकालना और भोज आदि किये जाते थे। किन्ही देवताओ के सम्मान मे राष्ट्रीय उत्सव मनाये जाते थे। धर्म हमेशा राजसत्ता के अधीन रहा, राज्य सर्वोपरि था, धर्म नही। यूनानियो ने अन्धविश्वास से ऊपर उठकर बौद्धिक चिन्तन किया था।

यद्यपि यूनान की सभ्यता का दीपक बुझ गया किन्तु यूनानी भाषा, साहित्य, दर्शन, कला धर्म शासन व्यवस्था, विज्ञान, कानून सामाजिक एवं आर्थिक विचारो के लिये यूरोप के निवासी यूनानी सभ्यता के ऋणी हैं। यूनान के दर्शन ने यूरोप को बहुत प्रभावित किया। प्रकृति के रहस्यो को विशुद्ध तर्क से जानने की चेष्टा, दर्शन की विभिन्न शाखाओं को जन्म देना, शासन सम्बन्धी बातो पर वैज्ञानिक दृष्टि कोण से बातें करना और प्रजातन्त्र, समानता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को स्वीकार करना यूनान वालो से ही यूरोप निवासियो ने सीखा। वस्तुत. यूनान को समृद्धि संस्कृति आधुनिक यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति की जननी है। यूरोपीय ज्ञान विज्ञान, भाषा, साहित्य

कला, दर्शन, राजनीति और कानून सभी का मूल प्राचीन यूनानी सभ्यता और संस्कृति में विद्यमान है। यूनान के नगर राज्यों और सिकन्दर के साम्राज्य का अन्त हो गया किन्तु यूनान के विद्वानों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, कलाकारों और विचारकों की देन स्थाई एवं अमर सिद्ध हुई। सुकरात, प्लेटो और अरस्तू यूनान और यूरोप के ही नहीं वरन् समस्त मानव जाति के पथ प्रदर्शक हैं। सौन्दर्योपासना और व्यक्तिगत जीवन के विकास और उन्नति के भावों के लिए यूरोप ही नहीं सारा विश्व यूनान का आभारी है।

रोम की सभ्यता

रोम की स्थापना एवं विस्तार:—इटली में आर्यों की अनेक बस्तियाँ थी जिनमें प्रमुख केन्द्र प्रसिद्ध रोम नगर था। रोम की स्थापना के सम्बन्ध में विभिन्न पौराणिक कथायें प्रचलित हैं। एक कथानुसार होमर के महाकाव्य में वर्णित ट्रोय युद्ध के प्रसिद्ध ट्रोजन वीर ईनीय ने अपनी पराजय के बाद एक नये साम्राज्य की खोज में इटली में प्रवेश किया और यहां की राजकुमारी से विवाह कर लिया। इसी विवाह से उत्पन्न पुत्र ईनीज सिलवियस ने रोम नगर की स्थापना की। दूसरी दंत कथा के अनुसार लगभग ७३५ ई० पू० में रोमलो और रेमस नामक दो भाईयों ने इस नगर की नीव डाली। रोम नगर टाइबर नदी के दक्षिण किनारे पर स्थित है। लेटिन आर्यों के यहां बसने के पूर्व, नदी के दूसरे किनारे पर और उत्तरी भाग में एक दूसरी सभ्य 'एट्रूसकन' नामक जाति के व्यापारियों की बस्तियां थी जो सम्भवतः काले गोरे जाति के थे और सभ्यता में लैटिन आर्यों से काफी उन्नत थे। एट्रूसकन लोगों से ही इन आर्य चरवाहों ने स्थापत्य, चित्रकारी और व्यापार की कला सीखी। अनेक वर्षों तक एट्रूसकन और लैटिन आर्यों में प्रभुता के लिए संघर्ष चलता रहा। अंत में ई० पू० छठी सदी में रोम पर लैटिन आर्यों का अधिपत्य हो गया तथा आर्य राजा (रोमन राजा) वहां शासन करने लगे।

रोमन राजा निरंकुश शासनाधिकारी नहीं होते थे। राज्य का उत्तर-

दायित्व व बहुत से अधिकार एक संगठन के हाथ में रहते थे। जिसको 'सीनेट' कहते थे। 'सीनेट' के सदस्य ही 'पेट्रिशियन' वर्ग के लोगों में से राजा चुनते थे, जो सीनेट की राय के अनुसार शासन करता था। धीरे २ इन प्रारम्भिक राजाओं के शासन का अन्त ही हो गया और ५१० ई० पू० रोमन लोगों ने गणराज्य की स्थापना की। अब शासन व्यवस्था का संचालन दो बड़े अधिकारियों द्वारा होता था जो कि 'कौन्सल' कहलाते थे। कौन्सल की सहायतार्थ असेम्बली तथा सीनेट दो धारा सभायें होती थी। संकट काल में शासन कार्य डिक्टेटर सम्भालता था।

रोमन गण राज्य की स्थापना के समय इटली में उत्तर में पो नदी तक 'ऐट्रुसकन' लोग बसे हुए थे तथा दक्षिणी इटली व सिसली द्वीप के पूर्वी भागों में ग्रीक लोगों के उपनिवेश थे। भूमध्य सागर के दक्षिणी तट पर अफ्रीका में कारथेज का महान नगर बसा हुआ था। रोमन लोगों को ग्रीक साम्राज्य विस्तार से बहुत अधिक भय था। २८० ई० पू० ग्रीक वासियों ने रोमन के विरुद्ध लड़ने के लिए एपिरस के शासक पीरस को निमन्त्रण दिया। रोमन लोग पीरस से दो बार हारे, किन्तु अन्त में कारथेज की सहायता से विजय पाने में सफल हुये और इटली के दक्षिण भाग में ग्रीक राज्य का अन्त ही गया। सिसली कारथेजिन लोगों के हाथ लगा।

रोम और कारथेजः—पीरस के विरुद्ध स्थापित की हुई रोम और कारथेज की मित्रता अधिक दिनों तक नहीं ठहरी, क्योंकि दोनों शक्तियाँ भू-मध्य-सागरीय प्रदेश में अपनी प्रभुता की स्थापना एवं प्रसार के लिए व्यग्र थी। अतः २६४ से १४६ ई० पू० तक दोनों में आपस में तीन युद्ध हुए जो 'प्यूनिक' युद्धों के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रथम प्यूनिक युद्ध में रोम वालों ने कारथेज वालों को हराकर सिसली कॉर्सिका तथा सारडिनीया पर अधिकार जमा लिया। दूसरा युद्ध १७ वर्ष तक चलता रहा। इस समय स्पेन में कारथिजियन लोगों का अधिकार था। इतिहास प्रसिद्ध जनरल हेनीबाल के नेतृत्व में कारथे-

जियन सेनाओं ने स्पेन से बढकर इटली में प्रवेश किया एवं अनेक रोमन नगरों को नष्ट करती हुई इटली के दक्षिण द्वार तक जा पहुंची। हेनी बाल १५ वर्ष तक इटली मे मारकाट करता रहा, किन्तु फिर भी रोमन सेनापतियो ने हिम्मत न हारी। रोमन जनरल सीपीओ ने अवसर पाकर स्वयं कारथेजियन लोगों की राजधानी कारथेज पर आक्रमण कर दिया। हेनीवाल भी इटली से कारथेज की रक्षा हेतु वहां पहुंच गया। कारथेज के निकट २०२ ई० पू० मे झामा नामक स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ। जिसमें हेनीवाल की पराजय हुई एवं उसने विषपान कर आत्म हत्या करली। इस विजय से स्पेन रोमन लोगो के अधिकार मे आ गया और युद्ध की क्षतिपूर्ती के रूप में कारथेज निवासियो को २५ लाख पाउन्ड रोमन लोगो को देने पड़े। झामा के युद्ध के पश्चात लगभग ५० वर्ष तक शान्ति रही। १४६ ई० पू० तीसरा प्यूनिक युद्ध लडा गया। रोम के प्रसिद्ध नेता केरो ने कारथेज नगर पर हमला किया एवं उसे जलाकर भस्म कर दिया। कारथेज की ५ लाख आबादी मे से ५० हजार बचे जिन्हें ग़ुलाम बनाकर रोम भेज दिया गया। तृतीय युद्ध के पश्चात रोमन लोगो ने मेसीडोनिया के ग्रीक राजा को हराया क्योकि उसने रोम के विरुध हेनीवाल की सहायता की थी। रोमनो ने कॉरिन्थ पर अधिकार जमा लिया और एशिया मइनर से एन्टिओकस को बाहर निकाल दिया। १६८ ई० पू० में मिश्र तथा युनान ने भी रोम की आधीनता स्वीकार कर ली, जिसके फल स्वरूप रोमन गण राज्य का विस्तार १५० ई० पू० मे स्पेन से लेकर पूर्व में एशिया माइनर तक हो गया।

इस प्रकार रोम अत्यन्त शक्ति-शाली हो गया। दूसरे देशो पर विजय का परिणाम यह हुआ कि रोम में धन और विलासता बढ़ गई। देश पर सेनापतियों का प्रभाव स्थापित हो गया। इन सेनापतियों मे पाम्पी एवं जूलियस सीजर थे। सीजर ने फ्रास एवं ब्रिटेन को जीता तथा पाम्पी पूर्व की ओर सफल हुआ। किन्तु इन दोनों की प्रतिद्वन्दता के फलस्वरूप सीजर, पाम्पी को हरा कर रोमन संसार का प्रमुख नेता बन गया। सीजर ने प्रजातन्त्र को तोड़ कर सम्राट बनने का प्रयत्न किया किन्तु ४४ ई० पूर्व मार डाला गया।

सीजर की मृत्यु के पश्चात रोमन प्रजातन्त्र भङ्ग हुआ और सीजर का दत्तक पुत्र आगस्टस सीजर के नाम से सम्राट हुआ। उसने अपना खिताब 'इम्परेटर' रखा जिसका अर्थ होता है आज्ञा देने वाला। सम्राट ने सारी शक्ति अपने हाथ में लेली एवं वह पूरी तरह निरंकुश बन गया जिसे लोग देवता की भांति मानने लगे। सम्राट के पश्चात सम्राट हुए जिनमें कई तो बुरे और कई बहुत ही बुरे थे। धीरे धीरे सारी शक्ति सेना के हाथ में आ गई और वह अपनी इच्छा के अनुसार सम्राटों को बनाने एवं बिगाड़ने लगे। ज्यों २ सम्राट कमजोर होता गया, सेना अधिक प्रचण्ड होती गई। पूर्व की ओर से संकट नजर आने लगा फल स्वरूप कान्स्टेन्टाइन नाम के सम्राट ने साम्राज्य की राजधानी को रोम से हटा कर कान्स्टेन्टिनोपुल को सामाज्य की राजधानी बनाया। किन्तु यह साम्राज्य अधिक दिनो तक कायम न रह सका। बर्बर लोगों ने इसे रेत की दीवार तरह ढहा दिया।

रोमन गण राज्य की शासन प्रणाली—रोम गण राज्य के सबसे अधिक समृद्धि काल में, दुनिया के विभिन्न भाग सम्मिलत थे। इटली, पश्चिम में स्पेन एवं गाल, पूर्व में ग्रीस एवं एशिया माइनर, दक्षिण में कार्थेज और भूमध्य सागर तट के अन्य कुछ भूभाग एवं मिश्र। यूरोप में इस राज्य की सीमा राइन नदी तक थी।

इस विशाल राज्य का केन्द्र रोम था एवं इसका संचालन करने का अधिकार दो निर्वाचित व्यक्तियों में निहित था। वे न्यायाधीश या सलाहकार कौंसिल कहलाते थे। इन का चुनाव रोम के समस्त व्यक्तियों की संसद करती थी जो 'कोमीटीया' कहलाती थी। पहले मत देने का अधिकार केवल उच्च वर्ग के (पेट्रिसियन) लोगों को था। किन्तु अनेक वर्षों के द्वन्द के पश्चात् प्लेबियन्स (साधारण वर्ग) को भी यह अधिकार प्राप्त हो गया। गुलाम लोगों को किसी प्रकार का अधिकार नहीं था। ज्यों २ इटली में रोमन राज्य बढ़ा त्यों त्यों इटली के सब लोगों को रोमन नागरिक घोषित कर दिया गया। सर्व

साधारण की इस संसद की अनुमति के अनुसार ही महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय होता था, किन्तु धीरे २ सब अधिकार सीनेट में निहित हो गये थे। इटली के बाहर रोम के आधीन जितने राज्य और प्रान्त थे उनका शासन करने के लिए रोमन सीनेट द्वारा शासक नियुक्त किये जाते थे। उन प्रान्तों के शासन का पूर्ण अधिकार इस सीनेट द्वारा नियुक्त शासकों को होता था। ये शासक सीनेट के प्रति उत्तरदायी होते थे।

'सीनेट' गण राज्य के विधान की एक मुख्य केन्द्रीय संस्था थी। इसके सदस्यों की नियुक्ति उपरोक्त दो निर्वाचित कौंसलर्स के द्वारा होती थी। पहले तो पेट्रिसियन लोगों में से ही सीनेटर्स की नियुक्ति की जाती थी परन्तु बाद में प्लेबीयन लोगों में से भी सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति होने लगी। राज्य कार्य के लिए जितने भी मजिस्ट्रेट या अफसर होते थे वे संसद द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। सीनेट के सदस्य प्रायः वे ही लोग होते थे जो समाज में अपनी कुशलता, राजनितिज्ञता या वक्तृत्व शक्ति से अपना स्थान बना लेते थे। साधारणतः सदस्यों की संख्या ३०० से ५०० तक होती थी। सीनेट उस काल के अनुभवी राजनीतिज्ञ, कुशल मजिस्ट्रेट की एक संस्था थी। धनिक, जमींदार लोग भी इसके सदस्य नियुक्त होते थे। रोम के मध्य बाजार में सीनेट-गृह बना हुआ था वहीं सीनेट की बैठक होती थी। राज्य की नीति का निर्माण, युद्ध और शान्ति एवं राजकीय अन्य सब महत्व पूर्ण बातों का संचालन सीनेट करती थी जहां राजनितिज्ञों, बड़े २ प्रभाव शाली वक्ताओं की बहस के बाद ही प्रश्नों का निर्णय होता था। इस विधान में लचीलापन था क्योंकि विशेष संकट की स्थिति में सीनेट कौंसलर्स इत्यादि को स्थगित करके सब राज्य भार और कार्य संचालन, किसी योग्य डिक्टेटर की नियुक्ति करके; उसको सौंपा जा सकता थी।

सामाजिक जीवन—रोमन समाज में दो वर्ग थे, उच्च वर्ग अथवा पैट्रीसियन एवं साधारण अथवा प्लेबियन। पेट्रीसियन वर्ग में परम्परा से

प्रतिष्ठित परिवार, धनिक लोग, बड़े बड़े भूमिपति ग्रादि थे । साधारण वर्ग के लोग गरीब होते थे ग्रौर मुख्यतया खेती ग्रौर मजदूरी करते थे । ज्यों-ज्यों रोम के राज्य की सीमायें बढ़ती गई ग्रौर रोमन लोग ग्रन्य जातियों पर विजय प्राप्त करने लगे, रोमन राज्य में तीसरा वर्ग, गुलामों का उत्पन्न हो गया। गुलाम वही विजित लोग होते थे जिनको दूसरी जातियों के साथ युद्ध के ग्रव-सरों पर पकड़ लिया जाता था। वे गुलाम बड़े-बड़े जमींदार एवं धनिकों के हाथ में ग्राते थे जो रोमन सीनेट के सदस्य होते थे। गुलाम लोग खेती करते, चाकरी करते एवं तमाम मजदूरी का कार्य करते थे। इनके साथ मन चाही निर्दयता का व्यवहार किया जाता था, इनको मारा पीटा जाता था एवं व्या-पारिक वस्तुग्रों की भाँति उनका क्रय-विक्रय भी किया जाता था। इन्हीं गुलामों लोगों की मजदूरी से बड़े-बड़े विशाल भवन ग्रौर मन्दिर खड़े होते थे।

रोमन समाज में विवाह एवं स्त्रियों के ग्रधिकार—यदि पुरुष ग्रौर स्त्री में विवाह के उद्देश्य से यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाता था तो स्त्री पुरुष के घर चली जाती थी ग्रौर वे दोनों पति पत्नी की तरह मान्य होते थे। इस विवाह में किसी भी प्रकार की रस्म ग्रदा करने की ग्रावश्यकता नहीं थी। यदि लड़की का पिता चाहता तो लड़की को दहेज दे सकता था, वह दहेज पति की सम्पत्ति समझा जाता था। इसको छोड़ कर पति एवं पत्नी का धन स्वतन्त्र होता था, यहाँ तक कि पत्नी ग्रपने पति को ग्रपने धन का दान भी नहीं कर सकती थी। तलाक की स्वतन्त्रता थी। पति या पत्नी में से कोई भी जब चाहे एक दूसरे का परित्याग कर सकते थे।

रोमन कानून—रोमन संसद द्वारा समय-समय पर इसलिए नियम बनाये गये थे कि खेती के लिए प्लेबियन लोगों को सामूहिक भूमि मिले, निर्धा-रित वर्ग भूमि से ग्रधिक भूमि कोई नागरिक नहीं रख सके, भूमिगत कर्ज माफ कर दिये जाएँ इत्यादि, किन्तु जो कुछ भी नियम बनते थे वे लिखे नहीं जाते थे, ग्रतएव उच्च वर्ग के लोग, जो ग्रधिकतर सीनेट के सदस्य होते थे, मन चाहे

ग्रंथ थे, जिनमें उनका स्वार्थ साधन हो उन नियमों को उल्लेख कर लेते थे। अतएव एक आन्दोलन चला जिसका उद्देश्य था कि रोम के प्रचलित कानून लिख लिये जायें। अन्त में ४५० ई० पूर्व में प्राचीन अलिखित कानूनों के आधार पर कुछ कानून बनाये गये जो १२ भागों में विभक्त थे। ये कानून १२ पट्टियाँ कहलाते हैं। एवं रोमन कानून के आधार समझे जाते हैं। ये बारह पट्टियाँ अपने आदि रूप में प्राप्त नहीं हैं, किन्तु ऐसा वर्णन अवश्य मिलता है जिससे विदित होता है कि प्रसिद्ध सीनेटर सीसरो के ज़माने में (ई० पू० प्रथम शताब्दी) प्रत्येक युवक को इन बारह कानूनों की पट्टियों को कंठाग्र करना पड़ता था। ये कानून परिवार में पिता पुत्र के सम्बन्ध, परिवार में धन का वितरण, गार्जियनशिप, विवाह, तलाक आदि से सम्बन्धित हैं। इन १२ पट्टियों के पश्चात् भी रोमन कानून का विकास होता रहा। भिन्न-भिन्न काल में मजिस्ट्रेटों, सम्राटों के जो आदेश होते थे, लोगों की संसद द्वारा जो कानून पास होते थे, वे सब संग्रहित होते जाते थे। अन्त में ईसा की छठी शताब्दी में रोमन सम्राट जस्टिनियन ने इस बात से पूर्व के सब रोमन कानूनों का संग्रह कराया, उसका विधिवत् वर्गीकरण कराया और उसका एक सारांश तैयार करवाया जो 'जस्टिनियन कानून' कहलाता है। इंग्लैण्ड को छोड़ कर यूरोप में जितने भी कानून प्रचलित हैं उनका आधार 'जस्टिनियन कानून' ही है। कई अंशों में तो इंग्लैण्ड के कानूनों पर भी रोमन कानून का प्रभाव है। प्राचीन रोमन सभ्यता की दुनियां को सबसे बड़ी देन उपरोक्त विधिवत् विभाजित और संहिताबद्ध कानून ही है। दूसरे किसी प्राचीन देश में कानूनों का इतना सुसंगठित और सुविकसित रूप नहीं मिलता और न्यायाधीशों और न्यायालयों की इतनी सुन्दर व्यवस्था मिलती है।

धन्धे—रोमन लोगों का मुख्य धन्धा कृषि था। धीरे-धीरे अंगूर, अंजीर, नारंगी और जैतून आदि की फसल होने लगी। कृषि के साथ-साथ पशुपालन जैसे गाय, बैल, घोड़ा, भेड़, बकरी आदि के पालन का कार्य भी होता था। भेड़ों की ऊन से कपड़े बुने जाते थे। लोहा, टीन, चांदी-सोना इत्यादि की

जहां खानें होती थी उनकी खुदाई की जाती थी। शिल्प और हस्त उद्योग में कुशल लोग संगमरमर के सुन्दर भवन और मूर्तियां, लोहे के हथियार और चांदी सोने के आभूषण और मुद्रायें बनाते थे। व्यापार एवं युद्ध के लिए बड़े-बड़े जहाजों का निर्माण किया जाता था जो पतवार एवं पाल से चलते थे। व्यापार बहुत उन्नत अवस्था में था। पूर्वीय देशों से जवाहरात, रेशम मिर्च और मसाले जहाजों में भर कर अरब देशों तक आते थे, वहां से वह ऊँटो के काफीलों पर लद कर मिस्र और सीरिया देश तक पहुंचते थे, और वहां से फिर जहाजों पर लद कर वे रोम पहुंचते थे। पश्चिमी दुनियां में पहले व्यापार केवल वस्तुओं की अदला बदली से होता था, किन्तु बाद में सिक्कों का प्रचलन हो चुका था जिससे व्यापार बहुत सरलता से होने लगा था, यद्यपि इससे समाज में कुछ बुराइयां आ गई थी।

रोमन लोगों का धर्म और जीवन--रोमन लोग देव-वाद एवं मूर्ति-पूजक थे। इटली मे बसने के पूर्व प्राचीन काल में अनेक जातिगत देवताओं की पूजा का इनमें प्रचलन था। इटली में बसने के बाद और ग्रीक लोगों के सम्पर्क में आने के पश्चात् ग्रीक लोगो के अनेक देवता भी इन लोगो के देवताओं से मिलजुल गये थे। रोमन समाज का मुख्य देवता जूपीटर था जिनका ग्रीक नाम ज्यूस था। इसके अतिरिक्त मार्स युद्ध का, अपोलो संगीत एवं कला का, वल्कन अग्नि के देवता थे। वीनस सौन्दर्य की, माइनरवा ज्ञान की देवियां थी। मर्करी देवताओं का सन्देशवाहक एक चालाक नटखट देवता था।

इन देवताओं की सुन्दर-सुन्दर मूर्तियो का निर्माण हुआ था, जो मन्दिरो में स्थापित थी। मन्दिरो के लिए कलापूर्ण एवं विशाल भवनो का निर्माण हुआ था। किन्तु इन देवो देवताओं के प्रति रोमन लोगों में कोई भय अथवा रहस्य की भावना नहीं थी और न ये लोग किसी शासक में देवत्व की भावना का आरोप करते थे। रोमन साम्राज्य काल में रोमन सम्राटों की मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ जिनको मन्दिरो में स्थापित किया जाने लगा एवं देवताओं

की तरह उनकी पूजा होने लगी थी। प्रत्येक रोमन के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह मन्दिर में सम्राट की मूर्ति के सामने सादर मस्तिष्क झुकायें। किन्तु इन सब के पीछे सम्राटो के "ठाठ-बाट" और आत्म-पूजा करवाने की भावना थी।

मनोरंजन—रोमन लोगों के मनोरंजन का मुख्य साधन ग्लेडियटर का खेल था। ग्लेडियटर वे गुलाम लोग होते थे जिनको विशेषकर ऐसे तमाशों के लिए प्रशिक्षण देकर तैयार किया जाता था। इनका शरीर अत्यन्त शक्तिशाली बनाया जाता था। इनको अनेक हथियारो से खेलना सिखाया जाता था। इन तमाशो के लिए और अन्य खेलों के लिए जैसे घुड़दौड़, रथदौड़ इत्यादि के लिए रोमन लोगो ने बड़े-बड़े थियेटर बनाये थे जहा पर एकसाथ ४०-५० हजार दर्शकों के बैठने के लिए पक्की गैलरी बनी होती थी। अम्फीथियेटर के केन्द्र में एक विशाल अखाड़ा बना होता था जहाँ ग्लेडियेटर लोग खेल करते थे। दो खिलाड़ियो को हथियार देकर और उनके चेहरों को तरह-तरह के अजीब नकाब से सजाकर अखाड़े में लड़ने के लिए छोड़ दिया जाता था। कभी-कभी सैंकड़ो खिलाड़ी एक साथ छोड़ दिये जाते थे। जब तक दो में से एक नहीं मर जाता इन ग्लेडियेटरों को लड़ना पड़ता था। कभी-कभी खिलाड़ियों से लड़ने के लिए जंगली जानवर छोड़ दिये जाते थे जैसे शेर, रीछ, भेड़िया इत्यादि। यदि कोई खिलाड़ी अखाड़े मे आने के लिए आनाकानी करता था तो उसे हंटरों से पीट कर या गर्म लोहे से दाग कर अखाड़े में लाया जाता था। ये तमाम खेल बहुत ही असभ्य और क्रूर होते थे पर रोमन लोग इन्हीं से प्रसन्न होते थे।

विज्ञान—प्राचीन रोम का सबसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक एल्डरप्लिनी था जिसने अपने 'प्राकृतिक इतिहास' में प्रकृति सम्बन्धी कुछ तथ्यों का निरूपण किया। दूसरा महान वैज्ञानिक टोलमी था जो गणितज्ञ एवं भूगोलवेत्ता भी था उसने यूनानियों द्वारा निर्मित विश्व के भौगोलिक मानचित्र को सुधार कर एक दूसरा मान चित्र बनाया। सेनेकों दार्शनिक एवं वैज्ञानिक दोनों ही था। उसने

अपने ग्रन्थो मे ज्योतिष भूतर्म विज्ञान तथा खगोल विद्या के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया। गैलन, रोमन युग का (१३०–२०० ई०) महानतम चिकित्सक था। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। विज्ञान एवं गणित के क्षेत्र मे रोमन लोगो की कोई मौलिक उपलब्धि नही है किन्तु रोमन सभ्यता ने अपनी व्यवहारिक प्रतिभा के बल पर अनेक इन्जीनियर उत्पन्न किये थे जिन्होंने विशाल भवनों, एम्फीथियेटरों, सड़कों एवं पुलों का निर्माण किया। नगरों मे बड़े कौशल से ठण्डे पानी का प्रबन्ध किया गया। इन्जीनियरो ने विशाल नालिया बनाईथी जिनमे पहाड़ो का ठन्डा जल एकत्र और प्रवाहित होकर नगरों तक पहुंचता था।

कला—रोमन लोगो की स्थापत्य और मूर्तिकला प्रायः ग्रीक मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला से मिलती हुई है। रोमन लोगो द्वारा बनाये हुए मंदिरो और देवताओ की मूर्तिया बहुत अंशो तक ग्रीक मन्दिरो और मूर्तियों की नकल है। शारीरिक गठन और सौन्दर्य का भान इन लोगो को इतना ही था जितना ग्रीक लोगों को। यही हाल उनकी चित्रकला का भी है। रोमन कला मे वास्तविकता का पुट अधिक था। उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। सौम्यता और सुन्दरता पर कम। रोमन लोगों ने कंक्रीट तैयार की जिसका प्रयाग वे भवन निर्माण मे करते थे। इसी की सहायता से वे निराधार गुम्बद तथा मेहराब बनाते थे। ऐसा विदित होता है कि रोमन शिल्पकारों ने ग्रीक तथा भूमध्य सागरीय कला के मूल तत्वो को मिलाकर नवीन वास्तु शैली का विकास किया था। प्राचीन पोम्पे नगर जो कि ज्वालामुखी लावा से दब गया था पुरातत्व वेत्ताओ ने खोद कर निकाला है। इन भग्नावशेषों से रोमन भवनों की विशालता और महानता का पता लगता है। प्राचीन रोम की सबसे प्रसिद्ध इमारत 'सरकस मैक्समस' थी जिसमे दो लाख २५ हजार व्यक्ति एक साथ बैठ सकते थे। इस युग का सबसे सुन्दर मन्दिर पेन्थियन मन्दिर था। खेल तमाशों के लिए अनेक विशाल एम्फीथियेटर थे। कोलोसियस थियेटर में ८७ हजार दर्शक एक साथ बैठ सकते थे। इसकी सबसे विलक्षण बात सिमटनेफैलने वाली एक छत थी जो धूप के समय समस्त कोलोसियस पर छा दी जाती थी।

रोमन मूर्तिकला मानववाद की मूर्तिकला थी। प्लास्टर, संगमरमर और कांसे में मनुष्यों की सजीव एवं सुन्दर मूर्तियां निर्मित की जाती थी। गणतन्त्र काल की जूलियस सीजर, ऐन्टोनी, एवं अन्य व्यक्तियों की कांसे की मूर्तियां सजीवता और वास्तविकता लिए हुए है। मारकस ओरेलियस की एक प्रतिमा मूर्तिकला का श्रेष्ठ नमूना है। चित्रकला के नमूने हमें पोम्पे की दीवारों पर प्राप्त होते हैं। उनको देखने से ऐसा भान होता है कि चित्रकार मैदानों के दृश्य और प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण में अत्यन्त कुशल थे।

साहित्य और दर्शन—रोमन भाषा के साहित्य की परम्परा होमर के महाकाव्य ओडेसी के लेटिन अनुवाद से प्रारम्भ होती है। वस्तुतः जो कुछ भी साहित्यिक कृतिया रोमन लोगों ने हमको दी है वे एक दृष्टि से ग्रीक साहित्य की अनुकरण मात्र है। ग्रीक महाकाव्य और दुखान्त नाटकों के अनुवाद के पश्चात् रोमन भाषा के दो स्वतन्त्र लेखक हुए, प्लाट्स एवं टिरेन्स जो दोनो नाटककार थे। ई॰ पूर्व की पहली शताब्दी रोमन साहित्य का स्वर्ण युग मानी जाती है एवं इसकी परम्परा साम्राज्य युग के प्रथम सम्राट ऑगस्टस के काल तक (१७ ई० स० तक) चलती रही। इस एक ही शताब्दी मे लेटिन साहित्य के महानतम् सृजनकार पैदा हुए। महाकवि वर्जिल जिसने ईनीड की रचना की, हौरेस जिसने ओड शैली में अनेक गीतों की रचना की, ओविड केट्यूलस जिन्होने हल्के मूड मे अनेक प्रणय लिखे, ज्यूवेनल जिसने व्यंगात्मक कवितायें लिखी महान् दार्शनिक कवि ल्युकरेसियस जिसने प्रकृति के विकास पर पर एक लम्बी कविता लिखी आदि कवि इसी शताब्दी मे हुए। सिसरो बहुत बड़ा गद्यकार था इतिहासकार सीजर ने 'कोमेन्टरिज' नामक ग्रन्थ लिखा। दार्शनिक लेखकों मे सम्राट मारकस ओरेलियस अत्यन्त प्रसिद्ध हैं उसने प्रसिद्ध पुस्तक 'मेडीटेशन्स' का निर्माण किया किन्तु इन सब साहित्य की रचना में हमें मौलिकता, प्रतिभा और सौन्दर्य के दर्शन नही होते। रोम ने होमर की तरह कोई कवि, सुकरात की तरह कोई महात्मा, प्लेटो की तरह कोई दार्शनिक और अरस्तू की तरह कोई वैज्ञानिक हमें नही दिया।

अरब सभ्यता

अरब एक रेगिस्तान देश है जहाँ के व्यक्ति बलिष्ट, परिश्रमी और स्वतन्त्रता प्रिय होते हैं। ये लोग प्रायः घुमक्कड़ प्रकृति के होते हैं, ऊँट और घोड़ों पर सवार होकर, भोजन को तलाश मे इधर उधर जाया करते थे। किन्तु उपजाऊ भूखण्डों मे खेती और पशुपालन भी करते थे, घास के मैदानो में भेड़, बकरी और ढोर पाल कर भी रहते थे। इनके अपने २ देवता और पूर्वज थे। कहते हैं अरब मे ३४० देवता थे, उनका मक्का मुख्य नगर था जहाँ एक मन्दिर था जिसमें एक काला पत्थर स्थापित था जिससे काबा कहा जाता था। ऐसा कहा जाता है कि यह काला पत्थर आकाश से टूटे हुए एक तारे का अंश है। काबा ही ३४० देवता मे सर्वोपरि था। रेगिस्तान होने के कारण अरब की तरफ विदेशियो का ध्यान नही गया जिसके फलस्वरुप संसार में फैलने वाली सभ्यताओं एवं साम्राज्य से अरब बिलकुल अछूता रहा।

अरब के लोग अभिमानी एवं झगड़ालू थे और दुनिया के अन्य लोगो से सम्बन्ध नहीं रखते थे। छटी शताब्दी मे इनके दो मुख्य नगर थे—मक्का एव मदीना। मक्का में वेदना नामक एक शाखा थी। इसी शाखा के एक साधारण घर में ५७० ई० मे हजरत मुहम्मद का जन्म हुआ जिसने २४ वर्ष की अवस्था मे मक्का मे ही एक ४० वर्षीय धनवान विधवा कदीजा से विवाह कर लिया। ४० वर्ष की आयु तक मुहम्मद में किसी भी विशेषता का आभास नही मिला किन्तु इस आयु के पश्चात् उसे अनुभूतियां प्राप्त होने लगी एवं हजरत ने इनका प्रचार करना प्रारम्भ किया। मुहम्मद साहब का कहना था कि जो कुछ भी वह कहता है उसका दर्शन अल्लाह के एक दूत ने उसे करवाया है, उसका ज्ञान, उसकी शिक्षा अल्लाह की देन है। अल्लाह एक है, बुतपरस्ती (मूर्ति पूजा) अज्ञानता है, जो अल्लाह में विश्वास करेंगे, वे स्वर्ग का उपभोग करेंगे, उसके अनुयायी बनने लगें, किन्तु मक्का निवासी जिनका जीवन निर्वाह मूर्ति पूजा पर निर्भर था, ये बातें सहन न कर सके उन्होंने मुहम्मद, उसके साथियों एवं

कुटुम्बियों को कत्ल करने का इरादा कर लिया। इसके लिए उन्होंने एक षड-यन्त्र रचा, जिसका पता मुहम्मद साहब को चल गया और वे मदीना चले गये। मुहम्मद एवं अबुबकर ने सन् ६२२ में मदीना में प्रवेश किया, यह प्रयाण 'हिजरत' करना कहलाता है तथा इसी दिन से मुसलमानों का हिजरी सम्वत् प्रारम्भ होता है। यह दिन इस्लाम की स्थापना का भी दिन माना जाता है। मदीना के लोगो ने मुहम्मद साहब का स्वागत किया। हिजरत करने के ६ या ७ वर्ष पश्चात् मुहम्मद साहब मक्का के शासक बनकर लौटे। उन्होंने विश्व के राजाओं को सन्देश भेजा कि 'उनको एक ही अल्लाह को मानना चाहिए और मुहम्मद को अल्लाह का पैगम्बर' सन् ६२२ में मुहम्मद साहब की मृत्यु होने पर अबुबकर मक्का का खलीफा बना। ऐसा कहा जाता है कि अबुबकर और उमर दोनों ने अरब राज्य एवं इस्लाम धर्म की नीव डाली। ये धार्मिक गुरू भी थे और राजनैतिक शासक भी थे।

इस्लाम धर्म—मुहम्मद साहब को कुछ आन्तिरिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी। उनका कहना था कि बन्दा अपनी इच्छा को अल्लाह की इच्छा में मिला दे और अपने आपको अल्लाह के भरोसे छोड़ दे। यह अल्लाह बुत में समाया हुआ नही है, इसलिए बुत परस्ती अज्ञान है, मन्दिर बलि, पूजा, पुजारी आदि सब मूर्खता है, इसलिए मुसलमानो को चाहिए कि इन सब को समाप्त कर दे। एक बहिश्त है एवं एक दोखज, जो अल्लाह में विश्वास करेंगे, वे स्वर्ग में परियों का उपभोग करेंगे। जो अल्लाह में विश्वास नही करेंगे दोखज की अग्नि मे जलते रहेंगे। एक मुसलमान दूसरे के जान माल पर निगाह नहीं डालेगा। मुहम्मद ने इबादत का ढंग रोजा रखना, शादी विवाह, धन जमीन, आचार विचार सब ही के नियम निर्देश कर दिये थे और यह घोषणा की थी कि उसका ज्ञान ईश्वर प्रदत्त है, अतएव यह सब कार्यों के लिए अपरिवर्तनीय है। उसने घोषित किया कि "मैं इब्राहीम मूसा और ईसा के बाद अन्तिम पैगम्बर हूँ"। मुहम्मद साहब के ये सब उपदेश उनके भक्त और अनुयायियों ने संग्रह किये और ये सब संग्रहित रूप मे कुरान कहलाये। कुरान ही मुसलमानो की एक मात्र धर्म पुस्तक है।

अबुबकर और उमर की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद की पुत्री फातिमा का पति, अली खलीफा बना जो बाद में मार डाला गया और उसका लड़का हसन अपने परिवार सहित करबेला के युद्ध क्षेत्र में काम आया, करबेला की इस दुर्घटना को मुसलमान आज भी मुहर्रम के रूप में मनाते है। खलीफा बनने के लिये मुहम्मद के कुटुम्ब मे दो दल हो गये, जो लोग अली के वंशजों को मुहम्मद साहब का अपना उत्तराधिकारी मानते थे, शिया कहलाये जो इनके विरोधी थे सुन्नी कहलाये।

सामाजिक जीवन—अबुबकर, उमर और उसमान के जमाने तक तो अरबो मुसलमानो राज्य नये जोश में सरल ढंग से चलता रहा, किन्तु तब तक काफी धन-दौलत इकट्ठी हो गई। पहले खलीफा चुने जाते थे, किन्तु बाद में जिसके हाथ में शक्ति होती थी, जो अधिक चालाक होता था वह खलीफा बन बैठता था। ऐश्वर्य एवं आराम से जीवन व्यतीत करना खलीफाओ का कार्य रह गया था। बड़े-बड़े महल, बाग बगीचे बनाये जाने लगे और दूर-दूर देशो से ठाट-बाट की वस्तुएं एकत्र होने लगी। पहिले मक्का राजधानी थी, फिर सीरिया दमिश्क और फिर ईराक मे बगदाद राजधानी बनाई गई। खलीफाओं के इन नगरों में बड़े सुन्दर सुन्दर महल बने हुए थे। खलीफाओ का ठाट प्राचीन रोम और ईरान के सम्राटों के ठाट को भी मात करता था। राज परिवार के झगड़े चलते रहते थे, साजिशें होतीं रहतीं थीं। साधारण जन अपनी खेती करते थे, भेड़ बकरी पालते थे, कुछ लोग व्यापार मे व्यस्त थे। जब तक अरब मे इस्लाम का प्रचार नहीं हुआ तब तक औरतें स्वतन्त्र थी, किसी प्रकार का पर्दा नही था, किन्तु इस्लाम धर्म के प्रचार के पश्चात् औरतो की दशा घर की एक बेजान चीज से बहतर नही रही। पर्दे का प्रचलन हो गया और खलीफा लोग अनेक विवाह करके स्त्रियो को हरम मे रखने लगे।

ज्ञान विज्ञान का विकास यह सब होते हुए भी ये अरबी मुसलमान काफी सहिष्णु थे और इनमें कुछ ऐसे स्वतन्त्र लोगो का विकास हुआ था जो

विद्या प्रेमी थे। ७वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर ११वी शताब्दी तक अरबी इस्लामी खलीफाओं का इतिहास परस्पर वैमनस्य, ईर्ष्या द्वेष,–लड़ाई–झगड़ों, पर्दे की स्त्रियां और गुलामो से भरा पड़ा है, किन्तु इन सबसे परे हमें एक दूसरी तस्वीर देखने को मिलती है जो वास्तव मे बहुत गौरवपूर्ण एवं सराहनीय है। ग्रीस की ज्ञान विज्ञान की परम्परा को अरब ने चालू रखा और आधुनिक काल को इस प्राचीन ज्ञान की ज्योति बताई। इतिहास की यह एक महत्वपूर्ण बात है।

अरब लोग अपने साम्राज्य के विस्तार मे अनेक लोगो के सम्पर्क मे आये थे, पहिला सम्पर्क उनका सीरिया के लोगो से हुआ। सीरिया की भाषा में अनेक प्राचीन ग्रीकदर्शन और विज्ञान के ग्रन्थो का अनुवाद मिलता था। इसी सीरियन भाषा से अरबी भाषा मे प्राचीन ग्रीक ग्रन्थो का अनुवाद हुआ। फिर अरबी सिन्ध के मार्ग से भारतीय मनीषियों तथा भारतीय संस्कृत साहित्य के सम्पर्क में आये, फलतः भारतीय आयुर्वेद शास्त्र, दर्शन और गणित के अनेक ग्रन्थों का अरबी मे अनुवाद हुआ और अरबो ने उनसे बहुत कुछ सीखा। अरब यहूदियों के सम्पर्क में भी आये। मध्य एशिया के रास्ते वे चीन के सम्पर्क में भी आये एवं ऐसा अनुमान है कि चीनियों से ही अरबो ने कागज बनाना सीखा और फिर यूरोप में यह कला अरबिस्तान से ही गई।

अरब में कई इतिहासकार हुए जिन्होंने अरबी भाषा में अपने काल का इतिहास लिखा, इसके अतिरिक्त अनेक रोमांचकारी कहानियां और किस्से लिखे जो आज भी पढे जाते हैं तथा जिनने इस काल में साधारण लोगों को पढ़ने के लिए प्रेरित किया। इसी काल मे अलबेरूनी नाम का एक प्रसिद्ध यात्री भारत की यात्रा के लिए आया, भारत की यात्रा करके वह अपने देश लौटा और जो कुछ उसने भारत में देखा उसका सुन्दर वर्णन लिखा। अरबों ने त्रिकोणमिति (ट्रिगनोमेट्री) का विकास तथा बीज गणित का आविष्कार किया आज जो गिनती के अंक प्रचलित हैं वे अरबी अंकों से ही लिए हुए हैं, अरबों ने ये

अंक कहा से लिये इसका अभी कोई निश्चय नहीं है, ऐसा अनुमान है कि अरबों ने भारत से ही इन अंकों को सीखा था।

चिकित्सा शास्त्र मे अरबों ने बहुत कुछ ग्रीक पुस्तकों से एवं भारतीय आयुर्वेद शास्त्र से सीखा। इस काल मे अरब के दवाखानों में बड़े बड़े चीरा-फाड़ी के कार्य होते थे, शरीर विज्ञान एवं सफाई शास्त्र का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन होता था। रसायन शास्त्र में इन्होंने कई नई चीजें ईजाद की जैसे अल्कोहल, पोटाश, नाइट्रिक तेजाब एवं गन्धक तेजाब। ये लोग शर्बत, सत्व और आसव भी बनाना जानते थे। भौतिक शास्त्र मे इन्होने लम्बक का आविष्कार किया और आखों की ऐनक के ज्ञान में बहुत कुछ विकास किया। उन्होंने कई वेधशालायें भी बनाई और नक्षत्रों की चाल इत्यादि देखने के लिए कई यन्त्र भी बनाये जो आज भी प्रचलित हैं। शिक्षा के प्रसार एवं ज्ञानविज्ञान की उन्नति के लिये कई विश्व विद्यालय थे जिनमें बगदाद का विश्वविद्यालय और स्पेन में कुर्तुबा का विश्वविद्यालय प्रसिद्ध थे, इनमें दूर-दूर के विद्यार्थी पढ़ने आते थे। अरब दार्शनिको में इब्नरुशद (११२६–११६८ ई०) डाक्टरों में इब्न-सीना (६८०–१०३७) और गणितज्ञों में इब्नमूसा के नाम उल्लेखनीय हैं। यह सब प्रगति एवं विकास उस काल में हो रहा था, जब समस्त यूरोप अन्धकार में था।

अरब लोगों की दस्तकारी—दस्तकारी मे और भांति-भांति की अत्यन्त सुन्दर चीजें बनाने में उस समय के अरब लोग दुनियां के दूसरे देश से बहुत आगे बढ़े हुए थे। विशेष रूप से वे बड़े खूबसूरत कम्बल और कालीन बनाने, रेशमी कपड़ा बुनने, चमड़े और धातुओं की चीजें बनाने के लिए प्रसिद्ध थे। वे सोने, चादी, ताबा, कांसी लोहे और फौलाद की अच्छी-अच्छी वस्तुएं बनाते थे। वे मिट्टी और काच के बर्तन भी बड़े उत्तम बनाते थे। उन्हें कपड़ा बुनने के अलावा उसे अच्छा रंगना और छापना भी आता था। वे चमड़े को साफ करने एवं इसकी बढ़िया चीजें बनाने के लिए सारे यूरोप मे बड़े दक्ष माने जाते थे। उन्हें गन्ने से बूरा बनाना भी आता था। तथा कृषि भी वैज्ञानिक

रूप से करते थे। उनमें अनेक प्रकार की रासायनिक पदार्थों की खाद डालते थे। अपने खेतों की सिंचाई के लिए तालाब, बांध, नहरें भी बनाते थे। खेती करने के अतिरिक्त उन्हें बाग लगाने का भी चाव था। वे कई तरह के फल तैयार करते थे एवं पेड़ो की कलम भी लगाते थे।

अरब लोग बड़े व्यापारी थे। यहां के व्यापारी पूर्व और पश्चिम के देशों से अनेक प्रकार का व्यापार करते थे इनका व्यापार चीन, भारत और रूस तक फैला हुआ था। बगदाद, बसरा, समरकन्द में प्रति वर्ष व्यापार सम्बन्धी मेले और प्रदर्शनी हुआ करती थी।

शासन प्रबन्ध—इनका शासन प्रबन्ध बहुत अच्छा था। इनके करों की योजना भी बड़ी सुन्दर थी। राज्य में कई श्रेणियों में कर्मचारी थे और सरकार का कार्य कई विभागों में बंटा हुआ था। राज्य में शान्ति सुरक्षा रखने और वाणिज्य में उन्नति के लिए इन्होंने रोमनों की बनाई हुई सड़कों की मरम्मत की और बहुत सी नई सड़कें भी बनाई जिससे साम्राज्य के एक भाग से दूसरे भाग में आने जाने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। डाक का प्रबंध भी बहुत अच्छा था और राज्य के हर एक भाग का सड़कों द्वारा राजधानी से सम्बन्ध था। इनके शासक स्वेच्छाचारी और निरंकुश थे। उन्होने लोकतन्त्र राज्य की स्थापना की बात कभी नही सोची थी। इन स्वेच्छाचारी राज्यो मे कभी-कभी विद्रोह एवं आन्दोलन भी हो जाते थे।

मध्य युगीय यूरोपीय सभ्यता

प्राचीन रोम साम्राज्य के पतन के बाद जिस जीवन, रहन-सहन व गतिविधि का विकास यूरोप में सर्वत्र फैलती हुई और बसती हुई नवागन्तुक नोर्डिक जातियों में हो रहा था वह ग्रीक और रोमन जीवन से सर्वथा भिन्न एक नई सभ्यता थी। इतिहासकारों ने इस युग को मध्य युग का नाम दिया जिसका समय ई० सन् की लगभग छठी शताब्दी से प्रायः १५ वीं

शताब्दी तक माना गया है।

मध्य युग का जो कुछ भी व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनैतिक जीवन है वह दो संस्थाओं, सामन्तवाद एवं ईसाई धर्म से प्रभावित है। इन ही के इर्द-गिर्द मध्य युग का जीवन घूमता रहता था। यूरोप के लोगों में उस समय तक राष्ट्रीय भावना का जन्म नहीं हो पाया था तथा समस्त यूरोप भिन्न-भिन्न सामन्ती ठिकानों का बना एक ईसाई राज्य था।

सामन्तवाद—रोमन कालीन संगठित राज्य और समाज ध्वस्त हो चुके थे। नई नार्डिक जातियां आ रही थीं, जो लूटमार करती एवं बस्तियों का निर्माण करके स्थाई रूप से जमने लगी। समाज में कोई व्यवस्था नहीं थी, गड़बड़ एवं लूटमार का समय था। शक्तिशाली व्यक्ति अपनी शक्ति एवं साथियों की सहायता के बल पर किसी भी भूमि का मालिक बन बैठता था एवं पक्के गढ़ निर्माण कर शरण ग्रहण करता था। जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा का कोई साधन नहीं था। शनैः शनैः संगठित राज्यों का विकास होना प्रारम्भ हुआ। जो सबसे कमजोर था वह समीपस्थ अपने से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति की शरण में जाने लगा और वह शक्तिशाली व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए किसी अन्य अपने से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति की शरण में जाने लगा और इस प्रकार रक्षित और रक्षक इन दो सम्बन्धों वाले व्यक्तियों की शृंखला सी बन गई।

इस कड़ी में सबसे नीचे थे किसान। किसान लूट मार से बचने के लिए अपने पड़ोसी किसी सरदार की शरण लेते थे जो अपनी शक्ति से अपने कुछ मित्रों एवं सहयोगियों के साथ किसी गढ़ अथवा विशेष भूमि का मालिक बन बैठता था। यह सरदार किसी अन्य बड़े सरदार की रक्षा में रहता था और अंत में वह सरदार किसी राजा की। इस प्रकार शनैः शनैः एक संगठित सामाजिक प्रणाली का विकास हो रहा था और इस प्रणाली की परम्परायें, नियम और रस्म रिवाज स्थापित हो रहे थे। राजा सब भूमि का स्वामी एवं

इस पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था। राजा अपनी भूमि अपने आधीन या साथी सरदार को दे देता था जो सामन्त कहलाते थे। इस भूमि के बदले, जो राजा से प्राप्त होती थी, सामन्तों को जब कभी भी राजा चाहता, अपनी सेनाओं सहित राजा की सेवा मे उपस्थित होना पड़ता था। ये बड़े बड़े सामन्त अपनी जमीन छोटे छोटे सामन्तों या जमीदारों को दे देते थे और वे छोटे-छोटे जमीदार भूमि को जोतने और खेती करने के लिए अपनी भूमि किसानों को दे देते थे। किसान यह मानकर कि यह भूमि तो उसे जमीदार या राजा से प्राप्त हुई है इस के बदले में सामन्तो को जमीन की उपज का कुछ भाग दे देता था। सामन्त लोगो का किसानों पर पूरा अधिकार रहता था और उपज का विशेष भाग वे ले जाते थे। किसान लोग सर्फ कहलाते थे और जिस भूमि में वे बसते थे और जिसे जोतते थे 'फीफ' कहलाती थी। सामन्त की ओर से यदि और कोई भी चीज जैसे पवन चक्की इत्यादि, किसी व्यक्ति को चलाने के लिए मिली होती थी, वह भी फीफ कहलाती थी और उसके बदले मे सामन्तों को लाभ का अधिकांश भाग प्राप्त होता था। जब तक किसान भूमि की उपज का हिस्सा सामन्त को देता रहता, एवं उस सामन्त के लिए मजदूरी का या अन्य कोई काम जो सामन्त कहता करता रहता, तब तक वह जमीन उसके पास रहती थी, अन्यथा वह भूमि से बेदखल किया जा सकता था। सर्फ का यह धर्म था कि सामन्त की सेवा करे एवं सामन्त का यह कर्त्तव्य था कि वह सर्फ की रक्षा करे। इसी तरह आगे बढ़कर सामन्तो का राजा के प्रति यह कर्त्तव्य था कि अपनी सेवायें राजा के लिए प्रस्तुत करे क्योंकि राजा ने ही उन्हें सामन्त और जमीदार बनाया था। सामन्तो को राजा के प्रति पूर्ण स्वामिभक्ति, युद्धकाल मे वीरता और त्याग की भावना का विचार रखना पड़ता था। उत्पादन के साधन नोर्डिक आर्यों के ही चले आ रहे थे जैसे – भूमि हल, बैल, वर्षा, कुएं, नदी आदि। रहने के लिए मिट्टी, घास, फूस के कच्चे मकान और जहाँ पत्थर सरलता से उपलब्ध होता वहां पत्थर के मकान भी बनाये जाते थे। लोग सामन्त के किले के चारो ओर बस जाते थे और इस प्रकार गावो का विकास एवं वृद्धि होती चलती थी। ये सामन्तवादी संगठन मध्य युग

में यूरोप में सर्वत्र विकसित हुआ। स्थानीय विभिन्नतायें अवश्य थी। वह संगठन, इसके नियम, इसकी विधियां लिखकर निश्चित नहीं की गई थी, किन्तु उस काल की परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अपनी स्थानीय विशेषताओं के साथ ऐसा संगठन अपने आप विकसित हो गया था और उसकी अपनी ही परम्परायें बन गई थी। उन दिनों जमीन जोतना और खेती करना ही मुख्य धन्धा था। अतएव भूमि के आधार पर ही उपरोक्त प्रकार से आर्थिक जीवन का संगठन हुआ।

सामन्तवाद के इस आर्थिक पहलू के अतिरिक्त एक और पहलू भी था जिसे हम सांस्कृतिक पहलू कह सकते हैं। समाज में दो वर्ग स्पष्ट रूप से पैदा हो गये थे-(१) सामन्तवर्ग (२) सर्फ वर्ग। सर्फ वर्ग एक शोषित वर्ग था, किन्तु इस युग में सर्फ वर्ग के लोगों को इस विचार और भावना ने परेशान नहीं किया था कि सामन्त लोग उन्हें चूस रहे हैं। अतएव सर्फ लोगो में यह विचार ही नहीं पैदा हुआ कि सामन्त वर्ग का विरोध करना चाहिए। दोनों वर्गों में मैत्री का भाव था और धीरे-धीरे वे ये विश्वास करने लगे थे कि जिस प्रकार का संगठन है उसमें परिवर्तन का कोई प्रश्न नहीं है।

स्वयं सामन्त वर्ग में कुछ विशेष संस्कारों का विकास हो रहा था। सामन्त लोगों के अच्छे-अच्छे गढ होते थे और उन्हीं किलो मे वे अच्छे महल और मकान बनवाने लग गये थे। उनके खाने, पीने, वस्त्र परिधान, रहन-सहन उनके घरो में महिलाओं को कैसे समाज में निकलना चाहिए इत्यादि बातों के कुछ निश्चित नियम अपने आप ही धीरे-धीरे विकसित हो रहे थे। सामन्त लोग सैनिक, सेवक एवं सेविकाएं रसादल आदि भी रखते थे। सामन्तों का प्रमुख सैनिक सेवक "नाइट" कहलाता था। नाइटो में अपने स्वामियों के प्रति संस्कारगत शुद्ध स्वामि भक्ति और आत्म त्याग की भावना होती थी। इन "नाइट" लोगों की बड़ी-बड़ी प्रतियोगिताएं एवं खेल होते थे जिनमें साहसी कार्यों का प्रदर्शन किया जाता था। नाइट लोग कभी-कभी किसी सुन्दर स्त्री

की प्रशंसा भावना से प्रेरित और अनुप्राणित हो जीवन मे कुछ अनोखी वीर-तापूर्ण और रोमान्चकारी काम कर जाते थे।

मध्य युग के इस प्रेम, साहस और सम्मान, स्त्रियों के प्रति आदर और उनके प्रति त्याग की भावना, इन सब गुणों को एक शब्द--शिवेलरी (Chivalry) मे निर्देशित किया गया है। सामन्त वर्ग मे शिवेलरी की भावना, मध्य युग की एक विशेषता थी। उस युग के साहित्य मे हमे इस भावना के सुन्दर दर्शन होते है। यह भाव कि वह आनन्द नही जो सम्मान मे नही आता और वह सम्मान नही जो प्रेम का प्रतिफल न हो, इस युग के काव्य मे एक अन्तर्धारा की तरह प्रवाहित रहता है। उस युग के साहित्य में जो दूसरी धारा प्रवाहित है वह है ईसाई धर्म की भावना। समस्त यूरोप मे मनुष्य के मनोरंजन और मनोरंजन के द्वारा धार्मिक शिक्षा मिले इसके लिए अनेक नाटक खेले जाते थे। इन्हे हम साहित्यिक नाटको का प्रारम्भिक रूप कह सकते हैं। इन सबका विषय होता था, ईसाई धर्म; स्वर्ग, नर्क, ईसाई सन्तों की जीवनियां इत्यादि। इसके अतिरिक्त स्वयं अपने व्यक्तित्व की छाप लिए हुए यूरोप में महान् कवि प्रकट हुए। पहला था, इटली का महाकवि दांते (१२६५–१३२१ ई०) जो अपने प्रारम्भिक काल में बिट्रिस नामक सुन्दर लड़की के प्रेम में मग्न हुआ था और फिर उसी से आविर्भूत होकर जिसने हमारे लिए वह सुन्दर काव्य "डिवाइना कोमेड्रिया" प्रस्तुत किया जिसमें उसने अपनी गाथा गाई है—कि किस प्रकार वह जो अपने जीवन मे बिट्रिस नही पा सका था 'स्वर्ग लोक' (भावलोक) मे उस सौन्दर्यमयी देवी के दर्शन कर सका, प्रेम की इस शक्ति पर ही सूर्य एवं नक्षत्र लोकों की गति आधारित है। छापेखाने के प्रचलन के पूर्व इस ग्रन्थ की ६०० हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार हो चुकी थी और भिन्न भिन्न यूरोपीय देशों मे प्रसारित हो चुकी थी। दूसरा था इंगलैण्ड का महाकवि चॉसर (१३४०–१४११ ई०) जिसने "कण्टरबरी टेल्स" की रचना की। यह काव्य उस समय के भिन्न-भिन्न पेशे वाले साधारण जन, नाइट, चक्की वाला, पादरी, हलकारा देने वाला आदि

के जीवन की झांकी हमको देता है।

ईसाई धर्मः—उत्तर प्रदेशों से जो नोर्डिक लोग आये थे वे सब मूर्ति पूजक और बहुदेव वादी थे। उनका धर्म एक बहुत ही प्रारम्भिक किस्म का धर्म था। इजराइल से निकल कर ईसाई धर्म प्रचारक सब ही जगह फैल गये। रोमन सम्राट एवं साम्राज्य के लोग ने तो चौथी शताब्दी में ही ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था और इस धर्म की परम्परायें भी बन गई थी। रोमन साम्राज्य के पतन के बाद उत्तर पूर्व और उत्तर पश्चिम से जो अर्ध सभ्य लोग आये, उनमें अब इस धर्म का प्रचार होने लगा। कहीं कहीं तो जबरदस्ती उनको ईसाई बनाया जाने लगा।

रोम के प्रथम पोप ग्रिगोरी ने इंग्लैण्ड के असभ्य लोगों को सभ्य बनाने के लिए छठी शताब्दी के अंतिम वर्षों में संत आगस्टाइन को भेजा। धीरे २ वहां के सभी एंग्लो सेक्सन लोग ईसाई बन गये और केन्टरबरी में उनके सबसे बड़े गिरजाघर की स्थापना हुई। पादरी भिक्षुओं के रहने के लिए कई धर्म मठ भी बने। जब चारों ओर अशिक्षा और अज्ञान का साम्राज्य था इन मठों मे शिक्षा और अध्ययन की ज्योति प्रारम्भ हुई। मठो मे बड़े बड़े विद्वान अध्ययनशील और अध्यवसायी भिक्षु पैदा होने लगे थे। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध भिक्षु विद्वान वेनरेवलवीड ने एक महान् पुस्तक "इंग्लैण्ड में ईसाई धर्म का इतिहास" लिखी। इस पुस्तक का यूरोप में काफी प्रचार हुआ। सातवीं एवं आठवी शताब्दियों मे ट्यूटोनिक और सल्व लोगों मे ईसाई बनाने का कार्य खूब जोरो से चला। शार्लमन महान् ने तलवार के बल पर अनेक देशों को ईसाई धर्म ग्रहण करने को बाध्य किया। डेनिस एवं वाईकिंग लोगोंने भी ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। बलगेरिया मे बसने वाले तुर्क लोग एवं हंगरी मे बसने वाले मगोल भी ईसाई बन गये। इस प्रकार मध्य युग की प्रारम्भिक शताब्दियों मे यूरोप में प्रायः सभी लोगों मे अपने आदिम धर्म की भावनाएं और संस्कार धीरे धीरे स्थापित हो गये। ईसाई धर्म इनके जीवन एवं भावनाओं में इस प्रकार घर कर गया था कि १२ वीं शताब्दी के आरम्भ मे धर्म को भूलकर

ईसाई बन गये थे। जब इजराइल में यरुशलम को पवित्र गिरजा जो इस समय मुसलमानों के हाथ मे थी जीतने का प्रश्न चला, तो मुसलमानो से धर्म युद्ध करने के लिए समस्त यूरोप के ईसाईयों में स्फूर्ति सी पैदा हो गई और सब एक विशाल संगठन बनाकर धर्म युद्धो मे जुट पड़े। यूरोप के इतिहास में यह पहला मौका था जब साधारण जन एक भावना एवं एक विचार से प्रेरित होकर, एक सूत्रीय संगठन मे बंधे हो और कोई आयोजित कार्य करने मे जुटे हो। यूरोप मे ही नही किन्तु स्यात् समस्त मानव इतिहास में यह पहला अवसर था जब साधारण जन ने स्वयं अपना एक संगठन बनाकर कार्य किया।

रोम के पोप:—यूरोप के मध्य युग के इतिहास मे पोप का स्थान बहुत महत्वपूर्ण रहा था। साधारण जन के सरल विश्वास के आधार पर उसकी शक्ति यहाँ तक बढ गई थी कि मानो वह सब लोगों की आत्मा का अधिनायक हो। पोप की शक्ति का द्वितीय आधार था सब गिर्जाओं का एक अन्तर प्रान्तीय एवं एक अन्तर्राष्ट्रीय यूरोपियन संगठन। समस्त पश्चिमी एवं मध्य यूरोप गिर्जाओं के संगठन के लिए प्रान्तो में विभक्त था। प्रान्तो में सबसे बड़ा धार्मिक पादरी आर्कबिशप होता था-प्रान्त जिलों मे विभाजित थे, जिले का सबसे बड़ा पादरी बिशप होता था। जिले गावों मे विभक्त थे, जहा साधारण पादरी गांव के गिर्जे में लोगो के धार्मिक जीवन का संचालन करता था। गावो में प्रायः गिर्जा ही पक्की इमारत होती थी और गांव का पादरी ही थोड़ा बहुत शिक्षित व्यक्ति। पहिले तो यरुशलम, रोम कोन्सटेनटिनोपल, इत्यादि प्रमुख गिर्जाओं के बिशप पद मे प्रायः बराबर माने जाते थे, फिर यरुशलम एवं कोन्सटेनटिनोपल के बिशप अपने को बड़ा समझने लगे थे किन्तु शनैः २ लोगों में यह विश्वास फैल गया था कि ईसाई धर्म का प्रथम सन्त पीतर ही रोम का सर्व प्रथम बिशप था और उसकी अस्थिया, जिनके अवशेष रोम में थे, चमत्कारिक काम कर सकती थी—जैसे अन्धो को सूझता कर देना, कोढ़ियों को स्वस्थ कर देना इत्यादि और यह चमत्कारिक काम करवाना रोम के बिशप के हाथ में था। । ऐसी परिस्थितियो में सन् ५९० ई० में उच्च

वर्ग का एक धनिक व्यक्ति ग्रिगोरी रोम का पादरी निर्वाचित हुआ, इसे समस्त गिर्जाओं का अधिकारी घोषित किया गया एवं वह पोप कहलाया। ईसाई धर्म का यह पहला पोप था तथा इसकी परम्परा आज भी चली आरही है। समस्त पश्चिमी और मध्य यूरोप के लोगों पर, गिर्जाओं एवं पादरियों पर तो पोप का धार्मिक प्रभाव था। ही किन्तु धीरे २ राजनैतिक शक्ति भी पोप में केन्द्रित होने लगी और उसका राजनैतिक प्रभाव बढने लगा। जो राजा या शासक पोप एवं धर्म की अनुमति के अनुकूल नही चलता था उसका वे समस्त समाज द्वारा बहिष्कार करवा सकते थे। पोप की सत्ता सर्व मान्य थी। पोप ने जनता पर यह प्रभाव जमाया कि वह इस पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतीक है अतः वह किसी भी पापी या दुष्कर्मों का क्षमा पत्र देकर नर्क की यातना भोगने से बचा सकता है। पोप के द्वारा नाना अत्याचार प्रारम्भ किये गये। समय एवं सम्पत्ति का लाभ उठाकर इन्होंने भोग एवं विलासिता से जीवनयापन प्रारम्भ किया। शनैः-शनैः समय के साथ २ पोप के विरुद्ध अवज्ञा एवं दोष की भावना फैली एवं १३०२ ई० मे फ्रांस के राजा ने अपने सामन्तों एवं जन साधारण की अनुमति से स्वयं पोप को इसके महल मे जाकर कैद कर लिया। इस प्रकार मध्य युग मे ही पोप के विरुद्ध आवाज उठने लग गई थी।

मध्य युग की सन्त परम्परा:- कई सन्त लोगों का मध्य युग में प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने धन वैभव मे परे सरल धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए विहारों की स्थापना की थी। बेनेदिक्त, थेसियोडोरस, असाद्सी का सन्त फांसीस, इटली का संत ओगस्टीन, संत अन्सलेम, थॉमेस अक्वीनस (शंकराचार्य की तरह महान दार्शनिक थे), जोहन रूईस ब्रोक, जर्मनी का ईक हार्ट, इंग्लैन्ड का वाल्टर हिल्टन, रिचार्ड रोज आफ हेमपोल आदि संतों के नाम अत्यन्त विख्यात हैं। स्त्री भक्त, कवयित्री और संत भी हुए हैं। भक्तो में जर्मनी की संत गर्टरूड महान, इटली की संत केथरीन ऑफ सियाना, फ्रांस की संत जोन ऑफ आर्क। कवियित्रियों में जर्मनी की मेक्टहिल्ड ऑफ मेकडलवर्ग एवं इंग्लैण्ड की लेडी जूलीयन आफ-नौरविच प्रसिद्ध है। जूलियन की कृति "रेवेलेशन्स ऑफ

डिवाइन लव" मध्ययुग के साहित्य की अनुपम देन है। इन सब संतों के शब्द आज भी उन सब को प्रेरणा दे रहे है जो चेतना के उच्चतर स्तर को छू लेना चाहते हैं।

ज्ञान विज्ञान—मध्य युग धार्मिक विश्वास एवं श्रद्धा का युग था, बुद्धिवाद का नही। अतः इस युग मे ज्ञान विज्ञान की परम्परा का इतना महत्व नही था जितना धर्म एव परलोक की भावना का। फिर भी ऐसा नही है कि ज्ञान विज्ञान की गति बिलकुल अवरुद्ध रही हो। गिर्जाओ मे एवं ईसाई भिक्षुओ के विहारों में विद्याओं का अध्ययन चलता रहता था, अनेक विद्या प्रेमी जन ज्ञान का विस्तार भी करते रहते थे। पादरियों की प्रेरणा से गिर्जाओ से सम्बन्धित विद्यालयो के उपरान्त यूरोप मे सर्वप्रथम विश्वविद्यालयो की स्थापना १२ वी एवं १३ वी शताब्दी में हुई थी। १२४८ मे इटली के बोलोग्ना विश्वविद्यालय की, १२५३ ई० में सोरबन (पेरिस) विश्व विद्यालय की एव इसी शताब्दी मे इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विश्व विद्यालय ओक्सफोर्ड की, १२६० मे केम्ब्रिज की स्थापना हुई। १५०० ई० तक यूरोप मे ७९ विश्वविद्यालय स्थापित हो गये थे।

मध्य युगीय यूरोप में विज्ञान की हल-चल प्रारम्भ होने का श्रेय अरबी विद्वानो को है। सिसली के शासक फ्रेडरिक द्वितीय, स्पेन के शासक ऐलफोन्जो (१२२१-८४ ई०) की संरक्षता में अनेक अरबी ग्रन्थो के लेटिन तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद किये गये। कई विद्वान अरबी विज्ञान के सम्पर्क मे रहकर विज्ञान के अध्ययन मे और उसकी खोज में लगे हुए थे। इस युग मे कई आविष्कार किये गये—(१) घोड़ो के लोहे की नाल लगाने का आविष्कार (२) पतवार का आविष्कार (३) जहाजो को चलाने मे मानव शक्ति के स्थान पर वायु शक्ति का प्रयोग (४) यान्त्रिक घड़ी का आविष्कार (५) पनचक्की का एव हवा चक्की का आविष्कार (६) १२८५ मे आंखो के चश्मे का आविष्कार (७) १३७० ई० के लगभग कागज, बारूद, चुम्बक और मुद्रण की कलायें चीन से यूरोप मे मंगोल द्वारा लाई गई। जर्मनी में सर्वप्रथम छापाखाना सन् १४५५ ई० मे खुला।

मध्य युग में व्यापार और यातायात—व्यापार की स्थिति एवं व्यापारिक मार्गों की सुविधायें सभी प्रदेशों मे एक सी नहीं थी। यातायात बहुत कठिन एवं धीमा था मध्य युग मे न तो नई सड़कों का निर्माण हुआ और न पुरानी सड़कों की मरम्मत हो। लोग घोड़ो, खच्चरो बैल गाड़ियों एवं घोड़ा गाड़ियों पर यात्रा करते थे। व्यापारिक माल मुख्यतः खच्चरो पर लाद कर इधर उधर जाया करता था। नदियो मे नावो द्वारा यातायात होता था। समुद्र के किनारो पर जहाज चलते रहते थे। सब प्रदेशो के बन्दरगाह एक दूसरे से सम्बन्धित थे। आगमन सुरक्षित नही था, मार्गों में लूटमार का डर रहता था। अतएव साथ में रक्षक दल चला करते थे। यूरोप के देशों में कई नगरो का निर्माण हो गया था, मेले भरा करते थे जहां पर व्यापारिक लेन देन होता था। व्यापार के लिए चादी सोने की मुद्रायें प्रचलित थीं। बाद में हुण्डियों का भी प्रचलन हुआ। नगरो मे कला कौशल जैसे—तलवार, ढाल, तीर कमान, ऊनी कपड़ा बुनना आदि होता था। व्यापारियो और हस्त कला कौशल के काम में लगे हुए कारीगरो का महत्व बढ रहा था, नगरों मे उनके संघ (Guilds) स्थापित थे, एवं व्यापारिक लोग भी अपने स्वतन्त्र संघ बना रहे थे। संघो की वजह से नगर जीवन और नागरिक लोगों का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन सुसंगठित था।

१४ वी एवं १५ वी शताब्दियों मे गोथिक रीति के अनुसार ही यूरोप के प्रायः सभी नगरो मे नगर पालिका भवन बने। इन भवनों को सुन्दर बनाने मे सभी नगर गौरव का अनुभव करते थे। उस जमाने के ये भवन अब भी नगरपालिकाओ के कार्यालय का काम देते हैं।

प्रश्नावली

१. सभ्यता और संस्कृति के विकास पर संक्षिप्त नोट लिखिए।
२. सुमेरिया की सभ्यता का संक्षेप में परिचय दीजिए।
३. आसीरिया निवासियों के सामाजिक, धार्मिक आर्थिक और राजनैतिक जीवन के बारे मे आप क्या जानते है?
४. कला कौशल तथा शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में बेबीलन निवासियो

द्वारा की गई प्रगति का वर्णन कीजिए।

५. दजला एवं फरात की घाटी की सभ्यता की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। हम किन बातों के लिए इसके ऋणी हैं ?

६. मिस्र के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालिए। स्त्रियों की स्थिति कैसी थी ?

७. मिस्र की सभ्यता और संस्कृति पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

८. मिस्र निवासियों ने जो खोज एवम् आविष्कार किए वे मानव के लिए बहुमूल्य पैतृक सम्पत्ति हैं।' सिद्ध कीजिए।

९. प्राचीन चीन की सामाजिक व्यवस्था कैसी थी ? परिवार का क्या महत्व था ?

१०. आप प्राचीन चीन की सभ्यता, ललितकला व दस्तकारी के विषय मे क्या जानते हैं ?

११. ,चीन ने ज्ञान विज्ञान तथा कला कौशल में अभूत उन्नति की थी'— वर्णन कीजिए।

१२. प्राचीन यूनान एवं रोम सभ्यता की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। रा. वि. १९५९

१३. यूनान की ललितकला व साहित्य पर निबन्ध लिखिए।

१४. यूनान ने रोम और विश्व को पैतृक सम्पत्ति के रूप में क्या प्रदान किया ?

१५. यूनान के सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का वर्णन कीजिए। स्त्रियों को इसमे क्या स्थान प्राप्त था ?

१६. अरब सभ्यता पर निबन्ध लिखिए जिसमें विशेष रूप में अरब की ललितकला और साहित्य का वर्णन कीजिए।

१७. यूरोप ने मध्ययुग मे ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में क्या उन्नति की ?

१८ सामन्तवाद एवं ईसाई धर्म पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

१९. प्राचीन यूरोपिय संस्कृति की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। रा. वि. १९६०

औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व का आर्थिक सगठन
(Pattern of Economic Organisation-Pre endustrial)

मानव आर्थिक प्रगति का इतिहास अत्यन्त रोचक है। मानव सभ्यता के विकास के प्रारम्भिक काल मे मनुष्य की मूल भूत आवश्यकता अपना निर्वाह करने की थी। अतः उसे हर समय खाने पीने की वस्तुएँ तलाश करने की धुन रहती थी। मनुष्य यूथ बनाकर शिकार तथा फलों की खोज मे एक स्थान से दूसरे स्थानों पर घुमा करते थे। स्त्री पुरुष सब साथ ही कार्य करते तथा साथ ही भोजन करते। खाद्य सामग्री के अतिरिक्त कोई सामग्री नही थी। संग्रह कम था क्योंकि मारे हुए शिकार के मांस को देर तक नहीं रखा जा सकता था। सम्पत्ति सामूहिक होती थी क्योंकि सम्मिलित श्रम से प्राप्त होती थी। विद्वानों ने इस अवस्था को व्यक्तिगत साम्यवाद अथवा आदिम साम्यवाद का नाम दिया है। आदिम साम्यवादी अवस्था में व्यक्ति केवल उपभोग करना जानता था। आर्थिक उत्पादन करने कि क्रिया उसको ज्ञात नहीं थी। आदिम साम्यवादी अवस्था के अन्तिम वर्षों में स्त्री एवं पुरुषों के मध्य श्रम विभाजन हो गया था। पुरुष शिकार करता था तथा स्त्री भोजन बनाती तथा अन्य कम मेहनत का कार्य करती थी।

पशुपालन के साथ साथ आर्थिक अवस्था में अन्तर आने लगा। मनुष्यों को पशुपालन के आर्थिक लाभ ज्ञात हो गये तथा जीविका का एक नया साधन मानव के हाथ मे आया। पशु मनुष्यों की सम्पत्ति होगई। इस युग में मनुष्य मांस

भुन कर प्रयोग में लाने लगा अतः बर्तनों की आवश्यकता हुई। चमड़े का प्रयोग भी जूते, तम्बू तथा वस्त्रों के लिए किया जाने लगा अतः वस्त्र सीने वालों तथा जूतों को बनाने वालों की आवश्यकता हुई फलस्वरूप धीरे धीरे व्यवसायी श्रेणियों की उत्पत्ति हुई। पशुपालन ने व्यक्तिगत सम्पति का द्वार खोल दिया तथा कृषि के आविष्कार ने उसे और आगे बढ़ाया। प्रारम्भ में भूमि पर सम्पूर्ण कबीले का अधिकार था केवल भूमि का उपयोग और उपज व्यक्तिगत हो गये थे। धीरे धीरे भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार स्थापित हो गया तथा भूमि का विनिमय, बेचने तथा रहन रखने की प्रथा का प्रचलन हो गया। कृषि के कारण अब मनुष्य गाव बसा कर स्थाई रूप से रहने लगे थे। इससे कृषि से सम्बन्धित अनेक व्यवसाय यथा लुहार बढ़ई आदि का विकास हुआ हल का आविष्कार हुआ तथा मिट्टी के बर्तन भी बनाये जाने लगे। तांबा, टीन, सोना, लोहा आदि धातुओं के आविष्कार ने कृषि की उन्नति के साथ ही अनेक स्वतन्त्र पेशों को जन्म दिया। इससे हस्त कला का विकास भी सम्भव हुआ। व्यक्तिगत सम्पति का परिमाण बढ़ने लगा। इसी समय मालिक तथा दास प्रथा का प्रचलन हुआ। श्रम का विभाजन हुआ। गुलाम खेती या अन्य श्रम करते तथा स्वामी विलास पूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। गुलामों को भी व्यक्तिगत सम्पति में सम्मिलित कर लिया गया तथा इनका भी क्रय विक्रय होने लगा था। कृषि का बहुत अधिक महत्व था एवं अधिकाश व्यक्ति इसी मे लगे हुए थे।

खेती एवं शिल्प अलग हुए तथा शिल्पियों का एक अलग वर्ग बन गया। शिल्पी अपने घरो मे काम करते थे। सहायता के लिए आवश्यकता पड़ने पर कुटुम्ब के सदस्य ही योग देते थे। सब कार्य हाथों से होता था। श्रम विभाजन उचित ढंग पर नही था। धन्धे में अधिक धन लगाने की भी आवश्यकता नही थी। उपभोक्ता एवं उत्पादकों में सीधा सम्बन्ध था। मनुष्यों की आवश्यकताओं की संख्या बहुत कम थी। ग्राम आत्मनिर्भर थे। उत्पादन स्थानीय मांग के लिए होता था।

कृषि तथा शिल्प कला के विकास के साथ ही वस्तुओं का विनिमय बढ़ने लगा अतः व्यापार बढ़ा। वाणिज्य के लिए अभी तक अलग वर्ग नही बना था बल्कि प्रत्येक कारीगर अपने सामान को आवश्यक वस्तुओं के बदले में बेचता था। विनिमय मे निर्जीव पदार्थ पशु तथा दास दासी का प्रयोग होता था। शनैः शनैः विनिमय के लिए कीमती धातुओ के टुकड़ो का प्रयोग होने लगा। व्यापार का क्षेत्र भी बढ़ने लगा। एक गाव का दूसरे गांव से व्यापार होने लगा। कभी कभी हाट तथा मेले लगते थे जिन मे साधारण तथा मूल्यवान वस्तुओं का क्रय विक्रय होता था। व्यापार की वृद्धि ने आवागमन के साधनों के विकास मे योग दिया तथा सड़को का निर्माण प्रारम्भ हुआ। माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए घोड़ा, गधा, पहियेदार गाड़ी का प्रयोग होने लगा था। व्यापार की वृद्धि के परिणाम स्वरूप व्यापारिक वर्ग का प्रादुर्भाव भी हो गया था। वाणिज्य के बढते हुए चरण ने ग्रामो की आत्मनिर्भर अर्थ व्यवस्था को काफी ठेस पहुँचाई तथा यह समाप्त प्रायः हो गई।

सामन्तवादी अर्थ व्यवस्था मे भूस्वामियो का अपने किसानो पर पूर्ण नियन्त्रण तथा अधिकार था। किसानो की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। किसानों को भूमि का लगान देने के साथ-साथ अपने स्वामी की विस्तृत भूमि पर बिना वेतन के कार्य करना पड़ता था। इस बेगार के अतिरिक्त अपने स्वामी को समय-समय पर भेंट देनी पड़ती थी। यदि किसान अपनी पुत्री का विवाह करता तो भी उसको भेंट स्वरूप जुर्माना देना पड़ता था। किसान अथवा उसका पुत्र स्वामी की जमीन छोड़कर अन्यत्र कही कार्य नहीं कर सकता था। गाव छोड़ने के लिए बहुत बड़ी रकम हरजाने के रूप मे देनी पडती थी। यदि गाव में किसी को आटा पिसवाना होता तो अपने स्वामी की चक्की से पिसवाना पड़ता था। स्वामी की बेकरी से रोटी एवं मदिरालय से मदिरा प्राप्त करनी पड़ती थी। संक्षेप मे भूस्वामी मालिक तथा किसान दास थे। इस आर्थिक दासता के फलस्वरूप किसानो को सामाजिक और राजनीतिक दासता भी स्वीकार करनी पड़ती थी। जागीरदार अपने क्षेत्र के न्यायपति भी

होते थे। उन्हें अपने आसामियों पर जुर्माना करने का पूर्ण अधिकार था जो एक बड़ी आमदनी का साधन था।

व्यवसाय में भी काफी बन्धन थे। उन दिनों नगरों की संख्या बहुत कम थी। किन्तु जो भी नगर होते थे उनमें धन्धों और व्यापार का नियन्त्रण संघों (Guild) द्वारा होता था। केवल उस संघ के सदस्य को ही उस धन्धे को करने का अधिकार था। संघ के सदस्यों के परिवार के लोगों को ही उस धन्धे की शिक्षा दी जाती थी। बाल्यावस्था में प्रत्येक लड़के को अपरेंटिस के रूप में ७ वर्ष तक किसी कारीगर के निर्देशन में शिक्षा लेनी पड़ती थी। उसके उपरान्त जरनीमैन के रूप में अपने स्वामी कारीगर के कारखाने में कार्य करना पड़ता था। मजदूर कारीगर के रूप में उसे संघ द्वारा निर्धारित वेतन मिलता था। जब संघ के नेता उसकी किसी विशेष कारीगरी की वस्तु का देख कर प्रसन्न हो जाते तब उसे स्वतन्त्र रूप से व्यवसाय करने की आज्ञा देते थे, कारीगर को एक निश्चित प्रकार का वस्तु का ही निर्माण करना पड़ता था। संघ उनके धन्धे, रहन-सहन, विवाह, पूजा-पाठ सभी पर कठोरतापूर्वक नियन्त्रण करता था। इसी प्रकार व्यापारियों के संघ थे, जो उनके व्यापार रहन सहन इत्यादि का नियन्त्रण करते थे। आचार्य शंकरसहाय सक्सेना ने इस अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है—"कि उस समय कोई आर्थिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता नहीं थी। प्रत्येक व्यक्ति दास की भांति जीवन व्यतीत करता था। बहुत से देशों में तो दास प्रथा स्थापित थी।" संघों के कठोर नियन्त्रण का परिणाम यह हुआ कि कारीगर शहर छोड़ कर गांवों में जा बसे। इससे संघों का नियन्त्रण तो समाप्त हुआ परन्तु कारीगरों के ऊपर व्यापारियों का नियन्त्रण धीरे २ बढ़ने लगा तथा औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व कारीगर पूर्ण-रूप से इन पूंजीपति व्यापारियों पर निर्भर हो गये। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप इस स्थिति में महान् परिवर्तन हुआ तथा नए ढंग (पूंजीवादी) के आर्थिक संगठन का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रश्नावली

१. औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व समाज का आर्थिक संगठन कैसा था ?
२. मध्ययुग में उद्योग तथा व्यवसाय की क्या स्थिति थी ?
३. औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व आर्थिक संगठन की मुख्य विशेषताएं क्या थीं ?
४. मध्यकालीन उद्योग तथा व्यवसाय सम्बन्धी संस्थाओं के विशेष लक्षणों की व्याख्या कीजिए। रा० वि० १९५९

---

४ धर्म एवं दर्शन
Religion & Philosophy.

सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य ने धर्म एवं दर्शन को विशेष महत्व दिया है। कणाद मुनि ने धर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है—"यतोऽभ्युदय निःश्रेय समिद्धः स धर्मः" अर्थात् जिससे अभ्युदय व निःश्रेयस की सिद्धी हो वही धर्म है। हम सरल रूप में धर्म उन सिद्धान्तों, तत्वों तथा जीवन प्रणाली को कह सकते हैं, जिससे मानव जाति परमात्मा प्रदत्त शक्तियों के विकास से अपना एहिक जीवन सुखी बना सके, साथ ही मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा जन्म-मरण के झंझट में न पड़ कर शान्ति व सुख का अनुभव कर सके। दर्शन शब्द भी महत्वपूर्ण है। अंग्रेजी में दर्शन का पर्यायवाची शब्द 'Phiolsophy' जिसका अर्थ ज्ञान का प्रेम है तथा उद्देश्य सत्य की खोज है। इसमें आत्मा साक्षात्कार या ब्रह्म साक्षात्कार का भाव निहित। इन दोनों (धर्म एवं दर्शन) का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है अज्ञात को ज्ञात करना दोनों ही का उद्देश्य है। उनमें अन्तर केवल इतना है कि धर्म जनसाधारण को अज्ञात तक ले जाने के लिए एक जीवन क्रम तैयार करता है जिसके अनुसार लोगों को चलना पड़ता है। धर्म विद्वानों द्वारा बनाया हुआ इस लोक तथा उस लोक को जोड़ने वाला मार्ग है, जिस पर चल कर जनसाधारण परम शान्ति का अनुभव करते हैं। दर्शन ब्रह्म, जीवात्मा आदि के साक्षात्कार के प्रयत्नों का समूह है। इसका सम्बन्ध इने गिने विचारशील एवं बुद्धि प्रधान व्यक्तियों से रहता है। किन्तु इसका भी प्रभाव जनसाधारण पर अवश्यमेव पड़ता है। भारत में दर्शन का जीवन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। इसका उद्देश्य आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधि-

दैविक तापों से संतप्त मानवता के क्लेशों की निवृत्ति है। यूरोप में दर्शन एवं धर्म अलग-अलग है। दर्शन बुद्धि विलास या विषय है उसका उद्देश्य सत्य की खोज है, धर्म श्रद्धा एवं विश्वास की वस्तु है। किन्तु हमारे देश में धर्म एवं नैतिकता की आधारशिला दर्शन है। वह हमारे समूचे आचार व्यवहार का परिचालक और मार्ग दर्शक है। अब हम यहां विश्व में विद्यमान प्रमुख धर्म, उनकी मौलिक एकता तथा सांख्य एवं वेदान्त दर्शन का अध्ययन करेंगे।

हिन्दू धर्म—हिन्दू धर्म जिसका वास्तविक नाम वैदिक धर्म है संसार का सबसे प्राचीन जीवित धर्म है। इसकी उत्पत्ति किसी एक समय अथवा किसी एक संस्थापक द्वारा नहीं हुई। इसका शनैः शनैः विकास हुआ है तथा विकास की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। वेद हिन्दू धर्म के मुख्य और सर्व मान्यग्रन्थ है। वेद चार हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्व। ये नित्य परमात्मा द्वारा प्रकाशित समझे जाते हैं और इसी कारण अपौरुषेय माने जाते हैं। इस धर्म के अनुसार परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति नित्य है, अर्थात ये कभी पैदा नहीं हुए और न कभी इनका अन्त होगा। ये सदा से हैं तथा सदा रहेंगे। इस विश्व और ब्रह्माण्ड का कर्ता केवल एक ईश्वर है, यह सर्वशक्तिमान निर्विकार, अजन्मा, अनादि, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। वही सृष्टि का रक्षक है। जीव चेतन और अनन्त है। वह अजर अमर और अनादि है। वह जैसा कर्म करता है वैसा उसे फल मिलता है। अपने कर्मों का फल भोगने के लिए वह अनन्त योनियों में जन्म लेता है। यह सृष्टि रचना प्रकृति एवं जीव से हुई है। प्रकृति जड़ है इसका कभी नाश नहीं होता वह अनादि तथा अनन्त है। सच्चा सुख जीवन-मरण के झंझट से छूटकर ईश्वर प्राप्ति में है। इसलिए मानव जीवन का लक्ष्य जीवन-मरण से छूटना अथवा मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष की प्राप्ति अच्छे जीवन, सुन्दर विचार तथा सत्कर्म से हो सकती है। हिन्दू धर्म के अनुसार आध्यात्मिक जीवन ही मुख्य है, भौतिक जीवन का स्थान गौण है। सच्चा सुख देने वाला ईश्वर है और उसकी उपासना करना कर्तव्य है। ईश्वर एक है तथा वह अपने आपको अनेक रूपों में व्यक्त करता है जैसे

अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि ये उसी एक ईश्वर के भिन्न रूप हैं, अलग देवता नहीं। उपनिषद का वाक्य है—'एक सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात ईश्वर एक है। परन्तु विद्वान लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। जिन रूपों में वह प्रकट होता है वे अनेक हैं और भिन्न-भिन्न समय पर उसका भिन्न-भिन्न महत्व रहा है। ये रूप देवता कहलाते हैं। आज-कल जिन रूपों में उस ब्रह्म अथवा ईश्वर की उपासना होती है वे हैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, इन्द्र, सूर्य, लक्ष्मी, सरस्वती तथा काली। हिन्दू धर्म कर्म तथा पुनर्जन्म में विश्वास करता है। मनुष्य की आत्मा अमर है, उसका कभी विनाश नहीं होता। यह एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर को ठीक उसी प्रकार धारण कर लेती है जैसे हम पुराने कपड़े को छोड़कर नये कपड़े धारण कर लेते है। यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक आत्मा जन्म-मरण के बन्धन से छूटकर परमात्मा में लीन नहीं हो जाती अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेती। व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार बारबार जन्म लेता है। उसे अच्छे बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है और जब तक यह भोग समाप्त नहीं हो जाता तब तक जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है। अधिकतर हिन्दू अवतारवाद में भी विश्वास करते हैं। उनका विश्वास है कि अपने भक्तों तथा धर्म की रक्षा के लिये ईश्वर पृथ्वी पर अवतार लेता हैं। अधिकांश हिन्दू मूर्ति पूजा करते हैं जिसका उद्देश्य मूर्ति रूपी माध्यम से ईश्वर की पूजा करना है न कि मूर्ति की पूजा। साधारण व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह ईश्वर की ध्यान द्वारा उपासना कर सके। उसके लिए ध्यान मे सहायता व प्रेरणा हेतु किसी प्रतीक की आवश्यकता होती है। मूर्ति वही प्रतीक है जो ईश्वर के ध्यान मे सहायक होती है। हिन्दू धर्म में वेदों को प्रमाण माना जाता है परन्तु पुराणों एवं स्मृतियों का भी आदर होता है। वर्णाश्रम व्यवस्था (चार वर्ण चार आश्रम) एवं विवाह सम्बन्ध की पवित्रता में भी इस धर्म के अनुयायियों का विश्वास है।

जैन धर्म – ऐतिहासिक दृष्टि से जैन धर्म की स्थापना ईसा से पूर्व छठी सदी में महावीर ने की परन्तु जैनी ऐसा मानते है कि उनके २४ तीर्थंकर

हुए हैं और महावीर सबसे अन्तिम तीर्थंकर हैं तथा उनका धर्म अत्यन्त प्राचीन धर्मों में से है पहले २२ तीर्थंकरों के सम्बन्ध में इतिहासकारों को कुछ अधिक जानकारी नहीं है। पार्श्व तथा महावीर के सम्बन्ध में इतिहासकारों को बहुत अधिक पता है। श्री पार्श्व बनारस के राजा अश्वसेन के पुत्र थे। ३० वर्ष तक गृहस्थी रहकर उन्होंने सन्यास धारण कर लिया और फिर बहुत तपस्या के पश्चात् आन्तरिक प्रकाश (Enlightment) को प्राप्त किया। महावीर से लगभग २५०वर्ष पहले उनका बंगाल में देहान्त हो गया। महावीर का जन्म लगभग ५४०ई०पू० में हुआ था और उनकी मृत्यु ४६७ ई० पू० में हुई।

जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त निम्न लिखित हैं।

(१) मनुष्य के जीवन में अनेक कष्ट हैं। इस कारण उसे जीवन-मरण के चक्कर के दुःख से छुटकारा पाने की कोशिश करनी चाहिए। मुक्ति के लिए तीन रत्नों की आवश्यकता है। त्रिरत्न हैं--(अ) मनुष्य को गुरु में श्रद्धा होनी चाहिये, उसे गुरु की शरण लेनी चाहिये। (आ) संसार, कर्म और बन्धन सम्बन्धी महान् सत्यों का यथार्थ ज्ञान होना चाहिये (इ) उसे सन्मार्ग पर चलना चाहिये और अहिंसा, सत्य और त्याग का व्रत लेना चाहिए। संक्षेप में श्रद्धा, ज्ञान और सदाचार इस धर्म के त्रिरत्न हैं।

(२) मनुष्य अपने कर्मों के लिये उत्तरदायी है और अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिये, उसे अपने ही प्रयत्नों पर निर्भर रहना चाहिये।

(३) इस मत का ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं है और इस कारण किसी देवता की प्रार्थना और दया में इसका विश्वास नहीं है।

(४) इस धर्म का कर्म-सिद्धान्त में विश्वास है। कर्मों का नाश शरीर को कठोर संयम में रखकर किया जा सकता है।

(५) इस मत का अहिंसा में पूर्ण विश्वास है।

जैनी लोग वेदों को नहीं मानते और उन्हें वैदिक वर्ण-व्यवस्था तथा जाति-पांति में भी कोई विश्वास नहीं है। उनका विश्वास है कि आत्मा अमर, सर्व-द्रष्टा ज्ञान सम्पन्न और क्रियाशील है परन्तु कर्मों के अनुसार आत्मा को जीवन-मरण के चक्कर में पड़ना पड़ता है। अतः वे आवागमन के सिद्धान्त को मान्यता देते हैं। जैन धर्म प्रत्येक चेतन वस्तु में आत्मा को मानता है। वे अजीव (Matter) में भी विश्वास करते हैं। श्री पार्श्वनाथ ने अपने शिष्यों को चार प्रतिज्ञाएं कराई थी—(१) किसी प्राणी को दुःख न देना (२) झूठ न बोलना (३) चोरी न करना (४) सम्पत्ति न रखना। श्री महावीर ने इनमें दो और बढ़ाईं (१) पवित्रता और (२) रात्रि को कुछ न खाना। इनके पवित्र धर्म ग्रन्थ, 'आगम' कहलाते हैं। इनमें दो सम्प्रदाय—(१) श्वेताम्बर और (२) दिगम्बर पाये जाते हैं। श्वेताम्बरों के मुनि सफेद कपड़े पहनते हैं तथा दिगम्बरों के मुनि नंगे रहते हैं। जैन धर्म के कर्मवाद, पुनर्जन्म, अहिंसा तथा आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त हिन्दू धर्म से मिलते हैं।

बौद्ध धर्म—बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतमबुद्ध थे। बुद्ध के अनुसार समस्त दुखों का कारण मोह और तृष्णा है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है। महात्मा बुद्ध ने सारनाथ में कहा कि 'भिक्षुओ, इन दो बातों को छोड़ो—काम सुख में लिप्त होना और शरीर पीड़ा में लगना। मैंने मध्यम मार्ग खोज निकाला है जो ज्ञान और शान्ति को देने वाला है। वह मार्ग अष्टांगिक मार्ग है—ठीक दृष्टि, ठीक संकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति और ठीक समाधि। चार आर्य सत्य हैं (१) यह संसार दुखमय है (२) उस दुख का कारण है (३) यह दुख नष्ट हो सकता है, और (४) दुख दूर करने का मार्ग है। महात्मा बुद्ध ने कहा है कि पण्डित सदाचारी, स्नेही, एकान्तसेवी, तथा आत्मसंयमी मनुष्य यश को प्राप्त होता है। दूसरे स्थान पर महात्मा बुद्ध ने कहा है कि उद्योगी, निरालस, आपत्ति में न डिगने वाला, अटूट नियम वाला, मेधावी पुरुष यश को प्राप्त होता है। महात्मा बुद्ध ने यह भी कहा है कि निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम

धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण सबसे बड़ा सुख है। जैसे अच्छे प्रकार छाये हुए मकान की छत में से वर्षा का पानी नहीं चू सकता, इसी प्रकार विवेक सम्पन्न मानव पर विषय वासनाओं का कुछ असर नहीं हो सकता। महात्मा बुद्ध परमात्मा, वेदों, यज्ञों, बलियों और वर्ण व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे। वे देवी देवता तथा उनकी कृपा का महत्व नहीं देते थे। वे दार्शनिक तर्क वितर्क में पड़ना नहीं चाहते थे और कई बार जब उनसे परमात्मा के विषय में पूछा गया तो उन्होंने यह कहा कि मैं नहीं जानता। महात्मा बुद्ध सदाचार तथा अहिंसा पर अधिक जोर देते थे। बुद्ध धर्म अनात्मवाद (Non-existance of soul) में विश्वास रखता है। यह पुनर्जन्म तथा कर्मवाद को भी मान्यता देता है। महात्मा बुद्ध ने उन लोगों के लिए जो गृहस्थ में रहते हैं पांच शील बताए हैं– अहिंसा, बलपूर्वक किसी से कुछ न छीनना, सत्य बोलना, नशीली वस्तुएं प्रयोग न करना और शुद्ध आचरण रखना अर्थात व्यभिचार तथा व्यसनों में न फसना। बौद्धों के धर्म ग्रन्थ 'त्रिपिटक' कहलाते हैं। त्रिपिटक में सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक शामिल हैं। गौतम बुद्ध के पश्चात् बौद्ध धर्म हीनयान तथा महायान नामक दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। हीनयान सम्प्रदाय वाले बुद्ध शिक्षा के सच्चे अनुयायी हैं। वे बुद्ध को केवल एक शिक्षक के रूप में मानते हैं जिन्होंने लोगों को मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग दिखाया है। महायान सम्प्रदाय वाले बुद्ध को ईश्वर मानते हैं उसे नित्य, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा और सबका रक्षक समझकर उनकी पूजा करते हैं इस धर्म का एशिया में काफी प्रचार हुआ। महाराज अशोक, कनिष्क, हर्षवर्धन तथा अन्य अनेक राजा महाराजाओं ने इसको विदेशों में फैलाने में सहयोग दिया। अनेक भारतीय भिक्षुओं ने इसको चीन, जापान, कोरिया, ब्रह्मा, लंका, तिब्बत, मध्य एशिया, ईरान अफगानिस्तान, ईराक, सीरिया मिस्र तथा यूनान में भी फैलाने का प्रयत्न किया। यद्यपि इसकी जन्म भूमि भारत वर्ष में इसके अनुयायियों की संख्या कम है फिर भी आज चीन, जापान, ब्रह्मा तिब्बत, मंगोलिया, स्याम तथा लंका में करोड़ों की संख्या में इस धर्म को मानने वाले विद्यमान हैं।

इस्लाम धर्मः— विद्वानों ने इस्लाम की उत्पत्ति संसार के इतिहास की एक आश्चर्यजनक घटनामाना है। इस्लाम धर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद (५७०—६२२) साहब थे। ४० वर्ष की अवस्था में इन्होंने इस धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया तथा७०वर्ष की आयु मे उनका देहान्त हुआ। धीरे २ यह धर्म दूर तक फैल गया और आजकल ये संसार के प्रधान धर्मो मे से एक हैं। इस्लाम धर्म की प्रधान पुस्तक 'कुरान' है जिसके विषय में मुसलमानों का विश्वास है कि ईश्वर ने दैवी प्रेरणा की भाषा मे उसे प्रकट किया था। मुहम्मद साहब की शिक्षाएं—(१) एक अल्लाह (ईश्वर) मे विश्वास करो, (२) कुरान में विश्वास करो, (३) महशर के दिन होने वाले ईश्वरिय न्याय था स्वर्ग और नरक में विश्वास करो, (४) प्रत्येक बात ईश्वर के द्वारा पहले ही निश्चित हो चुकी है। उसकी इच्छा के बिना कुछ नही होता, इस बात मे विश्वास रखो, (५) अपने पैगम्बरों और देव दूतों मे विश्वास एवं भक्ति रखो, मुहम्मद अन्तिम और सबसे बड़ा पैगम्बर है। देव दूत ईश्वर के सिंहासन को घेरे रहते हैं और इसमे मनुष्य की रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं, (६) ईश्वर या अल्लाह के सामने सब बराबर हैं। मुहम्मद साहब ने बतलाया कि ईश्वर की गति और उसके काम समझ में नहो आते। वह चाहे जिस से प्रसन्न रहता है और चाहे जिसे दण्ड देता है। उसके प्रति पूर्ण आत्म समर्पण का भाव रखना चाहिए। वह सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान और दयालू है जो भलाई करते हैं, जो मुहम्मद साहब का अनुसरण करते हैं और अभिमानी नहीं हैं, जो विश्वास रखते है और सदाचार करते है जो ईश्वर के आदर्श के लिए लड़ते हैं उनमे ईश्वर प्रसन्न रहता है। मुसलमानो के लिए मक्के की ओर मुंह करके ३ या ५ बार नमाज—(ला इलाह, इल्लिल्लाह 'मुहम्मदुर्रसूलइल्लाह' के कलमे का पाठ) पढ़ना, दान करना, मक्के जाकर हज करना, शराब न पीना, चोरी न करना, और रमजान के दिनों मे रोजा रखना आवश्यक बताया गया है। मुहम्मद साहब ने ईश्वर की पूजा सीधे करने पर जोर दिया। ईश्वर की पूजा के लिए किसी मूर्ति या पूजा को आवश्यकता नही है। कोई मुसलमान चाहे कहीं भी हो उसे वहीं निश्चित समय पर नमाज पढनी चाहिए। ईश्वर की उपासना

दुष्टा के लिए नरक है। इन लोगा का महशर के दिन मे विश्वास है उस दिन सब व्यक्ति जो उठते हैं और उनका अन्तिम न्याय होता है। पारसी धर्म सहिष्णुता का उपदेश देता है।

ईसाई धर्म—ईसाई धर्म के प्रवर्तक महात्मा ईसामसीह (४ ई० पू० से २६ ई० तक) थे। इनका जन्म येरूसलम (एशिया) मे हुआ था परन्तु इनका धर्म पहले यूरोप मे फैला और बाद मे यूरोप वालो ने इसका अन्य देशा म प्रचार किया। ईसाई धर्म के अनुसार परमेश्वर एक है और प्रत्येक मनुष्य का उससे हृदय से प्रेम करना धर्म है। ईश्वर सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सत्य, पवित्र, दयालु न्यायप्रिय तथा प्रेम करने वाला है। वह प्राणीमात्र का पिता है वह दुष्ट और पापियो को भी क्षमा करता है। जो लोग अपने पापा का प्रायश्चित करते हैं उन्हें ईश्वर प्रेम करता है और उन्हे क्षमा करता है और उनकी रक्षा करता है। मनुष्य को क्षमाशील होना चाहिये तथा बुराई का बदला बुराई से नहीं देना चाहिए। ईसाइयों का भी न्याय के दिन स्वर्ग तथा नरक में विश्वास है। इनकी धर्म पुस्तक New Testament है जिसमे ईसामसीह के उपदेश हैं। इस धर्म मे दान, प्रेम और दया को बहुत महत्व दिया गया है। दूसरा की सेवा में अपना बलिदान पूर्ण होना चाहिए। ईसाई धर्म में साधु सन्यासी बनने की आवश्यकता नही है परन्तु आत्मदमन पर काफी जोर दिया गया है। ईसाई लोग मूर्ति पूजा और आवागमन में विश्वास नही करते।

ईसामसीह ने दस आज्ञाओ का उपदेश दिया जो कि परमेश्वर ने हजरत मूसा को दी थी–वह दस आज्ञाए निम्न हैं—(१) मेरे (ईश्वर) अतिरिक्त किसी को ईश्वर मत मानो (२) किसी प्रकार की मूर्ति मत बनाओ (३) किसी के सामने मत झुको और न किसी का दासत्व स्वीकार करो (४) ईश्वर का नाम व्यर्थ मत लो (५) अपने माता पिता का आदर करो (६) हिंसा मत करो (७) व्यभिचार मत करो (८) चोरी मत करो (९) अपने पड़ोसी के विरुद्ध झूठी गवाही मत दो (१०) अपने पड़ोसी के घर पर जी मत ललचाओ। ईसा

मसीह के नये सिद्धान्तों और शिक्षाओं का उनके पहाड़ पर दिये हुए उपदेश (Sermon on the mount) में वर्णन आता है। उनमें से मुख्य शिक्षायें है (१) गरीब आत्माएं सुखी हैं क्योंकि स्वर्ग का राज उन्ही का है। (२) दुख सहने वाले सुखी है क्योंकि उनको आराम मिलेगा। (३) विनयी सुखी हैं क्योंकि वे ही पृथ्वी के अधिकारी होंगे। (४) सुखी वही है जो दयावान् है क्योंकि उन्हे ईश्वर के दर्शन होंगे। (६) जो सत्य के लिए दुख उठाते है वे सुखी हैं क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्ही का है। (७) जब लोग तुम्हे गाली देते हैं और तुम्हे पीड़ा पहुंचाते हैं उस समय तुम सुखी हो। (८) मैं कहता हूं तुम बुराई का विरोध मत करो किन्तु यदि कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर चाटा मारे तो बाया गाल भी उसके सामने करदो। (९) मैं तुमसे कहता हूं कि तुम शत्रु से प्रेम करो, जो तुम्हें शाप दे उसे तुम आशीर्वाद दो, जो तुम से घृणा करे उसके साथ तुम भलाई करो और जो तुम्हे पीड़ा पहुंचाते हैं उनके लिए तुम प्रार्थना करो।

इन शिक्षाओं से स्पष्ट प्रकट होता है कि ईसामसीह ने ईश्वर और मानव जाति के प्रति प्रेम और सेवाभाव का उपदेश दिया है। इस धर्म के भी अनेक सम्प्रदाय हैं जिनमें रोमन कैथोलिक तथा प्रोटैस्टेंट मुख्य हैं।

सॉंख्य दर्शन--सांख्य दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल माने जाते हैं। ये उपनिषत्कालीन हैं किन्तु इनके नाम से प्रचलित 'सांख्य सूत्र' बहुत अर्वाचीन हैं। इस दर्शन का प्राचीन एवम् प्रसिद्ध ग्रन्थ ईश्वर कृष्ण की 'सांख्यकारिका' है। इस दर्शन मे २५ तत्व माने गये हैं जिनमे पुरुष व प्रकृति मुख्य हैं। पुरुष व प्रकृति का सम्बन्ध अन्धे व लंगड़े के समान है। प्रकृति ज्ञान के अभाववश अन्धी है, पुरुष क्रिया के अभाव के कारण पंगु है। जब तक पुरुष प्रकृति से अपना पृथक्त्व नही समझ लेता, तब तक संसार का नाटक चला करता है। पुरुष को कैवल्य ज्ञान होते ही यह सब दन्द हो जाता है। अविवेक ही पुरुष व प्रकृति का सम्बन्ध करवाता है। यह संसार प्रकृति से विकसित हुआ है।

प्रकृति के सत्व, रज, तम आदि तीन गुण हैं। जब तक तीनों गुण साम्य की अवस्था में रहते हैं तब तक प्राकृतिक विकास नहीं होता किन्तु गुण क्षोभ होते ही प्रकृति का विकास प्रारम्भ होता है व पुरुष भी अविद्या के कारण इसमें फस जाता है। प्रकृति के २४ तत्व विकसित होते हैं तथा २५ तत्व पुरुष होता है। ये सब मिल कर सांख्य के २५ तत्व हैं। विकास के स्वरूप को निम्नलिखित प्रकार से निरूपण किया जा सकता है —
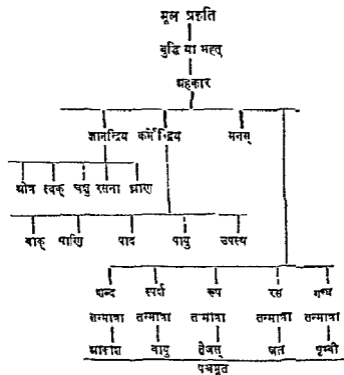
सांख्य दर्शन में आत्मा को पुरुष कहा गया है। पुरुष अनेक हैं। वे चुपचाप प्रकृति नटी का नाटक देखते है। सांख्य दर्शन में पुरुष को अमूर्त, चेतन, भोगी, नित्य, सर्वगत, अक्रिय, अकर्ता, निर्गुण, सूक्ष्म इत्यादि माना गया है। जब पुरुष शरीर, मन, इन्द्रिय आदि मे. बंध जाता है, तब जीव कहलाता है। प्रत्येक जीव का स्थूल शरीर रहता है, जो मृत्यु के पश्चात् नष्ट हो जाता है। उसका एक सूक्ष्म शरीर भी रहता हैं, जिसे लिंग शरीर भी कहते हैं। इसी शरीर के साथ जीवात्मा पुनर्जन्म धारण करता है। सांख्य दर्शन में ज्ञान पांच प्रकार का माना गया है जैसे प्रमाण विपर्यय, विकल्प, निद्रा व स्मृति। प्रमाण तीन है--प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द। यह संसार कष्टमय है। यहां आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन प्रकार के दुख रहते हैं। सत्यज्ञान या विवेक द्वारा इन दुखों से छुटकारा होता है। मिथ्या ज्ञान से उनकी वृद्धि होती है। निःस्वार्थवृत्ति द्वारा सद्गुणों को प्राप्त करने से सत्यज्ञान की प्राप्ति होती है। योग वैराग्य, ध्यान आदि भी आवश्यक हैं। रजोगुण व तमोगुण को घटाकर सत्य की वृद्धि करनी चाहिए। कुछ विद्वान मानते हैं कि सांख्य दर्शन ईश्वर मे विश्वास नहीं करता है। सांख्य के प्राचीन आचार्यों ने यह तो स्पष्ट नही कहा कि ईश्वर नही है, किन्तु इस बात का अवश्य उल्लेख किया है कि ईश्वर के अस्तित्व की आवश्यकता प्रतीत नही होती। यह जगत प्रकृति मे ही विकसित होता है। किन्तु आगे चलकर सांख्य के आचार्यों को अपनी एक त्रुटि का अनुभव होने लगा। जब कि पुरुष तटस्थ व द्रष्टामात्र है व अन्धी प्रकृति स्वतः कुछ भी नहीं कर सकती, तब प्राकृतिक विकास का प्रारम्भ कैसे होता है? वाचस्पति, विज्ञान भिक्षु, नागेश प्रभृति को एक व्यव.थापक ईश्वर की आवश्यकता प्रतीत हुई व उन्होने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीक.र कर लिया। वही ईश्वर प्रकृति के विकास को व्यवस्थित करता है।

वेदान्त दर्शनः--वेदान्त दर्शन जिसे उत्तर मीमांसा दर्शन भी कहते हैं भारतीय दर्शन का सबसे चमकीला रत्न है। इस दर्शन के प्रणेता बादरायण व्यास मुनि माने जाते हैं। ये सम्भवतः महर्षि जैमिनी के समकालीन थे।

वेदान्त मे तीन ग्रन्थों को जिन्हें प्रधान त्रयी भी कहा जाता है प्रमाणिक माने जाते हैं–उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्री मद्‌भगवद्‌गीता। ब्रह्मसूत्र के कर्ता वेदव्यासजी ही हैं। इसमे वेदव्यास का उद्देश्य उपनिषद् के आधार पर ब्रह्म का प्रतिपादन, सांख्य, वैशेषिक, जैन, बौद्ध आदि मतों का खण्डन कर, ब्रह्म प्राप्ति के वेदान्तसम्मत साधनों का वर्णन करना था। किन्तु वेदान्त दर्शन के सूत्र इतने अल्पाक्षर हैं कि भाष्यों के बिना उनका अर्थ लगाना बड़ा कठिन है और भाष्यकारों ने इनसे अपना अभीष्ट अर्थ निकालने के लिए बड़ी खींचातानी की है अतः इन सूत्रों का वास्तविक अर्थ और महर्षि व्यास के आशय का पता लगाना अत्यन्त क्लिष्ट कार्य है। महर्षि व्यास के मूल विचार सम्भवतः यह थे–विभु ब्रह्म की अपेक्षा आत्मा अणु है, जीव चैतन्य रूप है। ज्ञान उसका विशेषण या गुण है। ब्रह्म जगत का उपादान और निमित्त दोनों है। बादरायण के ये सिद्धान्त श्री शंकराचार्य से भिन्न हैं। शंकर के मायावाद को व्यास ने स्वीकार नहीं किया। बादरायण का मत था कि ब्रह्म से प्रदुर्भाव होने पर भी जीव इससे पृथक तथा वास्तविक बने रहते हैं। ब्रह्म से बनने वाला जीव भी वास्तविक होता है। शंकर के मत में यह अवास्तविक और मिथ्या है।

शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्र पर भाष्य लिखकर नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसे शंकर वेदान्त अथवा मायावाद कहते हैं। वेदान्त सूत्रों मे शंकर के सिद्धान्त के लिए सामग्री अवश्य है, किन्तु उसका स्वरूप व्यवस्थित नहीं है, उसे शंकर ने व्यवस्थित किया है। मायावाद का सिद्धान्त यह है कि जो कुछ दिखाई देता है वह सत्य नहीं है, वह केवल आभास मात्र है। जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार में रस्सी मे सर्प का भ्रम हो जाता है, उसी प्रकार अविद्या के अन्धकार में ब्रह्म इस जगत के रूप में दिखाई देता है। ब्रह्म का इस प्रकार दिखाई देना उसके मायान्वित होने के कारण भी है। जीव को मायान्वित ब्रह्म भी कहते हैं। अनेकत्व केवल आभास है व एकत्व एक मात्र सत्य है। इस प्रकार शंकराचार्य जीव एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं मानते। उनका मूल सिद्धान्त 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापर' 'ब्रह्म ही सत्य है, सत्य का आशय तीनों

कालों में रहने वाली वस्तु है, संसार ऐसा न होने से मिथ्या है। उसकी व्यावहारिक सत्ता है किन्तु परमार्थिक सत्ता नहीं है। शंकराचार्य का दूसरा सिद्धान्त यह था कि ब्रह्म के दो स्वरूप-निर्गुण तथा सगुण हैं माया विशिष्ट ब्रह्म सगुण है, यही ईश्वर है। निर्गुण ब्रह्म माया से रहित, सर्वश्रेष्ठ, अखण्ड, व्यापक और सच्चिदानन्द स्वरूप है। तीसरा सिद्धान्त ज्ञान के द्वारा मुक्ति है। शंकराचार्य का सिद्धान्त अद्वैतवाद कहलाता है।

श्री शंकराचार्य के सिद्धान्त बाद के भक्ति-प्रेमी वैष्णव व आचार्यों को पसे पसन्द नहीं आये। वे जीव एवं ब्रह्म में भेद मानते थे, उनके मत में ब्रह्म ही ईश्वर था, चेतन जीव तथा जड़ जगत् मिथ्या नहीं सत्य थे। जीव अणु तथा संख्या में अनन्त है, भक्ति ही मोक्ष दायिका है। इन आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों के समर्थन के लिए अपनी दृष्टि से वेदान्त सूत्रों का भाष्य किया। इन आचार्यों में रामानुज, माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य उल्लेखनीय हैं। रामानुज का मत विशिष्ट द्वैत कहलाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन श्री भाष्य में हुआ है। वे ब्रह्म को जीव तथा जगत से विशिष्ट मानते हैं। चित्त (जीव,) अचित (संसार) और ईश्वर तीनों मिलकर हरि है "ईश्वरश्चिदचिच्चेद पदार्थ त्रियं हरी" जीव तथा जगत अखिल सद्गुणों के भण्डार ईश्वर के दो प्रकार या विशेषण है। अतः यह अद्वैत न होकर विशेषण वाला (विशिष्ट) अद्वैत है। माध्वाचार्य जीव एवं ईश्वर को सर्वथा पृथक मानते हैं, साथ ही वे ईश्वर को इस जगत का निमित्त मानते हैं, उपादान नहीं। अतः इनका मत द्वैत मत कहलाता है। आचार्य निम्बार्क जीव एवं ब्रह्म (ईश्वर) को व्यवहार काल में भिन्न और वैसे अभिन्न मानते है। अतः उनका मत द्वैताद्वैत कहलाता है। वल्लभाचार्य का सिद्धान्त शुद्ध द्वैत कहा जाता है। वे सच्चिदानन्द ब्रह्म में सत्-चित-आनन्द तीनों गुण मानते है। जीव में आनन्द का तिरोभाव रहता है और सत् और चित् का भाव रहता है। जड़ में आनन्द और चित् दोनों का अभाव रहता है और केवल सत् का भाव रहता है। वल्लभाचार्य संसार को झूठा नहीं मानते।

संक्षेप मे वेदान्त दर्शन के अनुसार जगत में ब्रह्म ही सत्य है। पुरुष व प्रकृति उसी के परिवर्तित स्वरूप हैं। पुरुष मे जो ब्रह्म है। उस पर पुरुष का कोई प्रभाव नहीं पडता। दोनों का भेद मुक्ति के पश्चात् भी रहता है। यह संसार ब्रह्म के संकल्प का परिणाम है। यह उसकी लीला है। मोक्ष प्राप्ति के लिए जीवात्मा को अच्छे गुण करने चाहिएं जिससे आत्मशुद्धि हो सके व जीव पवित्र बन सके।

प्रश्न

(१) धर्म एवं दर्शन से क्या तात्पर्य है ? इन दोनो मे क्या सम्बन्ध है ?

(२) हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी धर्मों के मुख्य २ सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए बताइये कि इनमें क्या मौलिक एकता है ?

(३) बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त क्या हैं। हिन्दू धर्म का इनके साथ क्या सम्बन्ध है ?

(४) विश्व के प्रमुख धर्मों में क्या समानता है ?

(५) सांख्य दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

(६) शंकर के अद्वैत वाद से आप क्या समझते हैं ?

(७) वेदान्त दर्शन पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

(८) सब महान् धर्मों के मुख्य तत्वों की मूल भूत एकता स्पष्टतया समझाइये। रा- वि. १९६०

५ साहित्य
(Literature)

अन्धकार है वहां जहां आदित्य नहीं है।
अन्धा है वह देश जहां साहित्य नहीं है॥

मनुष्य अपनी कल्पना से ईश्वर, जीव तथा जगत इन तीनों तत्वों के सम्बन्ध मे कितनी ही बातें सोचता और वाणी के द्वारा उन्हे व्यक्त करने की चेष्टा करता आया है। मनुष्य की इसी प्रवृत्ति की प्रेरणा से ज्ञान और शक्ति के उस कोष का सृजन, संचय और विकास होता है, जिसे हम साहित्य कहते हैं। विद्वानों ने मानव समाज की ज्ञानराशि के संचित भण्डार को ही साहित्य के नाम से पुकारा है। साहित्य भी दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम उपयोगी साहित्य अथवा ज्ञान प्रधान साहित्य, द्वितीय ललित साहित्य अथवा भाव प्रधान या शक्ति प्रधान साहित्य। उपयोगी साहित्य के अन्तर्गत राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, विज्ञान, भूगोल आदि आते हैं। प्रथम का सम्बन्ध ज्ञान से है तथा द्वितीय का सम्बन्ध भाव से है। विद्वानों ने ललित साहित्य को ही वास्तविक रूप मे साहित्य के अन्तर्गत माना है। हमारी भाव धाराओं से उद्वेलित होने वाला 'रस' ही साहित्य की आत्मा है। श्री विश्वनाथ ने साहित्य (काव्य) को रसात्मक वाक्य माना है। यहां 'रस' का अर्थ 'आनन्द' है। पाठक या श्रोता के चित मे जिस रचना के द्वारा विशेष प्रकार की आनन्दमयी मानसिक अवस्था उत्पन्न हो जाए वही काव्य है। पण्डितराज श्री जगन्नाथ का मत है कि 'रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है।'

रमणीय शब्द का अर्थ है सौन्दर्य सृष्टि के द्वारा पाठक या श्रोता के मन में आनन्द की उत्पत्ति करना । यूरोपियन साहित्यकार क्रोच भी साहित्य की प्रक्रिया को आध्यात्मिक मानता है तथा एक तरह से वह भी साहित्य में 'रस' के महत्व को स्वीकार कर लेता है । उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि साहित्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनन्द या चमत्कार पैदा कर दे तथा अपने विषय की वर्णन शैली से पाठक के हृदय में आनन्द का प्रवाह उत्पन्न करदे जो रसानुभव से सम्पन्न हो । उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह किसी विषय अथवा ज्ञान की अवगति करावे । इस दृष्टि से नाटक, कविता, उपन्यास, कहानी, गद्यगीत आदि काव्य-कला की भिन्न व्यंजना शैलियां होने से साहित्य के अन्तर्गत आते हैं, एवं ज्योतिष गणित, भूगोल, राजनीतिशास्त्र इतिहास, समाजशास्त्र आदि नहीं क्योंकि इन शास्त्रों का सम्बन्ध केवल ज्ञान से है भाव से नहीं ।

साहित्य के भेदः—शैली की दृष्टि से साहित्य के दो भाग किए जाते हैं । पहला पद्य साहित्य एवं दूसरा गद्य साहित्य । पद्य साहित्य वह है जो कविता के रूप में लिखा जाता है । कविता वह कला है जो संगीतमय भाषा में काल्पनिक विचारों और भावों की यथार्थ व्यंजना से आनन्द का उद्रेक करती है । श्री कारलायल के अनुसार 'कविता संगीतमय विचार है ।' डाइलेन टाइम ने कहा है 'कविता एक लयबद्ध अपरिहार्य रूप से इतिवृत्तमयी गति है जो कि हमारी आच्छन्न अन्धता से हमें नग्न दृष्टि की ओर ले जाती है । Poetry is the rhythmic inevitable narrative movement from our clothed blindness towards a naked vision.' सूरसागर, मधुशाला, रामचरित मानस, परेडाईज लोस्ट (Paradise lost), इलिड एवं ओडेसी (Ilad and odyssey) आदि पद्य काव्य है । बन्ध की दृष्टि से पद्य काव्य को दो भागों में विभक्त किया जाता है-(१) प्रबन्ध काव्य, (२) निर्बन्ध काव्य (मुक्तक काव्य) । जिस रचना में कोई कथा क्रमबद्ध कही जाती है वह प्रबन्ध काव्य कहलाती है । जिसमें कोई विशेष कथा नहीं होती जो स्वच्छन्द रूप से किसी पद्य या गद्य खण्ड के द्वारा रस भाव या तथ्य को व्यक्त करती है

उसे निर्बन्ध काव्य कहते हैं। राम चरित्र मानस, कामायनी, इलिड एवं ओडेसी, पेरेडाईज लोस्ट आदि प्रबन्ध काव्य है तथा सूर सागर, कुंकुम, रसवन्ती, निशा निमन्त्रण आदि मुक्तक काव्य हैं। प्रबन्ध काव्य के भी दो भेद हैं, पहला महाकाव्य एवं दूसरा खण्डकाव्य। जिससे पूर्ण जीवनवृत्त विस्तार के साथ वर्णित हो, ऐसी रचना को महाकाव्य कहते है जैसे हिन्दी साहित्य का रामचरित्र मानस एवं महाभारत। जिस रचना में खण्ड जीवन महाकाव्य की ही शैली पर वर्णित होता हैं उसे खण्ड काव्य कहते हैं जैसे मैथिलिशरण गुप्त का नहुष एवं जयद्रथ वध।

गद्य साहित्य के अन्तर्गत निबन्ध, कहानी, उपन्याय, नाटक आदि का समावेश होता है। आचार्य शुक्ल का चिन्तामणि निबन्ध संग्रह, मैथ्यू आर्नल्ड का Literature and Dogma, Culture and sensibility, Pride and Prejudice, प्रेमचन्द का सेवा सदन, फेवादोर दोस्तोइस्के (Feodor Dosto yevsky) का Crime and Punishment (Russion), गेहर्ट हाफ्टमेन (Gerhart Hauptman) का The weawess, The Sunken Bell (German) जयशंकरप्रसाद का चन्द्रगुप्त आदि गद्य साहित्य है।

काव्य के दो पक्ष—काव्य अथवा साहित्य के दो पक्ष होते हैं। पहला भाव पक्ष तथा दूसरा कला पक्ष। भावों, विचारों तथा कल्पनाओं की अभिव्यंजना काव्य के भाव पक्ष मे आती है और उसे सौन्दर्य प्रदान करने की कला कलापक्ष मे। भाव साहित्य की आत्मा होती है। उसका ऊपरी ठाटबाट उसका श्रृंगार और भाषा उसका कलेवर होती है। भाषा के अङ्ग, गुण, वृत्ति, रीति, छन्द आदि है। ये भाषा को आकर्षक और भाव वहन मे पुष्ट बनाते हैं। इन्ही के द्वारा साहित्य का भाव पक्ष व्यक्त होता है। संक्षेप में यदि रस (भाव) साहित्य की आत्मा है तो शैली साहित्य का शरीर है। जहां साहित्यकार आत्मा (भाव पक्ष) एवं कलेवर (कला पक्ष) दोनो का सौन्दर्य पूर्णतया निभाने

मे सफल होता है वही साहित्य का चरम विकास सम्भव होता है। ये भाव और कला के वर्ग समय-समय में घटते बढ़ते रहते हैं। कभी भाव पक्ष की प्रधानता हो जाती है तो कभी कला पक्ष की। ये दोनो पक्ष जिन तत्वों के आधार पर साहित्य का कलेवर सम्पन्न करते हैं, उनकी संख्या तीन है—(१) बुद्धि तत्व (२) कल्पना तत्व (३) रागात्मक तत्व। बुद्धि तत्व अन्तःकरण की निश्चयात्मिकावृति है। इसको मन की चेतना शक्ति भी कहा जाता है। जब मन बुद्धि द्वारा किसी ज्ञान को प्राप्त कर लेता है तब उसके सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के भाव व्यक्ति के मन मे व्यक्त होते है। जब व्यक्ति किसी नदी-तलाव, पेड़-पौधे, फल-फूल, घर-खण्डर, स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि को देखता है तब भिन्न मानसिक क्रियाओं के कारण उसके मन मे कुछ भाव जागृत होते हैं। इन्ही का नाम विचार है। ये ही जब उत्तम कोटि के होते हैं तब काव्य के विषय बन जाते हैं। कल्पना तत्व के सहारे साहित्यकार अपने मस्तिष्क पट पर अपने पूर्व संचित अनुभवो के सम्मिश्रण मे किसी विषय के मनोहर चित्र अंकित करता है तथा अपनी शाब्दिक शक्ति के द्वारा इसी चित्र को ऐसा सुन्दर वर्णनात्मक रूप देता है जो मन को मुग्ध कर लेता है। इस मनो मुग्धकारी विचार का नाम ही साहित्य हैं। ज्ञान के साथ मन मे भाव भी वर्तमान रहते है और अवसर पाकर काव्य विषय कलाकार (साहित्यकार) के मन मे स्वयं उद्भूत हो जाते हैं। उपरोक्त तीनो तत्व आपस मे इतने मिले-जुले होते हैं कि इनको विभाजक रेखा द्वारा अलग नही किया जा सकता हैं। साहित्य के भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष के कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

भाव पक्ष—(१) स्त्री जाति की कोमलता तथा करुणा पर गुप्त जी के उद्गार—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल मे दूध और आंखो मे पानी॥

(२) गुप्तजीका का आदर्श मनुष्यत्व राम के स्वरो मे—

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,
संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

(३) शेक्सपियर के उद्‌गार पोरशिया (Portia) के स्वरों में—
"The quality of mercy is not strain'd,
It droppeth as the gentle rain from neaven
upon the place beneath, it is thice blest.
It blesseth him that gives and him that takes.
It is mightiest in the mightiest."

कलापक्ष:—(अ) भाषा शैली (१) पंतजी की चित्रमय भाषा शैली—
मारुत ने जिसकी अलकों में चुंचल चुंबन उलझाया
अन्धकार का अलसित अन्चल अब द्रुत ओढेगा संसार
जहां स्वप्न सजते श्रृंगार

(२) निरालाजी की कोमल कान्त, मधुर संगीत मे मढ़ी हुई भाषा—
भारती जय, विजय करे, कनक शस्य कमल धरे।
लंका पदतल शतदल, गर्जितोर्मि सागर जल ॥
धोता शुचि चरण युगल, स्तवकर बहु अर्थ भरे।

(आ) अलङ्कार योजना-(१) विहारी के दोहे में शब्द श्लेष (Pun) का नमूना।

चिरजीवों जोरी जुरै, क्यों न स्नेह गम्भीर
को घटि ए वृष भानजा, वे हलधर के बीर ॥

(३) शेक्सपियर के हेमलेट नाटक में अतिशयोक्ति (Hypeabol का नमूना।

> If thou prate of mountains let them throw
> Millions of acres on us, till our ground
> Singeing his pate against the burning Zone
> Make ossa like a wart—

लक्षणा अलंकार (oxymoron) का नमूना—

> his honour Rooted in dishonour stood
> And faith unfaithful kept him folsely true.

(४) अनुप्रास (Alliteration) का नमूना सेनापति जी के सावन वर्णन में-

> दामिनी दमक सुर चाप की चमक,
> स्याम घटा की भमक अति घनघोर तैं।
> कोकिल कलापी धन कूजत है जित-तित,
> सीकर ते सीतल समीर की झकोर तैं।

(५) रूपक (Metaphor) का नमूना निराला जी की यमुना नामक कविता की पंक्ति में—'वह नयनों का स्वप्न मनोहर, हृदय सरोवर का जल जात' में देखने को मिलता है।

उपमा (simile) १. मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है
Loose clouds like earth's decaying
leaves are shed.'

मैथ्यू आर्नल्ड की The scholar Gipsy के अन्तिम दो पदों (Stanzas) में उपमा (Simile) का भी प्रयोग हुआ है।

साहित्य के मूल्यांकन के सिद्धान्त Principle of Appreciation:- साहित्य के तत्वों का अध्ययन करने के पश्चात सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने आता है कि किसी साहित्य कृतिके मूल्यांकन की कसौटी क्या हो। जिस पर कस कर हम किसी रचना के गुण, दोष देख सकें और उसकी उत्कृष्टता के विषय में अपना मत दे सकें। साहित्य कृति का मूल्यांकन करते समय हमें यह देखना होगा कि साहित्यकार की रचना साहित्यकार पर क्या प्रकाश डालती है। साहित्य निर्माण में कला पक्ष का महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु हम इसी को सब कुछ नहीं मान सकते। श्री होलिंग वर्थ ने "A Primer of literary criticism" में लिखा है "we must not be misled by all this talk of simile, personification and the rest. To be able to pick out a simile or metaphor is in itself merely recognition. What we have to ask ourselves is 'what valuable light does it shed on the author?' If the answer is 'none' then that figure of speech is as dead as marley's ghost, however striking it may be. We shall find this simple test very useful in distinguishing between the living and the dead"

अतः उत्तम साहित्य वह है जो साहित्यक के विचारों, भावनाओं तथा आदर्शों पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। तुलसीदास का राम चरित्र मानस, शेक्सपियर का हेमलेट, जयशंकर प्रसाद का कामायनी और मैथिलीशरण गुप्त का साकेत, उत्तम कोटि के साहित्यिक ग्रन्थ माने जाते हैं क्योंकि क्रमशः ये तुलसीदास, शेक्सपियर, जयशंकरप्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त के विचारों, भावनाओं तथा आदर्शों पर प्रकाश डालते हैं। साहित्य का मूल्यांकन वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा भी किया जाता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया में तुलना [Comparison] का प्रथम स्थान है। किसी साहित्य रचना की अन्य साहित्य रचना से तुलना कर उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। तुलना करते समय देशकाल एवं मानव आदर्श

की भिन्नता का ध्यान रखना आवश्यक है। श्री होलिंग वर्थ ने 'The wife of usher's well' एवं 'La Belle Dame Sans Merci' का Primer of Literary criticism में तुलनात्मक अध्ययन किया है। हिन्दी साहित्य में भी केशव एवं बिहारी, मीरा तथा महादेवी, सूर एवं तुलसी के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा हम उनके साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। वर्तमान युग में वस्तु (Matter) रीति (manner) एवं आदर्शीकरण (Idealisa' tion) तत्वों को आधार मानकर ही साहित्य को परखा जाता है। वर्तमान समालोचना के स्वरूप निर्माण में मैथ्यू आर्नल्ड, वर्स फोल्ड एवं रिचर्ड्स आदि की रचनाओं का विशेष हाथ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं द्विवेदी जी का भी इस क्षेत्र में बहुत अधिक योगदान रहा है। द्विवेदीजी ने लिखा है 'आलोचना का मापदण्ड मन न होकर बुद्धि हो, अर्थात् किसी वस्तु धर्म या क्रिया के वास्तविक रहस्य का पता लगाने के लिए अनुराग-विराग या इच्छा द्वेष को महत्व नहीं देना चाहिए बल्कि देखना चाहिए कि वस्तु देखने वाले के बिना अपने आप में क्या है।'

प्रश्न

[१] साहित्य क्या है? साहित्यमें भाव पक्ष तथा कला पक्ष का क्या महत्व है? समझाइए।

[२] साहित्य का मूल्यांकन किस आधार पर किया जा सकता है? उदाहरण देकर समझाइए।

६ प्रमुख राजनैतिक विचार

(१) प्रजातन्त्र

बीसवी सदी को यदि प्रजातन्त्र (जनतन्त्र) का युग कहा जाय तो अति-शयोक्ति न होगी क्योंकि विश्व में इस समय प्रजातन्त्र का सबसे अधिक प्रभाव है, आजकल विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में जनतंत्रतात्मक प्रणाली ही है और जहा दूसरी प्रणालियां विद्यमान भी हैं वे जनतन्त्र की आड़ में ही पनप रही हैं। जहां जनतन्त्र का खुला विरोध होता है वहीं क्रांति के बीज पैदा हो जाते हैं। कहा जाता है कि गत दो विश्व महायुद्ध केवल इसलिये लड़े गये कि विश्व मे प्रजातन्त्र कायम रह सके जिसमें प्रत्येक देश की जनता को अपनी सरकार का ढांचा स्वयं निर्मित करने का अधिकार मिल सके।

विभिन्न लेखकों ने अलग-अलग ढंग से प्रजातन्त्र की व्याख्या की है, प्रोफेसर सीली के अनुसार 'प्रजातन्त्र वह शासन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति हाथ बंटाता हो,' डेयसी के शब्दों मे 'प्रजातन्त्र शासन वह शासन है जिसमे शासन आपेक्षिक दृष्टि से जनता के बड़े भाग के हाथ मे हो' लार्ड ब्राइस के मतानुसार 'हीरोडोटस के समय से लेकर आज तक लोकतंत्र शब्द का प्रयोग उस शासन पद्धति के लिये किया जाता है कि जिसमें प्रभुत्व शक्ति किसी श्रेणी या श्रेणियों के हाथ में न होकर सम्पूर्ण समाज के सदस्यों में निहित हो, इस परि-भाषा का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने पुनः कहा कि 'राजशक्ति उस जनस-

माज में निहित होता है जो मत (वोट) इसका प्रयोग करता है इसमें शासन बहुसंख्या के अनुसार होता है क्योंकि जब किसी बात पर सब लोग एकमत नहीं होते तो शान्तिपूर्ण वैधानिक रीति से यह निर्णय करने केलिये समाज की इच्छा क्या हो, बहुसंख्या के अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं है।' जनतन्त्र के सम्बन्ध में अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहमलिंकन की परिभाषा अधिक सुगम व लोकप्रिय है। उनके शब्दों में जो शासन'जनता का जनता के लिये, जनता द्वारा' हो वहीं जनतंत्र है।

उत्पत्ति—यों तो प्रजातन्त्र अत्यधिक प्राचीन शासन प्रणाली है, प्राचीन यूनान भारत, चीन आदि सभ्य देशों मे जनतन्त्र का कई बार प्रयोग हुआ तथा वर्षों तक यह परम्परा चलती रही, बाद मे सैकड़ों वर्षों तक इस भूमण्डल में निरंकुश राजतन्त्र का राज्य हुआ. आधुनिक काल में जनतन्त्र की उत्पत्ति का उद्भव कुछ लोगों के विचार मे ट्यूटेनिक राजसभाओं से हुआ। इसके विपरीत कुछ लोगों की मान्यता है कि इसका जन्म स्विटजरलैण्ड तथा हंगरी में हुआ। पर अधिकांश लोग यह मानते हैं कि जनतंन्त्र का मूल श्रोत इंग्लैंड है। इंग्लैण्ड की जनता मे स्वतन्त्रता व जनतन्त्र की भावना बहुत पहले से विद्यमान थी जिसका शनैःशनैः विकास हुआ। निरंकुश सैक्सन राजाओं के काल तक इंग्लैण्ड में जनतन्त्र नहीं था,शासन सत्ता चलाने के लिये सैक्सन राजाओं के समय मे विटन (Witan) होती थी जिसके सदस्य राजा द्वारा मानोनीत किये जाते थे तथा उसी के प्रति [illegible] कौंसिल [illegible] रशिना [illegible] जनता से अधिक धन कर के रूप मे लेने के लिये किया गया था फिर भी इसने आगे जाकर जनमत का मार्ग प्रशस्त किया। २५ जून १२२५ रेनीमेड नामक स्थान पर तत्कालीन राजा ने मेगना कार्टा पर हस्ताक्षर किये जिसे ब्रिटिश वैधानिक परम्परा की नीव माना जाता है, मेगना कार्टा एक सामंतशाही घोषणा पत्र था जिसमें यद्यपि जनसाधारण को कोई प्रत्यक्ष अधिकार नहीं दिये गये थे फिर

भी इसमें जनता के अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व शासक वर्ग पर था। राजा अब स्वेच्छा से कर नही लगा सकता था तथा बिना मुकदमा चलाये किसी भी व्यक्ति को जेल नही भेज सकता था, यह एक स्वेच्छाचारिता पर महत्वपूर्ण अंकुश के रूप में प्रगट हुआ जिसने जनता की अवाज बुलन्द की। इसके बाद १२६५ मे बैरनों के नेता साइमन डी मान्टफोर्ड के नाम पर ग्रेट कौसिल का उद्‌घाटन हुआ जिसमें प्रत्येक प्रांत एवं नगर से एक-एक सामन्तो के अतिरिक्त दो-दो प्रतिनिधि भी बुलाये गये। इस प्रकार यह प्रथम अवसर था *जब जनता के प्रतिनिधियों ने शासन सम्बन्धी विषयों में भाग लिया*, इस प्रकार क्रमशः जनता के अधिकारों में वृद्धि व राजाओं की निरंकुशता में कमी होती गई। पन्द्रहवीं सदी मे स्टुअर्ट वंश के राजाओं की निरंकुशता के विरुद्ध जनता में विद्रोह भड़कने लगा तथा जनता ने चार्ल्स प्रथम के विरुद्ध १४४२ में बगावत करदी, बाद में उसकी मृत्यु के पश्चात् क्रामवैल को शासन का संरक्षक बनाया गया था। क्रामवैल की मृत्यु के बाद पुनः जनतन्त्र समाप्त हो गया था तथा चार्ल्स द्वितीय निरंकुश शासक बन गया जिसके कार्यों से दुखी होकर १६८८ में जनता ने पुनः विद्रोह कर दिया जिसमे राजा प्राण बचाकर भाग गया, इसके बाद विलियमऔर मेरी गद्दी पर बैठी जिसने पार्लियामेंट की प्रभुता को स्वीकृत देकर जनतन्त्र का श्री गणेश किया, इसके पश्चात् इंग्लैण्ड में तीव्र गति से जनतन्त्र का विकास हुआ, बाद में फ्रांस मे रूसो के विचारों से जनतन्त्र की लहर फैल गई जिसके फलस्वरूप फ्रांस में राजतंत्र का सदा के लिये अन्त हो गया तथा जनतन्त्र की स्थापना हुई, अमेरिका में स्वतंत्रता संग्राम हुआ एवं विधान का निर्माण हुआ, इस प्रकार समस्त विश्व मे जनतंत्र शासन का प्रमुख अङ्ग बन गया।

प्रजातन्त्र शासन के भेद—राजनीति शास्त्र के विद्वानों ने जनतंत्र को दो भागों में विभक्त किया है। (१) प्रत्यक्ष जनतंत्र, (२) अप्रत्यक्ष जनतंत्र। प्रत्यक्ष जनतंत्र मे राज्य का प्रत्येक सदस्य राजसभा में एकत्रित होकर नीति निर्देशन व नियम मे प्रत्यक्ष रूप से भाग लेता है एवं शासन संचालन की

नियुक्ति सीधे जनता द्वारा होती है, प्राचीन ग्रीक नगर राज्यों मे इसी प्रकार की प्रणाली थी। आज भी स्विटजरलैण्ड के कुछ राज्यों मे यह प्रथा विद्यमान है तथा रैफरैण्डम व इनीसियेटिव प्रथा द्वारा भी जनता को प्रत्यक्ष रूप से मतदान का अवसर दिया जाता है। अप्रत्यक्ष जनतंत्र को प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन कहते हैं जिसमें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि समस्त शासन संचालन व नियमन के लिये उत्तरदाई होते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव निश्चित अवधि तक के लिये होता है ताकि जनता को बार-बार अपना मत व्यक्त करने का सुअवसर प्राप्त हो सके, विश्व के अधिकाश लोकतंत्री राज्यों मे यही प्रथा विद्यमान है।

प्रजातन्त्र शासन—प्रजातंत्र या जनतंत्र शब्द अग्रेजी में डेमोक्रेसी (Democracy) का समानार्थक है, (Demos जनता) क्रेसी (Creoy शासन) दो शब्दों से डेमोक्रेसी की उत्पत्ति हुई है। जनता द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक हितो को घ्यान मे रखते हुए जहा शासन किया जाय उसे ही जनतत्र कहते है। उसका मुख्य आधार सबको समान अधिकार प्रदान करना तथा विचारों की स्वतन्त्रता की रक्षा करना है, चूंकि किसी भी विषय मे समस्त जनता का एकमत होना सम्भव नही है इसलिये बहुमत को जनतंत्र में महत्व दिया जाता है। सही ग्रर्थो मे जनतंत्र एक समाजिक आदर्श है जिनके अनुसार सार्वजनिक समानता की रक्षा की जा सकती है। जनतंत्र मे जाति, रङ्ग, धर्म, धन आदि के आधार पर बिना भेदभाव किये सबको समान रूप से शासन मे भाग लेने व आत्मोन्नति करने का पूरा अवसर दिया जाता है, एक नैतिक आदर्श भी है जो जनसाधारण की महिमा व मनुष्य की गरिमा पर विश्वास रखता है। जैफरसन के शब्दों मे—"लोकतंत्रात्मक शासन का आधार यह विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति मे अपना शासन स्वयं करने की तथा औसत नागरिक में समाज के हित की दृष्टि से शासन करने वाले शासकों को चुनने की योग्यता होती है।"

प्रजातन्त्र के गुण--प्रजातन्त्र समानता के उच्च आदर्श पर आधारित है। शासक व शासित के मध्य भेदभावों को इसमे स्थान नही। इस सिद्धान्त के अनुसार जाति,वर्ग, धर्म, लिंग भेद से परे सब मनुष्य समान हैं इसलिये सबको समाज में समान अधिकार व सुविधायें मिलनी चाहिये ताकि अपनी योग्यतानुसार उन्नति करने का सबको समान अवसर प्राप्त हो सके। प्रजातन्त्र स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को स्वीकार करता है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति एक ईश्वर की रचना है, इसलिये व्यक्तियों मे शासक-शासित या मालिक-गुलाम का भेद अवाछनीय है, प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने तथा अपना शासन स्वयं करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये,'स्वतंत्रता समानता व बन्धुत्व' ही जनतन्त्र का प्रमुख नारा है, विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मानव विकास के लिये सबसे महत्वपूर्ण चीज है जनतन्त्र जिसका पोषक है।

प्रजातन्त्र सहमति का शासन है यहाँ पर कोई नियम किसी पर थोपा नही जा सकता, जनता स्वयं अपने प्रतिनिधियों को चुनती है जो जनता की इच्छा को सरकार तक पहुँचाने व जनता के हितो के अनुसार नियम बनाने का कार्य करते हैं, जानस्टुअर्टमिल के अनुसार 'जनतन्त्र सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली है। अन्य प्रणालियों की अपेक्षा जनतन्त्र की श्रेष्ठता मानवीय कार्य सम्बन्धी दो सामान्य सिद्धान्तों पर निर्भर है। प्रथम सिद्धान्त यह है कि व्यक्ति के हितों एवं अधिकारो की इसमें सर्वोत्तम रीति से रक्षा होती है क्योंकि वह स्वयं उसका समर्थन करने योग्य होता है। दूसरा सिद्धान्त यह है कि समाज की साधारण समृद्धि उस समय और भी अधिक होती है जबकि समस्त जनता की सम्पूर्ण शक्तिया व हित उसके समर्थन के लिए प्रोत्साहन व योगदान दें।

प्रजातन्त्र के दोष--(१) जनतन्त्र शासन में दलबन्दी सबसे भयानक बुराई है, यद्यपि अभी तक दलबन्दी सर्वत्र प्रचलित है तथा इसे अधिकांश लोग आवश्यक भी समझते हैं, पर वास्तव मे दलबन्दी से समाज में वर्ग विभाजन व स्वार्थ भावना बढ़ती है जिससे भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है। साथ

प्रत्येक दल बहुमत प्राप्त करने के लिये गलत मार्ग अपनाते हैं तथा बहुमत प्राप्त करके अल्पमत के साथ अन्याय होता है। दलबन्दी अनावश्यक पक्ष व अनुचित वाद-विवाद बढ़ाती है जिनसे जनसाधारण पर गलत प्रभाव पड़ता है।

(२) जनतन्त्र अत्यधिक खर्चीली सरकार होती है जिसमें चुनावबाजी, अत्यधिक कानून निर्माण एवं कानून निर्माण मे जनमत आदि जानने के लिए पर्याप्त खर्च करना पड़ता है, मंत्रियों के वेतन भत्ते, संसद सदस्यों के भत्ते आदि में जो रुपया खर्च होता है व अप्रजातांत्रिक सरकारों मे नहीं करना पड़ता, इस प्रकार प्रत्येक कार्य पर वाद-विवाद होने मे व्यय अधिक व काम कम होता है।

(३) लोकतंत्रात्मक प्रणाली में धनी वर्ग का प्रभुत्व अधिक बढ़ जाता है, धनी धन के प्रभाव से लोगों को फुसलाकर व दबाव डालकर अपना प्रभुत्व जमाने मे समर्थ हो जाते हैं तथा पिछड़ा वर्ग उनके सामने टिक नहीं पाता। योग्य से योग्य व्यक्ति भी धन के प्रभाव मे आगे नहीं बढ़ पाता। साथ ही धनी वर्ग आर्थिक शासक होने के नाते सरकार को भी अपने प्रभाव मे कर लेते है। जिससे धनी वर्ग अधिकाधिक धनी व निर्धन वर्ग दिनो-दिन अधिक निर्धन होता जाता है। समाचार पत्रों मे भी धनी लोगों का ही प्रचार होता है। इस प्रकार जनतन्त्र समानता व बन्धुत्व के बजाय असमानता व वर्गभेद बढ़ाता है।

(४) नैतिकता व सत्य को जनतन्त्र में कोई स्थान नहीं दिया जाता, क्योंकि यहाँ प्रत्येक निर्णय बहुमत के आधार पर किये जाते हैं। समाज में बहुमत अधिकतर अशिक्षित व पिछड़े वर्ग का होता है जिन्हें राजनैतिक लोग फुसलाकर मनमानी व बेईमानी द्वारा उदर पूर्ति करते हैं। दलबन्दी से व्यक्तिगत स्वार्थ भावना में फसकर पेशेवर राजनीतिज्ञ जनता का सही प्रतिनिधित्व न करके भ्रष्टाचार करते हैं।

(५) गुणों को स्थान न देकर संख्या को अधिक महत्व दिये जाने के कारण योग्य व्यक्ति बहुधा पीछे रह जाते है तथा अवसरवादी अनावश्यक लाभ

उठा लेते है। निर्वाचन मतदाताओं की संख्या से देखा जाता है न कि योग्यता से, फलतः बहुधा शक्ति गलत व्यक्तियों के हाथों मे पहुंच जाने का खतरा बना रहता हैं। निर्वाचन के बाद भी प्रशासक पद पर बहुमत दल के नेता ही पहुंचते हैं चाहे वे योग्य हों या मूर्ख। इसलिये जनतन्त्र को 'मूर्खो की सरकार' भी कह दिया गया है। पार्टी के व्यक्ति अपने दल के नेताओं का समर्थन करने के लिये बाध्य होते है इसलिये वे भी विवेक से काम नही ले पाते। प्रशासकों की इस कमजोरी का लाभ सरकारी कर्मचारी उठाते हैं जिससे नौकरशाही का प्रभाव बढ़ता है।

[६] यद्यपि सिद्धान्त रूप से जनतन्त्र का लक्ष्य वर्ग संघर्ष को समाप्त करना है पर वास्तव में यह वर्ग संघर्ष को प्रोत्साहन देने वाली चीज है, क्योंकि एक तो जिस दल के हाथ में शासन होता है वह दूसरे दलों के साथ सहानुभूति का व्यवहार न करके उन्हें दबोचने का प्रयास करता है जिससे विविध दलों में संघर्ष होते है, दूसरे ऊँच-नीच अधिक बढ़ जाने से भी समाज का वातावरण कलुषित होता है।

[७]लोकतन्त्र शासन मे क्षमता (कुशलता) नही होती, यहां अधिकांश समय व्यर्थ के वाद-विवाद व आलोचना उत्तरों मे व्यतीत हो जाता है वास्तविक कार्य कुछ भी नही हो पाते, 'ट्रीटस' ने कहा है 'जब राज्य शक्ति अशिक्षित व गैर जिम्मेदार लोगों के हाथों मे दे दी जाती है तो उसमें कुशलता आ ही कैसे सकती है, जैसे एक कुशल गड़रिया सैकड़ों भेड़ों को अपनी इच्छानुसार चलाता है वैसे ही लोकतन्त्र राज्य में कतिपय राजनैतिक नेता जनता को अपनी इच्छानुसार हांकने में समर्थ होते हैं।'

[८] लोकतन्त्र मे व्यवहारिक रूप से जनता शासन में हाथ नही बंटाती क्योंकि सर्वसाधारण जनता तो रोटी-रोजी कमाने में व्यस्त रहती है, उसे इतना समय नहीं मिल पाता कि वह शासन मे हाथ बंटा सके। पुनः साधारण जन राजनैतिकमामलों में अनभिज्ञ होने से वे प्रचार के प्रभाव से मत दे देने के सिवाय

सफलता के लिए सर्वप्रथम नागरिकों का सहयोग प्राप्त होना अनिवार्य है। सरकारी नियमों का पालन करना, करों को देना, घूस आदि लेने व देने वाले की सरकार को सूचना देना आदि सामाजिक उत्तरदायित्व के कार्यों में सहयोग करना प्रत्येक नागरिक का धर्म है। यह तभी सम्भव है जब उन्हें अपने अधिकार व कर्तव्यों का पूर्ण ज्ञान हो।

(३) जनता का शिक्षित होना लोकतन्त्र मे अत्यधिक आवश्यक है। बिना शिक्षा के जनतन्त्र उसी प्रकार शक्ति हीन हो जाता है जिस प्रकार रीढ की हड्डी के बिना मनुष्य। शिक्षित जनता ही अपने अधिकार व कर्तव्यों को समझ सकती है, सही गलत को पहचान सकती है तथा सरकारी कार्यों में विवेक पूर्वक सहयोग प्रदान कर सकती है।

(४) सफल जनतन्त्र के लिये जनता के मध्य एकता की भावना होनी चाहिए। विशृंखल समाज में सहयोग व बन्धुत्व नही पनप सकता। अतः साम्प्रदायिकता, भेद-भाव जैसी विषमतायें जनतन्त्र की नीव को खोद देती हैं। नागरिकों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समानता होनी चाहिए तभी एकता व सहयोग की भावना पैदा हो सकती है। ऊँच-नीच का भेद-भाव रहते हुए निश्चित रूप से शक्ति वर्ग विशेष के हाथों में केन्द्रित हो जाती है जो एकता के बजाय वर्ग संघर्ष को जन्म देती है।

(५) उक्त बातों के अलावा जनतन्त्र की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। विचार स्वतंत्रता के बिना जनतन्त्र एक ढकोसला मात्र रह जाता है। लोकमत की सही अभिव्यक्ति के लिए विचार व भाषण स्वतन्त्रता अति आवश्यक है तथा शासक वर्ग की निरंकुशता पर आलोचना ही एकमात्र अंकुश है।

उपसंहार—जनतन्त्र के विविधि पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि राज्य प्रशासन की विविध प्रणालियों

में जनतन्त्र ही सर्वोत्कृष्ट प्रणाली है। क्योकि जिन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए राज्य संस्था का निर्माण हुआ है उनकी पूर्ति की गारन्टी केवल जनतन्त्र में ही मिल सकती है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता, इच्छा व अधिकारो की माग करने का पूरा अवसर मिलता है, साथ ही अधिकार ठुकराये जाने पर सरकार को बदल देने की शक्ति भी जनता मे निहित रहती है जिससे कोई भी शासक निरंकुशता का मार्ग नही अपना सकता। राज्य में सबको समान अधिकार व समान अवसर मिलने से लोग व्यक्तिगत व सामूहिक उन्नति कर सकते हैं। कोई भी कार्य जनता की इच्छा के बिना सरकार नही कर सकती, अतः शासक वर्ग को जनता का बराबर ध्यान रखना ही पड़ता है। जनतन्त्र में जब जनता को राज्य के कार्यों में हाथ बंटाने का अधिकार मिल जाता है तो नागरिगता की भावना बढती है तथा लोगों की मानसिक शक्तियो का पूर्ण विकास होता है। जनतन्त्र का मूल आधार सब का हित है, जितने अधिक लोगो का हित हो सके उतना ही जनतन्त्र सफल माना जाता है, इस लिये स्वार्थ भावना शनैः शनैः क्षीण होती जाती है।

इस प्रणाली में जो दोष बताये गये हैं वे निहित दोष नही सामाजिक कमजोरियो के कारण पैदा हो जाते हैं, जिन्हे दूर किया जा सकता है। इस प्रकार दोनों पक्षो से विचार करने पर दृढ़तापूर्वक यह कहा जा सकता है कि जनतन्त्र से अधिक उत्तम शासन प्रणाली और कोई भी नही हो सकती। यही कारण है कि आज के युग में जनतन्त्र का प्रभाव सभ्यता के साथ-साथ बढ़ता जा रहा है।

(२) राष्ट्रवाद (Nationalism)

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् वाणिज्य के लिए ज्यों-ज्यों आवागमन के साधनों का विकास हुआ त्यों-त्यो साम्राज्यवाद बढने लगा और छोटे राज्यों की सुरक्षा को खतरा होने लगा। इस असुरक्षा की भावना से बचने के लिए

संगठित राष्ट्रवाद की भावना ने जोर पकड़ा जिसने शनैः-शनैः विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लिया। वर्तमान विश्व राजनीति व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के संचालन में राष्ट्रवाद का सबसे महत्वपूर्ण योग है।

राष्ट्रीयता का मनोवैज्ञानिक आधार कुटुम्ब है। आदिकाल में मानव कुटुम्ब के रूप मे सर्वप्रथम संगठित हुआ। इसके पश्चात् कबीला, ग्राम से बढ़ते हुए नगर राज्यों का जन्म हुआ। प्राचीन यूनान मे नगर राज्यों का बोलबाला था, पर बाद में रोमन साम्राज्य के बढ़ते हुए प्रभाव ने इन नगर राज्यों की संकुचित भावना को नष्ट कर दिया, मध्यकाल में नैतिक व धार्मिक विचारों का अधिक जोर था जिन्होंने राष्ट्रीयता की अपेक्षा मानवता या विश्व संगठन की व्यापक कल्पना की फलतः राष्ट्रवाद उस युग में नहीं पनप सका। बाद में इटली मे मैकाइवली के पश्चात् पुनर्जागृति के युग मे औद्योगिक, धार्मिक, नैतिक व्यापारिक क्षेत्र में नवीनता आने के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से विकास हुआ। इंग्लैण्ड के बेंसर, इटली के दांते तथा फ्रान्स में जान ग्राफ आर्क के राष्ट्रीय विचारों का समाज में भारी प्रभाव पड़ा। मैकाइवली ने इटली को संगठित शक्तिशाली राष्ट्र बनाने की प्रेरणा दी तथा जर्मनी में लूथर ने पोप के विरुद्ध क्रान्ति कर स्वतन्त्र प्रभुसम्पन्न राष्ट्र निर्माण में योग दिया। फ्रांस की राज्य क्रांति के पश्चात् राष्ट्रीयता सर्वव्यापी हो गई जिससे जनतन्त्र, मातृभूमि के प्रति प्रेम, एकता की भावनायें जनमानस में भड़क उठी। नैपोलियन के उत्कर्ष के पश्चात् धुआँधार युद्धों के कारण जब विघटित राज्यों की स्वतन्त्रता को खतरा होने लगा तब जर्मनी का बिस्मार्क और मैजिनी ने और इटली का कैवर तथा गैरीबाल्डी ने एकीकरण कर संगठित एवं शक्तिशाली राष्ट्रों का निर्माण किया। हीगल ने राज्य के दैविक सिद्धान्त का निरूपण कर व्यक्ति को कठोर राष्ट्रीय संगठन में संबन्ध होने का आदर्श उपस्थित कर राष्ट्रीयता को भावना को चरम सीमा तक पहुँचा दिया।

राष्ट्र, राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद—राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता एक ही शब्द के दो रूप हैं फिर भी इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। एक प्रकार भाषा,

संस्कृति, इतिहास, रहन-सहन व भौगोलिक परिस्थिति वाला एक भूखण्ड राष्ट्र है तथा उसमें रहने वाले लोगों की एकता की भावना राष्ट्रीयता कहलाती है।

राष्ट्रीयता के दो रूप हैं—प्रथम बाह्य अथवा भौतिक, द्वितीय आन्तरिक या आत्मिक। बाह्य सिद्धान्त के अनुसार एक ही प्राकृतिक अवस्था, धर्म, भाषा, जाति, परम्परा, इतिहास व सांस्कृतिक एकता वाला जनसमूह जब एक संगठन में आबद्ध होता है तब वह एक राष्ट्र कहलाता है। ब्राइस के शब्दों में "राष्ट्रीयता एक जनसमूह की वह भावना है जो सबको कुछ सामान्य बन्धनों द्वारा एकता के सूत्र में आबद्ध करती है।" राष्ट्रीयता का आन्तरिक सिद्धान्त राष्ट्रीयता को विशेष जनसमूह की आन्तरिक प्रवृत्ति मानता है। अतः यह आध्यात्मिक एकता सामूहिक हित की बलवती एक भावना है। ब्लुंटश्ली के अनुसार 'यह जन-समूह का एक ऐसा योग है जो विभिन्न व्यवसायों में लगे तथा समाज के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हुए भी समान भाषा, खून, इतिहास, संस्कृति एवं समान आदर्शों की रक्षा के लिये एकत्रित व संगठित हों।' राष्ट्रीयता में बाह्य एवं आन्तरिक दोनों तत्वों की समानता है। एक पर दूसरे के अस्तित्व निर्भर हैं, क्योंकि बाह्य उपकरणों से ही आन्तरिक भावना प्रस्फुटित होती है।

राष्ट्र तथा राज्य—राष्ट्र का पर्यायवाची शब्द नेशन (Nation) की व्युत्पत्ति प्राचीन लैटिन शब्द नेशियो (Natio) से हुई है जिसका अर्थ जन्म अथवा प्रजाति होता है। कुछ लोगों ने राष्ट्र व राज्य को समानार्थक माना है, परन्तु वास्तव में ये दोनों भिन्न हैं। राज्य विशेष जनसमूह के ऊपर शासन करने वाली प्रभुत्व सम्पन्न संस्था है जो राष्ट्रीय हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती। स्वतन्त्रता के पूर्व भारत एक राष्ट्र होते हुए भी राज्य नहीं था। प्रो० बर्गिस ने राष्ट्र की परिभाषा देते हुए कहा है कि "यह सांस्कृतिक अथवा आध्यात्मिक एकता से सम्बद्ध एक ऐसा जनसमूह है जो एक भूमि पर निवास करता हो तथा वहां की भौगोलिक स्थिति एकता की सूचक हो।" जिर्मन ने राज्य व राष्ट्र का भेद स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "राष्ट्रीयता धर्म की नाई आध्यात्मिक है और राज्य भौतिक, राष्ट्रीयता मनोवैज्ञानिक है, राज्य राजनैतिक,

राष्ट्रीयता मनोभाव है राज्य कानूनी राष्ट्रीयता अधिकार है जबकि राज्य कर्तव्य जिसकी आज्ञा का पालन करना अनिवार्य होता है। राष्ट्रीयता जीवन का मार्ग है और राज्य एक ऐसी अवस्था है जिसे सभ्य जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता।"

कुछ विचारकों का मत है कि राष्ट्रीयता व राष्ट्र में केवल राजनैतिक संगठन का ही भेद है पर वास्तव मे यह तर्क अपूर्ण है, लार्ड ब्राइस के शब्दों मे "राष्ट्र ऐसी राष्ट्रीयता है जिसने स्वयं को राजनैतिक संगठन के रूप मे संगठित किया हो और जो या तो स्वतन्त्र है अथवा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील है।"

राष्ट्रवाद की व्याख्या—राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद एक ऐसा मनोभाव है जिसको निश्चित् शब्दों मे अभी तक परिभाषित नहीं किया जा सका है। हेज ने लिखा है —"यह राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय राज्य तथा राष्ट्रीय देशप्रेम का अद्भुत सम्मिश्रण है।" यह एक राजनैतिक, आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक भावना है जो किसी समाज में मनुष्यों के पारस्परिक सहयोग द्वारा अपने विभिन्न अधिकारों एवं स्वतन्त्रता की रक्षा करने की प्रेरणा देती है, जिसके द्वारा परतन्त्र राष्ट्रों को स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन की तथा स्वतन्त्र राष्ट्रों को स्वतन्त्रता की रक्षा एवं राष्ट्रीय गौरव बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है। वास्तव में राष्ट्रीयता देशभक्ति के विचारों की पराकाष्ठा है।

विशेषताएँ (१) राष्ट्रीयता इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है कि एक राष्ट्र में एक ही सुसंगठित राज्य हो ताकि आन्तरिक विद्रोह व बाह्य युद्धों से राष्ट्र की रक्षा की जा सके। विभिन्न राष्ट्रीयता वाले देशों में न तो संगठित जनमत का विकास हो सकता है और न प्रजातन्त्र शासन का ही।

(२) राष्ट्रवाद जनतन्त्र तथा मानवीय मौलिक अधिकारों का संरक्षक भी हो सकता है जो क्रान्तिकारी परिवर्तनों पर विश्वास रखता है। बहुत सीमा तक राष्ट्रीयता प्रजातन्त्र स्थापना मे सहायक होती है। भारतीय राष्ट्रीय भावना

ही भारत मे स्वतन्त्रता आन्दोलन, स्वतन्त्रता तथा देश मे जनतन्त्र की स्थापना के लिये उत्तरदायी है। यही भावना देश को भावी उन्नति मे भी सहायक हो सकती है।

(३) राष्ट्रीयता दो प्रकार से प्रगट हो सकती है—प्रथम उच्च राष्ट्रीयता जो नैतिक उच्च भावनाओ पर आश्रित है तथा यह जनता मे स्वतन्त्रता, समानता, सहनशीलता तथा त्याग भावना की द्योतक होती है। दूसरी सकुचित राष्ट्रीयता जो निरकुशता साम्राज्यवाद व शोषण को प्रेरणा देती है। प्रथम प्रकार की राष्ट्रीयता के उदाहरण विश्व के वे स्वतन्त्र राष्ट्र हैं जो सगठित रूप मे निजी प्रगति व शान्ति मे तल्लीन हैं। दूसरे प्रकार की राष्ट्रीयता के उदाहरण जर्मनी का नाजीवाद आदि हैं।

(४) राष्ट्रीयता एक रचनात्मक व्यवहारिक आदर्श है जो किसी राष्ट्र की जनता को निजी शासन पद्धति निर्धारित करने व सामूहिक रूप से उन्नति की प्रेरणा दे सकती है। उसमे प्रत्येक राष्ट्र का निजी उन्नति व स्वतन्त्रता की रक्षा करने का पूरा अधिकार स्वीकार किया जाता है।

(५) राष्ट्रीयता का वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे भारी महत्व है। राष्ट्रीयता की भावना ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो व विभिन्न राष्ट्रो की स्वतन्त्रता की रक्षा की प्रेरक भावना है। सयुक्त राष्ट्र सघ इसी भावना का परिणाम कहा जा सकता है। यह नागरिको के अन्तस्तल में राष्ट्रप्रेम, देश के प्रति त्याग भ्रातृभाव व श्रद्धा जागृत करता है जिससे व्यक्ति राष्ट्र की प्रगति व हित के लिये आत्म-बलिदान भी स्वीकार कर लेता है। "सच्चा राष्ट्रवादी व्यक्ति अपने पितामह (राष्ट्र) के लिये अपने धर्म, दर्शन, राजनीति सबको परिवर्तित कर सकता है।"

राष्ट्रवाद की देन—प्रारम्भ में राष्ट्रीयता का जन्म उच्च विचारधारा को लेकर हुआ था जिसने मानवीय स्वतन्त्रता व राष्ट्रीय एकता को जन्म

देकर निरंकुशता के प्रति विद्रोह किया। फलतः विश्व में प्रजातन्त्र राज्यों की स्थापना हुई। सांस्कृतिक क्षेत्र में राष्ट्रीयता ने अत्यन्त लाभकारी प्रगति की तथा इस भावना के अभ्युदय के पश्चात् विविध देशों में भारी प्रगति भी हुई। स्वार्थ भावना में कमी व देश के प्रति त्याग की भावना का मूल आधार राष्ट्रीयता ही है। दृढ़ संगठित राष्ट्रों के निर्माण व एकता में राष्ट्रीयता अत्यधिक सहायक होती है। अतः विश्व सभ्यता के योग मे राष्ट्रवाद ने महान योग दिया। विश्व में वेही राष्ट्र अधिक उन्नत व समृद्ध हुए हैं जिनमे राष्ट्रीयभावना तीव्रतर थी। यदि राष्ट्रीयता की पवित्र भावना को सुरक्षित रखा जाय तो वह मानव जाति की भावी प्रगति मे अत्यधिक सहायक हो सकती है। अतः सही रूप में राष्ट्रवाद अति उत्तम नैतिक एवं आदर्श विचार है जिसका वर्तमान सभ्यता के विकास मे महान योग है।

राष्ट्रवाद के दोष—उपरोक्त गुणों के होने हुए भी राष्ट्रवाद में कई दोष भी हैं—(१) बहुधा राष्ट्रवाद का प्रयोग राष्ट्रीय स्वार्थपूर्ति तथा अन्य राष्ट्रों के शोषण के उद्देश्य से किया जा सकता है जिसमे पृथकवादी प्रवृत्ति जाग्रत होती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसे "मानव समुदाय का स्वार्थी संगठन बताया है।" उनका कथन है कि "राष्ट्रवादी अपने राष्ट्रीय गुणगान करने, अपने देश की एकता एवं दृढ़ता की रक्षा करने और अन्य राष्ट्रों को घृणा की दृष्टि से देखने की ओर उत्साहित रहते हैं।"

(२) राष्ट्रवाद जब उग्र रूप धारण कर लेता है तब 'इगोइज्म' बढ़ता है जो सैनिकवाद, अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य का कारण बनता है जिसका प्रतिफल युद्ध और विनाश होता है। इससे मानवता और विश्वबन्धुत्व की पवित्र भावनाओं का ह्रास होता है।

(३) जब राष्ट्रीयता संकीर्ण भावना लेकर उमड़ती है तब राज्य छिन्न-भिन्न हो जाते हैं तथा उनकी आन्तरिक शक्ति क्षीण हो जाती है। विविधता

मे एकता की स्थापना ही समृद्ध राष्ट्र का चिन्ह है जो कि इसमे सम्भव नही हो पाती।

(४) आधुनिक साम्राज्यवाद व भेदभाव इसी उग्र राष्ट्रीयता का प्रतिफल है जिसने विश्व को अशान्तिमय बना रख छोडा है। समस्त भय, विद्रोह घृणा के मूल मे इसी साम्राज्यवाद के बीज पनप रहे हैं जो मानव जाति के लिये स्थाई रूप से हानिकारक है। साथ ही उग्र राष्ट्रीयता में जब बहुमत का प्रभाव बढ जाता है तब अल्पमत या शक्तिहीन वर्ग का बुरी तरह शोषण होता है जो विद्रोह या क्रांति का कारण बनता है।

(५) आर्थिक क्षेत्र मे राष्ट्रवाद उत्पत्ति के साधनों पर एकाधिकार व अनियन्त्रित व्यापार द्वारा निर्बल राष्ट्रो को प्रगति से रोक देता है। इस प्रकार वातावरण भयावह बनता है तथा विकास का मार्ग अवरुद्ध होता है। व्यवसाय व वाणिज्य मे एकाधिकार होने से मुद्रास्फीति या मुद्रा सकुचन जैसी आर्थिक आपत्तियाँ आने का भी भय बना रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति विनाश की ओर अधिक प्रवृत्त हो रही है। यदि विश्वशांति व मानव जाति का कल्याण करना हो तो निश्चित ही राष्ट्रीयता के सकुचित दृष्टिकोण को त्याग देना होगा, शोषण और साम्राज्यवाद को खत्म करना होगा तथा मानवता के आदर्श पर पारस्परिक सहयोग की भावना को प्रोत्साहन देना पडेगा।

[३] साम्राज्यवाद

साम्राज्यवाद—आधुनिक विश्व राजनीति को हिला देने वाली प्रवृत्तियो म साम्राज्यवाद सबसे भयानक प्रवृत्ति है। ऐतिहासिक दृष्टि से साम्राज्यवाद का जन्म काफी समय पूर्व हो चुका था, प्राचीन भारत मे आर्य साम्राज्य, यूरोप मे रोमन साम्राज्य तथा चीन, मिस्र, मेसापोटामियाँ आदि मे भी साम्रा-

ज्यों की स्थापना हो चुकी है। परन्तु प्राचीन साम्राज्य केवल राज्य सीमाओं को बढ़ाने के लिए बने थे पर आधुनिक साम्राज्यों की प्रवृत्ति भिन्न है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् जब उत्पादन में वृद्धि होने लगी तो व्यापार विस्तार द्वारा आर्थिक लाभ की दृष्टि से आधुनिक साम्राज्यों का श्री गणेश हुआ जो आज समृद्ध राष्ट्रों के मध्य सत्ता व व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करने के लिये संघर्ष का कारण बना हुआ है।

विविध विद्वानों ने साम्राज्यवाद को भिन्न-भिन्न रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है। प्रो० मूर्डन ने कहा है कि 'यह पाश्चात्य राष्ट्रीय राज्यों द्वारा संसार की अश्वेत जातियों पर सैन्य बल द्वारा अपनी शक्ति का आरोपण है'। सी० डी० बर्न्स का कथन है कि 'भिन्न-भिन्न प्रदेशों तथा जातियों पर एक ही प्रकार की शासन प्रणाली और संविधान लागू करना ही साम्राज्यवाद है।' वास्तव में यह परिभाषा त्रुटिपूर्ण है क्योंकि जब एक राज्य दूसरे को जीत कर आधीन कर लेता है तब यह विजित राष्ट्र के नागरिकों के साथ दासों का सा व्यवहार करता है। इसलिए प्रो० हॉकिंग ने उसे 'निष्ठुरता का आधार स्तम्भ' कहा। साम्राज्यवाद एक ऐसी नीति है जिसका उद्देश्य एक ऐसे साम्राज्य की रचना व्यवस्था व प्रतिष्ठा करना है जिसमें अनेक और न्यूनाधिक पृथक राष्ट्रीय इकाईयाँ सम्मिलित रहती हैं और जो एक केन्द्रीय इच्छा के अधीन रहता है।

साम्राज्यवाद के विस्तार के कारण—आधुनिक युग में साम्राज्यवाद का विकास विविध कारणों से हुआ। प्रथम उग्रराष्ट्रवाद—उग्रराष्ट्रवाद ने साम्राज्यवाद के विस्तार में सबसे महत्वपूर्ण योग दिया राष्ट्रवाद ने जातीय श्रेष्ठता व अन्य राष्ट्रों पर अपनी प्रभुता कायम करने की भावना से बहुधा शक्तिशाली राष्ट्र कमजोर राष्ट्रों को गुलाम बनाने के लिए प्रवृत्त होते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कट्टर समर्थक रोड्ज का कथन है कि मेरा यह दावा है कि विश्व में हमारी जाति सबसे प्रथम है, अतः संसार के जितने विस्तृत

भा। पर हमारा शासन हो उतना ही मानव जाति के हितो में होगा।' वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्यवादियो का यह दावा है कि ईश्वर ने उन्हें विश्व को सभ्य बनाने का उत्तरदायित्व सौंप रखा है। पैरीने का कथन था कि 'क्या कोई इस तथ्य को अस्वीकार कर सकता है' 'कि अफ्रीका की पिछड़ी जाति अंग्रेज व फ्रांसीसियों का संरक्षण पाने के लिए सौभाग्यशाली है ?' अर्थात नही। डा० शांतिस्वरूप वर्मा के शब्दो मे 'राष्ट्रीयता की भावना ने प्रत्येक देश की जनता के मन मे अपने देश को अन्य देशों की तुलना में सशक्त और प्रभावशाली बनाने की तीव्र लालसा ने साम्राज्यवाद को जन्म दिया जिसके फलस्वरुप यूरोप के प्रगतिशील राष्ट्रों ने संसार को दूर-दूर के देशों मे जाकर झण्डे फहराये।'

द्वितीय महत्वपूर्ण कारण के रूप मे आर्थिक दशा ने साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन दिया, विदेशो के साथ व्यापार द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ करने की भावना से प्रेरित होकर भी अधिकांश राष्ट्र साम्राज्यवाद की ओर अग्रसर हुए। 'प्रारम्भ मे यूरोप मे सोने चाँदी की कमी थी। व्यापारिक विकास होने से यह अभाव और भी अधिक खटकने लगा तथा शाही शान-शौकत बढ़ाने के लिए भी सोने चाँदी की आवश्यकता महसूस होने लगी। अतः सोने चाँदी की खोज मे यूरोपीय दूर-दूर तक गये। इसके अलावा यूरोप का औद्योगिक विकास हो रहा था जिसके लिए पर्याप्त मात्रा मे कच्चे माल की आवश्यकता थी जो उन्हे कृषि प्रधान देशो मे ही प्रचुर मात्रा मे मिल सकती थी।' फलतः वे व्यापारिक व आर्थिक कारणो से साम्राज्य स्थापना की ओर अग्रसर हुए। अफ्रो-एशियाई साम्राज्यो का निर्माण इसी आधार पर हुआ जहा से सस्ते दामो में कच्चा माल प्राप्त कर तथा पक्का माल बेचकर वे अपनी उन्नति करने में समर्थ हुए।

जनसंख्या मे तीव्रगति मे वृद्धि हो जाने से जब आजीविका के साधनों की कमी होने लगी तो लोगो ने दूसरे देशो मे बसने के लिए साम्राज्य विस्तार आरम्भ कर दिया। प्रारम्भ मे अमेरिका, आस्ट्रेलिया के साम्राज्य इसी उद्देश्य

से बनाये गये थे। स्वयं दूसरे देशों में बस कर यूरोपीय लोगों ने वहाँ के आदि वासियों को गुलाम बना दिया।

भौगोलिक परिस्थितियों, सामरिक महत्व एवं सुरक्षा के लिए भी कई साम्राज्यों का निर्माण हुआ है। ब्रिटेन जैसे देश ने अपनी सुरक्षा के लिए जहाजों का विकास तथा बन्दरगाहों व बड़ी नहरों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक समझा। इसलिये जिब्राल्टर, स्वेज, पनामा आदि क्षेत्रों पर अधिकार स्थापित किये गये।

औद्योगिक उन्नति के साथ व्यापार की होड में एक दूसरे को दबाने के लिए व अपने स्थायी बाजार स्थापित करने की दृष्टि से भी साम्राज्यों की स्थापना की गई तथा उपनिवेशों का उद्‌भव हुआ। साथ ही आर्थिक दृष्टि से उन्नत हो जाने के पश्चात् अधिक धन एकत्रित करने के लालच से उद्योगपतियों ने पिछड़े देशों में पूंजी लगाकर व्यवसाय बढाने की चेष्टा की जो बाद में साम्राज्य स्थापना का कारण बन गया। डा० वर्मा के शब्दों में 'पिछड़े हुए देशों में जहाँ पूंजी की बड़ी कमी एवं आवश्यकता थी पूंजी लगाने से कई गुना अधिक लाभ मिलने की आशा थी। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम व बीसवी सदी के प्रारम्भिक वर्षों में यूरोप के लोगों ने अरबों रुपया बाहर के देशों में लगाया। अपनी पूंजी इन देशों में लगाने का अर्थ धीरे-धीरे इनकी राजनीति पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक प्रतीत होने लगा और इस प्रकार यूरोप में पूंजीवाद के विकास के साथ एशिया एवं अफ्रीका के बड़े भूभाग पर साम्राज्यवाद की स्थापना हुई।

उक्त अवस्थाओं के अनुसार उन्नीसवीं सदी में लोगों की धारणा भी यह बन गई कि साम्राज्यवाद विश्व हित व सभ्यता के विकास के लिए अनिवार्य है। साम्राज्य को लोग शक्ति विकास का साधन व फल भी समझने लगे। इंग्लैण्ड में डिजरायली, फ्रांस में जूल्स फेरी तथा जर्मनी में बिस्मार्क ने इसी भावना का प्रसार किया।

साम्राज्यवाद का विकास—साम्राज्यवाद का विकास विभिन्न युगो में भिन्न भिन्न कारणो से हुआ। प्रारम्भिक काल से मध्यकाल तक जो साम्राज्य बने व बिगडे वे लुटेरी प्रवृत्ति के फल थे। समृद्ध राष्ट्र कमजोर राज्यो पर आक्रमण, धन लूटने के लालच से किया करते थे। इनमे कई शासक तो विजय प्राप्त कर एक बार मे धन लूटकर सन्तुष्ट हो जाते थे तो कई शासको ने कमजोर राज्यों पर स्थाई प्रभुत्व स्थापित कर क्रमश कर लेकर उसे लाभ का साधन बनाया। बहुत कुछ सीमा तक राष्ट्रीय उच्चता व प्रभुता कायम करना भी तत्काली साम्राज्यो का कारण था। रोमन साम्राज्य उच्चता व प्रभुता की महत्वकाक्षा का ही प्रतिफल था।

आधुनिक साम्राज्य का जन्म १६ वी सदी से माना जा सकता है। प्रारम्भ मे कोलम्बस और वास्कोडीगामा जैसे साहसी नाविको ने सुदूर देशो का पता लगाया तथा वहाँ के शासको ने नव अन्वेषित राज्यो मे उपनिवेश बसाना प्रारम्भ किया। पुर्तगाल व स्पेन इस क्षेत्र के अग्रगामी थे। डा० वर्मा के शब्दो मे 'यह एक आश्चर्य की बात है कि साम्राज्य निर्माण की दिशा मे पहले कदम इटली व जर्मनी के उन राज्यो द्वारा नही उठाये गये जो पन्द्रहवी व सोलहवी सदी में बडे व्यापारिक केन्द्र थे बल्कि पुर्तगाल, स्पन आदि व्यापारिक दृष्टि से पिछडे एव कृषि प्रधान देशो द्वारा उठाए गए।' सत्रहवी सदी से ब्रिटेन व फ्रास भी साम्राज्यवाद की ओर बढ गये। इनमे ब्रिटेन का साम्राज्य सबसे अधिक बढा तथा विविध यूरोपीय देश साम्राज्यवाद की होड मे ब्रिटेन के सम्मुख पीछे रह गये। इग्लैण्ड के डिजरायली, फ्रास के जूल्स फेरी तथा जर्मनी के बिस्मार्क ने साम्राज्य विस्तार के अत्यधिक प्रयास किये तथा अमेरिका, अफ्रीका व एशिया मे वृहद् उपनिवेश स्थापित किये। यह उपनिवेशवादी प्रवृत्ति द्वितीय विश्व युद्ध तक चलती रही।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् साम्राज्यवाद की नीव खोखली पड गई तथा विविध देश क्रमश स्वतत्र होने लगे। एशिया मे भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लंका, हिंदचीन, मलाया आदि राष्ट्र स्वतन्त्र हो गये हैं। अफ्रीका में भी

साम्राज्य का अन्त तीव्र गति से हो रहा है। मोरक्को, घाना, मिस्र आदि राज्य स्वतंत्र हो गये हैं। जिन देशों मे अभी साम्राज्य कायम है वहाँ पर भी स्वतंत्रता आन्दोलन तेजी से हैं और साम्राज्यवाद विरोधी प्रवृत्ति तीव्र गति से बढ़ रही है।

यद्यपि साम्राज्यवाद अब अपनी अन्तिम सांसें ले रहा है परन्तु वर्तमान समय में साम्राज्यवाद एक नवीन रूप धारण कर चुका है। अमेरिका व रूस के शक्तिशाली राष्ट्र प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से गुटबन्दी करके विश्व में अपनी प्रभुता स्थापित करने में लगे हुए हैं। इनकी नीति प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष है। साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव से भयभीत अमेरिका उसे नियन्त्रण करने के लिये विविध देशों के साथ सैनिक गुटबन्दी करने में व्यस्त है। छोटे देशों को सैनिक व आर्थिक सहायता देकर अथवा इन देशों मे अपने सैनिक अड्डे स्थापित करके अमेरिका उनकी वैदेशिक व अप्रत्यक्ष रूप से आन्तरिक नीति को भी नियमित कर रहा है। इस प्रकार वर्तमान साम्राज्यवाद विश्व में शीत युद्ध का अखाड़ा बन गया है जो मानव जाति की स्थाई शान्ति व सुरक्षा के लिये हानिकारक है।

साम्राज्यवाद के दोष— यों तो साम्राज्यवाद किसी भी युग में हानिकारक ही है क्योंकि इसकी नींव ऊँच-नीच व भेदभाव में बनी है, परन्तु वर्तमान प्रगतिशील युग में यह अति भयंकर रूप धारण कर चुका है। यह कथन सर्वथा असत्य है कि साम्राज्यवाद से पिछड़े क्षेत्रों की प्रगति होती है बल्कि उन्नत राष्ट्र निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिये साम्राज्य स्थापित करते हैं। उपनिवेश बन जाने या विदेशियों का प्रभुत्व बढ़ जाने से किसी भी सांस्कृतिक, आर्थिक व अन्य प्रगतियों का मार्ग सर्वथा अवरुद्ध हो जाता है। लोगों की विचारशक्ति व चरित्र भ्रष्ट हो जाता है तथा दासता की हीन भावना प्रवेश कर जाती है।

साम्राज्यवाद युद्धों को जन्म देता है। प्रारम्भ में पिछड़े देशों को गुलाम बनाकर शक्ति बढ़ाने की भावना रहती है, बाद में शक्ति बढ़ जाने पर एक साम्राज्य दूसरे साम्राज्य से युद्ध करता है जिसके भयंकर परिणाम होते हैं।

गत दो विश्व युद्ध इसी के परिणाम थे। यह युद्धवाद अन्तर्राष्ट्रीय एकता व शांति मे सबसे अधिक बाधक है।

यह केवल विजित राष्ट्रो के लिये ही हानिकारक नही बल्कि विजेता राष्ट्रो के लिये भी घातक है। विजेता राष्ट्रो का नैतिक पतन हो जाता है जिससे उनकी भी प्रगति का क्रम रुक जाता है, इसलिए किसी भी दृष्टिकोण से साम्राज्यवाद का औचित्य सिद्ध नही किया जा सकता।

[४] समाजवाद

विषय प्रवेश—समाजवाद शब्द राजनैतिक जीवन मे सबसे जटिल एवं विवादग्रस्त है। प्रारम्भ से आज तक विविध विचारक समाजवाद शब्द की व्याख्या करते रहे हैं फिर भी अभी तक इसकी कोई निश्चित परिभाषा सर्वमान्य नही हो पाई। देश-कालगत् विशेषताओं एवं समस्याओं के अनुसार विचारकों ने समाजवाद की व्याख्या करने का प्रयास किया, परन्तु जीवन-दर्शन के व्यापक पहलू से समाजवाद-शब्द का सम्बन्ध होने के कारण इसे निश्चित परिभाषा मे बाधना अभी तक सम्भव नही हो सका है। हेर बेबल के शब्दो मे "समाजवाद विश्वव्यापी दर्शन है जो धार्मिक क्षेत्र मे नास्तिकता, राज्य क्षेत्र में गणतन्त्रात्मककता, औद्योगिक क्षेत्र मे सर्वप्रिय समष्टिवाद, नैतिक क्षेत्र मे आशा-वाद, दर्शन क्षेत्र मे प्रकृतिवादी वस्तुवाद एव पारिवारिक क्षेत्र मे परिवार एवं वैवाहिक बन्धनो के पूर्ण अन्त का द्योतक है।' प्रसिद्ध राजनैतिक विचारक रेमजेम्योर के कथनानुसार 'यह एक गिरगिट के समान है जो परिस्थिति के अनुकूल रङ्ग बदलता है।'प्रो० जोड ने कहा है–'समाजवाद एक ऐसा टोप है जिसकी शक्ल बहुत खराब हो गई है क्योकि हर एक व्यक्ति इसे पहनता है।" वास्तव मे विविध देश-काल की भिन्न-भिन्न समस्याओं के अनुसार परिभाषाओ मे जो विविधता पाई जाती है उसके आधार पर किसी भी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच ना असम्भव हो गया है। "समाजवाद एक शेषनाग की भाति अनेक शीष रखता है जिनमे से एक को काटने पर दूसरा उसका स्थान ग्रहण कर लेता है।" डा० सच्चवेल ने

सही कहा है "समाजवाद अत्यधिक गूढ, बहुमुखी एवं सन्देहास्पद शब्द है जिसने हमेशा मानव मस्तिष्क को अस्थिर बनाये रखा" (Socialism is the most complicated, many sided and confused question that was plagued the minds of man.)

जैसा ऊपर कहा गया है कि समाजवाद विश्वव्यापी मानव दर्शन है। इसका मूल उद्देश्य मानव जाति का अधिकाधिक हित करना है। मानव जाति अथवा मानव समाज से सम्बन्धित होने के कारण समाजवाद व्यक्ति, वर्ग एवं स्थानगत् स्वार्थों के परे मनुष्य मात्र के विस्तृत हितों का द्योतक विचार है जो भेद-भाव, पूंजीवाद एवं सामाजिक प्रतियोगिता के विरुद्ध है। चूंकि धन को जीवन का सबसे महत्वपूर्ण नियामक तत्व माना गया है इसलिये समाजवाद आर्थिक विषमता का प्रत्यक्ष विरोधी विचार है। राजनैतिक क्षेत्र मे प्रवेश कर यह विचार आर्थिक असमानता व शोषण के विरुद्ध समस्त आर्थिक गतिविधियों व उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर समान वितरण व्यवस्था द्वारा सार्वजनिक हित व कल्याण की कल्पना करता है। विसारिया के शब्दों मे "वास्तव में समाजवाद प्रजातन्त्र का मार्ग है जो हमें राजनैतिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार की स्वतन्त्रता देना चाहता है, क्योंकि आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता बिलकुल निरर्थक है।" नैतिक दृष्टिकोण से यह असमानता एवं मजदूर वर्ग के शोषण के विरुद्ध एक आवाज है जो आर्थिक समानता द्वारा राजनैतिक स्वतन्त्रता एवं उत्पत्ति के साधनों पर राष्ट्रीयकरण द्वारा सामाजिक नियन्त्रण रखना चाहता है ताकि व्यक्ति अपनी भौतिक चिन्ताओं से मुक्त होकर उन्नतिशील सामाजिक जीवन व्यतीत कर सके। राबर्ट के शब्दों में— 'समाजवाद के कार्यक्रम की मांग है कि सम्पत्ति तथा उत्पादन के अन्य साधन जनता की सम्पत्ति हो और इसका प्रयोग भी जनता द्वारा जनता के लिए ही किया जावे।" स्पष्ट है कि वर्तमान समाजवादी विचार आर्थिक समानता पर सबसे अधिक जोर देता है, जिसे वह मानव कल्याण की आधारभूमि मानता है, जैसा कि रैमजे मैकडानल्ड ने कहा है—"सामान्य रूप से समाजवाद की इससे

अच्छी परिभाषा नहीं है कि इसका उद्देश्य समाज की भौतिक तथा आर्थिक तत्वों का संगठन करता मानवीय शक्ति द्वारा इनका नियन्त्रण करना है।"

समाजवादो की प्रमुख विशेषतायें—[१] जैसा कि समाजवाद शब्द से स्पष्ट होता है। यह व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्व देता है। समाजवादी सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति समाज का एक अङ्ग है अतः समाज की प्रगति में ही व्यक्ति की भी उन्नति है। अतः सामाजिक लाभ के लिए व्यक्ति को सर्वस्व बलिदान कर देना चाहिए। व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक सहयोग व समानता ही सर्वतोमुखी उन्नति व सुख का मूल है। संक्षेप में सामाजिक दृढ़ता की रक्षा करना ही समाजवाद का सार है।

[२] समाजवादी सामाजिक संगठन के शरीर सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को समाज का अङ्ग मानते हैं। जिस प्रकार जीवन बिना विविध अङ्ग निरर्थक है उसी प्रकार समाज से परे व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है।

[३] समाजवाजवाद का उदय पूंजीवाद के विरुद्ध हुआ है क्योंकि इसके अनुसार पूंजीवाद ही सामाजिक स्पर्धा, अशान्ति एवं अन्याय के लिए एकमात्र उत्तरदाई है जिससे शोषण, दासता एवं वर्गसंघर्ष का जन्म होता है। इस प्रकार पूंजीवाद में व्यक्ति अत्यधिक भौतिकवादी हो जाता है जो संकीर्ण भावना पैदा करता है। पूंजीवादी प्रतिस्पर्धा से आर्थिक संकट पैदा होते हैं जिससे सामाजिक व्यवस्था विचलित होती है। आर्थिक एकाधिकारवाद की प्रवृति चारित्रिक अवनति का कारण बनकर समाज के नैतिक स्तर को गिरा देती है। इसके अलावा पूंजीवाद से बेकारी बढ़ती है जिसके फलस्वरूप जीवन का रहन-सहन का स्तर भी गिरता है।

[४] समाजवाद सबको उन्नति के लिए समान अवसर तथा योग्यतानुसार उचित पारिश्रमिक देना चाहता है।

[५] उत्पत्ति के समस्त साधनों पर सरकार का सीधा नियन्त्रण हो, क्योंकि सरकार सामाजिक संगठन का नियामक है। इस प्रकार समस्त सम्पत्ति

र सामाजिक स्वामित्व एवं मानव जीवन में राज्य का अधिक हस्तक्षेप होना ाहिए, क्योंकि राज्य मानव समाज का उत्कृष्ट संगठन है जो मानव के बहु- ाखी विकास के लिए होना चाहिए।

[६] सामाजिक स्पर्धा व संघर्ष का अन्त कर दिया जाय तथा उत्पादन आवश्यकता के अनुसार हो जिससे सब लोग उचित लाभ उठा सकें।

[७] लाभ पर व्यक्ति का एकाधिकार न होकर सामाजिक अधिकार होना चाहिए जिसका उपयोग सामाजिक हितों के लिए किया जा सके।

(८) प्रतिस्पर्धा का अन्त होने पर विज्ञापनबाजी द्वारा ग्राहकों को धोखा देने की आवश्यकता नहीं रहेगी व अनावश्यक व्यय में कमी होगी। फलतः कम कीमत पर अच्छा माल सुलभ हो सकेगा।

[६] व्यक्तिगत सम्पत्ति ही समस्त सामाजिक बुराइयों का कारण है जो ऊँच-नीच के भेद-भाव का प्रमुख कारण है। इसलिए व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त करना समाजवाद का प्रमुख लक्ष्य है।

समाजवाद का विकास—समाजवाद का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं समाज। प्राचीन युग में सामाजिक परिस्थितियों व आवश्य- कताओं के अनुरूप आर्थिक न होकर धार्मिक और राजनैतिक था क्योंकि तत्का- लीन आर्थिक जीवन अधिक विकृत नहीं था। आर्थिक दृष्टि से समाजवाद का प्रथम चरण औद्योगिक विकास से उत्पन्न मालिक-मजदूरवाद के जन्म के पश्चात् १६ वीं सदी से प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भिक समाजवादी विचारक नैतिक आदर्शवाद की ओर अधिक झुके हुए थे जो शान्ति व पारस्परिक सहयोग द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति पर जोर देते थे। सर टामसमूर के युटोपिया में प्राचीन समाजवादी विचारधारा का अच्छा चित्रण मिलता है। प्राचीन समाज सुधारकों व धार्मिक नेताओं ने नैतिक दृष्टिकोण को ही अधिक अपनाया है जिसका महत्व आज के भौतिकवादी युग में इतिहास के पृष्ठों तक ही सीमित रह गया है।

वर्तमान समाजवाद का जन्म आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिक क्रांति तथा राजनैतिक क्षेत्र में फ्रांस की राज्यक्रान्ति के पश्चात् हुआ, जिसके अनुसार मुख्य दो बातों पर जोर दिया जाने लगा--प्रथम विचारों की स्वतन्त्रता एवं राजनैतिक समानता तथा द्वितीय पूंजीवाद के विरुद्ध आन्दोलन। उक्त दो तत्वों पर जोर देने वाले विविध समाजवादी विचारकों में कार्लमार्क्स सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति है।

कार्ल मार्क्स—कार्लमार्क्स को आधुनिक समाजवाद का जनक कहा जा सकता है। प्रो० धर्मदेव शास्त्री के शब्दों मे—"समाज से सदा के लिए शोषण का अन्त करने के लिए आवश्यक है कि वर्गहीन समाज की स्थापना की जाय, जिसमें मनुष्य व्यक्तिगत लाभ से परे सर्वहित के लिये कार्य करे। यह बात हमारे ऋषि-मुनि करते आये हैं, परन्तु इसका वैज्ञानिक पद्धति से निरूपण सर्वप्रथम मार्क्स ने ही किया।" मार्क्स का जन्म ५ मई १८१८ ई० को जर्मनी के ट्रिब्जि नामक स्थान पर हुआ था। २३ वर्ष की आयु में इन्हें डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त हो गई थी। प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी विचारो के होने के कारण रुचि के अनुकूल इन्हें अध्यापन कार्य नही मिल सका अतः पत्रकार के रूप में इन्होंने अपना जीवन प्रारम्भ किया जिससे इन्हें अपने विचारों का प्रचार व प्रसार करने में पर्याप्त सहायता मिली। इनके विचारों में तत्कालीन फ्रांसीसी मजदूर नेता प्रूधों का काफी प्रभाव पड़ा तथा व्यवहारिक अनुभवों के लिये इन्हें अपने परम मित्र एवं उद्योगपति एंगल्स से भारी सहायता मिली। अर्थशास्त्र, दर्शन,इतिहास के वृहद् अध्ययन के पश्चात् मार्क्स इस परिणाम पर पहुँचे कि भेद--भाव व शोषण को मिटाने के लिये सामाजिक क्रान्ति द्वारा परिवर्तन करना अनिवार्य है। पूंजीवाद के दोष व सामाजिक क्रान्ति के सम्बन्ध मे मार्क्स ने विविध पुस्तकें लिखी जिनमें सन् १८४८ ई० की क्रान्ति के समय प्रकाशित "कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो" अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसके अलावा मार्क्स का द्वितीय प्रसिद्ध ग्रन्थ "दास कैपिटल" है जो तीन खण्डो में विभक्त

किया गया है। अपने समकालीन मजदूर आन्दोलनों में प्रत्यक्ष भाग लेकर भी मार्क्स ने नेतृत्व का कार्य किया।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—मार्क्स के विचारों के अनुसार विश्व का आधार पदार्थ अथवा भौतिक तत्व है तथा समस्त परिवर्तनों का आधार आन्तरिक विरोध अथवा संघर्ष है। विभाजन, बल-प्रयोग एवं पीड़ा संघर्ष को जन्म देते हैं। मार्क्स संघर्ष को विकास के लिये आवश्यक मानते हैं। उनके मतानुसार जिस प्रकार बिना प्रसव पीड़ा सहे बालक का जन्म नहीं हो सकता उसी प्रकार परिवर्तन रूपी शिशु के जन्म के लिये समाज रूपी माता को क्रान्ति रूपी पीड़ा सहना अनिवार्य है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद—मार्क्स ने इतिहास की व्याख्या भौतिक आधार पर की है। उनकी दृष्टि से समाज में किसी भी युग में जो भौतिक, आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं। उन सब का आधार अर्थ या धन ही रहा है। सामाजिक रहन-सहन, धर्म परम्परा, सभ्यता-संस्कृति, विचार आदि सब धन से ही नियंत्रित होते हैं। मानव जाति का इतिहास धन का ही इतिहास है। धन की उत्पादन व वितरण प्रणाली के परिवर्तन से ही सामाजिक स्वरूप का परिवर्तन होता रहता है। अपने समकालीन परिवर्तन को मार्क्स ने पाँचवां परिवर्तन माना है तथा उनका कथन है कि छठा परिवर्तन अब समीप है।

मूल्य का श्रम सिद्धान्त तथा अतिरिक्त मूल्य—प्रत्येक वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन में हुए श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। परन्तु पूंजीपति श्रमिकों का हित छीन कर उनका शोषण करते हैं। श्रमजीवियों को उनके हक का काफी कम भाग मिल पाता है जबकि पूंजीपति अनावश्यक लाभ उठाते हैं। इस प्रकार समाज मजदूर और मालिक, दो वर्गों में विभाजित हो जाते हैं जिनमें संघर्ष होता है। इस संघर्षमय स्थिति में पूंजीवाद का विनाश निश्चित् एवं अनिवार्य है।

वर्ग संघर्ष--मार्क्स के अनुसार समाज में प्रारम्भिक अवस्था को छोड़ कर सभी कालों मे शोषक व शोषित दो वर्ग रहे है जिनमे वर्ग संघर्ष हमेशा चलता रहता है। मानव जीवन का इतिहास इसी वर्ग संघर्ष का इतिहास है। दास प्रथा में मालिक दासों के, सामन्तवादी युग में जमींदार किसान के एवं पूंजीवादी युग मे पूंजीपति व मजदूरों के मध्य संघर्ष चलता है। क्योंकि इन वर्गों के हित परस्पर विपरीत होते हैं तथा एक की हानि पर दूसरे का लाभ अवलम्बित रहता है। पूंजीवाद में मालिक वर्ग मजदूरों का शोषण करके अपनी जेबें भरते है और मजदूर अपने श्रम का मूल्य पाने को उद्यत रहता है। इस प्रकार का संघर्ष प्रो० महाजन के शब्दों में कुत्ते और मालिक का सा संघर्ष है। मार्क्स इस संघर्ष को मौलिक एवं सनातन मानते हैं तथा उनका कथन है कि इस वर्ग संघर्ष से क्रान्ति होगी जिससे पूंजीवाद का अन्त एवं साम्यवाद की उत्पत्ति होगी। इस परिवर्तन के बाद जो छठा युग मानवता के इतिहास मे आयेगा वह प्रेम, सहयोग एवं समानता का युग होगा जिसमें न कोई शासक होगा और न कोई शासित, सबको योग्यतानुसार श्रम व आवश्यकतानुसार उपभोग का पूर्ण अधिकार होगा। वर्तमान तथा उक्त आदर्शकाल के मध्य का समय क्रान्ति का समय होगा।

पूंजीवादी दोषों को मिटाने के लिये मार्क्स ने उत्पत्ति के साधनों के राष्ट्रीयकरण पर जोर दिया जिससे वर्ग भेद का अन्त किया जा सके। उनका कथन है कि धर्म भी समाज के लिये, अफीम की भांति बुरा है जो भाग्यवाद और सन्तोषवाद का प्रचार कर अविकसित वर्ग को आगे बढ़ने से रोकता है। मार्क्स की दृष्टि में धार्मिक नेता, महन्त, पुजारी आदि मुफतखोरों का वर्ग है तथा राज्य भी समर्थ वर्ग की संस्था है जो मजदूरों के शोषण के लिए उन्हें सहायता पहुँचाती है।

समाजवाद के भेद-- मार्क्स यह स्वीकार करते है कि सभी देश, काल वालों के लिये एक ही नीति निश्चित नही की जा सकती। परिस्थिति व सम-

स्थानों की भिन्नता के अनुसार वहाँ की कार्यप्रणाली भी भिन्न होनी चाहिये। इस सम्बन्ध में तीन बातें मुख्य हैं:—

(१) सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार व्यवस्था परिवर्तन के लिये वैधानिक अथवा क्रांति का मार्ग प्रयोग में लाया जा सकता है। व्यक्तिगत अनुभवों के अनुसार इंग्लैण्ड, अमेरिका व हालैण्ड में वैधानिक मार्ग को वे पर्याप्त मानते थे।

(२) समाजवाद के उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्य आवश्यक है या नहीं।

(३) भावी आदर्श समाज का क्या स्वरूप होगा।

उक्त तीन मतभेदों के कारण समाजवादी विचारधारा ने विविध रूप ग्रहण किये जिनका कम या अधिक मात्रा में वर्तमान समाज पर प्रभाव पड़ा। ये रूप निम्न हैं:—

(१) राजकीय समाजवाद या समष्टिवाद (Collective or state socialism)

(२) मजदूर संघवाद अथवा सिण्डिकेलिज्म (Syndicalism)

(३) श्रेणी समाजवाद या गिल्ड समाजवाद (Guild socialism)

(४) साम्यवाद (Communism)

(५) अराजकवाद (Anarchism)

राजकीय समाजवाद

समष्टिवाद अथवा राजकीय समाजवाद यद्यपि व्यक्तिवाद से पूर्णतया विपरीत है फिर भी वैधानिक विधि से सामाजिक परिवर्तन पर विश्वास रखता है। समष्टिवाद के अनुसार राज्य मनुष्यों की सर्वोत्तम संस्था है अतः राज्य कार्य

क्षेत्र राजनैतिक जीवन तक ही सीमित न होकर आर्थिक जीवन भी राज्य द्वारा नियन्त्रित किया जाना चाहिये। अतः समस्त उत्पत्ति के साधनों पर शनैः शनैः राज्य का नियन्त्रण कर व्यक्तिवाद का अन्त किया जाय। उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करके आवश्यकतानुसार उत्पादन, समान वितरण तथा लाभ पर सामाजिक अधिकार स्थापित किया जाय। समष्टिवादियों की लोकतन्त्री पद्धति एवं राज्य संगठन पर अत्यधिक आस्था है इसलिये ये क्रान्ति के विरुद्ध हैं। एकदम परिवर्तन के बजाय शनैः शनै प्रगति द्वारा सुधार अधिक उत्तम विधि है इसलिये प्रत्येक परिवर्तन राजकीय कानूनों द्वारा वैधानिक रूप से होने चाहियें। राष्ट्रीय उद्योगों पर केन्द्रीय सरकार का तथा स्थानीय न्यून महत्व के उद्योगों को स्थानीय संस्थाओं के आधीन किया जाना चाहिये ताकि उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व न रह कर सामाजिक स्वामित्व स्थापित हो सके। इस प्रकार जब व्यक्तिगत लाभ व शोषण की भावना समाप्त हो जायेगी तो मजदूरों को योग्यतानुसार उचित पारिश्रमिक मिल सकेगा। निश्चित कानून बनाकर वेतन की न्यूनतम व अधिकतम सीमा निर्धारित करके असमानता शनैः शनैः स्वयमेव विलुप्त हो जायेगी। पूंजीपतियों से हिंसा द्वारा धन छीनने के बजाय समष्टिवादी उन पर आय कर, सम्पत्ति कर आदि लगाकर उसका सामाजिक हित के कार्यों मे प्रयोग कर समानता लाने पर विश्वास रखते हैं। उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जनतन्त्र की स्थापना तथा राज्य के कार्यक्षेत्र मे वृद्धि आवश्यक है।

आलोचना के रूप मे समष्टिवाद विरोधियों का कथन है कि:—

(१) उत्पत्ति के साधनों पर राष्ट्रीय नियन्त्रण होने से व्यक्तिगत उत्साह मे ह्रास होता है क्योंकि व्यक्तिगत लाभ के लिये व्यक्ति जिस उत्साह से जोखिम लेकर कार्य कर सकता है वह राज्य के आधीन रह कर नही कर सकता।

(२) इस विधि से कार्यक्षमता व योग्यता का भी ह्रास होता है क्योंकि राज्य का क्षेत्र वृहद होता है जिसमें योग्य व्यक्ति का चुनाव कठिन हो जाता है

दूसरे इसमें शासक कानूनों से इस प्रकार बंध जाता है कि वह स्वतन्त्रतापूर्वक उन्नति नहीं कर सकता।

(३) राज्य कर्मचारी अथवा प्रमुख प्रशासक राजनैतिक व्यक्ति होते हैं जिनका औद्योगिक अनुभव नही के बराबर होता है इसलिये वे व्यापार व व्यवसाय के कार्य संचालन की क्षमता नही रख सकते। बहुत कुछ सीमा तक बडे उद्योग राज्य द्वारा संचालित हो भी जाँय तो भी छोटे धन्धो का संचालन राज्य नहीं कर सकता।

(४) अत्यधिक कानूनवाद व व्यक्तिगत लाभ भावना न होने से मैनेजर व मजदूर पूर्ण शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार कार्य नही कर सकते जिससे उत्पादन क्षमता कम होती है तथा व्यय बढ़ता है।

(५) उद्योगों का राष्ट्रीयकरण होने से नौकरशाही व घूसखोरी को प्रोत्साहन मिलता है तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता विलुप्त हो जाती है।

(६) इसके अलावा क्रान्तिकारी इस विधि को अपूर्ण मानते हैं।

उक्त आलोचनाओं के पश्चात् भी इस विधि को विश्व के अधिकांश जनतन्त्री राज्यों ने अपनाया है तथा यह विधि अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही है। समष्टिवाद का अन्तिम लक्ष्य समाजवाद की स्थापना एवं सर्वहितों की रक्षा करता है इसलिये पूंजीवादी राष्ट्रों में भी इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ रहा है।

सिण्डिकलिज़म—इस विचार का उद्‌भव तथा विकास फ्रांस से हुआ था। काफी समय तक फ्रांस में मजदूर संघ अवैध माने जाते रहे जिसके फलस्वरूप मजदूर वर्ग में आन्तरिक विद्रोह पैदा हुआ तथा उन्होने जिन गुप्त उपायों का सहारा लेकर आन्दोलन किया अथवा जो कार्यक्रम निर्धारित किया उसे सिण्डिकलिज्म अथवा फ्रांसीसी भाषा मे सिन्डिका कहते हैं। सिण्डिकलिस्ट उद्योगों का नियन्त्रण राज्य के हाथ मे न देकर समस्त आर्थिक जीवन का संचालन

राज्य के परे मजदूर संगठनों (सिण्डिकेटों) के हाथों में सौंप देना चाहते हैं जिसकी विधि निम्न प्रकार से है। प्रत्येक कारखाने में साथ कार्य करने वाले समस्त कर्मचारियों का एक संघ प्रतिनिधित्व के आधार पर बनाया जाय जो उद्योग के आंतरिक प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी होगा। इनके ऊपर एक स्थानीय (Local) संगठन तथा उत्तरोत्तर रूप से जिला संगठन प्रान्तीय संगठन एवं सबसे ऊपर एक राष्ट्रीय संगठन हो। यह राष्ट्रीय संगठन विविध उद्योगों के मध्य समन्वय, नियन्त्रण तथा विविध माल के विनिमय तथा आर्थिक जीवन का प्रबन्ध संचालन करेगा, उक्त सभी संगठन निर्वाचन एवं प्रतिनिधित्व के आधार पर स्थापित किये जायेंगे। इस प्रकार सिण्डिकलिज्म विकेन्द्रीकरण एवं उत्पत्ति के साधनों पर श्रमिक वर्ग का नियन्त्रण स्थापित करने में समर्थ हो जायगा।

सिण्डिकलिस्ट राज्य की सत्ता बढ़ाकर शनैः शनैः कानून द्वारा सुधार पद्धति को अपूर्ण मानते है क्योंकि पूंजीपति राज्य में भी अधिकार जमाकर समाजवाद को नहीं पनपने देते हैं। चूंकि पूंजीपति व मजदूरों मे मौलिक मत-भेद है इसलिए पूंजोपतियों से आर्थिक सत्ता छीने बिना मजदूरों का हित सम्भव नहीं है। अतः मजदूरों को अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु संगठित होकर संघर्ष करना चाहिये। संगठित हड़ताल, कम काम या खाली बैठकर मालिक को हानि पहुँचाना अथवा मशीनों की तोड़ फोड़ इनके मुख्य साधन हैं। उत्पादन को खराब करना अथवा उसके दोषों का प्रचार कर उसका बाजार ठप्प करना भी ये उचित समझते है जिससे पूंजीपतियों को अधिक हानि हो सके। हड़ताल इनका प्रमुख अस्त्र है जिसे ये एक कारखाने तक सीमित न रखकर देशव्यापी रूप देना चाहते है जिसका प्रभाव वृहद् एवं स्थाई हो सके। सरकार को पूंजी-पतियों का संरक्षक मानने के कारण ये उसके अधिकार सीमित रखते हुए समस्त आर्थिक जीवन पर मजदूर वर्ग का नियन्त्रण स्थापित कर पूंजीवाद का अन्त करना इनका प्रमुख लक्ष्य है।

गिल्ड सोसलिज्म—जिस प्रकार फ्रांस मे सिण्डिकलिज्म का उदय हुआ था उसी प्रकार इंग्लैण्ड मे गिल्ड सोसलिज्म या श्रेणी समाजवाद का उदय हुआ। चूं कि फ्रांस व इंग्लैण्ड की राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न थीं इसलिए गिल्ड सोसलिज्म व सिण्डिकलिज्म में भी मतभेद स्वभावतः है। यद्यपि अन्तिम लक्ष्य दोनों का एक ही है। सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है—"गिल्ड सोसलिज्म के अनुयायी यह विश्वास रखते है कि आर्थिक जीवन का संचालन उत्पादकों व श्रमिकों द्वारा होना चाहिए। पूंजीपतियों की सत्ता का अन्त हो तथा उद्योगों का प्रबन्ध करने के लिए मजदूरों की सभाओं (गिल्डों) का संगठन किया जाना चाहिये।' यह गिल्ड मजदूर, क्लर्क, इन्जीनियर आदि सब कर्मचारियों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का एक समूह हो जो सभी का सही प्रतिनिधित्व कर सकें। गिल्ड ही कारखाने का मैनेजर, कार्यकारिणी आदि की नियुक्ति व व्यवसाय का प्रबन्ध करे। एक ही प्रकार के विविध कारखानों का स्थानीय व राष्ट्रीय संगठन भी हो जो गिल्डों के ऊपर नियन्त्रण, निर्देशन व सहयोग का कार्य करे, व्यापार, यातायात का प्रबन्ध करे तथा उनकी कठिनाइयों के हल में उचित व्यवस्था करें। इसी प्रकार विविध प्रकार के व्यवसायों के लिये पृथक् पृथक् गिल्ड स्थापित किये जायें।

ये लोग इस बात को स्वीकार करते हैं कि आर्थिक जीवन मे उत्पादकों का जितना महत्व है उतना ही उपभोक्ताओं का भी है इसलिए उत्पत्ति के साधनों पर उत्पादक व उपभोक्ताओं को बराबर अधिकार हो ताकि सभी के हितों की रक्षा हो सके। प्रत्येक उपभोक्ता उत्पादक एवं प्रत्येक उत्पादक उपभोक्ता भी होता है इसलिए आर्थिक जीवन या उद्योगों पर वर्ग विशेष का एकाधिकार होने से सर्वसाधारण का हित नहीं हो सकेगा। अतः समाज मे उपभोक्ताओं का भी एक पृथक् गिल्ड हो एवं केन्द्रीय गिल्ड मे दोनों का प्रतिनिधित्व रहे जो कि दोनों के हितों की रक्षा कर सकें। वस्तुओं का मूल्य निर्धारण उद्योगों व वाणिज्य नीति के निर्देशन का कार्य इन केन्द्रीय गिल्डों को सौंप दिया जाए।

गिल्ड सोसलिस्ट राज्य के महत्व को स्वीकार करते हैं। इनकी दृष्टि से राज्य समाज की सर्वोच्च सस्था के रुप मे कायम रहे जिसका कार्य रक्षा, पर-राष्ट्र सम्बन्ध, न्याय, शिक्षा आदि हो, पर आर्थिक विषयो पर राज्य को कोई अधिकार न हो, राज्य का स्वरूप जनतत्रात्मक हो जिसमे जनता के प्रतिनिधियो के हाथो मे प्रभुसत्ता रहे। रक्षा, सधि विग्रह यातायात, न्याय आदि केन्द्रीय सरकार के हाथ मे रहे तथा शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, सडकें, पुलिस आदि विषयो का प्रबन्ध स्थानीय स्वायत्त सस्थाओ को सौंप दिया जाय। राज्य को गिल्डो के कार्य मे हस्तक्षेप करने का कोई भी अधिकार नही होना चाहिए।

गिल्ड सोसलिस्ट अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए हिंसात्मक कार्यवाहियो या बल प्रयोग पर विश्वास नही रखते। अत वे वैधानिक रूप से प्रगति व चेतना के साथ-साथ शनै-शनै शक्ति हाथो मे लेने पर विश्वास रखते हैं। प्रारम्भ मे कारखानो मे फोरमैन आदि के चुनाव से लेकर आन्तरिक प्रबन्ध की शक्तियाँ हाथो मे ले ली जाय उसके पश्चात् आगे सगठित होकर आर्थिक जीवन को मुट्ठी मे करने के लिए प्रयास किए जायें।

अराजकवाद (Anarchism)—अराजकवादी पूर्ण स्वतन्त्रता एव समाज मे एच्छिक सगठनो के निर्माण पर जोर देते हैं। अराजकवादियो को मानवीय अच्छाइयो पर अत्यधिक आस्था है इसलिए इनका कथन है कि यदि बाहरी बाधाओ का निवारण कर दिया जाय तो मनुष्य स्वभाव से कभी बुरा नही हो सकता। बन्धनहीन समाज मे ही मानवीय गुण श्रेष्ठता को प्राप्त हो सकते हैं। यह विचार सर्वप्रथम विलियम गाडविन नामक विद्वान ने दिया था। उसने बताया कि मानवीय सम्बन्ध कानूनी न होकर स्वेच्छा से होने चाहिए। सरकार का इसमे कतई हस्तक्षेप नही करना चाहिए। शिक्षा सरकारी नियन्त्रण से परे स्वतन्त्र वातावरण में ही फल-फूल सकती है। प्रूधो ने अराजकवाद के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक विचार प्रगट करते हुए कहा कि व्यक्तिगत सम्पत्ति समस्त बुराइयो एव अन्यायो का मूल है इससे समाज मे असमानता

व शोषणवाद फैलता है। राज्य व्यक्तिगत सम्पत्ति का संरक्षक है इसलिए सुखी समाज निर्माण के लिए दोनों का अन्त होना अनिवार्य है।

अराजकवादियों की मान्यता है कि राज्य की उत्पत्ति का स्रोत शक्ति है। थोड़े से शक्तिशाली लोगों ने बल प्रयोग से समाज पर नियन्त्रण किया है जो अपने आदेश दूसरों को मानने के लिए बाध्य करते है। अतः यह सर्वथा त्याज्य है। सुखी, समृद्ध एवं स्वतन्त्र समाज का निर्माण तभी हो सकता है जब राज्य का अन्त हो जाय।

आदिकाल मे जब राज्य संस्था नही थी तब का समाज आदर्श समाज था। सब लोग स्वतन्त्रता, स्वेच्छा व न्यायपूर्वक रहते थे तथा पारस्परिक सम्बन्धों का आधार नैतिक था, तब शासक-शासित अथवा शोषक-शोषित जैसे वर्ग नही थे। सब लोग स्वतंत्रतापूर्वक सामूहिक व व्यक्तिगत उन्नति मे तत्पर थे। बादमे स्वार्थ भावना व धन सचय की प्रवृत्ति जागृत हुई जिसमें संपत्तिशालियों ने अपने धन की रक्षा के लिए बलात राज्य का निर्माण किया जो अत्यन्त हानिकारक संस्था है। पर इसके विपरीत कुछ अराजकवादी ऐसे भी है जो मनुष्य को इतना अधिक पूर्ण नही मानते इसलिए उनका कथन है कि राज्य एक आवश्यक बुराई है, इसलिए राज्य का कार्यक्षेत्र व शक्ति यथासम्भव न्यूनतम किया जाना चाहिये। ज्यों-ज्यों मानव सभ्य होता जायगा त्यों-त्यों क्रमशः राज्य की आवश्यकता भी कम होती जायगी तथा अन्त मे वह स्वयं विलुप्त हो जायगा।

यद्यपि अराजकवादी विचारधारा ने शासक वर्ग की निरंकुशता एवं शोषण प्रवृति पर गहरी चोट की जिससे समाज मे पर्याप्त जागृति हुई है, फिर भी राज्य को समाप्त कर देना उचित न होगा क्योंकि राज्य मानव जीवन की सर्वोपरि सत्ताधारी संस्था है जिसके विघटन से समाज मे उच्छृङ्खलता व मत्स्यन्याय छा जायगा। इसलिए किसी न किसी रूप मे राज्य संस्था की आवश्यकता सदैव रही है और भविष्य मे भी रहेगी।

साम्यवाद-- साम्यवाद समाजवाद का ही एक विशिष्ट रूप है जो मार्क्स के सिद्धान्तों पर आश्रित है। लेनिन ने मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप देकर इसकी पुष्टि की जिससे यह आज विश्व के एक तिहाई भाग में व्याप्त हो गया है। मूल उद्देश्यों में समानता होते हुए भी साम्यवाद समाजवादी पद्धति को अपूर्ण मानता है इसलिए वह समाजवाद की ही शीघ्रगामी पद्धति का एक रूप है। भगवानदास केला के शब्दों में 'साम्यवाद समाज में आवश्यक परिवर्तनों द्वारा राजनैतिक असमानताओं को दूर करने की पद्धति है, यह ऐसा सामाजिक संगठन है जिसमें उत्पादन का स्वामित्व व्यक्तियों के हाथमें न रहकर जनता अथवा सरकार के हाथ में रह सके, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कार्य करेगा और आवश्यकतानुसार प्राप्त करेगा।' प्रो० रामेश्वर गुप्त ने साम्यवाद को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है। 'साम्यवाद' समाजवाद की उस स्थिति का नाम है जिसमें धन, भूमि, मकान आदि उत्पत्ति के सभी साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व का सिद्धान्त सर्वथा अमान्य हो और वह शक्ति भर समाज की सेवा करता हो, साम्यवाद की चरम परिणति वहाँ होती है जहाँ राज्य का नियंत्रण एवं हस्तक्षेप न्यूनतम हो जाता है और अन्ततोगत्वा राज्य की सत्ता विघटित हो जाती है।

साम्यवादियो की दृष्टि मे राज्य समाज के उन शक्तिशाली व्यक्तियों का समूह है जो दूसरे वर्गों का शोषण करता है। इसलिए यह एक बुराई है। चूंकि सदियों से मजदूर वर्ग ही शोषित रहा है। इसलिए राज्य संस्था की इस मूल-भूत बुराई को मिटाने के लिए पूंजीपति वर्ग का अन्त कर अन्तरिम काल के लिए सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित किया जाना चाहिये। दूसरी बात साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीयवाद पर विश्वास रखते हैं अतः इनका आन्दोलन राष्ट्रीय सीमाओं से परे अन्तर्राष्ट्रीय है। इनका अन्तिम उद्देश्य समस्त मानव जाति मे एक ऐसे वर्गहीन समाज की स्थापना करना है जिसमे शोषण व शोषित का भेद न रहे।

ऐतिहासिक दृष्टि से साम्यवाद कोई नवीन दर्शन नही है। ईसा मे तीन

सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में इसकी पर्याप्त चर्चा की है। इङ्गलैंड में राबर्ट ग्रोवन ने भी इस विचारधारा का प्रतिपादन किया था परन्तु इसको व्यवस्थित व वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय कार्लमार्क्स को ही है इसलिए उन्हें साम्यवाद का जन्मदाता माना जाता है। मार्क्स का 'साम्यवादी घोषणा-पत्र' नामक ग्रंथ इस विचारधारा की आधार शिला है जिसके प्रमुख सिद्धांत निम्न हैं—

(१) मानव समाज विविध श्रेणियों में विभक्त है जिनमें निरंतर संघर्ष चलता रहता है। वर्तमान युग में मालिक मजदूरों का संघर्ष विराट रूप ले चुका है जिसे मिटाने के लिए समस्त मजदूर वर्ग को एकत्रित होकर क्रान्ति करनी चाहिये, ताकि शोषण व सत्ता का अन्त किया जा सके।

(२) क्रान्ति या शान्ति किसी भी विधि से राजसत्ता पर अधिकार कर मजदूरों को उत्पत्ति के साधनों का राष्ट्रीयकरण करना चाहिए तथा सम्पत्ति पर उत्तराधिकारी प्रथा को समाप्त कर देना चाहिए।

(३) समाज में केवल एक ही श्रमिक वर्ग रहे तथा शारीरिक या मानसिक किसी भी प्रकार के श्रम करने वाले को उचित पारिश्रमिक देने की व्यवस्था की जाय।

(४) मजदूरों का न कोई देश है न घर, अतः समस्त विश्व के मजदूरों को संगठित होकर उक्त कार्य की पूर्ति के लिए संघर्ष करना चाहिए।

उक्त घोषणा का यूरोपीय समाज पर वृहद् प्रभाव पड़ा तथा मजदूरों में पूंजिपति वर्ग के लिए विद्रोह की आग भड़क उठी जिससे फलस्वरूप सन् १९१७ में अवसर पाकर लेनिन के नेतृत्व में रूसी मजदूरों ने क्रान्ति करके जारशाही का अन्त कर दिया तथा सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना कर डाली। इसके पश्चात् यह प्रयोग क्रमशः विविध देशों में हुए।

कार्यक्रम—साम्यवादी सिद्धान्त के अनुसार क्रान्ति के पश्चात् एक दम सामानता स्थापित होना सम्भव नही है इसलिए पूंजीवाद के अन्त होने से स्वतंत्र समाज निर्माण के मध्य के काल मे मजदूर या सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद रहे जो समाज में अनुकूल परिस्थितियां पैदा करने मे सहायक हो। इस काल मे श्रमिक वर्ग के अलावा अन्य किसी भी वर्ग को राज्य मे अधिकार नही दिये जायेंगे। उद्योगो का राष्ट्रीयकरण, सम्पत्ति व उत्तराधिकार प्रथा का अन्त, बच्चों को साम्यवादी शिक्षा आदि प्रयासो द्वारा समस्त समाज को श्रमिक वर्ग के रूप में परिणित किया जाय। समस्त सम्पत्ति पर राज्य का आधिपत्य स्थापित हो जाने के उपरात योग्यतानुसार कार्य व आवश्यकतानुसार पारिश्रमिक की व्यवस्था की जायगी जिससे भेद-भाव स्वतः विलुप्त हो जायेंगे। जब लोगों को आवश्यकता से अधिक नही मिल पायगा और उत्तराधिकार प्रथा नही रहेगी तो संचय की भावना का भी अन्त हो जायगा। जब तक समाज में पूर्ण समानता नही आ जायगी तब तक यही संक्रमण काल की प्रथा चलती रहेगी बाद में राज्य भी स्वयमेव विलुप्त हो जायगा।

भावी राज्यहीन समाज एक आदर्श समाज होगा जिसमे समस्त मानव स्वतंत्रतापूर्वक अपनी उन्नति करते हुए सहयोग व भाई-चारे के साथ रह सकेगा। अमीर-गरीब का कोई भेद नही होगा, उत्पादन समाज की आवश्यकतानुसार यथेष्ठ परिणाम में होगा जिसमे सबको उचित हक मिलेगा। इस वर्गहीन समाज में संघर्ष को कोई स्थान नही होगा।

साम्यवाद और समाजवाद— साम्यवाद और समाजवाद एक ही वृक्ष की दो शाखायें है जिनके आदर्श एक हैं, इसलिए इन दोनो में निम्न समानता पाई जाती है।

(१) दोनो पूंजीवाद के कट्टर विरोधी हैं।

(२) उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार को दोनो अस्वीकार करते हैं तथा सम्पत्ति पर सामाजिक स्वामित्व के पक्ष-पाती है।

(३) दोनों शोषण के विरुद्ध है इसलिए वर्गहीन समाज की स्थापना पर जोर देते हैं।

(४) श्रम को दोनों अनिवार्य मानते हैं।

(५) समाज मे बिना भेद-भाव के प्रगति के समान अवसर प्रदान करना दोनो का लक्ष्य है।

उपरोक्त समानताओं के बावजूद भी दोनों की कार्य प्रणाली व साधनों मे मौलिक अन्तर है जो निम्न प्रकार से है—

(१) साम्यवाद अन्तर्राष्ट्रीयता अथवा विश्व एकता पर विश्वास रखता है जबकि समाजवाद (जिसे सही अर्थों मे समष्टिवाद कहना चाहिए) की सीमा राष्ट्रीय परिधि मे बधी है।

(२) साम्यवादी अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वैधानिक या क्रान्ति किसी भी मार्ग को अपनाना उचित समझते हैं जबकि समाजवादी केवल वैधानिक विधि को ही उचित समझते हैं।

(३) उद्देश्य पूर्ति के बाद साम्यवादी राज्य को विलीन कर देना चाहते हैं। इसके विपरीत समाजवादी राज्यसत्ता की आवश्यकता को स्थाई रूप से स्वीकार करते हैं।

(४) साम्यवाद उद्देश्यों पर अधिक दृढ है जिसकी प्राप्ति के लिए वह हिंसा या अहिंसा के चक्करों मे नहीं पड़ता जबकि समाजवादी वैधानिक साधनों को ही एक मात्र उपाय समझते हैं।

(५) साम्यवादी उत्पादन का वितरण आवश्यकतानुसार चाहते हैं जबकि समाजवादी योग्यतानुसार वितरण के समर्थक हैं।

(६) साम्यवाद धर्म के कतई विरुद्ध है जबकि समाजवादी उस पर पूर्ण आस्था रखते है।

(७) समाजवादियों को जनतन्त्र में अत्यधिक आस्था है जबकि साम्य-वादी उसे पूंजीपतियों का एक स्टंट मानते हैं।

रूसी साम्यवाद—रूसी श्रमिक आन्दोलन में विजय के पश्चात् लेनिन ने पूंजीवाद को साम्राज्यवाद का आधार बताते हुए उसकी विस्तृत व्याख्या की तथा बताया कि इसी साम्राज्यवाद ने श्रमिकों को आन्दोलन करने के लिये बाध्य किया। लेनिन रूसी क्रान्ति को विश्वक्रान्ति का रूप देना चाहता था पर १९२४ में उसकी मृत्यु के उपरान्त स्टालिन व ट्राटस्की में मतभेद हो गया। स्टालिन सर्वप्रथम रूस में साम्यवाद की स्थिति सुदृढ बनाने पर जोर दे रहे थे तथा इस मतभेद में स्टालिन की विजय हुई तथा लेनिन का अन्तर्राष्ट्रीय साम्य-वाद राष्ट्रीय सीमाओं में केन्द्रीभूत हो गया। सर्वप्रथम रूस में सर्वहारावर्ग का अधिनायकवाद स्थापित करने के पश्चात् स्टालिन राष्ट्रीय उन्नति के कार्यों में जुट गये फलतः अल्प समय में यूरोप का पिछड़ा हुआ भू-भाग महान् औद्योगिक समृद्ध राष्ट्र बन गया। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद 'कम्यूनिस्ट इण्टरनेशनल' नामक संस्था का निर्माण कर स्टालिन ने विश्व के समाजवादी राष्ट्रों में सहयोग पैदा करके जर्मनी के नाजीवाद का अन्त किया जिसके पश्चात् रूस की स्थिति दिनो दिन दृढतर होती गई। १९३६ में कुछ सदस्यों के साथ मिल कर स्टालिन ने एक राष्ट्रीय संविधान का भी निर्माण किया जिसके अनुसार साम्यवादी पार्टी को शासन के अधिकार लिखित रूप में सर्वहारावर्ग की ओर से सौंप दिये गये।

आलोचना—(१) आलोचना के रूप में साम्यवाद विरोधियों ने साम्यवादियों के अत्यधिक भौतिकवादी दृष्टिकोण को गलत बताते हुए कहा कि मानव जीवन का नियमक तत्व धन ही नहीं बल्कि और चीजें भी हैं। धर्म, नैतिकता, सामाजिकता आदि का जीवन पर काफी प्रभाव पड़ता है इसलिए केवल धन को ही एकमात्र कारण मानना अवांछनीय है।

(२) वर्ग संघर्ष सिद्धान्त को अतिशयोक्तिपूर्ण बताते हुए आलोचकों का कथन है कि वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त निराशापूर्ण है जो सामान्य चेतना

(Common consciousuess) के विरुद्ध है। साम्यवादियों ने वर्ग संघर्ष का चित्रण अनावश्यक रूप से व बढ़ा-चढ़ा कर किया है। अनुभव से साबित होता है कि पूंजीपतियों की संख्या कई देशों में बढ़ रही है तथा छोटे पूंजीपति भी पर्याप्त मात्रा में फलफूल रहे हैं। वर्तमान कल्याणकारी राज्यों में मजदूरों की स्थिति इतनी बुरी नहीं है जितनी साम्यवादी बताते हैं अतः उनका सिद्धान्त अतिशयोक्तिपूर्ण है।

(३) राज्य केवल हिंसा व शक्ति बल पर आधारित नहीं है बल्कि यह मानवीय श्रेष्ठ संस्था है जिसे सब लोगों ने स्वेच्छा से स्वीकार किया है। व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास में राज्य से अधिक सहायक और कोई भी संस्था नहीं हो सकती इसलिये राज्य में सुधारों की गुन्जाइश हो सकती है पर इसे नष्ट करने का सिद्धान्त गलत है।

(४) प्राकृतिक दृष्टि से भी पूर्ण समानता कभी सम्भव नहीं है, इसलिए साम्यवादियों की कल्पना मूर्खतापूर्ण है।

(५) साम्यवादियों का यह कथन व्यवहारिक दृष्टि से गलत है कि एक बार सर्वहारावर्ग का अधिनायकवाद स्थापित हो जाने के पश्चात् राज्य विलीनता को प्राप्त होगा। यह अनुभवजन्य सत्य है कि एक बार अधिनायकवाद स्थापित हो जाने के पश्चात् वह स्वतन्त्रता की भावना को समूल नष्ट कर देता है।

समाजवादी विचारधारा की आलोचना—कमजोरियां मानव की प्रकृति की देन है इसलिए आदर्श समाज निर्माण एक काल्पनिक सिद्धान्त है। निःसन्देह इस विचारधारा ने समाज में चेतना व जागृति का प्रसार किया है। बहुत कुछ सीमा तक सम्पूर्ण समाज में एकता, त्याग व न्याय को प्रोत्साहन दिया है फिर भी इसमें निम्न त्रुटियां हैं:—

(१) समाजवाद उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर अत्यधिक जोर देता है जिससे सत्ता का केन्द्रीयकरण व नौकरशाही का प्रभाव बढ़ता है तथा मानव

जीवन एक केन्द्रीय सत्ता के नियन्त्रण में आ जाता है फलतः मानवीय स्वतन्त्रता पूर्णतया विलुप्त हो जाती है।

(२) अत्यधिक औद्योगीकरण ग्रामीण स्वतन्त्र शान्तिमय जीवन को नष्ट कर देता है तथा इससे विलासिता व भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है। जीवन का नैतिक मूल्य कम हो जाता है।

(३) अत्यधिक भौतिकवाद में जीवन कृत्रिम बन जाता है। इससे भौतिक जीवन में भले ही प्रगति हो जाय पर आत्मसन्तोष और मानसिक शान्ति नहीं मिल पाती।

(४) समाजवाद में मनुष्य यंत्ररूप बन जाता है जिससे व्यक्तित्व समाप्तप्राय हो जाता है। वास्तव में समाज का अङ्ग होते हुए भी व्यक्ति का स्वतन्त्र इकाई के रूप में महत्व है जिसे समाजवाद भुला देता है जिससे आत्मिक विकास को यथेष्ट अवसर नहीं मिल पाता।

(५) अर्थ-व्यवस्था के केन्द्रीयकरण होने से समाजवाद में जनतन्त्र भलीभाँति फल-फूल नहीं सकता।

[५] फासिस्टवाद

फासिस्टवाद (फासिज्म) का प्रादुर्भाव मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली में हुआ। इसका लक्ष्य महायुद्ध से क्षतिग्रस्त और जर्जर इटली की दशा सुधारना, उसे स्वावलम्बी तथा एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाना था। फासिज्म एक व्यक्ति का शासन है। जो कुछ भी नीति होती है उसे नेता निर्धारित करता है, एवं दल इसका पालन करता है। दल नेता के पद चिन्हों पर आँख मूँद कर चलता है एवं इस सिद्धान्त का कि 'सही रास्ता नेता ही जानता है' पालन करता है। फासिस्टों का नारा 'एक राष्ट्र' एक राजनैतिक दल' एवं एक नेता' है अतएव देश में अधिनायक के दल को छोड़ कर दूसरा राजनैतिक दल नहीं रहने दिया जाता है और विरोध को नृशंसतापूर्वक कुचल दिया जाता है। भाषण

की स्वतन्त्रता केवल उन लोगों को होती है जो सत्तारूढ दल के मूल भूत सिद्धान्तों को स्वीकार करते हो, विरोध की आवाज को हिंसा पूर्वक कुचल दिया जाता है। फासिस्ट मत के अनुसार सोचने विचारने का कार्य नेता का है। जनता का कर्तव्य नेता के वचनों पर आस्था रखना और उसके वचनों का पालन करना है।

फासिस्ट बुद्धि, तर्क और विचार विनिमय को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उनकी दृष्टि में बुद्धिवाद का और विचार स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नही। मुसोलिनी ने एक समय कहा था कि हम यथार्थ मे विश्वास करते हैं, उसका कहना था कि 'मेरा प्रोग्राम कर्म है वार्तालाप नहीं।'

फासिस्ट राज्य को सर्वशक्तिशाली मानते थे। फासिस्ट राज्य एक स्वेच्छाचारी सर्वप्रभु राज्य है। फासिस्ट शासन मे व्यक्ति का अस्तित्व राज्य के लिए है, राज्य का व्यक्ति के लिये नहीं। 'यह राज्य को साध्य एवं व्यक्ति को साधन मात्र मानते हैं।' फासिस्ट शासन में राज्य को यह अधिकार होता है कि सम्पूर्ण समाज के हित के लिए व्यक्तियों के हित का बलिदान कर सके। राज्य वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को नियंत्रण करता है, राज्य से पृथक होने पर व्यक्ति की कोई सत्ता नहीं है। राज्यरूपी विशाल भवन में व्यक्ति एक पत्थर के बराबर है, राज्य के द्वारा ही व्यक्ति अपना विकास कर सकता है। मुसोलिनी कहा करता था सब चीजें राज्य मे है, कोई राज्य से बाहर नही हैं, कोई चीज या सत्ता राज्य के विरुद्ध नही हो सकती।'

फासिस्टवादी स्वतन्त्रता की अपेक्षा व्यवस्था और योग्यता पर अधिक बल देते है। वे होब्स द्वारा की गई स्वतन्त्रता की परिभाषा को मानते हैं जिसके अनुसार स्वतंत्रता कानून के आदेश पालन में निहित है प्रजातन्त्र का सिद्धात है 'स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व' इसके विपरीत फासिज्म का नारा उत्तरदायित्व, अनुशासन तथा आज्ञा पालन है।

फासिस्ट शासन मे विचार, भाषण एवं कर्म की स्वतन्त्रता को कहीं स्थान नही है, इनको एक तरह से नष्ट कर दिया गया है। शासन की विचार-धारा, शिक्षा प्लेटफार्म, रेडियो आदि सभी प्रकार के साधनो द्वारा जनता के ऊपर थोपी जाती है। व्यक्ति कुछ सोच विचार नही सकता, फलतः विचार स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है।

फासिज्म शान्ति के विरुद्ध है। मुसोलिनी का कथन था कि शांति एक तालाब के समान है जहां पानी ठहरा रहता है, शांति को इन्होंने हमेशा घृणा की दृष्टि से देखा। उन्नति का तात्पर्य है हमेशा आगे बढना और आगे बढने का मतलब है दूसरों को अपने पैरों के नीचे रौंदना। फासिस्ट युद्ध को गौरव मानते हैं। उनका विश्वास है कि बिना लड़ाई के कोई जाति, समाज या राज्य अपना उत्थान नही कर सकता।

फासिस्ट, अर्थ-व्यवस्था में श्रमिकों को दबाया गया, जिससे पूंजीपतियों को उद्योग-धन्धों में अधिक से अधिक पूंजी लगाने का प्रोत्साहन मिला, जिससे देश का उत्पादन बढ़े। पूंजीपतियों पर नियन्त्रण लगाया गया कि वे उत्पादन का उपभोग अपने स्वार्थ के लिए न कर राष्ट्र के लिए करें, यदि वे किसी उद्योग का संचालन ठीक प्रकार नही करें तो उद्योग को सरकार अपने नियन्त्रण में चलाये। हड़ताल करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था, क्योंकि काम बन्द होने से राष्ट्र को क्षति पहुंचती है।

नाजीवाद—नाजीवाद फासिस्टवाद से बहुत मिलता है, इसको हम उसका जर्मन संस्करण कह सकते हैं। इसमें भी राज्य को साध्य एवं व्यक्ति को साधन मात्र समझा है। व्यक्ति को कोई स्वतन्त्रता नहीं है, राज्य की उन्नति में ही व्यक्ति को अपनी उन्नति समझना चाहिए। नाजीवाद एक बात में फासिस्टवाद से भिन्न है। हिटलर ने इस विचार को फैलाया कि जर्मन लोग आर्य जाति की सर्वश्रेष्ठ शाखा के हैं, उनकी संस्कृति और सभ्यतायें सार भर में सबसे ऊंची है, जर्मन जाति को शुद्ध रखना हमारा कर्तव्य है। इसी

सिद्धान्त के कारण जर्मनी में यहूदियों को अमानुषिक अत्याचारों का शिकार होना पड़ा। हिटलर के समय शासन का पूरे तौर से केन्द्रीयकरण हो गया। राज्य का अधिकार क्षेत्र व्यापक बना, पार्लियामेंट की सत्ता नाम मात्र की रह गई। हिटलर राष्ट्र का प्रतीक माना जाने लगा, धार्मिक संस्थाओं पर नियंत्रण हो गया। स्त्रियों का मुख्य कार्य संतान पैदा करना था, शिक्षा पर राज्य का पूरा नियंत्रण था। शिक्षण संस्थायें नाजीवाद के प्रचार की सबसे उत्तम साधन बन गई थी।

हिटलर और मुसोलिनी की धाक द्वितीय महायुद्ध के पूर्व सारे यूरोप में फैल गई थी, महायुद्ध में पराजित होने से धुरी राष्ट्रों की शक्ति का अन्त हुआ, पर इन विचारधाराओं का लोप नहीं हुआ है, मौका पाकर कभी भी ये पनप सकती हैं।

साम्यवाद एवं फासिज्म—दोनों ही हिंसा एवं पाशविक बलों पर आश्रित हैं अतः दोनों में बहुत कुछ समानता है। परन्तु विचारधारा की दृष्टि से ये दोनों प्रणालियां एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है, इनमें आध्यात्मिक एकरूपता नहीं है।

समानता—(१) दोनों एक सी ही शासन प्रणाली का समर्थन करते हैं, और राजनीति शास्त्र के रूप में हिंसा के प्रयोग को खुले आम स्वीकार करते हैं।

(२) दोनों की विचारधाराओं में भाषण, प्रेस और अन्यान्य लोकतंत्रात्मक स्वतंत्राओं और कठोर नियंत्रण है व नागरिकों को इनसे वंचित रखा जाता है।

(३) प्रचार के सब साधनों पर राज्य का ही एकाधिकार है।

(४) दोनों ही एक ढंग के शासन में आस्था रखते हैं, दल एवं शासन

में सामञ्जस्य स्थापित कर दिया जाता है । दल की नीति ही शासन की नीति होती है, दल के प्रति एकनिष्ठ रहना महान गुण समझा जाता है ।

(५) नेतृत्व के सिद्धान्त मे दोनों विश्वास करते हैं, परन्तु दोनों के नेतृत्व के प्रकार मे अन्तर है, फासिज्म में एक व्यक्ति का नेतृत्व होता है, नेता महामानव समझा जाता है, साम्यवाद में दल विशेष या श्रमिक दल का नेतृत्व होता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने–अपने आदर्श की प्राप्ति के लिये फासिस्टवाद और साम्यवाद जिन साधनो का प्रतिपालन करते हैं उनमें समानता है । परन्तु जहाँ तक उद्देश्यों का सम्बन्ध है वे एक दूसरे से भिन्न हैं— अब हम यहाँ पर भिन्नता का वर्णन करेंगे ।

(१) फासिज्म वर्ग संघर्षों मे विश्वास नही करता है । साम्यवाद इसमें विश्वास करता है जो इसका प्राण तत्व है । फासिज्म की दृष्टि में पूंजीपतियों एवं श्रमिकों के दृष्टिकोण में कोई सनातन विरोध नही है, उसमें राष्ट्र के हित को ही अधिक महत्व दिया जाता है । इस प्रकार फासिज्म के सामने वर्तमान समाज के आर्थिक संगठन मे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का आदर्श नही है इसलिये फासिज्म को पूंजीवाद का अवलम्बन कहा जाता है । साम्यवाद पूंजीवाद का जानी दुश्मन है इसका उद्देश्य एक ऐसे वर्गहीन समाज की स्थापना करना है, जिसमें किसी का शोषण नहीं होगा, एवं सब सहयोग से कार्य करेंगे ।

(२) फासिज्म साम्राज्यवादी है, अतः यह प्रतिक्रियावादी विचारधारा है जो साम्यवाद एवं पूंजीवाद दोनो का शत्रु है । वह उनके समूल उच्छेदन का पक्षपाती है । फासिज्म वर्तमान समाज व्यवस्था को ज्यों का त्यो बनाये रखना चाहता है, इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन यह आवश्यक नही समझता । साम्यवाद के सामने विश्व का राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक पुनर्निर्माण करने का ध्येय है ।

(३) फासिज्म की कोई विचारधारा नही है, मुसोलिनी विचारो की खिल्ली उड़ाया करता था, उसका कहना था हमे अपने खून से सोचना चाहिये, विचार विनिमय के बादलों से बाहर निकलने की आवश्यकता है। साम्यवाद के लिये उसके सिद्धान्त ही सब कुछ हैं। उसकी अपनी विचारधारा है, जिसका तार्किक एवं वैज्ञानिक रीति से विकास करता है। साम्यवाद की समस्त कार्य प्रणाली उसके सिद्धान्तो पर आधारित व निर्भर है।

(४) फासिज्म उग्र रूप से राष्ट्रीय है, वह राष्ट्रीय राज्य का अनन्य भक्त है, वह अपने राज्य को अधिक से अधिक महान बनाना चाहता है। व्यक्ति की सत्ता स्वीकार नही की जाती है, वह राष्ट्र व राज्य पर आश्रित समझा जाता है, । साम्यवाद राज्य को समाप्त करना चाहता है, वह राज्य का उपासक नही है, उसका विचार है कि वर्ग संघर्ष के समाप्त होने पर राज्य की कोई आवश्यकता नही रह जायेगी।

(५) फासिज्म अन्तर्राष्ट्रीयता मे विश्वास नही रखता जबकि साम्यवाद का इसमे पक्का विश्वास है, साम्यवाद अपने आदर्श व ध्येय को दूसरे राष्ट्रों मे फैलाने का प्रयत्न करता है।

(६)फासिज्म का धर्म से कोई विरोध नही है। साम्यवाद धर्म को मनुष्य की अफीम मानता है।

(७) फासिज्म का विश्व शान्ति मे कोई विश्वास नही है। शान्ति को वह कायरता की निशानी समझता है। साम्यवाद को विश्व शान्ति में पूर्ण विश्वास है।

[६] गांधीवाद

महात्मा गांधी भारत के राष्ट्रीय संग्राम के सेनानी थे, उनके ऊपर रस्किन की महान पुस्तक "अन्टु दिस लास्ट" का बहुत प्रभाव पड़ा।

उनका राजनैनिक दर्शन उनके जीवन दर्शन का एक अङ्ग था।

महात्माजी सत्य को ईश्वर मानते थे। उनका कहना था कि मेरे लिये सत्य ऐसा सार्वभौम सिद्धान्त है जिसमे दूसरे और बहुत से सिद्धान्त आ जाते हैं। यह सत्य केवल शब्द मे ही सत्यता नही है, अतः पूर्ण सत्य शाश्वत सिद्धान्त अर्थात् ईश्वर है। अहिंसा के ऊपर महात्माजी बहुत जोर देते थे। आप किसी को कोई कष्ट नही दे सकते थे, कोई बुरा विचार नही सोच सकते, उस व्यक्ति के बारे मे भी जो आपको शत्रु समझता है। अहिंसा शब्द का उन्होने संकीर्ण अर्थ मे प्रयोग न कर विस्तृत अर्थ मे प्रयोग किया है। अहिंसा से उनका वास्तविक अर्थ था आप किसी को कष्ट नही दे सकते, कोई बुरा विचार नही 'सोच सकते, उस व्यक्ति के बारे मे भी जो आपको शत्रु समझता है। महात्मा गाधी के अनुसार अहिंसा एक विद्ययात्मक विचार था, जिसका तात्पर्य दूसरों से प्रेम करना, दूसरो का उपकार करना है, चाहे वह नीच ही क्यों न हो।

महात्मा गाधी ने राजनीति मे धर्म का समावेश किया है। महात्मा गाधी मे एक सन्त और एक राजनीतिज्ञ का समन्वय था। महात्मा गाधी का धर्म सकुचित, सम्प्रदायवादी और रूढ़िगत् नही था, उनका धर्म मानव धर्म था। गाधीजी कथनी एवं करनी मे विश्वास रखते थे। अतः उनका मत था कि श्रेष्ठ ध्येय या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन भी श्रेष्ठ होने चाहिए।

महात्मा गाधी ने व्यक्ति और समाज के बीच मे कोई विरोधाभास नही माना था। मनुष्य को गाधीजी ने मानव समाज का निर्माता माना है। अधिकतम सख्या के अधिकतम हित के सिद्धान्त मे महात्मा गाधी का विश्वास नही था। वे सर्वोदय मे विश्वास करते थे एवं सर्वहित के सिद्धान्त को मानते थे।

महात्माजी का लक्ष्य रामराज्य की स्थापना था। रामराज्य उनकी आदर्श, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का नाम है। महात्मा गाधी ने

इस कल्पित रामराज्य मे मानवीय सम्बन्ध सत्य एवं अहिंसा पर निर्भर होंगे, अतः कोई किसी का शोषण नहीं करेगा सर्वत्र प्रेमभाव होगा, सब मनुष्यों को उन्नति के समान अवसर प्राप्त होंगे, लोग शान्ति सेवा और सद्भावना के आदर्श का पालन करेंगे। महात्मा गांधी की दृष्टि में रामराज्य एवं स्वराज्य का एक ही अभिप्राय था।

महात्मा गांधी केन्द्रीय राज्य के विरुद्ध थे, राज्य शक्ति के अधिक से अधिक विकेन्द्रीयकरण में उनका विश्वास था। गांधी की दृष्टि में राज्य, श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और अहिंसा की दृढ नींवों पर आधारित होना चाहिये, हिंसा पर नही। धावन के शब्दों मे "अहिंसक राज्य पुलिस राज्य नही है।" ऐसे राज्य मे पुलिस और सेना कम से कम दिखाई देगी। महात्मा गांधी की इच्छा थी कि अहिंसक राज्य विश्वशांति के हित मे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के साथ संगठन करे। उन्होंने कहा था कि आज विश्व के श्रेष्ठ मस्तिष्क एक दूसरे के विरुद्ध बढ़ने वाले पूर्ण स्वतन्त्र राज्य को नही चाहते, बल्कि मित्रतायुक्त एक दूसरे पर आश्रित राज्यों का एक संघ चाहते हैं। इस प्रकार महात्मा जी का विश्वास लोक हितकारी राज्यों मे था। कुछ आलोचकों का यह भी मत है कि महात्माजी दार्शनिक अराजकवादी थे एवं राष्ट्र का समूल उन्मूलन चाहते थे। इसके विरुद्ध कतिपय अन्य आलोचकों का कथन है कि महात्मा गांधी राज्य को रामराज्य के रूप मे कायम रखना चाहते थे। रामराज्य की दो विशेषतायें थीं—शक्ति का विकेन्द्रीयकरण और शासक सत्ता की स्वतन्त्र आलोचना।

आर्थिक विचारधारा—गांधीजी के पास अपने देश की गरीबी को *मिटाने के लिए एक व्यवहारिक आर्थिक कार्यक्रम था।* उनकी मान्यता थी कि आर्थिक स्वतन्त्रता से शून्य राजनैतिक स्वतन्त्रता सर्वथा अधूरी है। उसके अनुसार भारत का आर्थिक गठन इस प्रकार होगा कि इसमें भोजन और कपड़े की किसी को कमी नहीं रहेगी। यह सब तब ही हो सकता है जबकि उत्पादन के साधनों और जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं पर जनता का नियन्त्रण हो जाय। उनका कहना था कि ये वस्तुयें सबको ठीक इसी प्रकार स्वतन्त्रता-

पूर्वक प्राप्त होनी चाहिए जिस प्रकार कि वायु और पानी सबको प्राप्त है। उन्हे दूसरो के शोषण का साधन बना लेना उचित नही है।

महात्मा गाधी ने "गावो की ओर चलो" नारा उठाया था। उनकी धारणा थी कि यदि गाव नष्ट हो गए तो भारत नष्ट हो जाएगा। उनकी यह दृढ मान्यता थी कि हमारे अस्तित्व के लिए गावो का उत्थान आवश्यक है। गाधीजी मशीनो के प्रयोगों के विरुद्ध थे—क्योकि मशीन एक बाम्बी की तरह है जिसमे सैंकडो सर्पों के होने की सम्भावना है। जहा मशीन होगी वहा बड़े-बड़े शहर होगे, ट्राम कारें होगी, रेल होगी, वहा पर बिजली की रोशनी का भी होना अनिवार्य है। ईमानदार चिकित्सक आपको बतायेंगे कि जहा यात्रा के कृत्रिम साधन बढे हुए है वहा लोगो के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है। मुझे मशीन मे एक भी गुण नही दिखाई पड़ता। इसका यह तात्पर्य नही है कि गाधीजी मशीनो का समूल नाश चाहते थे, उनका आशय तो केवल इतना ही था कि मशीनों की वजह से मानव श्रम का मूल्य कम न हो जाय।

महात्मा गाधी का वर्ग संघर्ष मे विश्वास नही था, ये आवश्यक नही कि श्रमिक एवं पूंजीपति एक दूसरे के विरुद्ध हो जाये। वे ऐसे किसी समय की कल्पना नही करते जिसमे; एक व्यक्ति दूसरे से अधिक धनी न होगा। लेकिन वे ऐसे समय की कल्पना अवश्य करते थे जब अमीर आदमी गरीब का शोषण कर अमीर बनने से घृणा करेंगे और गरीब अदमी अमीरो से घृणा करना बन्द कर देंगे। पूंजीपतियों को गरीबो का ट्रस्टी बना देना चाहिये। गाधीजी ने कहा था कि आज के धनवानो को वर्ग संघर्ष और स्वेच्छा से धन के ट्रस्टी बन जाने में दो रास्तो मे से एक को चुन लेना होगा। उन्हे अपनी मलिकियत की रक्षा का हक होगा। रामराज्य मे उन्हे यह भी हक होगा कि अपने स्वार्थ के लिये नही बल्कि देश के हित के लिये दूसरो का शोषण न करके वे धन को बढाने मे अपनी बुद्धि का उपयोग करें। उनकी सेवा और उनके द्वारा होने वाले समाज के कल्याण को ध्यान मे रखकर उन्हे निश्चित कमीशन ही राज्य देगा। उनके बच्चे अगर योग्य हुए तो वे भी उस जायदाद के रक्षक बन सकेंगे।

धनवानो का ठीक व्यवहार न हो तो वे न्यायालय द्वारा अपने अमानतदार के पद से हटा दिये जायेंगे। इसके विपरीत अगर वे अपना कर्तव्य विवेकपूर्वक और इमानदारी से पालन करेंगे तो उन्हें अपनी धरोहर सम्पत्ति से होने वाली क्षुद्र आय या मुनाफे मे से पाच छः प्रतिशत भाग को पुरस्कार के रूप में पाने का अधिकारी बनाया जा सकता है। शेष मुनाफा सार्वजनिक हित मे लग जायेगा।

महात्मा गाधी एक महान् सामाजिक सुधारक भी थे, वे हिन्दू मुस्लिम एकता के देवदूत, हरिजनों के उद्धारक और भारतीय नारियों के रक्षक थे। इन्होंने मद्य-निषेध का प्रचार किया और बुनियादी तालीम की नीव डाली।

प्रश्नावली

१. प्रजातन्त्र की परिभाषा क्या है ? इसकी उत्पत्ति एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

२. प्रजातन्त्र शासन के गुण और दोषो का विवेचन कीजिए।

३. लोकतन्त्र की स्थापना के लिए कौन कौन से तत्वो का होना आवश्यक है ?

४. राष्ट्रीयता के मुख्य तत्वो का विवेचन कीजिए।

५ राष्ट्रवाद की मुख्य विशेषतायें तथा इसके गुण और दोषो पर सक्षिप्त नोट लिखिए।

७. साम्राज्यवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके विस्तार के कारणों पर प्रकाश डालिए।

८. साम्राज्यवाद के विकास के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए बताइए की इसका भविष्य कैसा है ?

६ समाजवाद की परिभाषा करते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

१०. कार्लमार्क्स को आधुनिक समाजवाद का जनक क्यों कहा जाता है ? इसके सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।

११. राजकीय समाजवाद से क्या तात्पर्य है ? इसकी प्रमुख विशेषताए और दोषों का विवेचन कीजिए ।

१२. मजदूर सघवाद, श्रेणी समाजवाद और अराजकवाद पर टिप्पणियाँ लिखिए ।

१३. साम्यवाद एव समाजवाद की तुलना कीजिए ।

१४ साम्यवाद की विचार धारा एव कार्यक्रम का परिचय दीजिए ।

१५ साम्यवाद एव फासिज्म की तुलना कीजिए ।

१६ गान्धीजी की विचारधारा पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

१७ राष्ट्रवाद के प्रादुर्भाव (Evolution) की व्याख्या कीजिए । रा० वि० १९५९ एव १९६०

---

७ भारत की प्राचीन सभ्यता

[१] सिन्ध घाटी की सभ्यता

विषय प्रवेश--सन् १६२२ के पूर्व वैदिक सभ्यता ही भारत की प्राचीनतम सभ्यता मानी जाती थी। किन्तु श्री आर.डी. बनर्जी, दयाराम साहनी तथा सर जान मार्शल के प्रयत्नों के उपरान्त एक ऐसी सभ्यता प्रकाश में आई है जिसने यह सिद्ध कर दिया है कि वैदिक कालीन सभ्यता प्राचीन नहीं है। पंजाब में मांटगोमरी जिले के अन्तर्गत मोहनजोदड़ों, सिन्ध में लरकाना जिले के अन्तर्गत हड़प्पा के अतिरिक्त कराची जिले मे अमरी तथा सिंध में चैन्हु-दड़ो तथा भूकरदड़ो, बलूचिस्तान मे केलात तथा अम्बाला मे जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमे पर्याप्त समानता है। इन अवशेषों के आधार पर विद्वानो ने एक नवीन सभ्यता के दर्शन किए हैं। क्योंकि ये सभी स्थान सिन्ध नदी की तलहटी मे स्थित हैं इस कारण इस सभ्यता को 'सिन्ध की घाटी की सभ्यता' की संज्ञा से विभूषित किया गया है। यह सभ्यता पूर्व में काठियावाड़ से शुरू होकर पश्चिम में मकरान तक विस्तृत थी। उत्तर में इसका विस्तार हिमालय तक था। इस सभ्यता के सुविस्तृत क्षेत्र को यदि एक त्रिभुज द्वारा प्रगट किया जाय, तो उसकी तीन भुजाएं क्रमश. ६५०, ६०० और ५५० मील लम्बी होगी।

काल - यह सभ्यता किस काल की है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। किन्तु अन्य पुरानी सभ्यताओं से सामञ्जस्य होने के कारण काल का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया गया है। मेसोपोटामिया, पश्चिमी फारस, मिस्र तथा सेस्टन की सभ्यताओं से साम्य होने के कारण इसे ४०००

इ० पूर्व की सभ्यता माना जा सकता है। श्री राधाकुमद मुखर्जी ने इसका काल ३२५० ई० पूर्व से २७५० ई० पूर्व माना है।

निवासी—इस बात का भी निश्चित रूप से पता नहीं है कि सिन्ध घाटी के प्राचीन निवासी कहां के रहने वाले थे और यहा कब और किस प्रकार भाकर बसे? यद्यपि इस सभ्यता का विकास भारत मे सिन्धु नदी की उपत्यका में हुआ, किन्तु यह भारतीय आर्य सभ्यता नहीं थी। कुछ विद्वानों का मत है कि ये सुमेरिया निवासियों की जाति के थे और कुछ का कहना है कि ये द्रविड़ जाति के थे। ये लोग न बहुत लम्बे और न बहुत ठिगने थे। इनका रंग सांवला था और शरीर से बड़े स्वस्थ तथा बलवान थे। जिस प्रकार चीन, मिस्र एवं मेसोपोटामिया के लोगों की उत्पत्ति के विषय में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता वैसे ही मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के लोगों की उत्पत्ति के बारे मे सर्वथा निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। मोहनजोदडो मे प्राप्त अवशेषो के आधार पर केवल यह कहा जा सकता है कि इस सभ्यता के संयुक्त निर्माता चार जातियो के लोग थे। यह चार जातिया क्रमशः प्रोटो आस्ट्रोलायड़, भूमध्य सागरीय, मंगोलियन तथा अल्पिनियन हैं। यह इस तथ्य का द्योतक है कि इस सभ्यता का निर्माण एशिया के भिन्न-भिन्न भागो से आई हुई जातियो ने किया था तथा उनकी सभ्यता पश्चिमी एशिया के 'एलम' और 'सुमेर' की सभ्यता से महान् थी।

नगर—सिन्धु सभ्यता शान्ति प्रिय लोगो की सभ्यता थी। राजाओ और उनके युद्ध आदि का कोई चिन्ह यहा नहीं मिलता है। ये साधारण व्यक्तियों के जीवन का एक इतिहास है। यह सभ्यता नगरो की सभ्यता है। मोहनजोदड़ो का नगर सात बार नष्ट हुआ और बसाया गया। हड़प्पा मोहनजोदड़ो से अधिक प्राचीन है लेकिन इसके खण्डहरो को खोद कर लोगों ने मकानो की ईंटे बनाने के काम मे ले लिया है। इसलिए यहा पर प्राचीन काल के अवशेष अधिक नहीं मिले हैं। किन्तु मोहनजोदड़ो के खण्डहर ज्यों के त्यों प्राप्त हुए हैं और ऐसा ज्ञात होता है कि यहां एक वर्गमील क्षेत्र मे एक टीले पर एक मठ

या माध्यम बना हुआ था। ये दोनों नगर भाड़ में पकाई गई ईंटों के बने हुए हैं और इसी कारण इनके खण्डहर ज्यों के त्यों प्राप्त हुए हैं। यहाँ के भवन बड़े विशाल, कई मंजिले और बड़े आराम के हैं और उनमें बहुत से कमरे उठने-बैठने, सामान रखने, खाना बनाने व नहाने धोने के अलग-अलग बने हुए हैं। इनमें बड़ी चौड़ी एवं सीधी सड़कें हैं जिनके दोनों तरफ एक सीध में मकान और दूकानें बनी हुई हैं। प्रत्येक मकान में रोशनी तथा हवा का पूरा ध्यान रखा गया है। मकानों में खिड़कियां तथा रोशनदान हैं। सड़कों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर खुली जगह है, जैसे चौराहों पर होती है। शहर से गन्दा पानी बाहर निकालने के लिए ढकी नालियां बनी हुई हैं जो हर एक मकान की नाली से मिली हुई है। मोहनजोदड़ो तो नगर बनावट का आदर्श नमूना है। इसकी चौड़ी-चौड़ी सड़कें उत्तर दक्षिण तक जा रही हैं। जिनमें बराबर दूरी पर उत्तर दक्षिण से आने वाली सड़कें मिलती हैं। शहर की मुख्य सड़क ३३ फीट चौड़ी है, अन्य सड़कें १८ फीट चौड़ी है। सब मकानों के दरवाजे, रास्ते व गलियों में थे। कोई दरवाजा या खिड़की बड़ी सड़क की तरफ नहीं थे। नदी में अक्सर बाढ़ आने के भय से सब मकान ऊंची कुर्सी देकर बनाये गये थे। नीचे की मंजिल में गोदाम, रसोई, स्नानघर व शौचालय थे। उठने बैठने, सोने खाने व रहने के कमरे दूसरी मंजिल पर होते थे। हर एक मकान के चौक में कुआ बना हुआ था। शहरों में जगह-जगह पर आम लोगों के लिए स्नानघर बने हुए थे। मोहनजोदड़ो में एक इतना विशाल स्नानघर मिला है जहां सैंकड़ों स्त्री पुरुष एक साथ स्नान कर सकते थे। यह स्नानघर ३९ फीट ३ इन्च लम्बा तथा २४ फीट २ इंच चौड़ा है। इसके चारों ओर सुन्दर सीढ़ियां हैं। इसके किनारों पर चारों ओर पक्के कमरे, हाल, बरामदे हैं। पास में एक हमाम तथा दो कुए है। अशुद्ध जल का निकालने की उचित व्यवस्था है। ऊष्ण वायु स्नान का भी सुन्दर प्रबन्ध था। कई विशाल भवनों के खण्डहरों से प्रकट होता है कि ये नगर की कचहरी, दफ्तर या म्युनिसिपैलटी के काम में आते होंगे। मकान सुन्दर तो अधिक नहीं हैं किन्तु मजबूत बने हुए हैं। हाल ही में कोटा-गिढ़ी नामक स्थान पर जो नगर निकला है वह इन दोनों से भी पुराना है।

कलाकौशल—इस युग के लोग साधारणतया नक्काशीदार तथा सादे वस्तु विभिन्न प्रकार के बर्तनों का प्रयोग करते थे जिन पर पशु वृक्ष आदि के चित्र चित्रित हैं। सर्वोत्तम नक्काशी वह है जिसमे छोटे छोटे वृत्तो की जजीरें दर्शाई गई हैं। बर्तनो के आकार कई प्रकार के हैं। बर्तन मिट्टी के बनते थे। अनेको नल, पहिये तथा मूर्तिया मिली हैं। ताँबे का विभिन्न रूप मे प्रयोग होता था। प्रस्तर मूर्तिया बहुत ही कलापूर्ण हैं। इस दृष्टि से हडप्पा से प्राप्त दो प्रस्तर मूर्तिया उल्लेखनीय हैं। इनमे एक तो लाल पत्थर का धड है और दूसरी दाई टाग उठाए एक नृतक की मूर्ति है जो सम्भवत नटराज शिव है। इन मूर्तियो की सरलता व सजीवता दर्शनीय है। साधारण कलाकौशल की विभिन्न वस्तुए भी मिली हैं जिनमे दो बन्दरो के चित्र बडे सुन्दर हैं। हाथीदाँत का बना पून दान भी उपलब्ध हुआ है जो बडा सुन्दर है।

आभूषण—उस युग मे अलकारो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे होता था। सभी श्रेणी के स्त्री पुरुष आभूषणो का प्रयोग करते थे। सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा आदि धातु तथा पत्थर के विभिन्न प्रकार के आभूषणो का प्रयोग होता था। हार, भुज-बन्द, कर-कगन तथा मुद्रिका स्त्री-पुरुष दोनो पहनते थे। कर-धनी, नथुनी, बाली, पायजेब तथा पतरा केवल स्त्रिया पहनती थी। धनी लोगों के आभूषण सोने, चाँदी, हाथीदात, सुलेमानी पत्थर तथा अन्य मूल्यवान रत्नो के बनते थे। निर्धन व्यक्ति ताँबे, अस्थि तथा पकी हुई मिट्टी के आभूषणो का प्रयोग करते थे।

वस्त्र—स्त्रिया साधारणत कमर तक कोई पोशाक नही पहनती थी। घाघरा केवल कमर के पट्टे मे गुथा हुआ होता था। पुरुष चूडीदार पजामा तथा दुपट्टे का प्रयोग करते थे। वस्त्र सूती होते थे।

उद्यम—इस स्थान की खुदाई मे गेहूँ तथा जौ प्राप्त हुए हैं, यह इस तथ्य का द्योतक है कि यह लोग कृषि करते थे। यह कहना कठिन है कि कृषि

में ये लोग हल का प्रयोग करते थे अथवा फावड़े का। विद्वानों का मत है कि सिन्धु घाटी में पर्याप्त वर्षा के कारण सिंचाई में कठिनाई नहीं होती थी। ये लोग कपास की खेती भी करते थे। वस्त्रों का प्रयोग भी सिद्ध करता है कि ये कताई तथा बुनाई से भी अनभिज्ञ नहीं थे। बर्तन बनाने का कार्य उन्नत दशा में था। बढ़ई, लौहार, सुनार आदि का व्यवसाय भी उच्च श्रेणी पर था। वे व्यापार करते थे। जो वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे उच्चकोटि के कलाकार थे।

भोजन—गेहूं, जौ, माँस,सूखे फल, दूध तथा अन्य तरकारी आदि इनका मुख्य भोजन था। खजूर के बीज तथा चावल भी मिले हैं जिनसे प्रकट होता है कि ये खजूर तथा चावल का भी खाने में प्रयोग करते थे।

खिलौने तथा आमोद प्रमोद के साधन—विभिन्न प्रकार के खिलौने खुदाई से प्राप्त हुए हैं। मिट्टी की छोटी गाडियों का इन्हें विशेष चाव था। स्त्रियों तथा पुरुषों के आकार के भी खिलौने प्राप्त हुए हैं। कुछ सीलों पर धनुष बाण के द्वारा आखेट चित्र बने हैं। ऐसा विदित होता है कि उन्हें आखेट का विशेष रूप से चाव था। चिड़ियां लड़ाने तथा मछली पकड़ने में भी आनन्द का अनुभव करते थे।

परिचित पशु– इन अवशेषों में जिन पशुओं की हड्डियां प्राप्त हुई हैं उन्हीं के आधार पर कहा जा सकता है कि ये लोग सांड, सूअर, भैंस, भेड़, ऊँट तथा हाथी से परिचित थे। ये सभी पालतू पशु थे। इनके अतिरिक्त जंगली पशुओं में भालू, बाघ, गेंडा, बन्दर, कुत्ता तथा खरगोश से भी इनका परिचय था। आवागमन के लिए बैलगाड़ी का प्रयोग किया जाता था।

आर्थिक व्यवस्था—यह लोग खेती करते, पशु पालते तथा साथ ही व्यापार करते थे। इनके सुन्दर भवन, आभूषणों का प्रयोग तथा सार्वजनिक स्नान प्रकट करते हैं कि इनकी आर्थिक अवस्था सुदृढ़ थी। साधारणतः लोग

सुसम्पन्न थे, कला, शिल्प-कला, स्थापत्य कला तथा चित्रकला के विकसित स्वरूप सम्पन्न अवस्था मे ही सम्भव हो सकते थे। इनके व्यापारिक सम्बन्ध न केवल भारत तक थे वरन् विदेशों मे भी इनका व्यापार था। इससे यह भली-भाँति कहा जा सकता है कि इस काल के लोग धनी थे। निर्धन वर्ग समाज की सेवा में रत था किन्तु उनके भोजन वस्त्र की समुचित व्यवस्था थी।

धर्म—जो मुद्रायें, मूर्तिया तथा अन्य सामग्री यहा पाई गई है उनके आधार पर ही उनके धर्म का निश्चिय किया जा सकता है। एक मूर्ति प्राप्त हुई है जो त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश की प्रतीक है। उक्त मूर्तियो के नेत्र अर्ध खुले हैं जिससे यह प्रकट होता है कि यह यौगिक क्रिया जानते थे। सिन्धु घाटी निवासी देवताओ की अपेक्षा देवियो की पूजा अधिक करते थे। कुछ मिट्टी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनके ऊपर बकरे या साड के सीग अंकित है जो पशुओ की पूजा की प्रथा प्रचलित होने का प्रमाण है। एक नग्न मूर्ति भी प्राप्त हुई है जो पद्मासन से एवं तिपाई पर बैठी है। इस मूर्ति के ३ मुख हैं तथा सीग है तथा चारो ओर हरिन, गेंडा, हाथी, शेर आदि जानवर हैं। तीन मूर्तिया और मिली हैं जिन पर अंकित देवता को सर मार्शल ने शिव का रूप माना है। अत: हम कह सकते हैं कि इस युग मे मूर्तियो की पूजा होती थी। कुछ विद्वानो का तो यहा तक कहना है कि 'शैव' धर्म का आदि स्वरूप यही से प्रारम्भ होता है।

मृतक क्रिया—ये लोग मृतक शरीर की कई प्रकार से अन्त्येष्टि क्रिया करते थे। मृत शरीर को जलाना, गाडना आदि प्रथायें प्रचलित थी। कभी-कभी मृत शरीर की राख भी गाड दी जाती थी। गाडने के समय मृतक के साथ जीवन की आवश्यक वस्तुएं भी रखी जाती थी।

भाषा—उक्त काल की जो मुद्रायें प्राप्त हैं उन पर तत्कालीन भाषा मे कुछ अंकित शब्द मिलते हैं जिन्हे पढने मे अभी तक सफलता नही मिली है। मुद्राओं पर अंकित लेख चित्रवत् हैं जो बेबीलोन की प्रोटोएला माइट लिपि से

बहुत मिलती-जुलती है। फादर हेराम ने इस लिपी को प्रोटो द्राविड़ का नाम दिया है। मुद्राओं तथा अन्य लेखों, बर्तन तथा चूड़ियों, ताम्रपत्रों में इस लिपि के ३९६ चिन्ह पाये जाते हैं। लिखने का ढंग दायें से बायें को था।

सिन्धु की घाटी की सभ्यता उच्च श्रेणी की सभ्यता थी। इसका विकास एकाकी नहीं हुआ, वरन् इसका तत्कालीन सभ्यताओं से घनिष्ट सम्बन्ध था। इन्हीं के सहयोग से इनका विकास हुआ था। गार्डन चाइल्ड ने लिखा है 'सिन्धु-सभ्यता एक विशिष्ट वातावरण में मानव जीवन के सम्पूर्ण सम्बन्धों को स्पष्ट करती है। यह मनुष्य के वर्षों के श्रम का प्रति फल हो सकता है। वह एक स्थाई सभ्यता थी, वर्तमान भारत पर इसकी छाप पड़ी है और वह वर्तमान भारतीय संस्कृति का आधार है।' मार्शल ने भी लिखा है 'पंजाब तथा सिंध में....एक अत्यन्त उन्नतिशील तथा परस्पर मिलती-जुलती सभ्यता का प्रसार था जो तत्कालीन मिस्र तथा मेसोपोटामिया की सभ्यता से भिन्न होते हुए भी कुछ बातों में इनसे अधिक उन्नतिशील थी।' बाह्य आक्रमणों तथा सिंध नदी के मार्ग परिवर्तनों अथवा बार-बार आने वाली बाढ़ों के कारण इस महान् सभ्यता का विनाश हो गया।

[२] आर्यजाति का भारत में आगमन

भारतीय सभ्यता का एक नया अध्याय आर्यों के आगमन से प्रारम्भ होता है। आर्य जाति का मूल अभिजन कौन सा था इस सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक मत हैं—

(१) मध्य एशिया—जे. वी. रोहड़ ने १८२० ई० में इस मत का प्रतिपादन किया कि आर्य जाति का मूल अभिजन मध्य एशिया है तथा ये लोग बैक्ट्रिया में निवास करते थे। तत्पश्चात् वे दक्षिण पूर्व और पश्चिमी दिशाओं को फैले। श्लीगल, पाट और प्रो० मैक्समुलर ने भी रोहड़ का समर्थन किया। मैक्समूलर के अनुसार आर्य मध्य एशिया में निवास करते थे। इन आर्यों की

एक शाखा दक्षिण पूर्व की ओर गई, वहा से भारतीय तथा ईरानी आर्यों की दो उप-शाखायें हो गई । यही से आर्य जाति की अन्य शाखायें पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम को गई और धीरे धीरे सारे यूरोप मे फैल गई। सन् १८७४ ई० मे सेग्रस ने भी तुलनात्मक भाषा विज्ञान के आधार पर मध्य एशिया को आर्यों का अभिजन बताया।

(२) उत्तरी ध्रु व--वैदिक सहिताग्रो के आधार पर भारत के विद्वान बाल गगाधर तिलक ने उत्तरी ध्रु व के क्षेत्र को ही आर्यों का मूल निवास स्थान प्रतिपादित किया है। ऋग्वेद मे अनेक सूक्त मे ६ मास का दिन तथा ६ मास की रात का वर्णन आता है। एक सूक्त द्वारा अत्यन्त दीर्घ काल तक रहने वाली ऊषा की स्तुति की है। तिलक के अनुसार यह उषा कुछ क्षण तक रहने वाली भारतीय ऊषा नही हो सकती है। उनका मत है कि यद्यपि आर्य ऋग्वैदिक काल में सप्त सिंधु क्षेत्र मे निवास करते थे किन्तु वे अपने अतीत को भूले नहीं थे और इसी कारण से उत्तरी ध्रु व पर होने वाले छ मासीय दिन अथवा रात का वर्णन किया है। तिलक के इस मत को अन्य विद्वान अधिक महत्व नही देते हैं।

सप्त सैन्दव--सप्त सैन्दव प्रदेश से तात्पर्य उस प्रदेश से है जो सरस्वती, शुतुद्रि, परुष्णी, असिक्नी, वितस्ता और सिन्धु आदि सात नदियो से सिंचित है। प्रसिद्ध भारतीय विद्वानो ने इसी प्रदेश को आर्यों का मूल निवास स्थान स्वीकार किया है। अविनाशचन्द्र दास ने अपने गहन अध्ययन द्वारा प्रतिपादित किया है कि ऋग्वेद के अध्ययन से प्रगट होता है कि आर्य सप्त सैन्दव प्रदेश के निवासी हैं। तब वर्तमान राजस्थान, पूर्वी उत्तर प्रदश, बिहार और बगाल के प्रदेशो मे समुद्र था। इन्हीं को वैदिक आर्यो ने दक्षिणी तथा पूर्वी समुद्र कहा है। ऋग्वेद के आधार पर ही दास ने यह घोषित किया है कि आर्यों की एक शाखा अहुर मज्द (असुर मेधावी) की उपासिका होने के कारण अन्य आर्यों से संघर्ष में पराजित होकर पश्चिमी देशो को गई और ईरान में बस गई। सप्त

सैन्दव क्षेत्र में एक आर्य जाति 'पाणि' व्यापार मे कुशल थी जो पश्चिम में जाकर बस गई तथा बाद में प्यूनिक तथा फिनीशियन जाति कहलाई। उनके अनुसार आर्यों की अन्य शाखायें यहीं से यूरोप को गईं। स्व० गंगानाथ झा भारत के ब्रह्मर्षि देशों को आर्यों का निवास स्थान मानते हैं। श्री डी. एस. त्रिवेदी मुल्तान के समीप देविकानन्द को आर्यों का मूल अभिजन स्वीकार करते हैं। श्री एल. डी, कल्ला कश्मीर तथा हिमालय प्रदेश को आर्यों का निवास स्थान मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान गंगा के मैदान को भी आर्यों का मूल निवास स्थान मानते हैं।

रूस का दक्षिणी प्रदेश—प्रो० मायर्स ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान के आधार पर कैस्पियन सागर के पूर्व में रूस के दक्षिणी भाग को आर्यों का आदि देश माना है। प्रो० चाइल्ड भी इस मत का समर्थन करते हैं। वर्तमान यूरोपीय विद्वान इसी मत को मानते हैं।

डेन्यूब नदी की घाटी—तुलनात्मक भाषा विज्ञान के आधार पर कुछ विद्वानों ने आर्यों के मूल स्थान को हंगरी या डेन्यूब नदी की घाटी का प्रदेश कहा है। पशुओं, वृक्षों तथा वनस्पतियों के आधार पर यह निश्चित हुआ कि आर्यों के लिए सर्वोत्तम तथा उपयुक्त स्थान डेन्यूब नदी की घाटी है। इस मत के प्रबल समर्थक प्रो० गाइल्स हैं। कैम्ब्रिज विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित भारत के प्राचीन साहित्य मे भी इस मत का समर्थन किया गया है।

मध्य तथा पश्चिमी एशिया—पेन्का के नेतृत्व मे कुछ विद्वानों ने जर्मनी अथवा जर्मन प्रदेशों को आर्यों का आदि स्थान बताया है। इन विद्वानों ने जातीयता का सहारा लिया है। उनका मत है कि इन्डो-यूरोपीय भाषा ही जर्मनी मे बोली जाती रही है तथा जर्मनी के इस प्रदेश पर कभी किसी अन्य जाति का अधिकार नहीं हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि इन्डो-यूरोपीय भाषा का जन्म इसी प्रदेश मे हुआ। आर्यों की भाषा भी इन्डो-यूरोपीय भाषा के सदृश

है मत आर्य लोग जर्मनी के निवासी हैं। पेन्का के अनुसार स्केन्डिनेविया आर्यों का आदि देश है।

आर्य जाति का मूल अभिजन कौनसा था, इस सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वानो के मत का अध्ययन करने के उपरान्त भी हम आर्यो के मूल निवास स्थान का अधिकृत नाम नही बता सकते हैं। यदि राधा कुमुद मुखर्जी का यह प्रयास कि 'आर्य सभ्यता भारत की प्राचीनतम सभ्यता नही तो कम से कम सिंधु की समकालीन तो अवश्य ही है' सफल हो जाय तो यह प्रश्न हल हो सकता है। फिर हम यह निश्चयपूर्वक कह सकेंगे कि आर्य भारत के ही निवासी हैं तथा यहीं से आर्य अन्य देशो को गये।

आर्य जाति का मूल निवास स्थान चाहे सप्त सैन्धव देश मे हो या कैस्पियन सागर के पूर्ववर्ती प्रदेश में, परन्तु यह निश्चत है कि इस देश (भारत) मे आर्यों का आगमन २००० ई० पूर्व या उससे पहले प्रारम्भ हुआ। उस समय दक्षिणी पूर्वी यूरोप और मध्य एशिया घने वनो से ढके थे और इनमे कई घूमने फिरने वाली जातिया रहती थी जो गोरे र ग, लम्बे कद, चौडे माथे, चौडे सीने और नीली आखो वाली थी। इस जाति की भाषा भी एक थी। जब इनकी जनसंख्या अधिक बढ गई तो उन्होने पश्चिम व पूर्व की ओर फैलना शुरु किया। ये अपनी बैल गाडियो मे बैठकर निकल पडे। इनमे से बहुत से तो यूरोप मे आ बसे जिनकी सन्तान अ ग्रे ज, फ्रेंच और जर्मन हैं। उनमे कुछ पूर्व की ओर ईरान और अफगानिस्तान होते हुए भारत तक आ पहुचे। डा० हार्नली के अनुसार : आर्य लोग भारत मे दो धाराओ मे आये। पहली धारा उत्तर पश्चिम की ओर से प्रविष्ट होकर भारत मे मध्य देश (गगा यमुना का क्षेत्र) तक चली गई। आर्यों की दूसरी धारा ने मध्य हिमालय (किन्नर देश, गढ़वाल और कूर्माचल) के रास्ता से भारत मे प्रवेश किया और अपने से पहले बसे हुए आर्यो को पूर्व पश्चिम और दक्षिण की तरफ धकेल दिया। पहले आने वाले आर्य मानव वंश के थे, और दूसरे ऐल वंश के।

आर्यों की जो शाखा भारत मे प्रविष्ट हुई उसे इस देश में अनेक आर्य-भिन्न जातियो के साथ युद्ध करने पड़े। वैदिक सूत्रों मे इन आर्य-भिन्न जातियों को 'दस्यु' कहा गया है। ये अनार्य लोग काले रंग के और चपटी नाक वाले थे। ये लोग अच्छे बड़े पुरों में निवास करते थे और इनके अनेक सुदृढ़ गढ़ भी बने हुए थे। ऋग्वेद मे ऐसे ही एक सौ खम्भों वाले दुर्ग का उल्लेख किया गया है। इन्हें परास्त करने के लिए आर्यों को घनघोर युद्ध करने पड़े और एक युद्ध में तो पचास हजार के लगभग 'दासो' के मारे जाने का संकेत ऋग्वेद में दिया गया है। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों मे आर्य और अनार्यों के इस संघर्ष पर प्रकाश पड़ता है। इन्द्र की स्तुति मे कहा गया—'हमे सब ओर से दस्यु घेरे हुए हैं। वे यज्ञ कर्म नहीं करते (अकर्मन), न वे किसी चीज को मानते हैं (अमन्तु), उनके व्रत हम से भिन्न हैं (अन्यव्रत), वे मनुष्य जैसा व्यवहार नही करते (अमानुषः)। हे शत्रु नाशन तू उनका वध कर और दुष्टों का नाश कर।' आर्यों ने इन दस्युओं व दासों को परास्त करके भारत में अपनी सत्ता स्थापित की।

[२] वैदिक युग

भारतीय आर्यों के इतिहास के प्राचीनतम (वैवस्त मनु से महाभारत तक) युग को वैदिक युग कहते हैं। इसका कारण यह है कि वेद आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं और उनके अनुशीलन से हम आर्यों की सभ्यता, संस्कृति और धर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आर्य जाति का सबसे प्राचीन साहित्य वेद है। वेद का अर्थ है ज्ञान। वेद चार हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। ऋग्वेद सबसे प्राचीन है तथा अथर्ववेद सबसे बाद मे लिखा गया है। आर्यों का विश्वास है कि इन वेदों की ऋचाओं को स्वयं ईश्वर ने उच्चारित किया और आर्य महर्षियों ने सुनकर इन्हें लिपिबद्ध किया है। वेद मुख्यतया पद्य मे है, यद्यपि उनमें गद्य भाग भी विद्यमान है। वैदिक पद्य को ऋग् या ऋचा कहते हैं। वैदिक गद्य को यजुष कहा जाता है और वेदों में जो गीतात्मक पद्य हैं उन्हें साम कहते हैं। ऋग्वेद मे १०२८ सूक्त हैं। यजु-

वे॑द के दो प्रधान रूप इस समय मिलते हैं, शुक्ल यजुर्वे॑द और कृष्ण यजुर्वे॑द। सामवेद में १८१० मंत्र हैं जिन्हें गीत के रूप मे गाया जा सकता है। अथर्ववेद की दो शाखायें हैं—शौनक और पिप्पलाद। अथर्ववेद मे कुल मिलाकर २० अध्याय और ७२१ सूक्त हैं। वैदिक साहित्य का सरा भाग ब्राह्मण ग्रन्थ है जो गद्य मे लिखे गए हैं। इनमे कर्मकाण्ड की प्रधानता है। वेदो में चर्चित यज्ञो के लिए, कब और कैसे अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए, कुश किधर और क्यो रखना चाहिए आदि यज्ञ सम्बन्धी अनेक छोटी मोटी बातो का विवेचन किया गया है। अन्त मे आरण्यक और उपनिषद् हैं। इनमे आध्यात्मिक बातों का बड़ा गभीर विवेचन किया गया है। "उपनिषद् साहित्य प्रे रणा मूलक है, उसके अनुशीलन से मानव चेतना कभी २ तो सचमुच प्रकृति और अस्तित्व के गहनतम तल को छू लेती है।" उपनिषदो में प्रमुख हैं—बृहदारण्यक, तैतीरीय, ऐतरीय, केन, काठक, ईशा, श्वेताश्वतर, मुण्डक, महानारायण, प्रश्न, मैत्रायणीय तथा माण्डूक्य।

वदिक सभ्यता—वेदो की रचना काल मे पर्याप्त अन्तर है अत सुविधा की दृष्टि से वैदिक सभ्यता का अध्ययन हम दो भागो मे कर सकते हैं—पूर्व वैदिक सभ्यता तथा उत्तर वैदिक सभ्यता।

ऋग्वेद सभ्यता—पूर्व वै दिक सभ्यता ऋग्वेद की सभ्यता है। इस समय के आर्य विस्तृत भू प्रदेश मे बसे हुए थे। ऋग्वेद कालीन भारत की भौगोलिक सीमाए ऋग्वेद मे आये कुछ नामो से जानी जाती है। पश्चिम की ओर कुभा (काबुल), क्रुमु (कुर्रम), गोमती, सुवास्तु (स्वात) नदिया प्रकट करती हैं कि उस समय अफगानिस्तान भी भारत का अङ्ग था। उसके बाद पजाब की पाच नदियो का उल्लेख है—सिन्धु, झेलम, चुनाव, रावी, व्यास और उनके साथ ही सतलज और सरस्वती, यमुना और गङ्गा के नाम भी आए हैं। ये भौगोलिक प्रदेश कई वै दिक जनो मे बँटा हुआ था। प्रधानजन थे गान्धार, मूजवत, मनु, द्रुस्यु और तुर वश (परुष्णी के तट पर), पुरु और भरत (जो मध्य प्रदेश मे थे)।

राजनीतिक सङ्गठन--इस काल मे भारत में राजनीतिक एकता का भी पूरे वेग से विकास हो रहा था। ऋग्वेद मे दाशराज युद्ध का वर्णन है जो भरतों के राजा सुदास के साथ हुआ। यह युद्ध उत्तर पश्चिम में बसे हुए पूर्व कालीन जन और ब्रह्मावर्त के उत्तर कालीन आर्यों के बीच राज्याधिकार के लिए हुआ जिसमें ऋग्वेद समय की सभी जातियों (आर्य व अनार्य) ने भाग लिया। इस युद्ध में सुदास की विजय हुई तथा वह ऋग्वेद कालीन भारत का सर्वोपरि सम्राट बन गया।

सामाजिक अवस्था—ऋग्वेद काल मे सामाजिक जीवन सुसंगठित था। आर्यों के सामाजिक जीवन की इकाई कुटुम्ब होती थी। कुटुम्ब पैतृक होते थे जिसका प्रधान कुटुम्ब का वयोवृद्ध व्यक्ति होता था तथा उसकी आज्ञा का पालन परिवार के सभी व्यक्ति करते थे। कुटुम्ब का प्रधान गृहपति कहलाता था जो सौजन्यता, दया, प्रेम तथा सहानुभूति से कुटुम्ब का नेतृत्व करता था। सम्मिलित परिवार प्रथा प्रचलित थी। आर्यों के घर बास के बने होते थे। लकड़ी तथा शरपत्र का प्रयोग भी गृह निर्माण में किया जाता था। स्त्रियां तथा पुरुषों के निमित्त पृथक कक्षों का निर्माण होता था।

वैवाहिक व्यवस्था—विवाह जीवन का पवित्र संस्कार माना जाता था जिसका उद्देश्य सन्तान उत्पत्ति था। बहु-विवाह नहीं होते थे। एक पत्नी व्रत ही युग धर्म था परन्तु राज घरानों में बहु विवाह की प्रथा थी। पत्नी को विवाह के उपरान्त पति की आज्ञानुसार कार्य करना पड़ता था किन्तु स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण था। वह गृह स्वामिनी होती थी तथा पति के साथ धार्मिक संस्कारों मे भाग लेती थी।

स्त्रियों की दशा—स्त्रियों को समाज मे समानता के अधिकार प्राप्त थे। वह पति को मन्त्रणा दे सकती थी। धर्म-कर्म में उसका सहयोग आवश्यक था। पर्दे की प्रथा न थी। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। कामायनी, गर्गी आदि स्त्रियों ने वैदिक ऋचाओं की रचना की है। घर मे

स्त्री का आदर था। पर आर्य नियमो के अनुसार उन्हे पुरुष सम्बन्धियो के आश्रय मे रहना होता था। विधवा विवाह वर्जित नही था परन्तु बाल विवाह नही होते थे।

वेश–भूषा— आर्यों की वेश भूषा साधारण थी। साधारणतय: दो वस्त्र पहने जाते थे। शरीर के ऊपरी भाग पर उत्तरीय तथा नीचे के भाग पर अधिवस्त्र। वस्त्र सूती, ऊनी तथा रेशमी होते थे। मृगछाला तथा चमडे का प्रयोग भी वस्त्रो के स्थान पर होता था। इनको आभूषणो का भी शौक था। स्त्री तथा पुरुष दोनो ही आभूषणो का प्रयोग करते थे। हार, कुण्डल, बाली आदि प्रचलित थे। पुरुष बालो का जूडा बनाते तथा स्त्रिया वेणी धारण करती थी। पुरुषो मे बाल बनाने की प्रथा थी।

खाद्य पदार्थ—आर्यों का भोजन सादा होता था। दूध तथा दूध से निर्मित पदार्थ, गौमास को छोडकर अन्य मांस, हरे फल एवं सब्जियों का प्रयोग अधिक होता था। आर्य सोमरस का पान भी करते थे, सुरापान होता था, किन्तु यह निन्दनीय समझा जाता था। सोमरस पान यज्ञो के अवसर पर विशेष रूप से होता था।

आमोद-प्रमोद के साधन—*आर्य लोग आमोद-प्रमोद मे काफी रुचि* लेते थे। नृत्य तथा गायन विद्या का प्रचलन था। स्त्रिया वीणा तथा भाज के साथ नृत्य तथा गान मे विशेष रुचि लेती थी। पुरुष भी नृत्य करते थे। घुड दौड तथा रथो की दौड का भी इनको शौक था। द्यूत को भी मनोविनोद का साधन समझा जाता था तथा आखेट भी मन बहलाव का साधन था। पशु तथा पक्षियों के शिकार मे भी आनन्द का अनुभव किया जाता था।

शिक्षा—*ऋग्वेद मे आर्यों की तत्कालीन शिक्षा पद्धति का वर्णन है।* शिक्षा मौखिक होती थी। वेद मन्त्रों के उच्चारण की तुलना दादुर ध्वनि से की गई है। सर्व प्रथम गुरु मन्त्रो का उच्चारण करता था तथा विद्यार्थी उन्हें

दुहराते थे। कण्ठस्थ करने पर विशेष बल दिया जाता था। पिता भी कभी-कभी गुरु का कार्य करता था। नैतिक बल की प्राप्ति एवं बुद्धि की प्रखरता प्राप्त करना विद्यार्थी का उद्देश्य होता था।

औषधियों का ज्ञान—इस काल में कुशल चिकित्सक होते थे। वैद्यों का विशेष सम्मान होता था। अश्विन को औषधि शास्त्र का देवता माना जाता था।

मृतक क्रिया—मृतक शरीर को जलाने की प्रथा थी। कभी २ गाड़ भी देते थे। विधवा स्त्री को जलाने का प्रचलन न था।

वर्ण तथा जाति व्यवस्था—प्रारम्भ में ही आर्य तथा अनार्यों का भेद स्पष्ट था। अनार्यों को दास समझा जाता था। तथा उन्हे घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। पुरुष सूक्त में चार वर्णों का उल्लेख मिलता है। वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु जाति व्यवस्था में जटिलता नहीं हो पाई थी। अन्तर्जातीय विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं था। आर्यों के द्वारा अनार्यों को अपना ऋषि स्वीकार किये जाने के प्रमाण भी मिले हैं। वेद के संकलन कर्ता व्यास भी काली चर्म के अनार्य ही थे जो मछुआ स्त्री की सन्तान थे तथा इतिहास में "बादरायण दी ब्लेक" के नाम से विख्यात है।

वर्णाश्रम व्यवस्था—इस युग में आश्रम व्यवस्था का विकास हो चुका था। सभी आर्यों को आश्रम धर्म का पालन अनिवार्यतः करना पड़ता था। जीवन का चतुर्मुखी विकास करने के निमित्त जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया था। जीवन के प्रथम चरण में वेद का अध्ययन कर ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का पालन करना होता था। तत्पश्चात् माता-पिता तथा गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त कर गृहस्थ जीवन का श्रीगणेश होता था। तदुपरान्त वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम थे। सन्यास आश्रम के अनुसार वन में निवास करना और सन्यासी जीवन व्यतीत करने का विधान था।

आर्थिक जीवन--पशु तथा दास ही आर्यों की मुख्य सम्पत्ति थी। गाय, बैल, घोड़ा, भैंस, बकरी आदि पालतू पशु थे। भूमि व्यक्तिगत सम्पति मानी जाती थी। सिक्कों का उल्लेख भी है किन्तु मुख्य रूप से वस्तु विनिमय की प्रथा प्रचलित थी। गौ वस्तु विनिमय का मुख्य साधन था। शिल्पियों का समाज में विशेष आदर था। बढ़ई, लोहार, कुम्हार आदि का व्यवसाय भी प्रचलित था। कताई तथा बुनाई का कार्य भी होता था।

धार्मिक जीवन—वैदिक धर्म का रूप हमें उपासना मे मिलता है। देवताओं की उपासना एवं पितृ पूजा ही उनके मुख्य अंग थे।' इस युग के आर्य प्रकृति की विलक्षण शक्तियों को देवता स्वीकार करके उनकी ही उपासना करते थे। सूर्य के विभिन्न रूपों, वर्षा काल के मेघों, विद्युत् के प्रकाश आदि मे प्रकृति देवी का साक्षात्कार कर उन्हें ही देवता की कोटि मे मानते थे। अग्नि, इन्द्र, वरुण तथा वायु इनके प्रमुख देवता थे। इन्द्र का स्थान विशेष महत्व का था। ये आकाश, पृथ्वी जल आदि के शासक माने गये हैं। आर्य लोग मूर्ति पूजक नहीं थे। देवता को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करते थे। आर्यों का नैतिक स्तर काफी ऊँचा था। धर्म में जटिलता न थी। सादा जीवन व उच्च विचार इनके धर्म का सार था।

राजनैतिक व्यवस्था—राजनैतिक विकास इस युग मे निम्नलिखित समुदायों के क्रम से हुआ था। (१) गृह अथवा कुल (२) ग्राम (३) विश् (४) जन (५) राष्ट्र।

कुल अथवा परिवार का समाज के निर्माण मे महत्वपूर्ण स्थान था। कई परिवारों को मिलाकर ग्राम बनता था। ग्राम का प्रधान ग्रामणी कहलाता था। ग्रामों को मिलाकर विश् बनता था तथा विश्पति इसका प्रमुख होता था। विश् से ऊपर जन होते थे। जनों को मिलाकर राष्ट्र बनता था। राष्ट्र का प्रमुख राजा होता था।

राजा का निर्वाचन प्रजा द्वारा होता था। प्रायः राजा का ज्येष्ठ पुत्र उसका उत्तराधिकारी होता था। किन्तु प्रजा को अयोग्य राजा को हटाने का अधिकार था। राजा प्रजा का रक्षक समझा जाता था। न्याय भी उसी के हाथ में था। राजा के अधिकार अपरिमित थे किन्तु वह स्वेच्छाचारी नहीं था। राजा की सहायता के लिए सेनानी या पुरोहित रहते थे। पुरोहित का पद विशेष सम्मान का था। सेनानी युद्ध कार्य में राजा की सहायता करता था। इनके अतिरिक्त राजा की सहायता के लिए सभा एवं समिति होती थी। सभा और समिति का मुख्य कार्य राजा के समक्ष लोकमत को स्पष्ट रूप से व्यक्त करना था। राजा को इनका मत ध्यान में रख कर कार्य करना पड़ता था। राजतन्त्र के अतिरिक्त गणतन्त्र शासन प्रणाली का प्रचलन भी ऋग्वेद काल में था

संक्षेप में ऋग्वेद काल की सभ्यता उच्चकोटि की सभ्यता थी। राधा-कुमुद मुखर्जी ने लिखा है "ऋग्वेद में हमें भारतीय संस्कृति के उषा-काल के स्थान पर उसके मध्यान्ह काल के दर्शन होते हैं। यह संस्कृति व सभ्यता देवी सरस्वती की उसी मूर्ति के समान है जो पूर्ण युवती के रूप में एक साथ प्रकट हुई।" ऋग्वेद में आर्यों का जीवन के प्रति निश्चित दृष्टिकोण था। उनकी सामाजिक रचना उच्चकोटि की थी। नैतिक स्तर महान् था, ऋग्वेदकालीन आर्य राजनैतिक दृष्टिकोण से सुसंगठित थे तथा उनमें जीवन का चतुर्मुखी विकास करने की क्षमता थी।

उत्तर वैदिक युग- ऋग्वेद युग के उपरान्त के काल को हम उत्तर वैदिक युग के नाम से पुकारते हैं। इस काल के ज्ञान के आधार यजुर्वेद साम-वेद, अथर्ववेद की संहितायें, ब्राह्मण आरण्यक तथा उपनिषद् ग्रन्थ हैं। आर्य संस्कृति इस काल में धीरे-धीरे दक्षिण तथा पूर्व की ओर प्रसारित हो रही थी। आर्य संस्कृति का केन्द्र अब कुरुक्षेत्र था जिसके दक्षिण में खाण्डव, उत्तर में तुर्घ्न और पश्चिम में परीण था। गंगा युमुना का दोआबों 'मध्य प्रदेश

(आर्यावर्त्त) अब महत्वपूर्ण स्थान बन गया था। कौशल काशी तथा विदेह आर्य सभ्यता के नये केन्द्र बन गये थे। हिमाचल व विन्ध्याचल के मध्य का प्राय समस्त भारत आर्यों की ज्ञान परिधि मे आ चुका था। यहीं से आर्य सभ्यता का प्रसार भारत के अन्य भागो में हुआ तथा आर्य जाति अन्य जातियों के सम्पर्क मे आई।

राजनैतिक अवस्था—इस काल की राजनैतिक व्यवस्था में पर्याप्त अन्तर हो गया था। ऋग्वेद के भरत अब अपनी शक्ति खो चुके थे। इस युग म कुरु और पान्चाल आदि राज्यो का संगठन हुआ। इस युग के राजा आदर्श थे। काशी के राजा अजातशत्रु और वदेह क जनक प्रसिद्ध दार्शनिक थे। इसमे महान् ब्राह्मण ज्ञान था। जनों के सम्मिश्रण और उनकी दिग्विजययों के परिणाम स्वरूप विशाल राज्यों का उदय हो गया था। इस युग के प्रतिभावान तथा प्रतापी शासकों मे परिक्षित, जनमेजय का नाम प्रसिद्ध है। इस युग के राजा 'अश्वमेध', 'राजसूर्य, एव 'वाजपेय' का अनुष्ठान कर अपनी उत्तरोत्तर बढ़ती शक्ति का परिचय देने लगे थे। ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण म कुछ ऐसे राजाओं का वर्णन है जिन्होंने अश्वमेध तथा ऐन्द्र महाभिषेक यज्ञ कराया था। इनमे दार्शनिक सात्राजित और पुरुकुत्स ऐक्ष्वाकु उल्लेखनीय हैं।

राजा की स्थिति– राज्य सीमा के प्रसार के साथ-साथ राजाओं की शक्ति में वृद्धि भी हो रही थी। राजा सेना का नेतृत्व करता, दुष्टों का दमन करता, धर्म की रक्षा तथा प्रतिष्ठा करता था। राज्याभिषेक के समय उसे चेतावनी दी जाती, 'हे राजन् यह राज्य तुझे कृषि, प्रगति एवं साधारण जनता के सुख वैभव के लिए दिया जाता है।' उपरोक्त कथन में राजा के कार्यों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। राजा के अधिकार अपरिमित हो गये थे। कर्तव्य पालन के लिए उसे असाधारण अधिकार प्राप्त थे। वह न्यायपति था तथा उसे दण्ड देने का पूर्ण अधिकार था। भूमि राजा की सम्पत्ति नहीं प्रजा की धरोहर समझी जाती थी। राजा सभा व समिति के सहयोग से कार्य

करता था। सभा तथा समिति को अधिकार था कि वह अयोग्य राजा को पदच्युत कर दे। राजा की सहायता के लिए अधिकारी वृन्द की संस्या मे वृद्धि हो गई थी। पुरोहित, ग्रामणी तथा सेनानी के अतिरिक्त अब कोषाध्यक्ष प्रतिहार, महिषि (पटरानी), सूत (सारथी) आदि भी होने लगे थे। पुलिस के अधिकारी उग्र कहलाते थे। मुख्य रूप से राजतन्त्र शासन प्रणाली का प्रचलन था। राज्याधिकारी उत्तराधिकार के नियम के अनुसार शासक होता था। कभी-कभी प्रजा के द्वारा निर्वाचित भी होता था। गणतन्त्र प्रणाली का भी विकास हो रहा था।

सामाजिक अवस्था—राजनैतिक परिवर्तनों के साथ साथ आर्यों की सामाजिक अवस्था मे भी परिवर्तन हो गये थे। इस युग में आर्य निश्चित रूप से चार वर्णों मे विभाजित हो चुके थे। जो लोग धर्म की व्यवस्था को समझते थे, कर्मकाण्ड तथा यज्ञानुष्ठान में पारंगत थे, पठन-पाठन मे लीन रहते थे तथा दान ग्रहण करते थे ब्राह्मण कहलाये। समाज मे इनका सर्वाधिक महत्व तथा आदर था। जो युद्ध करते थे, भूमि के मालिक थे, राजनीति में सक्रिय भाग लेते तथा रक्षा का भार जिनका कर्तव्य बन गया था क्षत्रिय कहलाते थे। राजा साधारणतया इसी वर्ग का होता था। अतः क्षत्रियों का समाज में काफी आदर था। शेष आर्य जनता जिनमें व्यापारी, कृषक तथा शिल्पी थे वैश्य कहलाये। इनका ब्राह्मण तथा क्षत्रियों की अपेक्षा कम सम्मान था किन्तु यह वर्ग समाज का आवश्यक अंग था क्योंकि समाज के भरण-पोषण का मुख्य दायित्व इस वर्ग पर था। इस व्यवस्था का निम्नतम स्तर उन 'शूद्रों' से बना जो दासों तथा दस्युओं में से विजित वर्गों में से था तथा जिनका कर्तव्य शेष तीनों वर्णों की सेवा करना था। ये परतन्त्र थे तथा आर्यों के सेवक थे जिनका इच्छानुकूल निष्कासन तथा वध किया जा सकता था। विद्या की प्राप्ति वैश्य, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय ही कर सकता था अतएव वे द्विज भी कहलाते थे। किन्तु वर्ण भेद बहुत दृढ़ नहीं था। वर्ण भेद का मुख्य आधार जन्म न होकर कर्म था। धर्माचरण द्वारा निकृष्ट वर्ण का व्यक्ति अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त कर

सकता था और अधर्म का आचरण करने से उत्कृष्ट वर्ण का व्यक्ति अपने से निचले वर्ण में आसकता था। राजा शान्तनु के भाई देवापि ने याज्ञिक अनुष्ठान प्राप्त करके ब्राह्मण पद प्राप्त किया। राजा जनक तथा विश्वामित्र भी इस बात के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। विविध वर्णों मे विवाह भी होते थे। महर्षि च्यवन ने राजन्य शर्यात की कन्या के साथ विवाह किया था।

शूद्र तथा स्त्री का स्थान—शूद्र निश्चित् रूप से समाज का अलग अंग माना जाता था। उन्हें यज्ञ तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने का अधिकार नहीं था। नारी के सम्मान मे भी अब कमी होगई थी। किन्तु नारी शिक्षा प्राप्त कर सकती थी तथा धर्मानुष्ठानों में उसका सहयोग वांछनीय था। नारी को संपत्ति पर अधिकार प्राप्त नहीं था। बहु विवाह तथा बाल विवाह की प्रथा प्रचलित होगई थी।

शिक्षा—शिक्षा के क्षेत्र में इस युग में पर्याप्त प्रगति हुई। शिक्षा मौखिक होती थी। वेदों की ऋचाओं को लिखना अपवित्र समझा जाता था, उन्हें कण्ठस्थ कर लिया जाता था। वेदों, उपनिषदों के साथ व्याकरण, तर्क शास्त्र तथा कानून का अध्ययन भी होता था। विद्यार्थी जीवन मे ब्रह्मचर्य पालन करता होता था। सरल तथा सादा जीवन ही विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त समझा जाता था। भिक्षा माँगकर निर्वाह करना, विनम्रता, पवित्र जीवन विद्यार्थी जीवन के प्रमुख लक्षण थे।

भाषा व लिपि—इस काल में लेखन कला का ज्ञान हो गया था। भाषा के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ। प्राकृत् भाषाओं का उदय हुआ। मागधी महाराष्ट्री तथा शौर सैनी आदि प्राकृत् भाषायें विभिन्न प्रदेशों मे बोली जाती थी। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में दो भाषायें हो गई—शुद्ध संस्कृत तथा प्राकृत्। यह भी समय चक्र के प्रभाव में आकर विभिन्न रूपों मे परिवर्तित होती रही।

व्यवसाय--समाज को बढ़ती हुई आवश्यताओं के अनुसार कृषि क्षेत्र मे प्रगति हुई। भूमि की उत्पादक शक्ति अच्छी होने से आर्य जाति सम्पन्न हो गई। समाज को आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए अनेक धन्धों की उत्पत्ति हुई। सारथी, धोबी, नट, कुम्हार, धातुकार, गायक, महावत आदि व्यवसायों को अपनाया गया। परिणामतः विशाल आर्य जाति छोटे २ वर्गो में विभाजित होने लगी। व्यवसाय के अनुसार जाति भेद भी बढ़ने लगे।

धार्मिक व्यवस्था--धर्म मे देवताओ की बहुलता थी। प्राकृतिक शक्तियां अब भी देवताओं की प्रतीक थी। परन्तु अब इनमे श्रद्धा कम हो गई तथा इनकी लोक-प्रियता में भी कमी आ गई थी। वरुण, इन्द्र, पृथ्वी आदि का उतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं रहा जितना की ऋग्वेद कालीन युग मे था। विष्णु का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। उसे सृष्टि का, त्राता, देवताओं तथा मनुष्यों का पालक समझा जाने लगा था। मनन व चिन्तन धर्म के प्रधान साधन बन चुके थे। धार्मिककार्यों मे सादगी नही रह गई थी। धार्मिक विधियों को सम्पन्न कराने के निमित्त पुरोहित की आवश्यकता होती थी। यज्ञ ही प्रमुख धार्मिक कृत्य समझे जाते थे। उनको सम्पन्न कराने को विधि और मन्त्र जटिल हो गये थे। पुरोहित का महत्व बढ रहा था। विचारो मे भी महान् परिवर्तन हुआ। गहन मनन तथा अध्ययन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला गया कि ब्रह्म सर्वश्रेष्ठ है। सृष्टि पर उसी का नियन्त्रण है तथा प्रत्येक जीवधारी मे उसका निवास है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन भी इसी काल की विशेषता है। इस युग मे तपस्वी जीवन का महत्व बढ़ गया था।

आर्थिक स्थिति--आर्यों की आर्थिक स्थिति सुदृढ थी। इन लोगो ने कृषि के अतिरिक्त अनेक व्यवसाय अपना रखे थे। व्यापार उन्नत अवस्था मे था तथा दूर-दूर देशो से व्यापार किया जाता था।

वैदिक सभ्यता का मूल्यांकन--वैदिक युग में आर्यों ने भारत के सभी भागों मे आर्य संस्कृति का प्रसार किया तथा अनार्य जातियों को सभ्यता

का पाठ पढाया। इस काल म विपुल धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य की रचना हुई, जिसमे मानव के विचारो और ज्ञान विज्ञान को समुचित क्रम, काव्यमय सौन्दर्य तथा प्रौढता प्रदान की गई। समाज का पहले व्यवसाय और बाद मे व शानुसार विभिन्न वर्णों मे वर्गीकरण किया गया।

[४] जाति-भेद

उपरोक्त वर्णित चारों वर्ण समाज में अपना अपना कार्य करते थे। शनै शनै एक सा पेशा करने वालों का एक अलग वर्ण बन गया और वे अपन उसी धन्धे का करने मे खुशी व गौरव की बात समझने लगे। कोई भी अपने पेशे को छोडने की ओर न ही अपना पेशा दूसरा को सिखाने की चेष्टा करता था। कालचक्र की गति से उपरोक्त वर्ण और अधिक वर्गों मे विभाजित हो गये। समय के साथ-साथ एक वर्ण से दूसरे वर्ण मे यातायात सरल न रह गया और वर्णों ने जब जन्म के आधार पर ही वर्ण व्यवस्था को स्वीकार किया ता वर्ण ही जाति बन गये। शनै शनै यह जातिया अनेक जातियो में विभक्त हो गई। प्राचीन काल मे प्रत्येक जाति एक प्रकार का धन्धा करने वालो की एक अलग सस्था थी जो तीन महत्वपूर्ण कार्य करती थी। यह एक प्रकार की सह कारी सस्था थी, साथ ही साथ बीमा कम्पनी भी। यह अपनी जाति के प्रत्येक सदस्य को काम सिखाने मे, कच्चा माल खरीदने मे, तैयार माल बेचने मे और आपत्ति बेकारी, बेरोजगारी के समय हर प्रकार की सहायता देने के लिए तत्पर रहती थी। इसमे धन का उपार्जन एव बँटवारा अच्छे ढङ्ग से होता था। कालान्तर मे भारत जातिया का अजायबघर बन गया जिससे राष्ट्रीय एकता का नाश हुआ तथा समाज म अनेक बुराइयाँ प्रवेश कर गई। अत आज की परि वर्तित अवस्था मे इनका कोई स्थान नही है। यह प्रगति मार्ग म अवरोधक है जिसे हटाने मे ही कल्याण है।

[५] बौद्ध व जैन धर्म

सातवीं शताब्दी ई० पूर्व तक आर्यों के धार्मिक जीवन की अधोगति हो चुकी थी। ब्राह्मणों के वितण्डावाद तथा कर्मकाण्ड से आर्य जाति की धार्मिक सरलता नष्ट हो गई। जाति व्यवस्था से समाज में स्वार्थपरता, संकीर्णता तथा संकुचित मनोवृत्ति घर कर चुकी थी ऐसी अवस्था में सुधार आवश्यक था। समाज संक्रमण काल में रह कर संक्रान्ति की प्रतीक्षा मे था। ऐसे समय कई सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुए किन्तु इनमें केवल दो आन्दोलन देश व्यापी स्वरूप ले सके। यह दो आन्दोलन क्रमशः महावीर स्वामी तथा महात्मा बुद्ध के नेतृत्व में प्रारम्भ हुए।

जैन धर्म—जैन धर्म संसार के प्राचीन धर्मों मे से है। जैन लोग अपने धर्म को सृष्टि के समान ही अनादि मानते हैं। जैन धर्म तीर्थङ्करो मे विश्वास रखता है। पहला तीर्थङ्कर राजा ऋषभ था। वह जम्बूद्वीप का प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् था और वृद्धावस्था मे अपने पुत्र भरत को राज्य देकर स्वयं तीर्थङ्कर हो गया था। महात्मा पार्श्वनाथ तेईसवें तथा महापुरुष वर्धमान महावीर चौबीसवें तीर्थङ्कर थे। पार्श्वनाथ ईसा से पूर्व प्रायः आठवी सदी में हुए थे। उन्होंने जैन धर्म का प्रचार तत्परता से किया। उनके बाद महावीर स्वामी ने उसमे कुछ सुधार करके नये जीवन का संचार किया और अपने उपदेश द्वारा सहस्रों मनुष्यों को उसका अनुयायी बनाया।

महावीर वैशाली के राजा कटक की बहिन त्रिशला एवं ज्ञातृक लोगों के प्रमुख राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। उनका जन्म ईसा से लगभग ५४२ वर्ष पूर्व वैशाली नगर में हुआ था। तीस वर्ष की अवस्था में घर-बार छोड़कर महावीर वन को चले गए और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने तथा अपने पूर्व संचित कर्मों का क्षय करने के लिए बारह वर्ष उन्होंने घोर तपस्या तथा आत्म चिन्तन में बिताये फिर उन्होंने शेष जीवन उपदेश देने और अपना धर्म फैलाने मे व्यतीत किया। राजवंशों से सम्बन्ध होने के कारण उन्हें धर्म प्रचार मे बड़ी सफलता मिली।

महावीर अपनी शिष्य-मण्डली के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते और जनता की भाषा में ही उपदेश देते थे। ईसा से लगभग ४७० वर्ष पूर्व ७२ वर्ष की अवस्था मे पटना प्रान्त के पावा नामक ग्राम मे उनका देहावसान हुआ। पावा (पोखरपुर) जैन लोगों का बड़ा तीर्थ स्थान है।

जैन धर्म की शिक्षा जैन धर्म के अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। इस धर्म के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं--सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् चरित्र। सम्यक् चरित्र के अन्तर्गत पांच अणुव्रत है—सत्याणुव्रत (झूंठ न बोलना), अचौर्याणुव्रत (चोरी न करना), ब्रह्मचर्याणुव्रत (इन्द्रियों को वश में रखना), परिग्रह परमाणुव्रत (अपरिग्रह), और अहिंसाणुव्रत (हिंसा न करना) जैन लोग अहिंसा पर अत्यधिक बल देते हैं। कीड़े-मकोड़े तक को कष्ट नहीं देते, रात का भोजन प्रायः सूर्यास्त के पहले कर लेते हैं। महावीर स्वामी ईश्वर के अस्तित्व तथा आवागमन के सिद्धान्त को मानते थे और कहते थे कि सद्जीवन व्यतीत करने से प्रत्येक जीवात्मा जन्म-मरण से छूट सकता है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि मनुष्य तीन गुण व्रत—दिग्विरति (व्रत रखे), अनर्थ दण्ड विरत, उपभोग परिभोग परिमाण; चार शिक्षा व्रत---देश विरति, सामायिक व्रत, पोषधोपवास, अतिथि संविभाग व्रत का पालन करे। जैन मुनियों के लिए यह आवश्यक है कि वे पांच महाव्रतों का पूर्ण रूप से पालन करें।

बौद्ध धर्म—बौद्ध धर्म के अग्रदूत महात्मा बुद्ध हैं। इस महापुरुष का जन्म ५६३ ई० पूर्व शाक्य जाति के सरदार शुद्धोदन के घर कपिलवस्तु में वैशाखी की पूर्णमासी को रानी माया से हुआ। अपनी बाल्यावस्था मे ही ये बड़े विचारशील थे और सदा किसी विचार में लीन रहते थे। युवा होने पर सिद्धार्थ गौतम का विवाह एक सुन्दर राजकुमारी यशोधरा के साथ किया गया। २९ वर्ष की अवस्था तक इनका जीवन अन्य राजकुमारों का सा ही था परन्तु अचानक इनके मन में यह शंका पैदा हो गई कि यह संसारी जीवन दुख

से परिपूर्ण है और मनुष्य को इनसे शीघ्रातिशीघ्र मुक्त होने की चेष्टा करनी चाहिए। राज्य का लोभ, गृहस्थ जीवन का सुख, स्त्री व पुत्र का प्रेम इनको संसारी जीवन के बन्धनों में जकड़ा नहीं रख सका और यह एक रात्रि को अचानक जंगल की ओर चल पड़े। इसे गौतम का 'महाभिनिष्क्रमण' कहते हैं। सात साल तक सिद्धार्थ ज्ञान और सत्य की खोज में इधर उधर भटकता रहा। शुरू शुरू में उसने दो तपस्वियों को अपना गुरू स्वीकार किया। इनके कहने के अनुसार सिद्धार्थ ने घोर तपस्या की, शरीर को तरह-तरह के कष्ट दिए। पर इन साधनों से उसे आत्मिक शान्ति न मिली। उसने यह मार्ग छोड़ दिया। मगध का भ्रमण करता हुआ सिद्धार्थ उरुवेला पहुंचा। उरुवेला के सुन्दर जंगलों में उसने फिर तपस्या प्रारम्भ की। यहां पांच अन्य तपस्वियों से उसकी भेंट हुई। ये भी कठोर तप द्वारा मोक्ष प्राप्ति में विश्वास रखते थे। सिद्धार्थ लगातार पद्मासन लगाकर बैठा रहता तथा उसने भोजन और जल का भी सर्वथा परित्याग कर दिया। इस कठोर तपस्या से उसका शरीर निर्जीव सा हो गया। किन्तु फिर भी उसे सन्तोष न हुआ। उसे विश्वास हो गया, कि शरीर को जान बूझ कर कष्ट देने से मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती। उसने तपस्या का मार्ग छोड़ दिया। साथियों ने उसे मार्ग भ्रष्ट एवं उद्देश्य से च्युत समझ कर अकेला छोड़ दिया। तपस्या के मार्ग से निराश होकर वह बौद्ध गया जा पहुंचा। एक वृक्ष के नीचे बैठे मनन कर रहा था, इसको अचानक एक प्रकार का ज्ञान प्राप्त होने लगा उसने समझा कि मुझको मुक्ति का साधन व मार्ग मिल गया और वहां से सिद्धार्थ अपने विचारों का प्रचार करने निकला। गया से महात्मा बुद्ध काशी की ओर चले। सारनाथ के पास उन्हें वे पांचों तपस्वी मिले। महात्मा बुद्ध के चेहरे पर एक अनुपम ज्योति देख कर ये तपस्वी आश्चर्य में पड़ गए। बुद्ध ने गया में बोधि वृक्ष के नीचे प्राप्त सत्य ज्ञान का उपदेश इन तपस्वियों को दिया। तब से ये पांचों बुद्ध के शिष्य हो गए। सारनाथ से बुद्ध उरुवेला गये जहां धार्मिक कर्म काण्ड में व्यस्त ब्राह्मण पुरोहित के नेता कश्यप ने बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया। इसके पश्चात् तो बौद्ध धर्म

बड़ी तीव्र गति से फैला। मगध के सम्राट एवं जनता ने इसके प्रसार में महान् योग दिया। ८० वर्ष की अवस्था में महात्मा बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ।

बौद्ध धर्म की शिक्षा—महात्मा बुद्ध की दृष्टि से यह समस्त संसार दुःखमय है। कर्म के अनुसार जीव इस संसार मे आता है। जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होकर ही आत्मा परमेश्वर मे विलीन होकर परम आनन्द प्राप्त करती है। इस बन्धन मुक्ति को मोक्ष कहते हैं। प्रत्येक धार्मिक प्राणी का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। सांसारिक भोग विलास मोक्ष के मार्ग मे बाधक हैं। इनको यथा सम्भव त्याग देना चाहिए। किन्तु केवल घोर तपस्या करने से तथा शरीर को कष्ट देने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। बुद्ध ने कहा—'भिक्षुओ! इन दो चरम अतियों का सेवन नहीं करना चाहिए—भोग विलास मे लिप्त रहना और शरीर को कष्ट देना इन दो अतियों का त्याग कर मैंने मध्य मार्ग निकाला है, जो कि आंख देने वाला, ज्ञान कराने वाला, और शान्ति प्रदान करने वाला है।' मोक्ष प्राप्त करने के लिए शुद्ध एवं सरल जीवन व्यतीत करना परमावश्यक है। जीवन को सरल बनाने तथा मोक्ष में सहायता देने के लिए मध्य मार्ग अपनाना चाहिए। इस मध्य मार्ग के आठ श्रेष्ठ अङ्ग हैं--(१) सम्यक दृष्टि, (२) सम्यक संकल्प, (३) सम्यक वाक्य, (४) सम्यक कर्मान्त, (५) सम्यक आजीव, (६) सम्यक व्यायाम, (७) सम्यक स्मृति, (८) सम्यक समाधि। बुद्ध के अनुसार चार आर्य सत्य हैं--(१) दुःख, (२) दुख का हेतु, (३) दुःख निरोध, (४) दुःख-निरोध-गामिनी। (दुःख को दूर करने का मार्ग)। बुद्ध पशु हिंसा के घोर विरोधी थे। अहिंसा उनके सिद्धान्त में प्रमुख थी। बौद्ध मत के अनुसार ईश्वर एवं वेदों का कोई अस्तित्व नहीं है। कर्म ही मनुष्य को आवागमन के बन्धन में बांधते हैं। इस बन्धन को सरल एवं शुद्ध जीवन व्यतीत कर तोड़ा जा सकता है। जाति मोक्ष के मार्ग में बाधक नहीं हो सकती। इस धर्म में कालान्तर में अनेक प्रपन्च और आडम्बर आकर जुड़ गए तथा आचार व आध्यात्मिक विषयक प्रश्नों को लेकर भिक्षुओं में परस्पर मतभेद उपस्थित हो गया एवं अनेक सम्प्रदाय खड़े हो गए। महायान सम्प्रदाय बुद्ध के ईश्वरत्व में

विश्वास करता है। इसमें ईश्वर-वादिता, पूजा पाठ, भक्ति आचार्य एवं पुजारी पूजा का अधिक महत्व है। आजकल इसका प्रचार तिब्बत, चीन, कोरिया, मंगोल और जापान मे विशेषतया पाया जाता है। हीनयान सम्प्रदाय बुद्ध की मूल शिक्षाओं को मानता है। आजकल इसका प्रचार लंका, बरमा, स्याम, जावा आदि देशों में है। वज्रयान सम्प्रदाय ने बुद्ध को वज्र गुरु बना दिया। वज्र गुरु वे उस आदर्श पुरुष को कहते थे जिसे अलौकिक सिद्धियां प्राप्त हों। इस सम्प्रदाय का जन्म ईसा से बाद छठी शताब्दी मे हुआ तथा इसके ८४ सिद्ध हुए। प्रसिद्ध गोरखनाथ उन्ही ८४ मे से एक थे।

जैन तथा बौद्ध धर्म की तुलना— जैन तथा बौद्ध धर्म में काफी समानता है। दोनों की प्रगति लगभग एक ही अवस्था में हुई। दोनों के ही प्रवर्तक क्षत्री थे। दोनों धर्मों का उद्देश्य तत्कालीन ब्राह्मणवाद का विरोध करना था। दोनों ही धर्म वेदों को प्रमाणिक नहीं मानते थे तथा वेदों के प्रति उनकी कोई श्रद्धा नहीं है। दोनों ही धर्म, वर्ण व्यवस्था तथा समाज में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करते। कर्म काण्ड यज्ञ, आहुति एवं बलि का दोनों विरोध तथा बहिष्कार करते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए दोनों ही धर्म सरल एवं शुद्ध जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। दोनों के धर्म ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते तथा अहिंसा पर जोर देते हैं। दया, मानव जाति से प्रेम तथा क्षमा रूपी शस्त्र धारण करना, यही दोनों का मूलमन्त्र है। दोनों ने संघ व्यवस्था अपनायी तथा धर्म के प्रचारार्थ कार्य किया। दोनों ने ही अपने अनुयायियों को दो भागों में विभक्त किया—साधु-साध्वी तथा उपासक। दोनों मोक्ष अथवा निर्वाण को जीवन का लक्ष्य मानते हैं। ब्राह्मण धर्म का विरोध करते हुए भी दोनों के अनुयायी हिन्दू देवतायों के प्रति विश्वास एवं श्रद्धा की भावना रखते हैं। इतनी समानता होते हुए भी जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म मे मतभेद है। यद्यपि बौद्ध तथा जैन धर्म के अनुसार जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है, तदपि बौद्धों के निर्वाण तथा जैनमत के निर्वाण में महान् अन्तर है। जैनमत के अनुसार मोक्ष का अर्थ है आत्मा का सदानन्द में विलीन हो जाना। बौद्ध धर्म के अनुसार

निर्वाण का अर्थ है व्यक्तित्व का पूर्णतः विनाश। आवागमन से मुक्ति ही निर्वाण है। निर्वाण प्राप्ति के साधनों में भी अन्तर है। अहिंसा निर्वाण प्राप्ति का साधन है, यह दोनों स्वीकार करते हैं। किन्तु बौद्ध धर्म जीवन की पवित्रता पर अधिक बल देता है। जैन धर्म तपस्या, साधना तथा क्षुधा-पीड़ा द्वारा शरीर त्याग देना विशेष सम्मानप्रद समझता है। बौद्ध धर्म ने अहिंसा का पाठ तो पढ़ाया किन्तु इसके अन्तर्गत अहिंसा जीव सम्प्रदाय तक ही सीमित है। जैन धर्म ने अहिंसा को सीमा तक पहुँचा दिया है। पशु-पक्षियों के अतिरिक्त जड़-पदार्थों तक अहिंसा का पाठ जैन धर्म ने सिखाया। बौद्ध धर्म संघ व्यवस्था पर अधिक बल देता है। जैन धर्म उपासकों की संख्या वृद्धि की कामना करता है। जैन धर्म केवल भारतवर्ष की सीमाओं तक ही सीमित रहा। जैन धर्म के अनुयायियों ने कभी भारत से बाहर प्रचार करने का प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत बौद्धों ने अपने धर्म को विश्वव्यापी बनाने का प्रयत्न किया। जैन धर्म ने ब्राह्मण धर्म का विरोध किया किन्तु अति उग्रता से नहीं। इससे वह आज भी भारत में विद्यमान है। बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण धर्म का बड़ी उग्रता से विरोध किया। अतः अपनी ही जन्मभूमि में शून्य प्रायः है।

जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म का प्रभाव तथा महत्व—वर्धमान एवं गौतम बुद्ध के नेतृत्व में प्राचीन भारत की इस धार्मिक धारणा ने महान् सामाजिक क्रान्ति की। धर्म का नेतृत्व कर्मकाण्ड करने वाले ब्राह्मणों के हाथ से निकल कर, गृहस्थ को छोड़ कर मनुष्य मात्र की सेवा का व्रत ग्रहण करने वाले श्रमिणों, मुनियों एवं भिक्षुओं के हाथों में आ गया। यज्ञों और कर्मकाण्ड का जोर कम हो गया। यज्ञों द्वारा स्वर्ग प्राप्ति की आशा निर्बल हो जाने से राजा और गृहस्थ लोग श्रावक या उपासक के रूप में भिक्षुओं द्वारा बताये गये मार्ग का अनुसरण करने एवं सादा जीवन व्यतीत करने लगे। सत्य, अहिंसा, स्वार्थ-त्याग, सहिष्णुता, सरल एवं शुद्ध जीवन, परोपकारी बनने की लालसा आदि गुणों के विकास की ओर विशेष बल देकर इन भिक्षुओं ने व्यक्तिगत चरित्र को महान् बनाने का प्रयास किया। अतएव प्रजाजन एवं राजाओं ने ब्राह्मणों की जगह श्रमिणों की नई श्रेणी भिक्षु, मुनियों आदि का आदर करना प्रारम्भ कर

दिया। दोनों धर्मों ने समानता स्वतन्त्रता तथा बन्धुत्व की भावनाओं का प्रसार कर समाज में व्याप्त अप्राकृतिक वैषम्य को समाप्त करने का प्रयत्न किया। श्रमणों में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य एवं शूद्र सभी का सम्मिलित होना इस बात का द्योतक है कि समाज मे मान एवं प्रतिष्ठा गुणों से प्राप्त हो सकती है, जाति अथवा धर्म से नहीं। दोनों धर्मों ने देश में एकता की भावना का सूत्रपात कर राष्ट्रीयता के भावों को विकसित किया। इन धर्म आन्दोलनों से देश में एक नई धार्मिक चेतना जागृत हुई। शक्तिशाली संघों में संगठित होने के कारण इनके पास धन, मनुष्य व अन्य साधन प्रचुर परिमाण में विद्यमान थे। अतः भारतीय धर्म व संस्कृति का प्रसार न केवल भारत के सुदूरवर्ती प्रदेशों मे ही हुआ बल्कि भारत के बाहर के देशों मे भी दूर-दूर तक हुआ। बौद्ध धर्म के प्रचारक जापान, चीन, लंका, मंगोलिया, तिब्बत, बर्मा, जावा, सुमात्रा आदि देशों में गये तथा वहाँ भारतीय संस्कृति व सभ्यता का प्रचार किया तथा विदेशों में भारतीय समाज, भारतीय सभ्यता तथा भारतीय संस्कृति की महानता को प्रकट कर भारतीय आध्यात्मिक शक्ति का सिक्का जमा दिया। आज भी भारत इसके लिए गर्व से मस्तक उन्नत कर सकता है।

प्रश्नावली

१. सिन्धु घाटी सभ्यता का विस्तृत वर्णन कीजिए। भारतीय इतिहास में इस सभ्यता का क्या महत्व है ?
२. आर्यों के निवास स्थान के विषय मे संक्षिप्त नोट लिखिए।
३. ऋग्वैदिक काल की आर्य सभ्यता का वर्णन करो।
४. आर्यों की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक दशा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। रा० वि० १६५६
५. जैन धर्म और बौद्ध धर्म के मुख्य सिद्धान्तो का परिचय दीजिए तथा इन दोनों धर्मों के सिद्धान्तो की तुलना कीजिए।
६. जैन धर्म और बौद्ध धर्म का क्या महत्व है ?
७. जाति प्रथा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

भारतीय सभ्यता का गौरव काल

(Classical Indian Civilization)

३४० ई० से ५४० ई तक का काल (गुप्त काल) भारतीय इतिहास का गौरव काल है। गुप्त व श के शक्तिशाली सम्राटो के नेतृत्व मे देश राजनैतिक रूप से संगठित हो गया था। देश मे सुख, समृद्धि और शान्ति का बाहुल्य था, जनता मे प्रेम, सहानुभूति व सहयोग की भावना विद्यमान थी। साहित्य, कला और सस्कृति का पूर्ण विकास हुआ। वास्तव मे यह युग भारतीय इतिहास का 'सुवर्णीय काल' कहा जा सकता है।

[१] गुप्त साम्राज्य की शासन-व्यवस्था

केन्द्रीय शासन—केन्द्रीय सरकार की शक्ति अपरिमित थी। सम्राट उस सार्वभौम सत्ता का प्रतीक था। सम्राट बडी-बडी उपाधिया जैसे परम महारक, महाराजाधिराज, अनेक विरुद जैसे विक्रमादित्य महेन्द्रादित्य आदि धारण करते थे। राज्य का पद व शानुगत होता था तथा ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता था। ज्येष्ठ पुत्र के अयोग्य होने पर कनिष्ठ पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाता था। जनता ने रामगुप्त को राजसिंहासन से उतार कर,चन्द्रगुप्त द्वितीय को राज्य प्रदान किया था। नरेश के अधिकार अपरिमित थे किन्तु प्राचीन परम्पराओं एव स्मृतिया के सिद्धान्तो तथा लोकहित की भावनाओं से ब धे हुए थे। राजा समस्त शक्ति का स्रोत था। राजा ही अधिकारियो की नियुक्ति करता था। वह प्रथम न्यायपति होता था एव उसका निर्णय

अन्तिम होता था। वह मुख्य सेनापति होता था तथा महत्वपूर्ण युद्धों का संचालन वह स्वयं करता था।

मन्त्री परिषद--सम्राट को शासन कार्य में सहायता देने के लिए मन्त्री होते थे, जिनकी संख्या अनिश्चित थी। सम्राट को मन्त्री परिषद की सलाह का अस्वीकार करने का अधिकार था। मन्त्रीपरिषद का एक व्यक्ति प्रधान मन्त्री का कार्य करता था। प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त महासंधि विग्रहिक अक्षपटलाधिकृत होते थे जो क्रमशः परराष्ट्र एवं सचिवालय का कार्य करते थे। युवराज का भी महत्वपूर्ण स्थान था। इनके अतिरिक्त महाबलाधिकृत, महाप्रतिहार आदि अन्य सदस्य भी थे। इनके अतिरिक्त राजकार्य में सहयोग देने के लिए अमात्यों का एक वर्ग था जिसे कुमारामात्य कहते थे। कुमारामात्य साम्राज्य की स्थायी सेवा में होते थे और शासन सूत्र का संचालन इन्हीं के हाथों में था। केन्द्रीय शासन के विभागों को 'अधिकरण' कहते थे। प्रत्येक अधिकरण की अपनी-अपनी सील होती थी।

प्रान्तीय शासन--समस्त साम्राज्य अनेक राष्ट्रों व देशों में विभिक्त था। प्रत्येक राष्ट्र में अनेक 'भुक्तियाँ' और प्रत्येक भुक्तियों में अनेक विषय होते थे। देश या राष्ट्र के शासक पद पर प्रायः राजकुल के मनुष्य ही नियुक्त किये जाते थे तथा 'युवराज कुमारामात्य' कहलाते थे। भुक्तियों के शासक 'उपरिक' कहलाते थे जिनकी नियुक्ति सम्राट करता था। विषय के शासक 'विषयपति' कहलाते थे, जिनकी नियुक्ति भी सम्राट ही करता था। शान्ति और सुरक्षा का भार विषयपति पर होता था। इन्हें शासन के अतिरिक्त सैनिक अधिकार भी प्राप्त थे। विषयपति के अधीन दण्ड पाशिक (पुलिस कर्मचारी) चौरोद्धरणिक (खुफिया पुलिस) दण्ड नायक (जिले की सेना के अधिकारी) आरक्षाधिकृत रहते थे।

स्थानीय शासन—शासन की प्रारम्भिक इकाई गाँव थे। ग्राम का मुखिया ग्रामिक, महत्तर या भोजक कहलाता था। ग्रामसभा गाँव का शासन

करती थी। 'विषय' की राजधानी में विषयपति के सहायतार्थ नगर श्रेष्ठिन, सार्थवाह, प्रथम कुलिक, प्रथम कायस्थ तथा पुस्तपाल से सयुक्त एक परिषद होता थी। परिषद के मुख्य कार्य थे—भूमि का परिवर्तन, क्रय विक्रय। शहरा का प्रबन्धकर्ता पुरपाल कहलाता था।

सैन्य व्यवस्था—गुप्त साम्राज्य का निर्माण सेना के बल पर ही हुआ था अतः साम्राज्य मे शान्ति एव सुरक्षा व्यवस्था सेना की सहायता से ही सम्भव थी। सेना का मुख्य अधिकारी सन्धि विग्रहक कहलाता था जो परराष्ट्र विभाग का भी प्रमुख होता था। इसको सन्धि करने तथा सन्धि विग्रह का पूर्ण अधिकार था। इसकी सहायतार्थ महासेनापति, बलाधिकृत, भटाश्वपति आदि अनेक अधिकारी होते थे। इस विभाग के कार्यालय प्रमुख को 'बलाधिकरण' कहा जाता था। साम्राज्य की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण स्थलो पर सुदृढ़ दुर्गा का निर्माण कराया गया तथा वहा सुसंगठित सेना रखी जाती थी।

आन्तरिक शान्ति व्यवस्था—आन्तरिक सुरक्षा के लिए पुलिस विभाग था। इसका सर्वोच्च अधिकारी 'दण्डपाशाधिकृत' कहलाता था। इसकी सहायतार्थ 'चौरोद्धरणिक', 'दाण्डिपाशिक' आदि रक्षक होते थे। इस विभाग के कार्य को सुचारु रूप से करने के लिए गुप्तचर विभाग था। गुप्तचर पाच श्रेणी मे विभाजित थे। साधु, सन्यासी, पागल आदि का भेष धारण करके प्रजा मे मिल जाते थे एव सम्राट का सूचना पहुचाते थे। यात्रा के मार्ग सुरक्षित थे। अपराध कम होते थे।

न्याय विभाग—चार प्रकार के न्यायालय थे। तीन प्रकार के न्यायालय कुल, श्रेणी तथा गण जनता की ओर से होते थे। चौथा राजकीय न्यायालय राज्य की ओर से था। जनता के न्यायालयो के निर्णय की अपील राजकीय न्यायालय म की जाती थी। न्याय विभाग का मुख्य अधिकारी 'विनयस्थिति स्थापक' कहलाता था। राजा न्याय विभाग का अन्तिम अधिकारी था।

दण्ड व्यवस्था—दण्ड व्यवस्था कठोर नहीं थी। जनता का नैतिक स्तर ऊँचा था। अपराध बहुत कम होते थे। अनावश्यक रूप से भीषण दण्ड नहीं दिया जाता था। प्राणदण्ड की व्यवस्था नहीं थी। निरन्तर चोरी करने तथा राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र करने पर दाहिना हाथ काटने तथा देश से निर्वासित करने की व्यवस्था थी।

आय के साधन—आय का मुख्य साधन भूमि थी। उपज का $\frac{1}{6}$ कर के रूप में, जो 'उद्रङ्ग' कहलाता था लिया जाता था। राजा के व्यक्तिगत उपयोग के लिए 'उपरिकर' नामक कर की व्यवस्था थी। धान्य, हिरण्य, चाट-भटप्रवेश कर आदि करों का उल्लेख भी मिलता है। इसके अतिरिक्त अर्थ-दण्ड, न्याय-शुल्क, माण्डलिक राजाओं से प्राप्त कर एवं उपहार, सीमान्त शासकों से प्राप्त कर आदि भी राज्य की आय के साधन थे। भूमि का नाप नियमित रूप से होता था तथा सीमाओं का पूर्ण विवरण रखा जाता था।

[२] सामाजिक जीवन

सामाजिक जीवन उच्च श्रेणी का था। समाज में पारस्परिक प्रेम, सहयोग तथा सहानुभूति का अभाव न था, सभी समान थे, सभी को उन्नति करने का समान अवसर था। जातीय अहंकार न था। श्रद्धा एवं विश्वास के आधार जाति न होकर गुण थे। गुणी व्यक्ति का सर्वत्र आदर होता था। जाति बन्धन जटिल थे। ब्राह्मण लोग साधारणतया लहसुन, प्याज, मांस तथा मदिरा का प्रयोग नहीं करते थे। स्त्रियां शिक्षित तथा विदुषी होती थीं। विवाह बड़ी उम्र में होता था। विवाहित स्त्रियों का बहुत सम्मान होता था। सन्तान न होने पर पुरुष दूसरा विवाह कर सकते थे। विधवा विवाह की प्रथा थी। स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी वे अपरिचित से बे रोक-टोक मिल सकती थीं। रहन-सहन अच्छा था। ऋतु के अनुसार भिन्न-भिन्न वस्त्र पहने जाते थे। सर्दी में मनुष्य लम्बा कोट और पायजामा, गरमी में धोती और उत्तरीय धारण

करते थे। राजा लोग सिर पर मुकुट तथा साधारण लोग पगड़ी धारण करते थे। स्त्रिया साड़ी पहनती थी। लहगे का भी प्रचलन था। पुरुष एव स्त्री अपने शृंगार का अत्यधिक ध्यान रखते थे। केशो को तरह-तरह से सजाने, मुख पर लाली तथा पराग लगाने और विविध प्रकार के आभूषणो से शरीर को सजाने की प्रथा थी। वस्त्र सूती, रेशमी व ऊनी होते थे। कालिदास ने लिखा है कि स्त्रिया सुगन्धित द्रव्य जलाकर उनकी उष्णता से अपने गीले केशो को सुखाती तथा सुगन्धित करती थी। बाल सूख जाने पर उनकी विविध प्रकार से वेणी बनाई जाती थी और फिर उन्हे मन्दार आदि के फूलो से गूँथा जाता था। आमोद-प्रमोद को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। आमोद-प्रमोद मनाने के अनेक ढङ्ग थे। लोग धार्मिक उत्सवो मे बड़ा आनन्द लेते थे। समय समय पर रथ यात्राएँ हुआ करती थी। हजारो नर-नारी इन यात्राओं मे सम्मिलित होते थे। इस अवसर पर दीपक जलाये जाते थे, घण्टिया बजती थी और लोग खुशी मनाते थे। गोष्ठियो का बहुत प्रचलन था। समान स्थिति के लोग अपनी-अपनी गोष्ठियो मे एकत्र होकर नाचने गाने आदि का आनन्द उठाते थे। मदिरा सेवन का रिवाज था किन्तु जुआ खेलने की आज्ञा किसी को न थी। बगीचो की सैर करना और भांति-भांति के खेल खेलना आमोद-प्रमोद के अन्य साधन थे। शिकार का काफी प्रचार था। गणिकाओ को समाज मे अच्छा स्थान प्राप्त था। वे वादन, गायन तथा नृत्य कर जनता का मनोरजन करती थी।

[३] साहित्य और विज्ञान

गुप्त शासको की साहित्यिक अभिरुचि के कारण प्रतिभाशाली विद्वानो और कवियो को अवसर मिला और उन्होने सस्कृत साहित्य को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा दिया। समुद्रगुप्त स्वय एक महान् कवि था, चन्द्रगुप्त द्वितीय विद्वानो का आश्रयदाता था। सस्कृत का सबसे महान् कवि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के नवरत्नो में से एक था। विक्रमादित्य ने कालिदास को कुंतल

नरेश ककुत्स्थवर्मन के पास राजदूत के रूप में भेजा था। महाकवि कालिदास के लिखे हुए ऋतुसंहार, मालविकाग्निमित्र मेघदूत, शकुन्तला, कुमार सम्भव और रघुवंश इस समय उपलब्ध होते हैं। ये ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के सबसे उज्जवल रत्न हैं। भोज, प्रसाद आदि गुणों और उपमा आदि अलंकारों की दृष्टि से संस्कृत का अन्य कोई ग्रन्थ इनका मुकाबला नहीं कर सकता। संस्कृत भाषा के साथ कालिदास का नाम भी अमर रहेगा। 'मुद्राराक्षस' का लेखक कवि विशाखदत्त, किरातार्जुनीय' का लेखक महाकवि भारवि, 'भट्टिकाव्य, का रचियता भट्टि, मातृगुप्त, सौमिल्ल और कुलपुत्र भी गुप्तकाल के महान् साहित्यकार थे। गुप्तकाल के शिलालेख भी काव्य के उत्तम उदाहरण हैं। प्रयाग के अशोक कालीन स्तम्भ पर कुमारामात्य महादण्डनायक हरिषेण द्वारा उत्कीर्ण समुद्रगुप्त की प्रशस्ति कविता की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है। संस्कृत के प्रसिद्ध नीतिकथा ग्रन्थ पंचतन्त्र का निर्माण भी गुप्तकाल में हुआ। पंचतन्त्र की कथाएँ बहुत प्राचीन हैं जो चिरकाल से भारतवर्ष में प्रचलित थी। इस युग में उन्होंने नियमित रूप से एक ग्रन्थ का रूप धारण किया। ५७० ई० से पूर्व,ही पंचतन्त्र का पहलवी भाषा में अनुवाद हो चुका था। ग्रीक, लेटिन, स्पेनिश, इटालियन आदि ५० से अधिक भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। २०० से अधिक ग्रन्थों का निर्माण इसके आधार पर हो चुका है। व्याकरण और कोष संबंधी अनेक ग्रन्थों का निर्माण इस काल में हुआ। चन्द्रगोमिन ने चान्द्र व्याकरण की रचना की। प्रसिद्ध कोषकार अमरसिंह भी इसी काल में हुआ। अमरकोष संस्कृत के विद्यार्थियों में बहुत प्रिय है। अमरसिंह की गणना नवरत्नों में थी। गुप्तकाल में नारद स्मृति, कात्यायन स्मृति और बृहस्पति स्मृति का निर्माण हुआ। 'कामन्दक नीतिसार' नामक नीति ग्रन्थ की रचना भी इसी युग में हुई।

ज्योतिष और गणित शास्त्र—गणित, ज्योतिष आदि विज्ञानों की इस युग में अत्यधिक उन्नति हुई। ज्योतिष विषय पर पहला ग्रन्थ 'वैशिष्ठ सिद्धान्त' इस युग में लिखा गया। इस ग्रन्थ में यह प्रतिपादित किया गया कि

एक साल में ३६५ '२५६१ दिन होते हैं। इससे पूर्व भारत में ३६६ दिन का वर्ष माना जाता था। ३८० ई० मे पौलिस ग्रन्थ का निर्माण हुआ। इससे सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के नियमों का भलीभांति प्रतिपादन किया गया है। आचार्य वराहमिहिर ने ज्योतिष के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थो का निर्माण किया, उनके नाम हैं--पंच सिद्धान्तिका, बृहज्जातक, बृहत्संहिता और लघुजातक। लघुजातक और बृहत्संहिता का अनुवाद अलबरूनी ने अरबी भाषा में किया। वराहमिहिर की गणना भी नव रत्नो में की गई है। आर्य भट्ट इस युग का सबसे बड़ा वैज्ञानिक था। केवल २३ वर्ष की आयु मे उसने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्य भट्टियम' की रचना की थी। आर्य भट्ट ने भारतीय एवं पाश्चात्य विज्ञानो का भली भांति अनुशीलन किया और सब का भलि-भांति मन्थन करके सत्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है 'सूर्य और चन्द्र का ग्रहण राहु और केतु नाम के राक्षसों से ग्रसने की वजह से नही होता, अपितु जब चन्द्रमा सूर्य एवं पृथ्वी के बीच मे या पृथ्वी की छाया में आ जाता है, तब चन्द्र ग्रहण होता है, इस सिद्धान्त का आर्य भट्ट ने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। पृथ्वी अपने व्यास के चारों ओर घूमती है, दिन और रात क्यों छोटे बड़े होते रहते हैं, भिन्न-भिन्न नक्षत्रों और ग्रहों की गति किस प्रकार से रहती है—इस प्रकार के बहुत से विषयों पर ठीक-ठीक सिद्धान्त आर्य भट्ट ने प्रतिपादित किये हैं।' आर्य भट्ट की गणना के अनुसार वर्ष मे ३६५'२५८६८०६ दिन होते हैं जो वर्तमान ज्योतिषियों की गणना के बहुत समीप है जिसमें ३६५' २५६३६०४ दिन का वर्ष माना गया है। आर्य भट्टीयम ग्रन्थ मे अङ्कगणित ज्योमेट्री के अनेक सिद्धान्तों व सूत्रों का प्रतिपादन किया गया है। गणित शास्त्र के दशमलव के सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लेख आर्य भट्ट के ग्रन्थ में किया गया है। इब्नवाशिया, अलमसूदी और अलबरूनी जैसे अरब लेखको ने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि दशमलव का सिद्धान्त हिन्दुओं ने आविष्कृत किया और अरबों ने इसे उन्हीं से सीखा था। ज्योतिष में आर्य भट्ट के अनेक शिष्य थे—निःशक पांडुरंग स्वामी और लाटदेव। लाटदेव ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की उसे 'सर्व सिद्धान्त' गुरु माना जाता है।

आयुर्वेद एवं रसायन विज्ञान—आयुर्वेद एवं रसायन के क्षेत्र में गुप्त काल में अच्छी प्रगति हुई। आयुर्वेदाचार्य वाग्भट्ट ने अष्टांग हृदय की रचना की। धन्वन्तरी की गणना नव रत्नों में की जाती है। इन्हें आयुर्वेद का मुख्य आचार्य माना जाता है। पाल्यकाप्य नामक पशु चिकित्सक ने हस्त्यु-र्वेद नामक ग्रन्थ की रचना की। यह एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमें १६० अध्याय हैं, हाथियों के रोग, उनके निदान और चिकित्सा का इसमें विस्तृत वर्णन है। रसायन-विज्ञान ने भी गुप्तकाल में महान् उन्नति की थी इसका जीता जागता प्रत्यक्ष उदाहरण महरौली में प्राप्त लौह स्तम्भ है। २४' फीट ऊँचा और १८० मन के लगभग भारी स्तम्भ किस प्रकार तैयार किया गया होगा? १६०० वर्ष के लगभग बीत जाने पर भी इस पर जंग का नाम निशान नहीं है। लोहे को किस प्रकार ऐसा बनाया गया जिससे उसके जंग नहीं लगे, यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे वर्तमान वैज्ञानिक भी नहीं समझ सके हैं। विज्ञान ने गुप्त युग में कैसी उन्नति की उसका यह लौह स्तम्भ ज्वलन्त उदाहरण है।

दर्शन साहित्य—दार्शनिक विचारों का विकास भी गुप्त युग में बहुत हुआ ३०० ई० के लगभग मीमांसा पर शबर भाष्य लिखा गया। जिसमें आत्मा परमात्मा, मुक्ति आदि दार्शनिक विषयों को विस्तार से विवेचना की गई। ईश्वरकृष्ण ने चौथी सदी में सांख्य दर्शन का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सांख्य कारिका' लिखा। योग-सूत्रों पर व्यास भाष्य लिखा गया। आचार्य प्रशस्तपाद ने 'पदार्थ धर्म ग्रन्थ' की रचना वैशेषिक दर्शन के प्राचीन सूत्रों की विशद व्याख्या करने के लिए की। बौद्ध दार्शनिक साहित्य का भी इस युग में बहुत विकास हुआ। बुद्ध घोष ने 'विशुद्धि मार्ग'; बुद्धदत्त ने 'अभिधम्मावतार', 'रूपारूप विभाग' और 'विनय विनिच्चय'; वसुबन्धु ने 'अभिधर्म कोश, नागार्जुन के शिष्य आर्य-देव ने 'चतुःशतक'; असंग ने 'महायन संपरिग्रह', 'योगाचार भूमिशास्त्र' और 'महायान सूत्रालंकार'; असंग के भाई वसु बन्धु ने 'अभिधर्म कोष,' विशंतिका' और त्रिशतिका' नामक ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों में बौद्ध धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया गया। सांख्य, योग, मीमांसा

आदि दर्शनों के सिद्धान्तो का खडन किया गया । जैन धर्म के भी अनेक उत्कृष्ट दार्शनिक ग्रन्थ इस युग मे लिखे गये । पुराने जैन धर्म ग्रन्थों पर अनेक भाष्य लिखे गये, जो निर्युक्ति और चर्णी नाम से प्रसिद्ध हैं ।

[४] कला

गुप्त काल मे ललित कलाओ के क्षेत्र मे भी कल्पनातीत उन्नति हुई । स्थापत्य कला, मूर्ति कला, चित्रकला, सगीत कला का बहुत विकास हुआ। गुप्तकालीन कला सौन्दर्य, भाव अभिव्यक्ति की दृष्टि से उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई थी । इस युग की कला शुद्ध भारतीय थी ।

स्थापत्य कला—गुप्त युग मे स्थापत्य कला का बहुत अधिक विकास हुआ था इस बात का पता उस युग के अनेक स्तूप, बिहार, मन्दिर आदि के अवलोकन से मिलता है । गुप्त युग के भवन निर्माण कला के सुन्दर नमूने उत्तर प्रदेश में झासी जिले के देवगढ का दशावतार मन्दिर, कानपुर जिले में भीतर गाव का मन्दिर, बोधि गया का बौद्ध मन्दिर तथा लालखा का मन्दिर, आसाम में ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर दहपरबतिया का मन्दिर, अजयगढ राज्य मे भूमरा के समीप नचना कुयना नामक स्थान पर पार्वती का पुराना मन्दिर, मध्य प्रान्त मे जबलपुर जिले मे तिगवा नामक मन्दिर, नागोद जिले मे भूमरा नामक स्थान पर स्थित शिव का मन्दिर, अजन्ता और एलोरा की विश्व विख्यात गुफायें आदि में मिलते हैं। महरौली का लोह स्तम्भ, सारनाथ का धामेख स्तूप गुप्त काल की स्थापत्य कला की अमर कृति है । भवन निर्माण कला मे सजे हुए अलकृत स्तम्भों का विशेष स्थान है ।

मूर्ति कला—मूर्ति कला इस काल की विशेषता है । इस युग की अनेक बौद्ध, शैव, वैष्णव व जैन सम्प्रदायो की अनेक मूर्तिया प्राप्त हुई हैं । सारनाथ की बौद्ध मूर्ति, मथुरा की खडी हुई बौद्ध मूर्ति, बिहार प्रान्त के भागलपुर जिले से प्राप्त ताम्र की मूर्ति प्रसिद्ध मूर्तिया हैं । इन मूर्तियो के मुख मण्डल पर शान्ति,

करुणा और आध्यात्मिक भावना का अपूर्व सम्मिश्रण है। बौद्ध धर्म की मूर्तियों के अतिरिक्त सनातन और पौराणिक धर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाली अनेक मूर्तियों का निर्माण भी इस युग में हुआ। इन मूर्तियों में पृथ्वी का उद्धार करते हुए वराह अवतार की मूर्ति, काशी के समीप प्राप्त गोवर्धन धारी की मूर्ति, झांसी के जिले में देवगढ़ नामक स्थान पर विष्णु मन्दिर में शेषशायी विष्णु की मूर्ति, कौशांबी की सूर्य मूर्ति, कार्तिकेय की मूर्ति आदि अत्यन्त प्रसिद्ध एवं मनोहर हैं। मथुरा से प्राप्त वर्धमान महावीर की जैन मूर्ति भी बड़ी सुन्दर है। प्रस्तर मूर्तियों के अतिरिक्त गुप्तकाल में बनी मिट्टी व मसाले की मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। इस युग की नक्काशीदार ईंटें भी बहुत सुन्दर हैं। इन पर अनेक प्रकार के चित्र अंकित हैं। मूर्तियों के अतिरिक्त इस युग में मिट्टी पका कर उनसे घोड़े, हाथी, बैल व छोटे-छोटे पशु भी बनाये जाते थे। सब मूर्तियों और प्रतिमाओं में सादगी तथा सजीवता है। मूर्तियों में भाव-अभिव्यक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अत: हम कह सकते हैं कि गुप्तकाल में मूर्ति कला के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई थी।

चित्र कला—गुप्त काल में चित्र कला का पर्याप्त विकास हुआ। अजन्ता तथा एलोरा में चित्रित चित्र अत्यन्त सुन्दर हैं। अजन्ता की १६ नं० की गुफा में सिद्धार्थ का गृह त्याग चित्र, मरणासन्न राजकुमारी का चित्र, ग्वालियर राज्य में बाघ नामक स्थान पर अनेक गुफाओं में जो चित्रित चित्र हैं वे अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। चित्रों में सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का दिग्दर्शन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। साहित्य लेखन में भी चित्र कला का उल्लेख मिलता है। इस युग में चित्रकला इतनी अधिक प्रगति कर चुकी थी कि वृहत्तर भारत के विविध उपनिवेशों में भी अनेक गृह चित्र व रेशमी कपड़े आदि पर बने चित्र प्राप्त हुए हैं। गुप्त युग की चित्रकला के बारे में चित्रकला के विशेषज्ञ ने कहा है कि "यह कला इतनी पूर्ण, परम्परा में इतनी निर्दोष, अभिप्राय में इतनी सजीव तथा विविध और आकृति तथा वर्ण के सौन्दर्य में इतनी प्रसन्न है कि बरबस ही सर्वोत्तम कला कृतियों में गिनी जाती है।"

संगीत कला – समृद्धि एवं वैभव के इस युग में संगीत व अभिनय आदि का भी लोगो को काफी शौक था। सम्राट समुद्रगुप्त एक महान् संगीतज्ञ था। वीणा बजाने का उसे विशेष चाव था। सिक्को पर वीणा बजाता हुआ समुद्रगुप्त का चित्र उसके संगीत प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। अनेक चित्र ऐसे मिले हैं जिनमें नृत्य करने वाली मण्डलिया चित्रित हैं। बाघ के गृह मन्दिर के एक चित्र में एक नर्तक नाच रहा है एव सात स्त्रियो ने उसे घेर रखा है। इनमे से एक स्त्री मृदङ्ग, तीन स्त्रिया झांज और बाकी तीन स्त्रियाँ अन्य बाजा बजा रही हैं। सारनाथ मे प्राप्त एक प्रस्तर खड पर भी ऐसा ही दृश्य उत्कीर्ण है। इन चित्रों को देखकर विदित होता है कि इस वैभवशाली युग मे संगीत एव नृत्य का बडा प्रचार था।

[५] विदेशी देशों से सांस्कृतिक सम्बन्ध

भारत के प्राचीन निवासी बडे औद्योगिक एव व्यापारी लोग थे। वे लोग समुद्र यात्रा को पाप नही समझते थे तथा अपने देश मे निर्मित जहाजो द्वारा दूर दूर देशो मे जाते थे। इनकी यात्रा के तीन प्रधान प्रयोजन होते थे– (१) व्यापार, (२) धर्म प्रचार और (३) उपनिवेश की स्थापना। इन कारणो से शनै शनै भारत का विशाल सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित हुआ, जिसे स्थूल रूप से 'बृहत्तर भारत' कहा जाता है। इस बृहत्तर भारत को दो भागो में विभक्त किया जा सकता है – दक्षिणी पूर्वी एशिया का क्षेत्र और उत्तर पश्चिमी बृहत्तर भारत। दक्षिणी पूर्वी एशिया के क्षेत्र के बृहत्तर भारत मे बरमा, मलाया, श्याम, इन्डोचाइना, इन्डोनीसिया (जावा सुमात्रा बाली आदि) और समीप के अन्य द्वीपो को सम्मिलित किया जाता है। उत्तरी पश्चिमी भारत मे अफगानिस्तान और मध्य एशिया आते थे। इन प्रदेशो का धर्म एव संस्कृति प्राय भारतीय थी और ऐतिहासिक दृष्टि से इन्हें भारत का ही अग समझा जा सकता है। पर सांस्कृतिक प्रभाव की दृष्टि से चीन, तिब्बत और मंगोलिया भी भारत के धार्मिक या सांस्कृतिक साम्राज्य मे सम्मिलित थे और ईसाई तथा

इस्लाम धर्म के प्रसार के पूर्व ईरान, ईराक आदि पश्चिमी एशिया के देश भी भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव से अछूते नहीं रहे।

भारतीय व्यापारी दक्षिणी पूर्वी एशिया के कई स्थानों पर बसे हुए थे। इनकी कई बस्तियां भी थीं जहां से इनके धर्म सम्बन्धी विचार, कला कौशल इन भागों में धीरे धीरे फैलता चला गया। कान्दिया ब्राह्मण ने पहली सदी में एक राज्य कम्बोडिया में स्थापित किया। एक दूसरे ब्राह्मण ने 'लगभग १६० ई० में दूसरा राज्य चम्पा में स्थापित किया। तीसरा राज्य लंगाकासुका मलाया प्रायद्वीप में दूसरी सदी में स्थापित किया गया था। इस प्रकार और भी कई छोटे-छोटे राज्य थे। स्याम, चम्पा, सुमात्रा, जावा, सिलिविज में कई हिन्दू देवता एवं बुद्ध की मूर्तियां मिलती हैं जिनकी बनावट चित्रकारी और खुदाई भारत के अमरावती से मिलती जुलती है। इन देशों व द्वीपों में प्राप्त शिला लेखों से यह प्रकट होता है कि यहां शिव, विष्णु और बौद्ध धर्म की मान्यता थी। इन शिला लेखों की लिपि प्राचीन भारत के शिला लेखों से बहुत कुछ मिलती है। चोल और पल्लव वंश के शासकों का इन देशों की विजय और इनमें राज्य स्थापना में बहुत हाथ था। इन राज्यों में सबसे विख्यात और शक्ति-शाली राज्य शैलेन्द्र के राजाओं का था। इसकी स्थापना जावा टापू में सातवीं सदी में हुई थी। दक्षिणी पूर्वी एशिया में यह राज्य सबसे शक्ति-शाली समझा जाता था और इसकी जल व थल शक्ति का कोई राज्य सामना नहीं कर सकता था। इस राज्य की राजधानी पालम बंग थी। यह बड़ा व्यापारी देश था। यह राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था। इस वंशके राजा बौद्ध महायान शाखा धर्म व हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। कहते हैं कि अगस्त्य ऋषि की स्मृति में एक आश्रम भी बनाया गया था। इन स्मारकों में सबसे अधिक सुन्दर और विशाल बोरबन्दर का मन्दिर है। इस शैलेन्द्र वंश के राज्य में कम्बोडिया, टानकिन, एनाम, मलाया प्रायद्वीप व थोड़ा सा चीन का भाग भी था। ये शैलेन्द्र वंशी राजा ही इस भाग में श्री विजय के नाम से १४ वीं सदी ई० तक राज्य करते थे।

लगभग ८०० ई० मे जैवरमन द्वितीय ने कम्बोडिया नाम का राज्य स्थापित किया। इस वंश के राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे किन्तु हिन्दू व ब्राह्मण धर्म का विशेष आदर मान करते थे। इस प्रकार जावा और सुमात्रा मे भी कई हिन्दू राज्य थे। इनमे सिंघासरी नाम का जावा का राज्य बहुत प्रसिद्ध था। दूर दूर तक इसकी धाक जमी हुई थी। यहां के राजाओं को विशाल राजमहल बनाने का बड़ा शौक था। यहाँ पर अनेकों बौद्ध विहार भी थे। यहाँ के राजा बड़े योद्धा और विजेता थे, इनकी श्रीकीर्ति पश्चिम मे ईरान से लेकर पूर्व मे चीन तक फैली हुई थी। इन राजाओं की सहायता तथा संरक्षणता से ही सारे दक्षिणी पूर्वी एशिया के भागो मे भारतीय संस्कृति, ललितकला, बौद्ध मत व हिन्दू धर्म सैंकड़ों वर्षों तक फलते-फूलते रहे। आज दिन भी इस भाग के साहित्य, ललित-कला, विचारधारा, रीति-रिवाज इत्यादि बातों में भारतीय सभ्यता व संस्कृति की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। सुमात्रा व जावा का साहित्य प्राचीन भारत के साहित्य पर बहुत कुछ आधारित है। जावा और बाली भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सच्चे एवं जीवित अजायबघर हैं। यहाँ जितने भी प्राचीन मन्दिर, पत्थर व तांबे या पीतल की बनी मूर्तियां मिली हैं, वे इस बात की साक्षी हैं। बरमा भी भारतीय संस्कृति से परिपूर्ण था।

उत्तर-पश्चिम बृहत्तर भारत मे शैल देश, चोकुक, खोतन, चल्मद, भरुक, कुची, अग्निदेश और कौचाग राज्य सम्मिलित थे। इन राज्यों मे खोतन और कुची सबसे मुख्य थे इन राज्यों ने चीन व अन्य राज्यों मे भारतीय धर्म व संस्कृति के प्रसार मे बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया। चोकुक, खोतन, शैल देश और चल्मद में भारतीय काफी संख्या मे आबाद थे। कम्बोज और गान्धार से इनके बड़े घनिष्ट सम्बन्ध थे। व्यापार के लिए ये निरन्तर भारत मे आया करते थे। यहाँ की भाषा प्राकृत थी। गुप्त काल मे इन उपनिवेशो में ब्राह्मी और संस्कृत भाषा का प्रसार हुआ। चीनी यात्री फाह्यान ने लिखा है "इस प्रदेश के निवासी धर्म और संस्कृति की दृष्टि से भारतीयों के बहुत समीप हैं।

भिक्षु लोग संस्कृत पढ़ते हैं और बौद्ध धर्म की भारतीय पुस्तकों का अध्ययन करते हैं।" गुप्त युग में खोतान भारतीय संस्कृति का मुख्य केन्द्र था। चौथी सदी में आने वाले यात्री फाह्यान ने लिखा है "यहाँ के निवासी बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। भिक्षुओं की संख्या हजारों में है। अधिकांश भिक्षु महायान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। साधारण लोग अपने-अपने घरों में निवास करते हैं। प्रत्येक घर के सामने बौद्ध स्तूप बनाये गये हैं। इनमें से कोई भी ऊंचाई में २० फीट से कम नहीं है।" खोतान राज्य के सम्राटों में विजयवीर्य सर्वाधिक प्रसिद्ध था। उसने अपने गुरु भारतीय भिक्षु बुद्धदूत के सत्परामर्श में अनेक विहारों और स्तूपों का निर्माण कराया था।

[1] कुची भी भारतीय संस्कृति का महान् केन्द्र था। वराहमिहिर ने बृहत् संहिता में शक, पल्लव आदि के साथ कुचिक जाति का भी उल्लेख किया है, जो कुची के निवासियों को ही द्योतित करती है। यहां के निवासियों में भी भारतीयों की संख्या काफी अधिक थी और चौथी शताब्दी के शुरू तक यह सारा प्रदेश बौद्ध धर्म का अनुयायी हो चुका था तथा बौद्ध विहारों एवं चैत्यों की संख्या १० हजार तक हो गई थी। राजप्रासाद अत्यन्त सुन्दर थे और इनमें बौद्ध मूर्तियों की प्रचुरता थी। कुची राज्य के शासकों के नाम भी भारतीय थे जैसे स्वर्णदेव, हरदेव आदि। कुची देश का आचार्य कुमारदेव अपनी विद्वत्ता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। इसका पिता कुमारयन भारतीय एवं माता कुची के राजा की बहिन जीवा थी। कुमारदेव ने बन्धुदत्त के चरणों में बैठ कर बौद्ध आगम को पढ़ा। इसने चारों वेदों, वेदांगों, दर्शन व साहित्य का अध्ययन किया तथा महायान सम्प्रदाय में प्रवेश किया। ३८३ ई० में कुची पर चीन के आक्रमण के समय कुमारदेव बन्दी बनाकर चीन भेज दिया गया। किन्तु शीघ्र ही कुमारजीव की महानता का परिचय पाकर चीन सम्राट ने उसे मुक्त कर दिया और उसे संस्कृत के प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने का कार्य सौंपा। दस वर्ष के लगभग समय में उसने १०६ संस्कृत ग्रन्थों

का चीनी भाषा में अनुवाद किया जो आज तक भी प्राप्त है। इसी प्रकार तुर्फान, काशगार आदि स्थान भारतीय संस्कृति से आच्छादित थे।

चीन व भारत के सम्बन्ध बहुत प्राचीन हैं। महाभारत एवं मनुस्मृति में चीन का नाम आता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चीन के रेशम का उल्लेख है। ईसवी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत और चीन में व्यापार का विकास हो गया था अतः यह स्वाभाविक था कि बौद्ध धर्म के प्रचारक, मध्य एशिया के परे चीन में भी धर्म प्रचार के लिए जाते। चीन के प्राचीन इतिवृत के अनुसार २१७ ई० पू० में कतिपय बौद्ध प्रचारक भारत से चीन में धर्म प्रचार के लिए गये। ६५ ई० पू० सम्राट मिग-ती का निमन्त्रण पाकर धर्म रत्न और कश्यप नामक बौद्ध भिक्षु चीन गये, वे साथ में बौद्ध धर्म की अनेक पुस्तकें भी ले गये। इन विद्वानों ने बौद्ध ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया तथा बौद्ध धर्म का प्रचार किया। इसके पश्चात् लोकोत्तम, संघभद्र, धर्मरक्ष आदि बौद्ध प्रचारक चीन गये। संघभद्र ने नानकिंग के सम्राट को तीसरी सदी ई० में बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। बौद्ध धर्म से आकृष्ट होकर बहुत से चीनी विद्वान भी भारतवर्ष में आये। २६० ई० में चुसे-हिंग ३६६ ई० में फाह्यान भारत आया। रंगान के राजा श्रीगुप्त ने चीनी यात्रियों व भिक्षुओं के लिए अपने राज्य में एक विहार का निर्माण कराया था जो चीनी विहार के नाम से विख्यात था। मंगोलिया, कोरिया जापान आदि उत्तरी व पूर्वी देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार चीन द्वारा हुआ। चीन के बौद्ध भिक्षुओं ने दक्षिणी पूर्व में जाकर टान्किन को भी बुद्ध गौतम के धर्म में दीक्षित किया। भारतीय भिक्षु भी बाद में टान्किन पहुंचे। कालाचार्य नामक भारतीय बौद्ध प्रचारक चौथी सदी में टान्किन गया था। गुप्त युग व उससे पूर्व विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए जो महान प्रयत्न हुआ, उसके कारण तथागत बुद्ध का धर्म एशिया के सभी देशों में फैल गया।

गुप्त युग में भारतीय धर्मों में अद्वितीय जीवन शक्ति थी। बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि अन्य धर्मों ने विदेशी जातियों को अपने धर्म में दीक्षित कर उन्हें

भारतीय समाज का अङ्ग बना लिया। यवन, शक और कुशान लोग भारत में आकर भारतीय समाज के अंग बन गये। गुप्त काल मे माने वाले बर्बर हूण भी पूर्णतया भारतीय समाज के अंग बन गये। हूण राजा मिहिरगल ने शैव धर्म स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीयों का दूर-दूर देशों एवं उनके निवासियो से सम्पर्क था। भारतीयो ने न केवल सुदूर पूर्व में पामीर के उत्तर-पश्चिम में ही अपनी बस्तियां बसाईं, मेसोपोटामिया और प्राचीन सीरिया मे भी अपने छोटे-छोटे उपनिवेशों का निर्माण कर लिया था। यूफ्रेटस नदी के तट पर भारतीयों के दो बड़े मन्दिर थे, जिन्हें सेण्ट ग्रेगरी के नेतृत्व में ईसाइयों ने ३०४ ई० में नष्ट कर दिया।

प्रश्नावली

१. गुप्तकाल भारतीय सभ्यता का गौरव काल क्यों कहलाता है? समझा कर लिखिए।

२. "गुप्त कालीन भारत मे साहित्य एवं विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधिक उन्नति हुई।" विवेचन कीजिए।

३. प्राचीन भारत का कौन २ से विदेशी देशो से सास्कृतिक सम्पर्क था? वर्णन कीजिए।

४. गुप्त कालीन वास्तु कला, संगीत कला और चित्रकला का वर्णन कीजिए।

५. गुप्त काल में समाज की व्यवस्था कैसी थी?

६. गुप्त सम्राटों की शासन व्यवस्था पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

७. प्राचीन (Classical) भारतीय संस्कृति के कुछ प्रमुख कार्य-कलाप बतलाइये। रा० दि० १९६०

९ भारत में इस्लाम का प्रवेश

[१] तुर्क विजय

हर्ष की मृत्यु के उपरात भारत की राजनैतिक एकता समाप्त हो गई। कोई भी ऐसा शक्तिशाली शासक न रहा जो समस्त भारत को एक सूत्र मे गूथ लेता। समस्त उत्तरी भारत मे छोटे-छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गये थे। ये राज्य परस्पर एक दूसरे से युद्ध करते रहते थे। शौर्य प्रदर्शन इनका एक मात्र लक्ष्य बन गया था। घोर वैमनस्य तथा शिथिलता के इस युग मे राष्ट्रीयता का पूर्ण अभाव था। ऐसे समय में इस्लाम का भयङ्कर ववण्डर भारतवर्ष पर टूट कर पडा तथा राजपूत राजाओ को परास्त कर भारत मे यवन राज्य की नींव डाली।

भारतवर्ष पर हमला करने वाला पहला मुसलमान आक्रमणकारी खलीफा का १७ वर्षीय अनन्यतम सेनापति मोहम्मद बिन कासिम था जिसने इराक के गवर्नर की आज्ञानुसार ७१२ ई० में सिन्ध पर आक्रमण किया। सिन्ध मे उस समय कोई ऐसा शक्तिशाली राजा न था, जो विश्व विजयी अरब सेनाओ का सफलता पूर्वक मुकाबला करता। सिन्ध के छोटे-छोटे राजा अरबो से परास्त हो गये और भारत के इस प्रदेश पर कासिम का आधिपत्य स्थापित हो गया। मेवाड के बाप्पा रावल के विरोध से कासिम आगे न बढ सका। थोडे दिनो पीछे ही मोहम्मद बिन कासिम को वापिस बुला लिया गया तथा चरित्र-हीनता के अपराध मे उसका शीश उतार लिया गया। यह बात वस्तुत महत्व

को है कि इस समय अरब सेनायें सिन्ध मे आगे बढकर भारत के अन्य प्रदेशो को अपनी अधीनता मे नही ला सकी। इसका कारण अरब आक्रान्ताओं की अनिच्छा न होकर भारत के राजवंशो की सैन्य शक्ति थी। हिन्दुओं की वीरता का परिचय अरबों को गुर्जर प्रतिहार और चालुक्य राजाओ के साथ हुए युद्ध से मिल गया था अत. उन्होंने अपनी कुशल आगे न बढने में ही समझी।

अरबो के इस आक्रमण का भारत पर कोई स्थाई राजनैतिक प्रभाव नही पड़ा, केवल कुछ अरब परिवार सिन्ध में आकर बस गये। सास्कृतिक दृष्टि से अरबों एवं भारत के सम्पर्क का बहुत बडा असर हुआ। अरबों का सम्पर्क एक ऐसी जाति से हुआ जो इस युग मे ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र मे शिरोमणि थी। दर्शन, गणित, ज्योतिष, चिकित्सा शास्त्र, अध्यात्मचिन्तन आदि सभी विषयो में आठवी सदी के भारतीय अरबों की अपेक्षा बहुत आगे थे। अतएव बगदाद के खलीफाओ ने इस ज्ञान से लाभ उठाने का पूरा प्रयत्न किया। खलीफा मन्सूर ने भारत से अनेक विद्वानों के अनेक ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद करवाया। खलीफा हारूंरशीद के शासन काल मे बहुत से भारतीय गणितज्ञ, ज्योतिषी और वैद्य बगदाद बुलाये गये और बहुत से भारतीय ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद कराया गया। खलीफा ने अनेक भारतीय विद्वानो को बगदाद निमन्त्रित किया और उन्हें सम्मान पूर्ण पद प्रदान किये। अरबों ने भारतीयों से गणित, ज्योतिष और चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर इन विषयो में अद्भुत उन्नति की। प्रसिद्ध इतिहासकार एच. जी. वेल्स के अनुसार मध्य युग में जब यूरोप मे सर्वत्र अविद्यान्धकार छाया हुआ था, ज्ञान का दीपक केवल अरब मे ही प्रकाश कर रहा था। अरब ज्ञान मे जो यह दीपक प्रकाशित हुआ, उसका प्रधान कारण उसका भारत के साथ सम्पर्क था।

दसवी सदी मे अरब साम्राज्य खण्ड खण्ड हो गया तथा उसकी जगह अनेक स्वतंत्र राज्य बने। इन राज्यों में अलप्तगीन द्वारा स्थापित गजनी का तुर्क राज्य भी एक था। अल्पतगीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सुबुक्तगीन गजनी

का राजा बना। उसने अपने राज्य के क्षेत्र का विस्तार करने के उद्देश्य से भारत पर अनेक आक्रमण किये। इस समय उत्तर पश्चिमी भारत पर जयपाल राजा का आधिपत्य था। जयपाल हिन्दू साहिव श का था तथा उसकी राजधानी ओहिन्द नगरी थी जो सिन्ध नदी के तट पर स्थित थी। तुर्क आक्राता का मुकाबला करने के लिए जयपाल राजा ने अन्य भारतीय राजाओं की भी सहायता प्राप्त की। खुर्रम नदी के तट पर तुर्क और भारतीय सेनाओं का युद्ध हुआ, जिसमें सुबुक्तगीन की विजय हुई। इस विजय के फलस्वरूप सिन्ध नदी के पश्चिम के उत्तर पश्चिमी भारत पर तुर्कों का अधिकार हो गया। ६६७ ई० में सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात् महमूद गजनी के सिंहासन पर बैठा। उसने गजनी के तुर्क साम्राज्य को उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा दिया और अपना राज्य विस्तार करते हुए भारत पर १७ आक्रमण किए। दक्षिण पश्चिम में काठियावाड तक और पूर्व में मथुरा और कन्नोज तक महमूद ने विजय यात्राएं की। वह आँधी की तरह आता तथा धन सम्पत्ति लूटने के पश्चात् तूफान की तरह अपने देश को चला जाता था। उसने मथुरा और कन्नौज जैसे वैभवपूर्ण नगरो को ध्व स कर दिया। उसका अन्तिम आक्रमण सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ। सोमनाथ के मन्दिर मे शिवजी की मूर्ति स्थापित थी तथा मन्दिर मे सैकडो वर्षों की अतुलनीय धनराशि एकत्रित थी। कहते हैं कि जब महमूद ने सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण किया तो इस आशा म कि मूर्ति में कोई चमत्कार जरूर होगा और उनका पूज्य देवता अवश्य उनकी मदद करेगा, हजारो व्यक्तियों ने इस मन्दिर मे शरण ली, किन्तु भक्तो की कल्पना के बाहर चमत्कार शायद ही कभी होती हो। दो दिन के कठिन परिश्रम के पश्चात् महमूद मन्दिर में घुस गया और ५ हजार व्यक्तिया के देखत-देखते मूर्ति को नष्ट कर दिया तथा हजारो भक्तो को मौत के घाट उतार दिया। मन्दिर की अपरिमित धनराशि को लेकर महमूद मुलतान क मार्ग से गजनी लौटा। मार्ग मे धार नगरी के राजा भोज ने उसका मुकाबला किया और भोज से परास्त होकर तुर्क आक्रान्ता बडी कठिनाई से गजनी लौट सका। महमूद भारत मे

स्थाई मुस्लिम राज्य स्थापित नहीं कर सका क्योंकि भारत में अभी तक परमार वंशी राजा भोज सदृश राजा विद्यमान थे जो रण क्षेत्र में तुर्कों को परास्त करने की क्षमता रखते थे। महमूद के आक्रमण के फलस्वरूप उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, पश्चिमी पंजाब और सिन्ध मुस्लिम शासकों के अधिकार में चले गए।

महमूद की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी गजनी के विशाल व वैभव पूर्ण साम्राज्य का कायम न रख सके। स्थिति का लाभ उठाकर गोर के शासक अलाउद्दीन ने ११५० ई० में गजनी पर अधिकार कर लिया और अपने भाई शहाबुद्दीन गोरी को वहां का शासक नियुक्त किया। गोरी आगे जाकर स्वतन्त्र सुलतान बन गया। उसको केवल गजनी के राज्य से संतोष न हुआ। उसने पहले उत्तर पश्चिमी भारत में तुर्कों के शासन का अन्त किया, और फिर पंजाब से आगे बढ़कर राजपूत राज्यों पर आक्रमण किया।

इस समय भारतवर्ष की राजनैतिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी। देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था तथा ये राज्य हमेशा आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। इनमें मुख्य राज्य मालवा में परिमारों का, कन्नोज में प्रतिहारों का, बंगाल में चोलों का, मेवाड़ में गुहिलोतों का, बुन्देलखण्ड में चन्देलों का, दिल्ली में चौहानों का, दक्षिण में राष्ट्रकूटों का और इनसे दक्षिण की ओर पल्लव, चोल और पांड्यों के राज्य थे। इन राज्यों में कहीं भी राष्ट्रीय भावना वाले शासक नहीं थे और किन्हीं में यह राजनैतिक चेतना नहीं थी कि वे देखते कि उनके राज्य के बाहर भी उनके देश के बाहर भी कुछ शक्तियाँ हैं, जिनका कुछ महत्व हो सकता है और जिनकी वजह से कुछ ऐसी हलचल पैदा हो सकती है जिसके भावी परिणाम की उन्हें कल्पना भी न हो। मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के पश्चात् भारत पर किसी बाहरी शक्ति का आक्रमण नहीं हुआ परिणामस्वरूप भारतीय विदेशी आक्रमण के भय से निवृत हो गए थे तथा आपस में ही युद्ध कर शक्ति का ह्रास करने लगे थे। सार्व भौम शक्ति के अभाव में राष्ट्रीय भावना का लोप हो गया था। अन्धविश्वास, सामाजिक

विश्रृंखलता, दैव पर विश्वास ने भारतीय समाज को दुर्बला बना दिया था। प्रत्येक व्यक्ति तथा वर्ग स्वार्थ पूर्ति मे निमग्न था। भारतीय समाज में एक अजीब मानसिक एव बौद्धिक शिथिलता घर कर चुकी थी। भारतीय जन मानस मे दृष्टि शून्यता के साथ-साथ व्यवस्थित संगठित, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के लिए कार्य शून्यता भी विद्यमान थी। ऐसी परिस्थितियों मे गौरी ने भारत पर आक्रमण प्रारम्भ किए।

भारतवर्ष पर गोरी का पहला आक्रमण ११६१ई० मे हुआ किन्तु दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान ने तराइन के युद्ध मे शहाबुद्दीन को बुरी तरह परास्त किया। किन्तु अगले वर्ष ही ११६२ई० मे गोरी ने पुन आक्रमण किया और फरिश्ता के शब्दों मे 'एक भव्य भवन की भाति यह विशाल हिन्दू सेना एक बार हिलने ही अपने विनाश के खण्डहरो मे विलीन हो गई।' पृथ्वीराज की पराजय से गोरी के लिए भारत विजय का द्वार खुल गया। ११६४ ई० मे उसने गहड्वाल राजा जयचन्द को हराकर कन्नौज के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया इसके पश्चात् गोरी के सेनापतियों ने ग्वालियर, कालिंजर और अजमेर और फिर ११६७ ई० मे अवध, बंगाल और बिहार प्रदेशो को जीता। इस प्रकार उत्तरी भारत मे इस्लामी सल्तनत कायम हुई। शहाबुद्दीन अपने सेवक कुतुबुद्दीन को जो तुर्क था, भारत के अपने 'विजित राज्य' का शासन करने के जो लिए छोड कर गजनी को लौटा जहा १२०६ ई० मे उसकी मृत्यु हुई। कुतुबुद्दीन भारत में विजित प्रान्तो का सन् १२०६ ई० मे बादशाह बना—वह और उसके उत्तराधिकारी गुलाम वंश के बादशाह कहलाए ।

सन् १२०६ ई० से १५२६ ई० कत भिन्न-भिन्न व शो वे (यथा गुलाम, खिलजी, तुगलक एवं लोदी) मुसलमान बादशाहों ने भारत मे राज्य किया। इनमे अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुगलक उल्लेखनीय हैं। अलाउद्दीन १२९५ मे दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। देवगिरी के यादव राज्य और अनहिलवाड़ के चालुक्य राज्य को युद्ध मे परास्त कर अलाउद्दीन ने दक्षिण को

और अपने आधिपत्य का विस्तार किया। वह राजपूताना को विजय करने में असफल रहा। हम्मीर के नेतृत्व मे राजपूताना के मेवाड़ आदि राज्यों ने अलाउद्दीन के विरुद्ध अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया और रणक्षेत्र मे अनेक बार परास्त होने जाने पर भी मेवाड़ सदृश राजपूत राज्य अपनी स्वतन्त्रसत्ता को कायम रखने में सफल हुए। राजपूतों के उच्छेदन में असफल होकर अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत की विजय का उपक्रम किया। मालिक काफूर नामक कुशल सेनापति के नेतृत्व में अफगान सेनाओं ने दक्षिण मे रामेश्वरम् तक विजय यात्रा की और दक्षिणी भारत मे जो अनेक राजवंश स्वतन्त्रतापूर्वक शासन करते थे, उनको परास्त किया। दूर-दूर तक विजय यात्रायें कर उसने अपनी सल्तनत का उत्कर्ष किया, पर इन विजयों के परिणामस्वरूप वह किसी स्थाई राज्य की नींव नहीं डाल सका।

मुहम्मद तुगलक अनेकों विद्या, कला तथा गुणों की अद्भुत प्रतिमा था। उसके दो कार्य इतिहास मे अत्यन्त महत्व के हैं। प्रथम, उसने साम्राज्य की राजधानी दिल्ली से हटाकर दौलताबाद करदी। राजधानी बदलने के साथ ही साथ दिल्ली के समस्त निवासियों को देवगिरी जाने के लिए बाध्य किया। मार्ग मे प्रजा की सुविधा के लिए उसने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। किन्तु जब देवगिरी (दौलताबाद) में दिल्ली के निवासियों को कष्ट हुआ तो सम्राट ने राजधानी वापिस दिल्ली ले जाने की आज्ञा देदी। द्वितीय, उसने तांबे के सिक्के चलाये। किन्तु इसके फलस्वरूप अव्यवस्था फैल गई तथा सम्राट को सिक्के वापस लौटाने पड़े जिससे खजाना खाली हो गया। यूरोपीय इतिहासकार इन बातो के आधार पर मुहम्मद तुगलक को पागल बताते हैं। वास्तविकता यह है कि मुहम्मद तुगलक अपने समय से बहुत आगे था। उसे नए नए प्रयोग करने में आनन्द आता था। अंग्रेज सरकार ने भारतवर्ष मे कागज के नोट लाखों की संख्या में प्रचलित किये किन्तु उसे कोई पागल नहीं कहता है।

इसी युग मे सन् १३६८ ई० में मंगोल तुर्क तैमूर लंग का भारत पर आक्रमण हुआ। तैमूर पंजाब को पदाक्रान्त करता हुआ देहली तक बढ़

श्राया। असंख्य कैदियों श्रौर लूट का धन लेकर वह वापस मध्य एशिया लौट गया। किन्तु इस आक्रमण से दिल्ली सिंहासन के टाके उधड गये श्रौर प्राय. समस्त देश स्वतन्त्र प्रादेशिक राज्यों में विभक्त हो गया। १५२६ ई० मे बाबर ने लोदी वंश के सुलतान इब्राहीम को पानीपत के युद्ध मे परास्त कर दिल्ली की बादशाहत का अन्त कर दिया तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

भारतीय पराजय के कारण—डा० स्मिथ के मतानुसार भारतीय पराजय के मुख्य कारण मुसलमानो की शारीरिक श्रौर सैनिक श्रेष्ठता है। ठण्डे देश से श्राने के कारण मुसलमान शरीर मे हिन्दुश्रो से अधिक हट्टे-कट्टे श्रौर बलवान थे। दूसरा मुसलमानों की घुड सवार सेना, उनका सैन्य संगठन, आक्रमण करने का तरीका, युद्ध मे व्यूह रचना श्रौर हथियारो का प्रयोग हिन्दुश्रो से अच्छा था। इन कारणो के साथ धार्मिक जोश श्रौर विदेश में आकर विजय के लिए सारी शक्ति लगा देने की भावना भी थी। किन्तु केवल इन्ही कारणो से मुसलमान भारत मे अपना राज्य जमाने में सफल न हुए। भारतीय पराजय के असली कारण थे हिन्दू राजाश्रो श्रौर हिन्दू प्रजा मे राजनैतिक जीवन की मंदता, दृष्टिकोण की संकीर्णता एवं उदार सामाजिकता का अभाव। हिन्दू राजाश्रो ने जितनी भी लडाइया लडी वे सब अपनी रक्षा के लिए थी। मुसलमान हारे तो उन्हे अपने राज्य का कोई हिस्सा नही देना पडा श्रौर यदि हिन्दू राजा उनके मुकाबले मे जीते भी तो अधिक से अधिक अपना घर बचाने में सफल हुए।

[२] मुस्लिम विजय का भारतीय समाज पर प्रभाव

विदेशी व विधर्मी लोगों का आक्रमण भारत के लिए कोई नई बात नही थी। तुर्कों श्रौर अरबो के पहले भी अनेक विदेशी जातियो ने विजेता के रूप में भारत मे प्रवेश किया। कुशाण, हूण, शक, पार्थियन आदि कितनी ही जातियों ने भारत के अनेक प्रदेशो की विजय कर वहा अपने राज्य स्थापित किए थे। राजनैतिक दृष्टि से तो ये जातियाँ भारत मे विजयी रही किन्तु सभ्यता,

संस्कृति और धर्म के क्षेत्र में ये भारतीयों द्वारा परास्त हुई थी। अनेक यवन राजाओं ने भारत के सम्पर्क में आकर बौद्ध, शैव, वैष्णव धर्म को अपना लिया था। शक, कुषाण, पार्थियन आदि भारत में आकर भारतीय हो गये थे। बहुत प्राचीन काल से ही भारत में 'व्रात्यस्तोम' यज्ञ की परिपाटी थी; जिसमे इन सब विदेशी जातियों को आर्यों ने अपने धर्म एवं समाज मे सम्मिलित कर लिया। भारत में बस कर ये जातियां विदेशी नहीं रहीं। इन्होंने यहां की भाषा, धर्म, संस्कृति और साहित्य को पूरी तरह से अपना लिया।

भारतवर्ष के इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि अरब और तुर्क लोग भारत में बस जाने के बाद भारतीय समाज में घुल-मिल न सके। हिन्दू मुसलमानों को मलेच्छ समझते थे अतएव अपने आपको पृथक रखने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। किन्तु शताब्दियों के सहवास के कारण उनके जीवन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। यह प्रभाव न केवल हिन्दुओं पर ही पड़ा वरन् मुसलमान भी उससे मुक्त न रह सके।

मुसलमानों के आगमन का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। मुस्लिम विजेताओं ने राजनैतिक विजय से ही सन्तोष नहीं किया। उन्होंने अपने धर्म का प्रचार भी प्रारम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू अनुदार प्रवृत्तियां पुष्ट हो गईं। अपने धर्म और जाति की सुरक्षा के लिए उन्होंने जातीय बन्धन अत्यन्त दृढ़ कर दिये। दैनिक जीवन के नियमों में कठोरता का समावेश किया गया। मुसलमानों के भारत में राज्य स्थापित हो जाने के परिणामस्वरूप हिन्दुओं में कुप्रथाओं का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दुओं ने मुसलमानों से अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करने हेतु, छोटी-छोटी बालिकाओं का विवाह करना प्रारम्भ किया तथा स्त्रियों ने अपने सौन्दर्य को छिपाने के लिए 'पर्दे' की प्रथा को अपनाया। हिन्दुओं की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के कर लगाये। हिन्दुओं को स्थान-स्थान पर अपमानित किया जाने लगा इससे हिन्दुओं का जातीय गौरव अतीत की कहानी बन गया। मुसलमानों की विजय का सबसे घातक प्रभाव बौद्ध धर्म पर पड़ा, अहिंसा

का सिद्धान्त इस्लाम की तलवार और बर्बर शक्ति का सामना करने मे असफल रहा अतएव हिन्दुओ की आस्था इस धर्म मे अब बिलकुल भी शेप न रह गई। मुसलमानो ने हिन्दुओ के मन्दिरो को नष्ट किया तथा नवीन मन्दिरो के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हिन्दुओ को बल प्रयोग द्वारा धर्म परिवर्तित करने के लिए बाध्य किया तथा दलित वर्ग ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। हिन्दुओ के चरित्र पर भी मुसलमानो के आगमन का दूषित प्रभाव पडा। भारतीय समाज के उच्च तथा मध्यम वर्ग के लोगो को प्रतिदिन शासको के सम्पर्क मे आना पडता था। इसलिए जीवन निर्वाह करने के लिए उन्हे धर्म, संस्कृति तथा अन्य विषय के सम्बन्ध में अपने विचार तथा भावनायें छिपानी पडती थी। इससे उनके चरित्र मे दास भाव तथा चाटुकारिता का समावेश हो गया। हमारे अनेक देशवासी कपटी तथा प्रवन्चक हो गये। हिन्दू जाति चरित्र तथा आचरण की सरलता, वीरता, साहस आदि गुणो को खो बैठी। मुसलमानो ने हिन्दुओ की राजनैतिक संस्थाओ को समाप्त कर इस्लाम के निर्देशानुसार नवीन राजनैतिक संस्थाओ को जन्म दिया तथा हिन्दुओ को राज्य व्यवस्था मे भाग लेने का अवसर नही दिया। फलस्वरूप हिन्दुओ की राजनैतिक प्रतिभा समाप्त हो गई। मुस्लिम अत्याचारो से परेशान होकर बहुत से विद्वान और कलाकार दक्षिण को चले गये तथा वहा हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का विकास किया जिसकी धारा अबाधित रूप से चलती रही।

हिन्दू मुसलमानो के सम्पर्क से उर्दू भाषा का प्रादुर्भाव तथा साधारण बोल-चाल की भाषा का विकास हुआ। कला के क्षेत्र मे मिश्रित कला का विकास हुआ जिसको विद्वानों ने 'इण्डो इस्लामिक' कला का नाम दिया है जिसका वर्णन पृथक अध्याय मे किया जा रहा है। मुस्लिम सुलतानो ने हिन्दू कलाकारो के सहयोग से मस्जिदो, मकबरो तथा राजप्रासादो का निर्माण कराया। इस्लाम के प्रभाव से हिन्दू धर्म मे लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तो का समावेश हुआ तथा भक्ति आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला।

यद्यपि हिन्दू शासित थे तदापि उनकी सभ्यता, संस्कृति का प्रभाव मुस-

लमानों पर भी पड़ा। भारत की जलवायु के अनुसार उन्होंने अपना जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। दरबार मे सादगी का स्थान शान-शौकत ने ले लिया तथा वह भी फकीरो, मकबरो तथा पीरो की पूजा करने लगे। साथ ही सूफी धर्म का भी प्रचार हुआ।

प्रश्नावली

१. भारत मे तुर्कों के आक्रमण कब और क्यों हुए? तुर्कों के विजीय होने के क्या कारण थे?
२. मुसलमानों के आगमन का भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?
३. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए—मोहम्मद बिन कासिम, महमूद, राज भोज, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक।
४. भारत में मुस्लिम प्रसार पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

१० मध्याकालीन शासन और समाज

६५० ई० से १५२५ ई० तक के काल को इतिहासकारो ने मध्य युग का नाम दिया है। पूर्वार्ध काल अर्थात् ६५० ई० से १२०६ ई० मे देश अनेक छोटे-छोटे स्वतत्र राज्यो मे विभक्त था जिनकी शक्ति राजपूत राजाओ के हाथ में थी। उत्तरार्ध काल अर्थात् १२०६ ई० से १५२५ ई० मे देश पर मुसलमानो का प्रभुत्व स्थापित हो गया था एव भिन्न भिन्न व शो के मुसलमान बादशाहो ने यहा पर राज्य किया।

[१] शासन व्यवस्था

पूर्वार्ध शासन व्यवस्था—पूर्वार्ध मध्य युग म भारतवर्ष अनेको छोटे मोटे भागो मे विभाजित था। इन राज्यों की सीमायें राजा के वैयक्तिक शौर्य और शक्ति के अनुसार बढती रहती थी। विविध राज्यो मे सामन्त पद्धति का विकास हो गया था। महाराजा की अधीनता में बहुत से छोटे बडे साम त राजा होते थे जो अपने अपने क्षेत्र मे पृथक रूप से शासन करते थे। इन साम त राजाओ की अपनी अपनी सेना होती थी, इनका अपना अपना राजकोष होता था और अपने अपने क्षेत्र मे इनकी स्थिति स्वतन्त्र शासक के सदृश रहती थी। राजा अपने कुल के प्रमुख पुरुषो को सहायता से राज्य का शासन करता था और राजदरबार मे बैठ कर राज कार्यों का चि तन करता था। राजा निरकुश होता था यदि वह योग्य होता तो प्रजा क हित और कल्याण का सम्पादन करता

था और यदि वह अयोग्य और नृशंस होता तो प्रजा को पीड़ित करता था। राजा को सहायता के लिए मन्त्री एवं सेनापति होते थे।

गाँव का प्रबन्ध ग्राम सभाओं के हाथ में था। प्रत्येक ग्राम की एक सभा होती थी, जो अपने क्षेत्र मे शासन का सब कार्य संभालती थी। स्थान एवं काल के भेद से ग्राम सभाओं के संगठन भिन्न भिन्न प्रकार के थे। ग्राम सभा में वहा के सब वालिग पुरुष सदस्य रूप से सम्मिलित होते थे। कुछ गांव ऐसे थे जिनमें ग्राम के सब बालिग व्यक्ति सभा के सदस्य नहीं होते थे। ग्राम सभा की बैठक मन्दिर अथवा वृक्ष की छाया में होती थी। कुछ ग्राम ऐसे भी थे जिनमें सभा भवन बने हुए थे। ग्राम के शासन का पूर्ण अधिकार ग्राम सभा को होता था। ग्राम सभा के अधिवेशन की अध्यक्षता ग्रामिण नामक कर्मचारी करता था। शासन की सुविधा हेतु अनेक समितियों का निर्माण किया जाता था, जिन्हें विविध प्रकार के कार्य सौंपे जाते थे। ये समितियां निम्न थीं—(१) वर्ष भर तक शासन कार्य का नियन्त्रण व निरीक्षण करने वाली समिति। (२) दान की व्यवस्था करने वाली समिति। (३) जलाशयों की व्यवस्था करने वाली समिति। (४) उद्यानों की व्यवस्था करने वाली समिति। (५) न्याय की व्यवस्था करने वाली समिति। (६) कोष की व्यवस्था करने वाली समिति। (७) ग्राम के विभिन्न विभागों का निरीक्षण करने वाली समिति। (८) खेतों व मैदानों का निरीक्षण व व्यवस्था करने वाली समिति। (९) मन्दिरों का प्रबन्ध करने वाली समिति। (१०) साधु व विरक्त लोगों की व्यवस्था करने वाली समिति। समितियों की नियुक्ति बड़े व्यवस्थित ढंग से की जाती थी। ग्राम ३० भागों मे विभक्त होता था। विभिन्न भागों के निवासी मिलकर समिति के सदस्य बनने के उपयुक्त व्यक्तियों की सूची तैयार करते थे। समिति के सदस्य की आयु न्यूनतम ३५ वर्ष एवं अधिकतम ७० वर्ष होती थी। शिक्षित और ईमानदार व्यक्ति को ही समिति का सदस्य नियुक्त किया जाता था। जब सूची तैयार हो जाती तो लाटरी डाल कर एक पुरुष का नाम निकाला जाता था। इस प्रकार ग्राम के ३० भागों में से तीस नाम निकलते थे और विविध

समितियों के सदस्य रूप से इन्ही को नियुक्ति कर दी जाती थी। तीस व्यक्तियों मे से किसको किस समिति का सदस्य बनाया जाय, इस बात का निर्णय उसकी योग्यता और अनुभव के आधार पर किया जाता था। विविध समितियों के कार्य-सम्पादन के नियम भी विशद रूप से बनाये गये थे।

ग्राम संस्थाओं का स्वरूप छोटे-छोटे राज्यो के समान था। इसलिए उनके क्षेत्र मे वे सभी कार्य आते थे जो राज्य किया करते थे। ग्राम के क्षेत्र के झगडे निपटाना, मण्डी व बाजार का प्रबन्ध करना, कर वसूल करना, ग्राम के लाभ के लिए कर लगाना, ग्रामवासियों से ग्राम के हित के लिए कार्य लेना, जलाशयों, उद्यानों, खेतों, चरागाहो आदि की देख-रेख करना, मार्गों को ठीक हालत मे रखना आदि कार्य ग्राम-संस्थाओं के कार्य क्षेत्र मे दिए हुए थे। दान-पुण्य की रकमें ग्राम-संस्थाओं के पास जमा कराई जा सकती थीं। दुर्भिक्ष आदि प्राकृतिक विपत्तियों के समय ग्राम सभाओं के कार्य एवं उत्तरदायित्व बहुत बढ जाते थे। यह संस्थायें इस बात की व्यवस्था करती थी कि गरीब लोग भूखे न मरने पायें। शिक्षा आदि के लिए धन खर्च करना भी उनका महत्वपूर्ण कार्य समझा जाता था। शत्रु एवं डाकुओ से गाव की रक्षा करना ग्राम-संस्थाओं का कार्य था जो लोग इसमे विशेष पराक्रम प्रदर्शित करते थे, उनका वह अनेक प्रकार से सम्मान भी करती थी। ग्राम की रक्षा मे वीरगति प्राप्त व्यक्ति के परिवार वालों को जीवन निर्वाह के लिए, बिना लगान, भूमि प्रदान की जाती थी, ग्राम को हानि पहुँचाने वाले व्यक्ति को 'ग्राम द्रोही' करार देकर दण्ड दिया जाता था। ग्राम के क्षेत्र से राज्य के लिये वसूल किये जाने वाले करो को एकत्र करना ग्राम संस्था का ही कार्य था। ग्राम सभा के अधिकारियों का यह कर्तव्य होता था कि वे राजकीय करों को वसूल करे, उनका सही सही हिसाब रखे और एकत्रित धन को राज कोष मे पहुँचा दे। यदि कोई अपने इस कर्त्तव्य मे शिथिलता प्रदर्शित करता था, तो वह दण्डनीय होता था।

उत्तरार्ध शासन व्यवस्था—उत्तरार्ध मध्य युग मे विभिन्न वंशों के (यथा गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोदी) सुलतानों ने शासन किया। ये पूर्ण-

तथा निरंकुश व स्वेच्छाचारी थे। उनकी शक्ति को मर्यादित करने वाली कोई भी संस्था इस युग में नहीं थी। सुलतान की इच्छा ही कानून मानी जाती थी और न्याय सम्बन्धी बातों में भी उसका निर्णय सर्वोपरि होता था। सुलतान अपने को पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे और ईश्वर के समान ही वे अपनी शक्ति पर किसी अन्य का अंकुश स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं थे।

अपने सुविस्तृत साम्राज्य पर शासन करने के लिए दिल्ली के सुलतानों ने कर्मचारी वर्ग का संगठन किया था। राज्य का सर्वोच्च अधिकारी 'वजीर' कहलाता था। शासन के सब विभागों पर इस वजीर का नियन्त्रण होता था। शासन के मुख्य विभागों के नाम थे—(१) दीवाने अर्ज या अपीलों का विभाग। (२) दीवाने रिसालत या सैन्य विभाग। (३) दीवाने इन्शा या पत्र व्यवहार विभाग। (४) दीवाने बन्दगान या गुलामों का विभाग। (५) दीवाने-कजाए-ममालिक या न्याय विभाग। (६) दीवाने अमीर कोही या कृषि विभाग। (७) दीवाने मुस्तखराज या राजकीय आय को वसूल करने वाला विभाग। (८) दीवाने खैरात या धर्मार्थ व्यय करने वाला विभाग। (९) दीवाने इस्तिहाक या पेंशन विभाग। इन विभागों के अतिरिक्त गुप्तचर, डाक और टकसाल के लिए भी पृथक विभाग थे, जिन सबकी व्यवस्था के लिए विविध राज कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी। इनके अतिरिक्त राज्य के अन्य प्रमुख कर्मचारी व पदाधिकारी निम्नलिखित होते थे—(१) मुस्तौफी-ए-ममालिक जिसका कार्य राजकीय व्यय को नियन्त्रित रखना होता था। (२) मुशिफ ममालिक, जिसका कार्य राजकीय आय का हिसाब रखना व उसे वसूल करने की सुव्यवस्था करना होता था। (३) खजान्ची। (४) अमीरे-बहर या जल शक्ति का अध्यक्ष। (५) बख्शी-ए-फौज या सेना को वेतन देने का प्रधान अधिकारी। (६) काजी-उल-कजात या प्रधान न्यायाधीश, जो मुफ्तियों की सहायता से शरायत के अनुसार न्याय की व्यवस्था करता था।

प्रान्तीय व स्थानीय शासन—शासन की सुविधा के लिए मुसलमान सल्तनत अनेकों प्रान्तों में विभक्त थी, जिनकी संख्या सल्तनत के विस्तार के अनु-

सार घटती बढ़ती रहती थी। प्रान्तीय शासक को 'नायब सुलतान' कहते थे। अपने क्षेत्र मे इन नायब सुलतानों की स्थिति दिल्ली के सुलतान के ही सदृश होती थी। प्रान्तों के उपविभागों का शासक 'मुकता' अथवा 'आमिल' कहलाता था। प्रान्तो के और छोटे उपविभागों के शासक 'शिकदार' कहलाते थे। नायब सुलतान अपने प्रान्तीय शासन का खर्च अपने प्रान्त से ही कर आदि द्वारा प्राप्त करते थे और खर्च चलाकर जो बचता, उसे केन्द्रीय राजकोष मे भेज देते थे। नायब सुलतानो की अपनी पृथक सेनायें होती थी, जिन्हें दिल्ली सुलतान अपनी विजय यात्राओं व युद्धो के लिए प्रयुक्त कर सकता था।

अफगान सल्तनत मे बहुत से हिन्दू राजवंशो के शासन भी थे। ये हिन्दू राजा सुलतान को अपना अधिपति मानते थे और उसे वार्षिक कर, भेंट व उपहार आदि द्वारा सन्तुष्ट करते रहते थे। इन हिन्दू राजाओं की स्थिति अफगान साम्राज्य मे सामन्तो के सदृश थी। ग्रामो का प्रबन्ध ग्राम सभाओं के द्वारा पूर्वार्ध मध्य कालीन शासन के अनुसार होता था। बड़े बड़े नगरों का प्रबन्ध कोतवाल और मुहतसीब नामक कर्मचारियों के हाथ मे था। कोतवाल नगर मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित रखने के लिए उत्तरदायी होता था, मुहतसीब का कार्य नागरिक प्रबन्ध करना था।

परामर्श दात्री सभा—यद्यपि सुलतान पूर्ण निरंकुश थे, पर वे समय समय पर अपने अमीर-उमराओं और सैनिको नेताओं से परामर्श करते रहते थे। इसलिए अनेक परामर्शदात्री सभायें विद्यमान थी, जिनमे 'मजलिस खलवत' प्रधान थी। इस सभा मे सल्तनत के प्रधान कर्मचारी, सैनिक नेता व बड़े अमीर-उमराव उपस्थित होते थे और सुलतान को महत्वपूर्ण मामलो पर परामर्श देते थे। मजलिस की सदस्यता के कोई खास नियम नही थे। सुलतान जिस किसी व्यक्ति को उचित समझे परामर्श के लिए सभा मे बुला लेता था। मजलिस के परामर्श को मानना न मानना सुलतान की इच्छा पर निर्भर करता था।

राजकीय आय के साधन--राजकीय आय के प्रधान साधन निम्नलिखित थे (१) खराज--हिन्दू सामन्तों व जागीरदारों द्वारा प्रदान किया जाने वाला भूमि कर। (२) खालसा या राजकीय भूमि से प्राप्त होने वाली आमदनी। (३) अपने सैनिक अधिकारियों व अन्य राजकर्मचारियों को दी गई उन जागीरों की आय का एक निश्चित भाग। (४) जजिया कर। (५) युद्ध में प्राप्त की हुई लूट। (६) चरागाह, सिंचाई के साधन, इमारत आदि पर लगाये गये अनेक प्रकार के कर।

अफगान सल्तनत के शासन में अमीर-उमराव लोगों का बहुत महत्व था। सेना संचालन, शासन प्रबन्ध और सुलतान को परामर्श देने का कार्य इन्हीं के हाथों में था।

[२] समाज

पूर्वार्ध सामाजिक अवस्था--समाज अनेक जातियों में विभक्त था। जाति प्रथा शनैः-शनैः जटिल होती जा रही थी। किन्तु विदेशी हिन्दू धर्म को स्वीकार कर सकते थे। बहुत से विदेशियों ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया था। अनेकों छोटी-छोटी जातियां और उपजातियां बन गई थीं। इन उपजातियों के बन जाने से सामाजिक संगठन शिथिल हो गया। संकीर्णता के कारण समाज में विदेशियों को आत्मसात करने की शक्ति शिथिल हो रही थी। जाति भेद के कारण भारत में जो संकीर्ण मनोवृति इस समय उत्पन्न हो गई थी, उसे अलबरूनी ने इस प्रकार प्रकट किया है "हिन्दुओं की कट्टरता का शिकार विदेशी जातियां होती हैं। वे उन्हें मलेच्छ और अपवित्र समझते हैं। वे उनके साथ खान पान व विवाह का कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उनका विचार है कि ऐसा करने से हम भ्रष्ट हो जावेंगे।" खान पान के मामले में भी संकीर्णता बढ़ने लगी। इस काल में शूद्रों के हाथ का भोजन करने में दोष नहीं समझा जाता था किन्तु यह विचार दृढ़ होता जा रहा था कि शूद्र के साथ तभी भोजन सम्बन्ध रखा जा सकता है जबकि परम्परागत रूप से उस से मैत्री सम्बन्ध हो।

खान पान के सदृश विवाह के मामला में भी जातियों ने धीरे धीरे संकीर्ण रूप धारण कर लिया। अन्तर्जातीय या अन्तर्धार्मिक विवाह बन्द हो गये। समाज मे स्त्रियो की दशा सम्मानीय थी। स्त्रियां पर्दा नही करती थी। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। राज्यश्री, इन्दुलेखा विज्जिका, शीला, सुभद्रा, मदालसा आदि रमणी रत्न इस युग म पैदा हुई। विधवा विवाह प्रचलित था। उच्च जातियां एक ही विवाह का आदर्श रखती था। स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी। सती की प्रथा का प्रारम्भ हो चुका था। समाज मे ब्राह्मणो का महत्वपूर्ण स्थान था। धर्म तथा शिक्षा के क्षेत्र मे प्राय इनका आधिपत्य था। ब्राह्मण योग साधन, वेद, पुराण आदि का अध्ययन करते थे। क्षत्री वर्ग का समाज म प्रतिष्ठा प्राप्त थी क्योकि अधिकाश शासक इसी वर्ग के थे। वैश्य व्यापार करते थे। लोगो का रहन-सहन सरल था। इस समय हिन्दू धर्म की प्रधानता थी। बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का ह्रास हो रहा था।

उत्तरार्धसामाजिक अवस्था—समाज के दो प्रधान वर्ग थे, मुस्लिम और हिन्दू। मुस्लिम वर्ग शासक था और हिन्दू वर्ग शासित। केवल मुसलमानो को ही ऊँचे पद प्रदान किये जाते थे। मुस्लिम लोग हिंदुओ को नीची दृष्टि से देखते थे, जान बूझ कर उन्हे हीन स्थिति का बोध कराया जाता था। अफगान सुल्तानों ने हिन्दुओ पर मनमाना अत्याचार किया। उनकी आर्थिक सम्पन्नता को मनमाने कर लगा कर नष्ट किया। हिंदुओ को लालच देकर मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया। इस काल मे दास प्रथा का भी बहुत प्रचार था। सुल्तान व उसके अमीर बडी सख्या मे दास रखते थे। फीरोजशाह तुगलक के समय दासो की सख्या २,००,००० के लगभग पहुँच गई थी। दासो से अनेक प्रकार के कार्य लिए जाते थे। सैनिक सेवा, राज सेवा व वैयक्तिक सेवा—सब प्रकार के कार्य दास लोग करते थे। योग्य दासो को दासता से मुक्त कर बडे पदो पर नियुक्त कर देना इस युग मे बहुत साधारण बात थी। कुतुबुद्दीन ऐबक एव मलिक काफूर जैसे लोग शुरू मे दास ही थे। दासो को बेचा जाता था। सुन्दरी स्त्रियो की दासी रूप मे अच्छी कीमत वसूल होती थी।

स्त्रियों में पर्दे की प्रथा का प्रारम्भ हुआ। हिन्दू एवं मुस्लिम स्त्रियां प्रायः पर्दे में रहती थी उद्दण्ड मुस्लिम सैनिकों एवं राज कर्मचारियों के भय से हिन्दू लोग अपनी पुत्रियों का विवाह बालपन में करने लगे। सती प्रथा के भी प्रमाण मिले हैं। स्त्रियां अशिक्षित होती थी, किन्तु कुछ स्त्रियां शिक्षित व सुसंस्कृत थी। लूट द्वारा प्राप्त धन के कारण मुसलमानों में अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो गई थी, मुसलमानों में निकम्मापन विकसित हुआ। वे द्यूत-क्रीड़ा मदिरा-पान में अपना समय व शक्ति नष्ट करने लगे। नाच-गान व अन्य आमोद-प्रमोद में मस्त रहने के कारण मुस्लिम वर्ग का बल निरन्तर क्षीण होता गया।

प्रश्नावली

१. मध्यकालीन हिन्दू राजाओं के शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिए।
२. ग्राम सभा का क्या महत्व था ? इसके कार्यों का वर्णन कीजिए।
३. मध्यकालीन अफगान शासकों के समय भारतीय समाज तथा शासन व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
४. अफगान युग में स्त्रियों की दशा कैसी थी ?

हिन्दु मुस्लिम संस्कृतियों का समन्वय

विषय प्रवेश—दो विभिन्न धर्मो व संस्कृति के लोग जब देर तक एक साथ निवास करते हैं तो उनका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी हो जाता है। जब मुस्लिम विजेता स्थाई रूप से भारत मे आबाद हो गये तो स्वाभाविक रूप से उनका सम्पर्क हिन्दुओ से हुआ। भारतीय लोग सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से बहुत ऊंचे थे। यद्यपि उनकी राजशक्ति मुस्लिम आक्रान्ताओ द्वारा पराभूत हो गई थी, पर उससे उनकी संस्कृति की उत्कृष्टता नष्ट नही हो पाई थी। अतः मुस्लिम तथा भारत के योगियों, सन्तों, धर्माचार्यों, विद्वानो और शिल्पियों के सम्पर्क मे आकर, हिन्दू संस्कृति और सभ्यता के प्रभाव से प्रभावित हुए बिना नही रह सके। इसी प्रकार इस्लाम के रूप मे आने वाला नया धार्मिक आन्दोलन भारतीय धर्म एवं जीवन को प्रभावित किये बिना नही रहा। यद्यपि बहुसंख्यक हिन्दुओ ने इस्लाम को नही अपनाया, परन्तु वे मुस्लिम सन्तो व पीरो के उच्च जीवन, धर्मनिष्ठा एवं सदुपदेश के प्रभाव मे आये। इस्लाम धर्म मे जो अपूर्व जीवन शक्ति विद्यमान थी उसने हिन्दुओ मे नये जीवन का संचार किया। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के इस सम्पर्क ने कला, साहित्य एवं धर्म के क्षेत्र मे जो परिणाम उत्पन्न किये, उनका भारत के इतिहास मे बहुत अधिक महत्व है। इसी सम्पर्क से भारत की वह आधुनिक संस्कृति प्रादुर्भूत हुई, जिस पर अनेको अंशो मे मुस्लिम धर्म का प्रभाव विद्यमान है।

[१] कला

वास्तु कला—हिन्दू मुस्लिम सम्पर्क का सबसे प्रत्यक्ष व स्थूल रूप वास्तु कला है, जिसका इस युग में विकास हुआ। इतिहासकारों ने इसको 'इण्डो-मुस्लिम' या 'पठान' कला का नाम दिया। मुस्लिम शासन की स्थापना से पूर्व भारत में वास्तुकला उन्नत दशा में थी। मुस्लिम शासकों ने इमारतों आदि के निर्माण में भारतीय शिल्पियों से ही कार्य लिया। इन शिल्पियों के लिए यह असम्भव था कि वे अपने परम्परागत कला सम्बन्धी आदर्शों को भूला कर विदेशी कला का प्रयोग करते। कुतुबमीनार, कुतुब मस्जिद, अढ़ाई दिन का झोंपड़ा, निजामुद्दीन औलिया की दरगाह, अदीना मस्जिद, अहमदाबाद के महल आदि इण्डो-मुस्लिम वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। मुस्लिम शासकों द्वारा निर्मित इन सब इमारतों पर भारतीय हिन्दू कला की अमिट छाप है।

सङ्गीत एवं चित्रकला—सङ्गीत के क्षेत्र में भी हिन्दू मुस्लिम सम्पर्क ने अनेक महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किये। मुसलमान भगवान की पूजा के लिए कव्वाली एवं ख्याल के रूप में संगीत का प्रयोग करते थे। सङ्गीत के ये प्रयोग भारत के लिए नये थे, पर बाद में भारतीय सङ्गीताचार्यों ने इन्हें पूरी तरह अपना लिया और ये भारतीय सङ्गीत के महत्वपूर्ण अङ्ग बन गये चित्र-कला का भी इस युग में काफी विकास हुआ। गुजरात के शासक सुल्तान महमूद बेगड़ा की संरक्षता में राजस्थानी शैली की चित्रकला की अच्छी उन्नति हुई। काश्मीर के कला-प्रेमी शासक जैनुल आब्दीन ने चित्रकला और सङ्गीत-कला के विकास पर ध्यान दिया।

[२] साहित्य

भाषा एवं साहित्य—तुर्क और अफगान शासक राजकीय कार्य में पर्शियन का उपयोग करते थे। भारत में जनसाधारण की भाषा हिन्दी थी। अतः भारतीय भाषा में पर्शियन व अरबी शब्दों का सम्मिश्रण होने लगा। परि-

गामस्वरूप नई भाषा विकसित, हुई, जिसका नाम उर्दू है। उर्दू भाषा के कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के बहुत समीप आ गये और उनका भेद मिटने लगा। अतः उर्दू भाषा का विकास इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना है। इस युग मे साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। मुस्लिम साहित्यकारो ने हिन्दी भाषा को अपनाया। अमीर खुसरो न केवल पर्सियन भाषा का ही महान् कवि है बल्कि हिन्दी भाषा का भी महान् कवि है। उसने हिन्दी (खडी बोली और ब्रज भाषा) मे अपने भावो को कविता के रूप मे बडे सुन्दर ढग से व्यक्त किया। मलिक मुहम्मद जायसी ने "पद्मावत" नाम के महाकाव्य की रचना हिन्दी भाषा मे की थी। अनेक मुस्लिम सन्तो व कवियो ने अपने भावो को व्यक्त करने के लिए हिन्दी भाषा को अपनाया। पर्सियन साहित्य का भी काफी विकास हुआ। अमीर खुसरो, महकवि शेख, निजामुद्दीन हसन, मौलाना मोयादीन, मौलाना अहमद थानेश्वरी आदि साहित्यकारो ने अपनी रचनाओ द्वारा पर्सियन साहित्य को समृद्ध किया। मुसलमान सुल्तानो ने बङ्गाली साहित्य के विकास में भी काफी योग दिया। बङ्गाल के सुल्तान नसरतशाह ने महाभारत का बङ्गाली अनुवाद कराया। प्रसिद्ध कवि विद्यापति ने नसरतशाह को बङ्गाली भाषा का सरक्षक कहा है। कृत्तिवास ने बङ्गाल के सुल्तान के आश्रम मे रहकर ही बङ्गाली भाषा मे रामायण की रचना की।

[३] धर्म

धर्म—मुस्लिम धर्म मे सम्पर्क होने पर भारत के पुराने हिन्दू धर्म में नव जीवन का संचार हुआ। ईश्वर व रसूल पर दृढ विश्वास, मनुष्य मात्र की समता आदि कुछ ऐसे तत्व थे जो इस्लाम धर्म को अपूर्व और अनुपम जीवन शक्ति प्रदान करते थे। हिन्दू सन्तो तथा सुधारकों ने मुस्लिम शासको और धर्म प्रचारको से हिन्दू धर्म की रक्षा और जीवन शक्ति प्रदान करने के लिए इस्लाम धर्म के तत्वो का आश्रय लिया। इन महात्माओ ने इस्लाम के समान जाति भेद का विरोध करते हुए, ईश्वर पर दृढ़ विश्वास, उसकी भक्ति और गुरु (रसूल)

के महत्व पर बल देना प्रारम्भ किया तथा भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप हिन्दू धर्म मे एक ऐसी नई जागृति उत्पन्न हो गई, जो अनेक अंशो मे इस्लाम को भी अपने प्रभाव मे लाने मे सफल हुई।

भक्ति आन्दोलन—शंकराचार्य के अद्वैतवाद से जनता उकता गई थी। अतः दक्षिण भारत मे शंकर के ज्ञान मार्ग के विरोध मे भक्ति भावना का विकास हुआ। नाम्मलवार, विष्णुचित और उनकी पुत्री अन्दाल आदि ने भक्ति-भावना का प्रचार किया। जाति बन्धनो को ठुकरा कर, समाज मे प्रेम की भावना को प्रेरित कर, भगवान को भक्तो के आधीन कर उन सन्तो ने भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया। रामानुजाचार्य ने १२ वी शताब्दी मे अपने 'विशिष्टाद्वैतवाद' के द्वारा उपरोक्त मत की पुनः प्रतिष्ठा की। दक्षिण भारत में रामानुजाचार्य का प्रभाव अत्यधिक था। उन्होने जाति भेद दूर कर धर्म का मार्ग समान रूप से सभी वर्गों के लिए खोल दिया।

रामानुज के उपरान्त तो भक्ति भावना का विकास तीव्रगति से हुआ तथा भारत के प्रायः सभी भागो मे संतो की मधुर वाणी गुंजार उठी। पंजाब मे गुरु नानक ने इस भावना का नेतृत्व किया, राजस्थान मे भक्त मीरा की मधुर ध्वनी अमृत की वर्षा कर उठी, उत्तर प्रदेश मे रामानन्द के नेतृत्व मे उनके शिष्यो ने भक्ति आन्दोलन को प्रबलतर बना दिया। बङ्गाल में चैतन्य महाप्रभु कृष्ण-प्रेम मे विभोर होकर घर-घर में कृष्ण का गुण गान करने लगे। दक्षिण में माधवाचार्य, तुकाराम, नामदेव, लक्ष्मण भट्ट आदि सन्तो ने भक्ति भावना को आन्दोलित किया।

स्वामी रामानन्द—भारत मे इस्लाम के प्रवेश के पश्चात् जो जागृति हुई, उसका श्रेय अनेक अंशो मे स्वामीजी को है। ये रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा मे थे और पन्द्रहवी सदी के अन्तिम भाग मे हुए थे। रामानुजाचार्य व उनके शिष्य परम्परा के लोग भगवान विष्णु के उपासक थे। रामानन्द ने इसमें नये तत्व का समावेश किया। स्वामीजी ने भगवान को भक्ति के लिए विष्णु के

स्थान पर मानव शरीर धारण कर राक्षसों का संहार करने वाले राम का आश्रय लिया और उन्ही के प्रेम व भक्ति को मोक्ष का साधन माना। रामानन्द के पूर्व रामानुज सम्प्रदाय मे केवल द्विजातियो को ही शिक्षा दी जाती थी, किन्तु रामानन्द ने राम भक्ति का द्वार सब जातियो के लिए खोल दिया। उनके मुख्य शिष्य निम्नलिखित व्यक्ति थे—अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसरानन्द, भवानन्द, पीपा कबीर सेन, धना, रैदास, पद्मावती, सुरसरी नरहयनन्द।

कबीर—कबीर जाति के जुलाहे व रामानन्द के प्रधान शिष्य थे। उन्होंने राम या कृष्ण की भगवान के रूप मे उपासना न करके निर्गुण व निराकार रूप मे ही उनकी पूजा की। उन्होंने ऊँच-नीच और हिन्दू-मुस्लिम के भेद भावो को दूर करने का भागीरथ प्रयत्न किया। उनकी दृष्टि मे अल्लाह और राम मे, करीम और केशव मे या हरि और हजरत मे कोई भेद न था। इन विचारो को उन्होने बडे सुन्दर शब्दो मे व्यक्त किया है—

भाई रे दुई जगदीश कहा ते आया, कहु कौने बौराया।
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया।।
गहना एक कनक ते गहना, यामे भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुई कर धाये, एक नमाज एक पूजा।।
वही महादेव, वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिए।
को हिन्दू को तुरक कहावै, एक जिमी परिहरिये।
वेद किते‍ब पढ़े वे कुतबा, वे मुलना वे पाण्डे।
बेमर बेमर नाम धराये, एक मिट्टी के भाण्डे।।

इस्लाम और हिन्दू धर्मों की मौलिक एकता का इससे सुन्दर प्रतिपादन सम्भव नही है। उन्होने पूजा पाठ पर भी आक्षेप किया। वे हिन्दुओ से कहते थे—पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार। ताते या चाकी भली, पीस खाय संसार।। इसी प्रकार मुसलमानो से उनका कहना था—काकर पत्थर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय। ता चढि मुल्ला बाग दै, बहरा हुआ खुदाय।।

चैतन्य—स्वामी रामानन्द के समय में ही बंगाल में एक प्रसिद्ध वैष्णव हुए, जिनका नाम चैतन्य था। चौबीस वर्ष की आयु में सांसारिक जीवन का परित्याग कर उन्होंने अपना सब ध्यान हरि की भक्ति में लगा दिया था। वे हरि या विष्णु के कृष्ण अवतार के उपासक थे और कृष्ण भक्ति को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते थे। चैतन्य अपने शिष्यों को प्रेम की वेदी पर सर्वस्व अर्पण करने का उपदेश देते थे। ब्राह्मण और शूद्र, हिन्दू और मुसलमान सब उनके सन्देश को प्रेम एवं भक्ति से सुनते थे और उनके अनुकरण में अपनी जाति व धर्म के भेद को भूल जाते थे।

गुरु नानक—गुरु नानक स्वामी रामानन्द के समकालीन हैं। इनका कार्य क्षेत्र पंजाब था। गृहस्थ जीवन को व्यतीत करते हुए उनका ध्यान भगवान की ओर आकृष्ट हुआ और वे सांसारिक सुख को त्याग कर भगवान का साक्षात्कार करने के लिए प्रवृत हुए। इस उद्देश्य से उन्होंने प्रायः सम्पूर्ण भारत की यात्रा की और भारत से बाहर मक्का भी गये। उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमानों में कोई भेद न था। हिंदुओं एवं मुसलमानों में एकता की स्थापना करते हुए उन्होंने कहा था:—

बन्दे इक्क खुदाय के हिन्दू मुसलमान।
दावा राम रसूल कर, लडदे बेईमान॥

गुरु नानक ने हिन्दू धर्म व मुस्लिम धर्म का समन्वय कर नये पंथ का निर्माण किया जो आगे चलकर सिक्ख धर्म के रूप में परिवर्तित हो गया।

रैदास—रैदास जाति के चमार व रामानन्द के शिष्य थे। ये अछूत जाति में उत्पन्न हुए थे, किन्तु इनकी भक्ति से आकृष्ट होकर बहुत से ब्राह्मण भी इनको दण्डवत् किया करते थे। इन्हीं से रैदासी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। चमार जाति के लोग इस धर्म के अनुयायी हैं।

कबीर मे मुस्लिम धर्म मे प्रभावित इस नये धर्म आन्दोलन ने धर्म के सभी बाह्य उपचारों का विरोध किया। पूजा पाठ व्रत उपवास आदि के स्थान

पर चरित्र की शुद्धता पर जोर दिया। सर्व शक्तिमान ईश्वर की सत्ता का प्रचार किया। जाति बन्धनों को ढीला करने का प्रयत्न किया। उनका सन्देश यही था, 'जाति पाति पूछे ना कोई, हरि को भजे जो हरि को होई' तथा मूर्ति पूजा का विरोध किया।

इस्लाम धर्म पर हिन्दू धर्म का प्रभाव

इस्लाम धर्म पर भी भारतीय धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने भारतीय धर्म के अनेक तत्वों को ग्रहण किया। मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी होते हुए भी भारत के मुसलमानों ने शीतला आदि देवियों की पूजा करने में संकोच नहीं किया। भारत के लोगों में प्रकृति की विविध शक्तियों को देवी देवता के रूप में देखने की परम्परा थी। वे नदी, पर्वत आदि के अधिष्ठात्री देवताओं की पूजा किया करते थे। इस्लाम पर भी भारत की इस परम्परा का प्रभाव पड़ा। और मुसलमानों ने ख्वाजा खिज्र के रूप में नदियों के अधिष्ठात्री देवता की और जिन्दा गाजी के रूप में सिंहवाहिनी देवी के प्रेमी देवता की कल्पना कर डाली। भारत के मुसलमानों ने पीरों के मजारों की पूजा भी प्रारम्भ की। अपने पीरों व सन्तों के मजार बना कर उन्होंने वहां उर्स प्रारम्भ किये, जिनमें हिन्दुओं के देव मन्दिरों के समान नृत्य और गान होता था और पुष्प आदि द्वारा मजार की पूजा की जाती थी। यह परम्परा अब तक भी भारत के मुसलमानों में विद्यमान है।

सूफी सम्प्रदाय

इस्लाम में सूफी सम्प्रदाय पर भी भारत के वेदान्त और भक्ति मार्ग का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। सूफी सम्प्रदाय बहुत प्राचीन है। भारत में इसका प्रवेश ग्यारहवीं सदी के अन्तिम भाग में हुआ था, जबकि अबुल हसन हुज हुज्विरी नामक सूफी पीर ने गजनी से भारत आकर अपना कार्य शुरू किया। भारत में सूफी पीरों में सबसे प्रसिद्ध मुइनुद्दीन चिश्ती (१३ सदी) थे, जिनकी दरगाह अजमेर में विद्यमान है। सूफी सम्प्रदाय के पीरों ने हिन्दू परम्परा की अनेक बातों को अपनाया। भारत में आने से पूर्व ही सूफी लोग प्रेम-साधन में विश्वास करते थे। परन्तु भारत में आकर वे नाथयोगी सम्प्रदाय के संपर्क में

पाये और उनसे प्रभावित होकर उन्होंने अनेक यौगिक क्रियाओं को अपनी साधना में समाविष्ट किया। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत को अपना कर उन्होंने जीव को ईश्वर भक्ति करने का मार्ग दिखाया। इस प्रकार सूफी सम्प्रदाय भारत के 'निर्गुण मार्ग' के अनुयायियों के समीप आ गया। (कबीर महत्व सन्त जिस ढंग की भक्ति और उपासना का प्रतिपादन करते थे, उसको निर्गुण मार्ग' कहते हैं) मुस्लिम सूफीयों के प्रेम मार्ग और कबीर के निर्गुण मार्ग में काफी साम्य था। सूफी पीरों ने अपने मन्तव्यों को सर्व साधारण जनता को समझाने के लिए भारत की प्राचीन प्रेम कथाओं का आश्रय लिया तथा उनके आधार पर ईश्वर-प्रेम का सन्देश दिया।

हिन्दू धर्म और इस्लाम के मेल और एक दूसरे के समीप आने का महत्व पूर्ण परिणाम यह हुआ कि अनेक ऐसे सम्प्रदायों का प्रारम्भ हुआ, जिनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। इन सम्प्रदायों में 'सत्य पीर' के उपासक सर्व प्रथम थे। बंगाल का सुल्तान हुसैनशाह इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक था। आगे चलकर मुगलकाल मे सतनामी और नारायणी नामक दो अन्य ऐसे सम्प्रदाय प्रारम्भ हुए, जिनके हिन्दू और मुसलमान समान रूप से अनुयायी थे। पन्द्रहवीं सदी के अन्त में 'सत्य पीर' के रूप में हिन्दू और मुसलमानों के एक उभयनिष्ट देवता का प्रादुर्भाव इस युग की हिन्दू मुस्लिम समन्वय की प्रवृत्ति का उत्तम उदाहरण है।

हिन्दुओं और मुसलमानों में ऐक्य की यह प्रवृत्ति निरन्तर जोर पकड़ती गई। १३ वीं सदी में हिन्दू और मुसलमानों के दो सर्वथा पृथक वर्ग थे। १५ वी सदी के अन्त तक इसमें बहुत परिवर्तन आ गया था। मुगल काल में इन दोनों सम्प्रदायों में समन्वय की भावना को और बल मिला। अकबर जैसे सम्राट के प्रयत्न से हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के और अधिक समीप आ गये।

प्रश्नावली

१. भक्ति आन्दोलन पर निबन्ध लिखिए।

२ अफगान युग मे हिन्दू मुस्लिम समन्वय की प्रगति पर प्रकाश डालिए।

३ सूफी सम्प्रदाय पर सक्षिप्त नोट लिखिए।

---

१२ मुगल युग का भारत

मुगल युग भारतीय इतिहास का देदीप्यमान युग है। मुगल साम्राज्य की स्थापना के पूर्व ही भारत में सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता की भावना जागृत हो गई थी। हिन्दू और मुसलमान शताब्दियों के सहवास के कारण एक दूसरे को समझने का प्रयास करने लग गये थे। भक्ति आंदोलन तथा सूफी आंदोलन ने भारत को धार्मिक तथा सांस्कृतिक एकता प्रदान करने के लिए प्रशंसनीय सहयोग दिया था। इसी आंदोलन के समय मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी जो भारत में दीर्घ काल तक बनी रही। इस दीर्घ कालीन शासन काल में मुगल सम्राटों ने भारतीय जनता के प्रति धार्मिक सहिष्णुता की नीति को अपनाया। अकबर ने गुजरात, मालवा, गोंडवाना, बंगाल कालिञ्जर, चित्तौड़-गढ़, रणथम्भोर, काबुल, सिंध, कन्धार, अहमदनगर, असीरगढ़ पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर भारत को राजनैतिक एकता प्रदान की तथा देश को व्यवस्थित राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। देश में शांति का वातावरण होने से हिन्दुओं और मुसलमानों में निकट सम्पर्क स्थापित हुआ। दोनों ने एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न किया जिसके परिणामस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग एवं समन्वय की भावना का विकास हुआ।

[१] शासन व्यवस्था

मुगल युग की शासन व्यवस्था का निर्माण अकबर के शासन काल में हुआ था। अकबर की शासन व्यवस्था शेरशाह सूरी की शासन व्यवस्था का ही

विकसित रूप था। इस युग की शासन व्यवस्था का अध्ययन करने से पूर्व उसकी कुछ विशेषताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। मुगल प्रशासन भारतीय एव विदेशी तत्वों के समन्वय का परिणाम था। सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि 'मुगल प्रशासन भारतीय एव विदेशी तत्वो का समन्वय उपस्थित करता है। वस्तुत यह कहना और भी सत्य होगा कि मुगल शासन व्यवस्था भारतीय वातावरण मे प्रयुक्त अरबी तथा फारसी शासन व्यवस्था है।' मुगल राज सस्था का आधार केन्द्रीभूत निरकुश शासन था तथा उसकी सत्ता सैन्य शक्ति पर आश्रित थी। मुगल शासन धर्म निरपेक्ष शासन था। वस्तुत औरगजेब को छोडकर सभी मुसलमान शासकों ने धर्म निरपेक्ष राज्य-नीति का ही अनुकरण किया था।

केन्द्रीय शासन व्यवस्था—राज्य की सर्वोच्च शक्ति केन्द्रीय सरकार में सन्निहित थी। शासन की व्यवस्था का स्वरूप एकात्मक था अत सभी स्थानीय एवं प्रांतीय इकाइयां केन्द्रीय सत्ता के आदेशानुसार ही अपना कार्य करती थी। केंद्रीय सरकार को सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। राज्य की सर्वोच्च शक्ति सम्राट था। वह निरकुश शासक था अर्थात् उसके अधिकार अप रिमित थे तथा उसके अधिकारों को सीमित करने वाली अन्य कोई शक्ति न थी। वह पृथ्वी पर 'ईश्वर की प्रतिमूर्ति' माना जाता था। राजा को पदच्युत करने का कोई नियम न था। सम्राट का पद पैतृक अवश्य था परन्तु उत्तराधिकार का कोई नियम न होने के कारण शक्ति ही राजमुकुट दिलाने म समर्थ होती थी। मुसलमान हाने के नाते सम्राट को मुस्लिम धार्मिक ग्र था के अनुसार कार्य करना पड़ता था। परन्तु प्रतिभावान शासक अपनी इच्छानुसार ही उन धार्मिक ग्र थाकी समीक्षा करवा लेता था। न्याय के क्षेत्र म भी सम्राट की सत्ता सर्वोपरि थी।

मन्त्री परिषद—कोई नियमित सस्था न थी। सम्राट अपने परामर्श के लिए विभिन्न मत्री नियुक्त करता था। उनमे एक प्रधान मत्री अथवा वजीर

कहलाता था। वजीर का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण था। सम्राट मंत्री परिषद के परामर्श को मानने के लिये बाध्य नही था। मंत्री केवल अपनी वाक्पटुता और नीति द्वारा अप्रत्यक्ष रूप मे ही सम्राट को प्रभावित करते थे।

सरकार के विभाग--राज्य व्यवस्था के लिये मुगल युग में विभिन्न विभाग होते थे। प्रत्येक विभाग का एक-अध्यक्ष होता था जो प्रायः मंत्री परिषद का सदस्य होता था। प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष को अपने विभाग की देख-रेख करनी होती थी। मुगल व्यवस्था में निम्नलिखित विभाग थे।

कोष अथवा राजस्व विभाग--यह अत्यन्त महत्वपूर्ण विभाग था। राज्य की अर्थ व्यवस्था इसी विभाग द्वारा होती थी। दीवान अथवा वजीर इस विभाग का अध्यक्ष होता था। बादशाह के बाद राज्य में उसकी स्थिति सबसे ऊँची होती थी। सभी अधिकारी, वेतन इसी विभाग से पाते थे। अतः वजीर का प्रभुत्व प्रायः सभी विभाग के अधिकारियों पर हो जाना स्वाभाविक था। वजीर को भी अन्य अधिकारियों की भाँति उच्च सैनिक पदवी मिलती थी।

राजकीय गृह व्यवस्था--इस विभाग का कार्य मुगल सम्राटों के राजप्रासाद की व्यवस्था करना था। अकबर के अन्तःपुर में ५००० के लगभग स्त्रियाँ थीं। यही दशा अन्य मुगल बादशाहो के हरम की थी। इतने विशाल अन्तःपुरों की सुव्यवस्था के लिए एक पृथक् सरकारी विभाग की सत्ता अनिवार्य थी। इस विभाग का अध्यक्ष खान-ए-सामान कहलाता था तथा यह अधिकारी अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति होता था। राजा के साथ लड़ाइयों आदि मे भी वह साथ रहता था।

सैनिकों का वेतन तथा जमा खर्च--सेना के खर्च का हिसाब रखना और सेना को नियमित रूप से वेतन देना इस विभाग का कार्य था। इस विभाग का अध्यक्ष मीर बख्शी कहलाता था। सभी मुगल अधिकारी सैनिक पदाधि-

कारी भी होते थे अतः सभी पर सैनिक विभाग का अधिकार होता था। सैन्य संचालन मे भी बरशी का महत्व पूर्ण स्थान था।

न्याय विभाग—राज्य के न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी काजी-उल-कुजाव कहलाता था। न्याय के कार्य के समुचित संचालन का कार्य भार इसी पर होता था।

धार्मिक धन सम्पत्ति निर्धारण तथा दातव्य विभाग—धार्मिक सस्थाओ को जो सहायता सम्राटो की तरफ से दी जाती थी या उसकी तरफ गरीबो व अनाथो के पालन के लिए जो खर्च होता था उसकी व्यवस्था करना इस विभाग का कार्य था। इस विभाग का अध्यक्ष सदर-उल-सदूर अथवा प्रधान सदर कहलाता था।

जनता के सदाचार के निरीक्षण का विभाग—जनता के नैतिक कार्यों के निरीक्षण का पृथक विभाग था। इस विभाग का अध्यक्ष मुहतसीव कहलाता था।

तोपखाना विभाग—तोपखानो की व्यवस्था के लिए एक पृथक विभाग था। इस विभाग का अधिकारी मीर-आतीस होता था।

सम्वाद तथा पत्र व्यवहार विभाग—दरोगा-ए-डाक चाकी इस विभाग का अध्यक्ष होता था जो सम्वाद तथा पत्र व्यवहार का प्रबन्ध करता था डाक के लिए सर्वत्र एजेन्ट रहते थे।

टकसाल—मुद्रा निर्माण के लिए एक अलग विभाग होता था जिसका कार्य एक दरोगा की देख-रेख मे होता था।

उपरोक्त अधिकारियो के अतिरिक्त (१) मीर मान। (२) मुस्तौफी या आडिटर जनरल। (३) नाजिरे-बुयुनात या सरकारी कारखानो का

दारोगा। (४) मुशरिफ या मूमिकर विभाग का सचिव । (५) मीर बहरी या नौसेनाध्यक्ष। (६) मीर वर्र या जंगलात के विभाग का अध्यक्ष। (७) वाकए-नवीस राज्य में जो कुछ घटनायें घटित हो रही हैं उन सबसे बादशाह को अवगत करना इस पदाधिकारी का कार्य होता था। (८) मीर अर्ज—यह जनता के प्रार्थना पत्र बादशाह की सेवा में उपस्थित करता था। (९) मीर-मंजिल या क्वार्टर-मास्टर-जनरल। (१०) मीर तोजक —इसका कार्य शाही दरबार के साथ सम्बन्ध रखने वाली विविध विधियों व कायदों के यथावत् अनुसरण व पालन की व्यवस्था करना होता था।

मुगल बादशाह के केन्द्रिय शासन में उपरोक्त चर्चित राजकर्मचारी सर्व प्रमुख होते थे तथा इन्हीं की सहायता से मुगल बादशाह राज्य कार्य का संचालन किया करता था। ये अधिकारी अपने कार्य के लिए सम्राट के प्रति ही उत्तरदायी होते थे तथा बादशाह के विश्वास रहने तक ही अपने पदों पर रह सकते थे। पद वंशानुगत नहीं थे तथा योग्यता के आधार पर प्राप्त होते थे।

प्रान्तीय शासन व्यवस्था—मुगल साम्राज्य भारत व्यापी था। अतः सम्पूर्ण साम्राज्य विभिन्न विभागों में विभक्त था। अकबर के समय मुगल साम्राज्य के सूबों की संख्या १५ थी। इन पन्द्रह सूबों के नाम निम्नलिखित थे—आगरा, इलाहबाद, अवध, दिल्ली, लाहौर, मुलतान, काबुल, अजमेर, बंगाल, बिहार, अहमदाबाद, मालवा, बरार, खानदेश और अहमदनगर। औरंगजेब के समय सूबों की संख्या १७ हो गई थी। मुगलों का प्रान्तीय शासन केन्द्र का लघुरूप या अर्थात् जो शासन की अवस्था केन्द्र में थी उसका प्रतिरूप ही प्रान्तों में प्राप्त था।

प्रान्त का सर्वोच्च अधिकारी 'सूबेदार', 'नाजिम', 'सिपहसालार' या 'साहिब सूबा' कहलाता था। झरोखे में बैठ कर दर्शन देने के अधिकार को छोड़ कर शेष अधिकार सम्राट के समान ही होते थे। वह केन्द्रीय शासक का पूर्ण रूपेण प्रतिनिधि होता था। प्रान्त में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित रखना

उसका प्रमुख उत्तरदायित्व था। सूबेदार के अधीन अनेक राजपदाधिकारी होते थे जिनमें प्रमुख दीवान, बख्शी, काजी एवं सदर, कोतवाल, वाकयानवीस, दीवान-ए-वयूतत थे। दीवान प्रान्त की मालगुजारी का प्रबन्ध करता था। प्रान्त का लगान एकत्रित कर शाही कोष मे जमा कराता था। अनेक पदाधिकारी दीवान की सहायता के लिए होते थे। सूबेदार के उपरान्त दूसरा स्थान बख्शी का होता था। प्रान्त की समस्त सेना का प्रबन्ध, निरीक्षण आदि का कार्य यही करता था। दीवान-ए-वयूतत केन्द्रीय खान-ए-सामान के प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करने वाला अधिकारी होता था। राज्य के कारखाने चलाने का उत्तरदायित्व इसी का था। कोतवाल सूबे की राजधानी मे पुलिस का प्रबन्ध करने तथा अपराधियों का पता लगाने वाला अधिकारी था। काजी तथा सदर का संयुक्त पद होता था। न्याय करने के अतिरिक्त दान सम्पत्ति का वितरण भी करने का उत्तरदायित्व इसी पर होता था।

सरकार का प्रबन्ध—प्रत्येक प्रान्त सरकारो मे विभक्त रहता था। सरकार का प्रमुख अधिकारी फौजदार कहलाता था। सरकार मे सूबेदार के कार्यों का सम्पादन यही करता था। करोड़ी अथवा आमिल लगान एकत्रित करने का कार्य करता था। पुलिस की व्यवस्था के लिए सरकार के विभिन्न नगरो मे कोतवाल रहते थे। न्याय का कार्य काजी अथवा शिकदार करते थे।

परगना—लगान की इकाई परगना होता था। प्रत्येक परगना का सर्वोच्च अधिकारी तहसीलदार कहलाता था। तहसीलदार की सहायता के लिए लेखक, खजान्ची आदि कर्मचारी होते थे। कुछ परगनो मे काजी भी रहते थे।

गाव—गावो मे मुगलो का कोई कर्मचारी अथवा प्रतिनिधि नही रहता था। मुकद्दम गाव का सरपंच होता था तथा गाव मे लगान वसूल करता था। लगान का २½% उसे राज्य की ओर से महन्ताना प्राप्त होता था।

सैनिक व्यवस्था—इतना बड़ा साम्राज्य सेना की शक्ति पर ही आधारित था। सैन्य व्यवस्था का आधार अकबर ने निश्चित कर दिया था। उसने जागीर प्रथा का अन्त कर दिया तथा उसके स्थान पर मनसबदारी प्रथा प्रारम्भ की। २० सैनिक से लेकर १०,००० सैनिक तक का मनसब होता था। मनसबों की कुल ३३ श्रेणियां थी। ५००० से ऊपर के मनसब राजवंश के व्यक्तियों को ही प्रदान किये जाते थे। सैनिक भी दो प्रकार के होते थे। जात तथा सवार। सम्भवतः प्रत्येक सिपाही जात होता था और सवार वह होते थे जिन्हें राज्य की ओर से घोड़े भी प्राप्त होते थे। सम्राट स्थाई रूप से अपनी एक सेना रखते थे। जो सेना उसकी रक्षार्थ होती थी उसे अहदी सेना कहा जाता था। सेना चार भागों मे विभक्त थी। पैदल सेना, घुड़सवार, तोपखाना और जल सेना। इनके अतिरिक्त हाथियों एवं ऊंटों के दस्ते भी होते थे जो विशेष परिस्थितियों मे प्रयोग मे लाये जाते थे। सेना में सर्व प्रधान स्थान घुड़सवारों का था। इसलिए विविध मनसबदारों के लिए यह आवश्यक था कि वे घोड़ों की एक निश्चित संख्या अपने पास रखे जिन्हें आवश्यकतानुसार राज्य के लिए प्रयुक्त किया जा सके। मुगल सेना मे तोपखाने का बहुत महत्व था। तोपखाने के सब सैनिकों व कर्मचारियों को राज्य कोष से वेतन मिलता था तथा मनसबदारों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। मुगल युग में नौसेना का भी काफी महत्व था तथा इसके लिए एक अलग विभाग था जिसका प्रधान 'मीर बहरी' कहलाता था। इसके कार्य थे—(१) नदियों के पार उतारने के लिए सब प्रकार की नौकाओं का निर्माण करवाना, (२) युद्ध के काम आने वाले हाथियों को पार उतारने के लिए विशेष प्रकार की नौकाओं का निर्माण करवाना, (३) मल्लाहों को भरती करना और उन्हें नौकानयन सिखाना, (४) नदियों का निरीक्षण करना और (५) नदियों को पार करने के लिए घाटों पर कर वसूल करना। मुगल सम्राटों के पास अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित जंगी जहाज थे जो बंगाल तथा पश्चिमी समुद्री तटों पर तैनात थे।

मनसबदारी प्रथा के कारण सेना मे दोष आगये थे। सैनिकों की श्रद्धा

सम्राट की अपेक्षा मनसबदारो के प्रति होती थी। विभक्त सेनापतित्व, सेना मे विभिन्न श्रेणी के लोग, मन्दगति से सैन्य संचालन तथा अनुशासन हीनता आदि इसके दुर्गुण थे। मनसबदारो की बेईमानी के कारण मुगल सैनिक प्रशिक्षित एवं अयोग्य भी होते थे।

पुलिस—नगरो मे शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के लिए कोतवाल होते थे। 'आइने अकबरी' मे कोतवाल के कर्तव्य निम्नलिखित थे (१) चोरों को पकड़ना, (२) तोल और माप के उपकरणो को नियन्त्रित रखना तथा इस बात का ध्यान रखना कि व्यापारी लोग ग्राहको से उचित मूल्य ले, (३) रात के समय शहर के बाजारों, गलियों और मार्गों पर पहरे का इन्तजाम करना, (४) शहर के व्यक्तियों का उल्लेख अपने रजिस्टर मे करना और बाहरी व्यक्तियों पर निगाह रखना, (५) शहर की गलियों, रास्तो और मकानो का रेकार्ड रखना, (६) खुफिया पुलिस की नियुक्ति करवाना, (७) गाय, बैल, भैंस, घोड़े, ऊंट के वध को रोकना, (८) किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध सती होने के लिए विवश किये जाने पर उसे सती होने से रोकना।

न्याय व्यवस्था– मुगल सम्राटो ने न्याय व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध किया था। मुगल वंश के सम्राटो को अपनी न्याय प्रियता पर विशेष रूप से गर्व था, अकबर ने एक समय कहा था 'यदि मैं कभी किसी अनुचित कार्य के अपराध में पाया जाऊं तो मैं स्वय अपने विरुद्ध न्याय करूंगा।' जहांगीर का न्याय तो विश्व प्रसिद्ध ही है। मुगल काल में चार प्रकार के न्यायालय थे (१) सगान संबंधी न्यायालय, (२) दीवानी तथा फौजदारी के न्यायालय (३) गाव की पंचायतें तथा (४) सरकारी कर्मचारियों के आधीन न्यायालय। न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी काजीउल-कुजात होता था। सम्राट भी न्याय करता था। अपील सुनने का अन्तिम न्यायालय उसी का होता था। प्रधान न्यायाधीश की सहायता के लिए काजी, मुफ्ती, मीर आदिल होते थे। मुफ्ती कानूनों की व्याख्या करता, काजी मुकदमे सुनता और निर्णय देता था। मीर

श्रादिल फैसला तैयार करने तथा सुनाने का कार्य करता था। हिन्दू तथा मुसलमानों की श्रदालतें एक ही थी। न्याय करते समय हिन्दू तथा मुसलमानों के रीति-रिवाजों का ध्यान रखा जाता था। मुसलमानों का न्याय शरियत के अनुसार तथा हिन्दुओं के परम्परागत कानून के अनुसार होता था। राजद्रोह सबसे बड़ा अपराध माना जाता था। दण्ड विधान निश्चित न था। अपराध के अनुसार ही दण्ड की व्यवस्था होती थी। काजी लोग अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे। अतः न्याय का कार्य ठीक प्रकार नहीं हो पाता था।

आय के साधन—राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि था। उपज का $\frac{1}{3}$ भाग लगान के रूप में लिया जाता था। कभी-कभी किसानों के ऊपर अबवाब लगाये जाते थे। औरंगजेब ने इन्हें समाप्त कर दिया तथा राज्य की आय बढ़ाने के लिए जजिया लगा दिया था। कृषि के अतिरिक्त आय के अन्य साधन भी थे। कभी-कभी मनसबदारों के वेतन में से कटौती करली जाती थी। अधीनस्थ राजाओं से कर लिया जाता था। अनेकों व्यवसायों पर कर तथा आयात निर्यात पर चुङ्गी लगाई जाती थी। युद्ध में लूट का माल, लावारिस की सम्पत्ति तथा भेंट के रूप में भी राज्य को आय होती थी। फीस, जुर्माना तथा धार्मिक कर भी राज्य की आय के साधन थे।

उपरोक्त विवरण का अध्ययन कर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि मुगलों की शासन व्यवस्था एकतंत्रीय आधार पर संगठित थी तथा उसमें वे सभी गुण-दोष विद्यमान थे जो एकतंत्रीय शासन में होते हैं। फिर भी भारत के इतिहास में मुगल कालीन शासन-व्यवस्था का बहुत अधिक महत्व है। इसका प्रधान कारण यह है कि इस समय देश का शासन जिस ढङ्ग से संगठित हुआ था, उसके अनेक तत्व ब्रिटिश युग में भी कायम रहे और अब तक भी उनके अवशेष विद्यमान हैं। शहरों के कोतवाल, मालगुजारी वसूल करने वाले तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी उस युग का स्मरण दिलाने के लिये पर्याप्त है।

[२] सामाजिक जीवन

मुगल कालीन सामाजिक जीवन सामन्त पद्धति पर आश्रित था, जिसमे सम्राट का स्थान सर्वोच्च था। समाज तीन भागो में विभक्त था— (१) भोग विलास से पूर्ण, उच्च जीवन स्तर वाला सामंत वर्ग, (२) मितव्ययी मध्यम वर्ग तथा (३) निम्न वर्ग। इन तीनो वर्गों के जीवन स्तर मे महान् अन्तर था।

सामन्त वर्ग—इस श्रेणी मे सम्राट और उन अमीर-उमरावो का स्थान था जो विविध श्रेणियों के मनसब प्राप्त कर राज्य शासन और समाज मे उच्च पद प्राप्त किये हुए थे। इन अमीर-उमरावो को अनेक ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त थे जिनके कारण उनकी स्थिति सर्व साधारण जनता से सर्वथा भिन्न हो गई थी। ये अमीर-उमराव बड़े आराम के साथ जीवन बसर करते थे। जीवन के उपरान्त क्या होगा इसकी चिन्ता इन्हे न थी। गगनचुम्बी अट्टालिकाओ में इनका जीवन वैभव तथा सम्पन्नता के मध्य व्यतीत होता था। भोग विलास की सामग्री इनके इङ्गित मात्र पर उपलब्ध थी। सुन्दर पोशाक, उत्कृष्ट मदिरा, षड्रस भोजन, भोग विलास, नृत्य-गायन व द्यूत क्रीड़ा इनके जीवन के अङ्ग बन गये थे। सम्राट और अमीर उमरावो के रंग महलो में अनेको स्त्रियां होती थी। अकबर के हरम मे ५,००० स्त्रियाँ थी। स्त्रियो का इनके लिए कोई मूल्य न था। वह भोग विलास की सामग्री मात्र समझी जाती थी। इतने दुर्गणो से युक्त होकर भी इस वर्ग मे कुछ गुण विद्यमान थे। यह वर्ग विद्वानो तथा कलाकारो का आदर करता था तथा इस वर्ग के संरक्षण मे अनेकों कलाकारो को आश्रय प्राप्त था।

मध्यम वर्ग—राज कर्मचारी, व्यापारी तथा समृद्ध शिल्पी इस काल के मध्यम वर्ग क अन्तर्गत आते हैं। गर्व तथा आडम्बर रहित जीवन व्यतीत कर इस वर्ग के व्यक्ति धन का अपव्यय नही करते थे। अपनी प्रतिष्ठानुसार ही वह अपना स्तर बनाये रखने की चेष्टा करते थे। किन्तु बन्दरगाहों में निवास

करने वाले व्यापारी अमीर-उमरावों के समान विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।

निम्न वर्ग— निम्न वर्ग के अन्तर्गत नगर के शिल्पी, श्रमजीवी तथा ग्रामीण कृषक आते थे। इनकी आर्थिक दशा अच्छी न थी। इनके पास आवश्यकताओं को पूर्ण करने योग्य साधनों का भी अभाव था। तन ढकने के लिए कपड़ा भी इन्हें कठिनता से प्राप्त होता था। रेशम व ऊनी कपड़ों का प्रयोग तो उनकी कल्पना से भी परे था। रहने को झोंपड़े और भोजन के रूप में सूखी रोटी ही इन्हें प्राप्त थी। इनके रक्त पसीने की कमाई का अधिकांश भाग राज्य कर के रूप में छिन जाता था। जहांगीर के समय में भारत की यात्रा करने वाले फ्रांसिस्को पल्सेअर्ट नामक यात्री ने लिखा है कि इस देश की जनता में तीन वर्ग ऐसे हैं जो नाम को तो स्वतन्त्र हैं पर जिनकी दशा गुलामों से भिन्न नहीं है। ये वर्ग मजदूरों, चपरासियों व नौकरों और छोटे दूकानदारों के हैं। श्रमजीवी को बेगार करनी पड़ती थी तथा उनको वेतन भी बहुत कम प्राप्त होता था। श्रमजीवियों तथा शिल्पियों से किसानों का जीवन सुखी था। इनके प्रति बादशाह का दृष्टिकोण उदार था। राज्य कर्मचारी नम्रता का व्यवहार करते थे। परन्तु शाहजहाँ के शासन काल के अन्तिम वर्षों में इनकी दशा भी बिगड़ने लगी थी।

मनोरञ्जन के साधन— निम्न वर्ग के पास न तो मनोरञ्जन के साधन ही थे और न अवकाश ही था। सामंत अमीर, राज्य दरबारी ही मनोरञ्जन के साधन जुटा पाते थे और उनके पास समय का अभाव भी न था। मुगल शासकों को स्वयं खेल व्यायाम आदि में विशेष अभिरुचि थी। शिकार, पोलो, पशु-युद्ध भी प्रचलित थे। शतरंज, चौपड़, पासा आदि खेलों में भी लोग आनन्द का अनुभव करते थे। मदिरा उस काल में मनोरञ्जन का विशिष्ट साधन था।

स्त्रियों की दशा— इस युग में स्त्रियों की दशा अच्छी न थी। पर्दे की प्रथा थी तथा उनकी शिक्षा की भी समुचित व्यवस्था न थी। स्त्री को भोग विलास की सामग्री समझा जाता था। बहु-विवाह के कारण स्त्री की मर्यादा

को और भी अधिक ठेस पहुँची थी। हिन्दू स्त्रियों ने अपनी मर्यादा को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया था, उनमे सती और बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। यद्यपि इस युग मे कतिपय सुप्रसिद्ध स्त्रियाँ हो गई हैं, जिनमे जहाँनआरा, रोशन-आरा, जेबुन्निसा, सुल्ताना चाँद बीबी, नूरजहाँ, जीजाबाई, ताराबाई आदि प्रमुख हैं परन्तु साधारणतया स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक न थी।

विविध हिन्दू जातियों मे अपने कुलीन होने का विचार भी इस युग मे भली-भांति विकसित हो गया था और कुलीन समझने वाली जातियां अन्य लोगों को अपने से हीन समझने लगी थी। पीरों, फकीरों और साधुओं के प्रति जनता मे श्रद्धा का भाव था। फलित ज्योतिष मे हिंदू और मुसलमानों का समान रूप से विश्वास था। विजय यात्रा के लिए प्रस्थान करते हुए या कोई नया कार्य प्रारम्भ करते हुए लोग शकुन का विचार करते थे। गुलामी की प्रथा भी इस युग मे प्रचलित थी तथा इनका क्रय विक्रय होता था। हिंदुओं की नैतिक दशा बहुत उन्नत थी। टैवर्नियर ने उनके विषय मे लिखा है कि "हिंदू लोग नैतिक दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट हैं। वैवाहिक जीवन मे वे अपनी स्त्रियों के प्रति अनुरक्त रहते हैं और उनके साथ धोखा नही करते। उनमे व्यभिचार या अनैतिकता बहुत कम पाई जाती है।' पर मुस्लिम अमीर-उमरावों का जीवन इस ढङ्ग का नही था। वे अपने वैयक्तिक जीवन मे नैतिकता का बहुत कम पालन करते थे।

इस युग की सामाजिक जीवन की विशेषता यही है कि इस काल मे मुसलमान और हिंदू सम्प्रदायों मे समन्वय तथा सम्मिश्रण की प्रवृत्ति थी। यह समन्वय की भावना जीवन के सभी क्षेत्रों तथा धर्म, शासन, साहित्य और कला मे प्रकट हुई।

[३] साहित्य एवं शिक्षा

मुगल काल में शिक्षा—मुगल युग मे शिक्षा व्यक्तिगत विषय था अर्थात् मुगल युग के शिक्षणालय न राज्य द्वारा सचालित थे और न राज्य का

नियन्त्रण ही उन पर विद्यमान था। इस काल में शिक्षा का कार्य धार्मिक संस्थाओं के अधीन था। मन्दिरों व मस्जिदों के साथ अनेक इस प्रकार के विद्यालय स्थापित थे जिनमें विद्यार्थी साधारण और उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। बौद्ध युग के विहारों व महाविहारों का स्थान अब मन्दिरों और मस्जिदों के साथ सम्बद्ध शिक्षा संस्थाओं ने ले लिया था। हिन्दू मन्दिर न केवल हिन्दू धर्म, दार्शनिक चिन्तन और भारतीय संस्कृति के केन्द्र थे अपितु साथ ही शास्त्रों की शिक्षा का कार्य भी वहां होता था। यही बात मस्जिदों के विषय में भी कही जा सकती है जहां फारसी भाषा, कुरान व अन्य मुस्लिम धर्म ग्रन्थों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। इन धार्मिक शिक्षणालयों का खर्चा जहां जनता द्वारा दिये जाने वाले दान से चलता था वहां मुगल सम्राट एवं बड़े-बड़े अमीर-उमराव व मनसबदार भी इन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करते थे।

मुगल सम्राट शिक्षा के संरक्षक थे। बाबर एक उच्चकोटि का विद्वान था। उसने मकतबों व शिक्षणालयों की उन्नति पर बहुत ध्यान दिया। उसने शिक्षा संस्थाओं की उन्नति की व्यवस्था करने के लिए 'शुहरते आम' नामक विभाग स्थापित किया था। हुमायूं भी एक उच्चकोटि का विद्वान था। वह पुस्तकों का बड़ा प्रेमी था तथा युद्ध यात्रा के समय भी वह बहुत सी पुस्तकों को अपने साथ रखता था। उसने दिल्ली में एक मदरसे की स्थापना की तथा पुराने किले में शेरशाह सूरी द्वारा निर्मित प्रमोद-भवन को पुस्तकालय के रूप में परिणत किया। अकबर का शासन काल विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की शिक्षा की प्रगति में युग प्रवर्तक है। उसने फतेहपुर सीकरी, आगरा और अन्य अनेक स्थानों में मदरसों का निर्माण कराया। अकबर ने इन विद्यालयों में हिन्दू विद्यार्थियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया था। पुस्तकों तथा अध्ययन प्रणालियों में उसने परिवर्तन किये। जहांगीर फारसी तथा तुर्की भाषा का विद्वान था उसने एक आदेश द्वारा उन सभी व्यक्तियों की सम्पत्ति को, जो बिना उत्तराधिकारी के मर जाते थे, मदरसों के लिए घोषित कर दिया था। उसने अनेकों मदरसों का जीर्णोद्धार कराया। शाहजहां को भी विद्या व ज्ञान से बड़ा

प्रेम था। वह अपना कुछ समय नियमित रूप से विद्याध्ययन में व्यतीत करता था। उसने दिल्ली में एक नये मदरसे की स्थापना की तथा 'दार-उल बका' नामक मदरसे का जीर्णोद्धार करवाया। उसने पुरस्कार देकर भी शिक्षा को प्रोत्साहित किया। मुगल वंश का महान् विद्वान दाराशिकोह था। औरङ्गजेब के युग में हिन्दू पाठशालाओं की प्रगति रुक गई थी परन्तु मुसलमानी शिक्षा संस्थाओं को पहले के समान ही राज्य का संरक्षण मिलता रहा था।

मुस्लिम बादशाहों के शासन काल में विद्यमान विविध मक्तबों और मस्जिदों में बहुत से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। यह शिक्षा प्रधानतया फारसी और अरबी भाषाओं में होती थी। हिन्दू मन्दिरों में संस्कृत और हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता था। गणित, ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र आदि वैज्ञानिक विषयों की पढाई का भी इनमे प्रबन्ध था। सर्वोच्च शिक्षा का केन्द्र मक्का समझा जाता था तथा मक्का से उपाधि प्राप्त लोगों का विशेष सम्मान था। शिल्प की शिक्षा के लिए विद्यार्थी प्रायः उस्तादों की सेवा में उपस्थित होते थे जिनके पास वे शागिर्द के रूप में निवास करते थे। मन्दिरों और मस्जिदों के साथ सम्बद्ध शिक्षण संस्थाओं से लाभ उठाने का अवसर सर्व साधारण जनता को बहुत कम मिलता था। अतः इस युग के बहुसंख्यक व्यक्ति निरक्षर थे।

पर्दा प्रथा के प्रचलित होने से स्त्रियां सर्व साधारण संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने नहीं जाती थीं। इस काल में केवल उच्च कुल की स्त्रियां ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। निर्धन लोगों की स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ रहती थीं। इतना होने पर भी गुलबदन, महम अनंग, नूरजहां, सलीमा सुल्ताना, मुमताज महल अत्यन्त सुसंस्कृत महिलायें थीं। महम अनंग ने 'हुमायूं नामा'' नामक ऐतिहासिक पुस्तक में अपने भाई हुमायूं का चरित्र लिखा है।

साहित्य—मुगल बादशाह साहित्य के प्रेमी थे। उनके संरक्षण में

साहित्य की विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ था। बाबर एक उच्चकोटि का साहित्यक था। उसने अपनी जीवनी स्वयं लिखी थी। अकबर के दरबार में अनेक विद्वानों को आश्रय प्राप्त था। विभिन्न भाषाओं में साहित्य का निर्माण हुआ। इस युग में साहित्य में फारसी ग्रंथों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। मुगल युग के पर्शियन साहित्य का तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है — (१) ऐतिहासिक ग्रंथ, (२) अनुवाद ग्रंथ और (३) काव्य ग्रंथ। इस काल में प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथों में मुल्ला दाऊद का 'तारीख ए अल्फी', अबुल फजल के 'आइने अकबरी' और 'अकबर नामा', बदाउनी का 'मुन्तखाब उत् तवारिख निजामउद्दीन अहमद का 'तबकात ए-अकबरी', हाजी सर हिन्दी का 'अकबर नामा' और अब्दुल बकी का 'मआसीरे रहीमी' ग्रंथ विशेष महत्वपूर्ण है। इस काल का सबसे प्रसिद्ध फारसी भाषा का लेखक अकबर का परम मित्र और सहायक अबुल फजल था। वह इस युग का सर्वोत्कृष्ट विद्वान, कवि, लेखक, निबंधकार, आलोचक तथा इतिहासकार था।

मुगल शासकों ने अनेक संस्कृत ग्रंथों का पर्शियन भाषा में अनुवाद कराने का भी प्रयास किया। अकबर की आज्ञा से महाभारत के बहुत से भागों का पर्शियन में अनुवाद हुआ तथा इन्हें 'रज्मनामा' नाम दिया गया। बदाउनी ने रामायण का, हाजी इब्राहीम सरहिन्दी ने 'अथर्ववेद' का, फैजी ने गणित के ग्रंथ 'लीलावती' का, मुकम्मल खां गुजराती ने ज्योतिष के प्राचीन ग्रंथ 'तजक' का और मौलाना शाह मुहम्मद शाहबादी ने 'काश्मीर के इतिहास' का पर्शियन में अनुवाद किया। अकबर की प्रेरणा से अनेक यूनानी और अरबी भाषा के ग्रंथों का अनुवाद भी फारसी भाषा में हुआ। अकबर के दरबार में अनेक कवि भी रहते थे। फैजी, गिजाली, गजल लेखक मुहम्मदहुसेन नजीरी और सैयद जमालुद्दीन उर्फी आदि उसके दरबार की शोभा थे।

पर्शियन भाषा के जो अनेक विद्वान व साहित्यिक जहांगीर के दरबार की शोभा बढ़ाते थे, उनमें गयासबेग, नियामतुल्ला, नकीब खां, अब्दुल हक

देहलवी, मुतमिद खा सर्व प्रधान है। इस काल (जहागीर) के ऐतिहासिक ग्रथो मे 'मुग्रासीरे-जहागीरी' और 'जुब्दुत्तवारीख' विशेष प्रसिद्ध है। शाहजहा भी अपने पिता की भाति विद्वानो का सरक्षक और आश्रयदाता था। उसके आश्रय मे निवास करने वाले ऐतिहासिको ने अनेक इतिहास ग्रन्थ लिखे, उनमे अब्दुल हमीद लाहौरी का 'पादशाहनामा' और इनायत खा का 'शाहजहानामा' बहुत प्रसिद्ध है। शाहजादा दाराशिकोह के विद्वत्तापूर्ण लेख फारसी भाषा के श्रेष्ठ ग्रंथ हैं। उसने उपनिषद, भगवत गीता, योगवासिष्ठ आदि अनेक सस्कृत ग्रथो का पर्शियन भाषा मे अनुवाद किया और सूफी सम्प्रदाय सम्बन्धी अनेक मौलिक ग्रंथ लिखे। औरङ्गजेब का यद्यपि शिक्षा और साहित्य से प्रेम नही था फिर भी उसके समय मे पर्शियन भाषा मे अनेक इतिहास ग्रथ लिखे गये, जिनमे मिर्जा मुहम्मद काजिम का 'आलमगीर नामा' मुहम्मद साकी का 'मग्रासीरे-आलमगीरी', सुजानराय खत्री का 'खुलासात्तुत्तवारीख', भीमसेन का 'नुस्खाय दिलकुशा' और ईश्वरदास का फतूहात आलमगीरी' बहुत महत्वपूर्ण है। मुगल काल मे अनेक हिन्दुओ ने भी पर्शियन भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था और उनके लिखे हुए फारसी भाषा के ग्रथ भाषा तथा शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के है। इस युग मे राजकीय कार्यों के लिए पर्शियन भाषा का ही उपयोग होता था और इसी कारण उच्च और सम्पन्न वर्ग के हिन्दू इस भाषा में योग्यता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। अकबर तथा जहागीर को पुस्तक सग्रह का भी चाव था अत इस युग मे एक विशाल ग्रथालय का निर्माण हुआ जिसमें २,००० हस्तलिखित ग्रथ थे।

हिन्दी साहित्य– मुगल काल मे पर्शियन साहित्य के साथ-साथ अन्य भाषाओ के साहित्य म भी विशेष प्रगति हुई। सर्वाधिक प्रगति हिन्दी साहित्य की हुई थी। इस युग का हिन्दी साहित्य प्रधानतया धार्मिक था। हिन्दी के सबसे बडे कवि तथा राम भक्ति शाखा के प्रसिद्ध सत तुलसीदास अकबर के समकालीन थे। तुलसी न अनेक काव्यो की रचना की जिसमें रामचरित मानस सबसे प्रसिद्ध है। रामचरित मानस केवल काव्य के रूप में ही नही पढा जाता

बल्कि सर्व साधारण जनता की दृष्टि में वह एक धर्म ग्रन्थ की स्थिति रखता है। रामचरितमानस के अतिरिक्त कवि की अन्य प्रसिद्ध रचनाएं विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, दोहावली आदि है। रामायण अवधी भाषा में तथा विनय पत्रिका व कवितावली आदि ब्रज भाषा में लिखी गई हैं। कृष्ण भक्ति शाखा के सन्त कवियों में सूरदास और मीरा सर्व प्रथम हैं। राधा कृष्ण के प्रेम को अमर बनाने वाले सूरदास ने सूरसागर की रचना इसी काल में की थी। सूर बाबर, हुमायूं और अकबर के समकालीन थे परन्तु बादशाहों के सम्पर्क और संरक्षण के बिना ही उन्होंने ऐसी काव्य धारा का सृजन किया जिसमें स्नान कर आज तक भी करोड़ो नर–नारी अपने को धन्य मानते हैं। सूर की कविता में अपूर्व माधुर्य है तथा उनका एक एक पद हृदयतंत्री को झंकृत कर देने की क्षमता रखता है। कृष्ण प्रेम में दीवानी राजरानी मीराबाई भी इसी युग में हुई थी। मीरा द्वारा रचित गीत आज तक भी जनता में बहुत लोकप्रिय हैं। इनके अतिरिक्त सन्त कवियों में कृष्णदास, परमानन्द दास, चतुर्भुज दास, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, हरिदास, रसखान, ध्रुवदास, श्री भट्ट, नाभादास, हृदयराम और प्राणचन्द चौहान के नाम उल्लेखनीय है। इन सन्त कवियों द्वारा राम और कृष्ण की भक्ति में जो पद रचे गये थे, वे आज तक भारत के भक्त समाज में आदर का स्थान रखते हैं। इन सन्त कवियों में रसखान का एक विशेष स्थान है क्योंकि ये जन्म और धर्म से मुस्लिम होते हुए भी कृष्ण के परम भक्त थे।

हिन्दी काव्य का विकास इस युग में केवल संत कवियों द्वारा ही नहीं हुआ अपितु मुगल बादशाहों और उनके अमीर उमरावों के आश्रय में भी अनेक ऐसे कवि हुए जिन्होंने हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। अकबर का प्रोत्साहन पाकर कवियों, लेखकों, विचारकों तथा विद्वानों ने हिंदी साहित्य को देदीप्यमान कर दिया। नरहरि, गंग, पृथ्वीसिंह, टोडरमल, रहीम आदि दरबारी प्रसिद्ध कवि एवं लेखक थे। इनमे सर्वप्रथम स्थान अब्दुर्रहीम खानखाना का है। खानखाना अरबी, फारसी और संस्कृत

के महान् पण्डित थे। रहीम ने हिंदी में भी कवितायें की। हिंदी जानने वाला कोई विरला ही ऐसा होगा जो रहीम के दोहो से परिचित न हो। आज भी उनकी 'रहीम सतसई' बडे गौरव से पढी जाती है। नरहरि का भी अकबर के दरबार में बडा मान था। सम्राट ने उसे 'महापात्र' की उपाधि से विभूषित किया था। रुक्मणि–मगल, छप्पयनीति, कवित्त-संग्रह आदि अनेक पुस्तका की उन्होने रचना की। गग अकबर के दरबारी कवि थे। अब्दुर रहीम उन्हें बहुत मानते थे। कहते हैं कि रहीम ने उन के एक छप्पय से प्रसन्न होकर उन्हें छत्तीस लाख स्वर्ण मुद्रायें पुरस्कार मे दे डाली थी। पृथ्वीसिह भी प्रसिद्ध कवि थे। इनके कवित्त को पढकर ही महाराणा प्रताप में शक्ति का सचार हुआ था तथा उन्होने अकबर की अधीनता स्वीकार करने का विचार त्याग दिया था। टोडर-मल संस्कृत का पण्डित था तथा हिंदी मे कविता भी करता था। अकबर का परम मित्र बीरबल भी महान् कवि था। अकबर को स्वय हिंदी कविता का शौक था। अनेक ऐसे कवित अब भी विद्यमान हैं जिन्हें अकबर बादशाह का बनाया हुआ माना जाता है। दरबारी कविया लेखको और विद्वानो के अति-रिक्त अनेक अन्य मुस्लिम विद्वाना ने भी हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की। आलम ने 'माधवानल कामकदला' नाम की प्रेम कहानी दोहा–चौपाइयो मे लिखी। इसी प्रकार जमाल, कादिर और मुबारक आदि अनेक मुसलमानो ने इस काल मे हिंदी मे काव्य रचना की।

केशव, सेनापति, त्रिपाठी बन्धुओ ने शाहजहा तथा औरगजेब के काल मे काव्य रचना की थी। केशव ओरछा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्र-जीतसिंह के आश्रित थे। केशव सस्कृत के पण्डित थे तथा हिंदी मे भी उन्होने सस्कृत की शास्त्रीय साहित्यिक पद्धति का अनुसरण किया। उन्होने अलंकारा पर 'कविप्रिया और रस पर 'रसिक प्रिया' लिखी। इनके अतिरिक्त कतिपय काव्य ग्रथ भी उन्होंने लिखे जिनमें अलंकार आदि की बहुलता है। इसी युग में मतीराम, देव, बिहारी, महाराजा जसवन्तसिंह, सुन्दर तथा भूषण सदृश कवि भी हुए। इन कविया ने संकट के काल में अपनी सहज शक्तिया का सदु-

पयोग कर हिंदी साहित्य को अमर बना दिया । वस्तुतः हिंदी साहित्य का 'भक्ति काल' और 'रीति काल' दोनों ही अपनी उन्नति की चरम सीमा पर इसी काल में पहुंचे थे।

बंगाली साहित्य--बंगाली साहित्य के क्षेत्र में भी इस युग में काफी उन्नति हुई। कृष्णदास कविराज ने इसी युग में 'चैतन्य-चरितामृत' नाम से महाप्रभु चैतन्य का जीवन चरित्र लिखा। इस युग के वैष्णव साहित्य में वृन्दावनदास का 'चैतन्य-भागवत' जयानन्द का 'चैतन्य मंगल', त्रिलोचनदास का 'चैतन्य मंगल' और नरहरि चक्रवर्ती का 'भक्ति रत्नाकर' विशेष प्रसिद्ध है। इसी काल में प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का बंगाली भाषा मे अनुवाद किया गया। इन अनुवाद ग्रंथों मे मुकुन्ददास चक्रवर्ती का कवि-कंकण-चण्डी और काशीरामदास का महाभारत उल्लेखनीय है। इस युग में चण्डीदेवी तथा मनसादेवी के गुण गान में भी ग्रन्थ लिखे गये।

मरहठी साहित्य--दक्षिण भारत में भी बहुत से कवि इस युग में हुए यथा एकनाथ, दासोपन्त, मुक्तेश्वर वामन पंडित, तुकाराम, रामदास मोरो पन्त आदि। इन साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा से मरहठा साहित्य को गौरव पूर्ण बना दिया। समर्थ गुरु राम दास ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दासबोध' की रचना इसी काल में की थी।

संस्कृत, उर्दू और गुजराती साहित्य की भी इस काल मे पर्याप्त उन्नति हुई। संक्षेप में मुगल युग भारतीय साहित्य का स्वर्ण युग था।

(४) कला

सुख और समृद्धि के काल मे कला के विभिन्न अंगों का भी पर्याप्त विकास हुआ था। सभी मुगल सम्राट कला प्रेमी थे इसी कारण इस युग में स्थापत्य कला चित्रकला, संगीत तथा सुन्दर लेखन कला आदि क विकास हुआ।

स्थापत्य कला--मुगल सम्राट महान् निर्माता थे। अपने असीमित धनागार ने उनमें अत्यन्त मनोरम भवन, उद्यान तथा नगर निर्माण की शक्ति उत्पन्न कर दी। कला प्रेमी सम्राटो ने ईरानी और हिंदू शैली के समन्वय व विकास से पूर्ण मुगल शैली का निर्माण किया। मुगल काल की विभिन्न इमारतो की विशेषतायें गोल गुम्बद, पतले स्तम्भ और विशाल खुले प्रवेश द्वार है। हैवेल ने मुगल शैली को देशी एवं विदेशी शैली के सामञ्जस्य की संज्ञा दी है। वस्तुत. मुगल कला जो अनेक प्रभावो का सम्मिश्रण थी, अपने पूर्व काल की कला की अपेक्षा अधिक विशिष्ट और अलंकरण वाली थी। इसकी रमणीयता तथा अलकरण इसके पूर्व की कला की सादगी और भीमकायता के विपरीत थी।

बाबर बहुत कम समय तक भारत मे शासन कर सका था। लगभग पाच साल के स्वल्प काल मे उसने अनेक सुन्दर इमारतो का निर्माण करवाया जिसमे पानीपत की काबुली बाग मसजिद, रुहेलखण्ड की जामा मसजिद और आगरा के पुराने किले मे विद्यमान मसजिद आज भी उसकी स्मृति स्वरूप अक्षुण्य है। हुमायूं को अपनी चिन्ताओ के कारण इस ओर ध्यान देने का सुअवसर प्राप्त नही हुआ था फिर भी आगरा और फतहाबाद मे उसकी बनाई हुई दो मसजिदें विद्यमान हैं। इन मसजिदो पर पर्शियन वास्तुकला का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। हुमायूं के शासन काल के मध्य मे ही अफगान नेता शेरशाह का दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित हो गया था। उसकी वास्तुकला मे विशेष रुची थी तथा दिल्ली के पुराने किले की मसजिद तथा किले की प्राचीर के अनेक भाग शेरशाह की ही कृतियाँ है। बिहार के शाहबाद जिले मे सहसराम नामक स्थान पर शेरशाह का मकबरा है, जो इण्डो-मुस्लिम वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

अकबर का शासन काल वास्तुकला की दृष्टि से स्वर्ण युग था। अकबर को वास्तुकला का अत्यन्त चाव था। अबुल फजल ने लिखा है कि "शहनशाह

भव्य भवनों की योजना बनाते हैं और अपने मस्तिष्क और हृदय की रचना को पाषाण तथा मिट्टी के वस्त्र पहनाते है।" अकबर द्वारा निर्मित वास्तुकृतियों की संख्या बहुत अधिक है। उसने कितने ही किलो, प्रासादों, बुर्जों, सरायों, मदरसों और जलाशयों का निर्माण कराया। उसके समय की वास्तुकला मे हिन्दू, जैन, फारसी आदि विविध कलाओं का बहुत सुन्दर सम्मिश्रण हुआ। अकबर ने धर्म के क्षेत्र की भांति वास्तुकला के क्षेत्र मे भी समन्वय की नीति को अपनाया तथा प्राचीन भारतीय कला का उदारतापूर्वक उपयोग किया। अकबर के समय की सबसे प्राचीन इमारत हुमायूं का मकबरा है, जो दिल्ली मे अब तक विद्यमान है। इसमे भारतीय शैली के अनुसार सगंमरमर पत्थर का उदारतापूर्वक उपयोग किया गया है। रणथम्भोर की विजय से वापस लौटते हुए अकबर ने १५६९ मे फतहपुर सीकरी की नीव डाली जो बाद मे कुछ समय तक मुगलो की राजधानी भी रही। यह नगर अब तक भी विद्यमान है। मुगल युग के विशाल प्रासाद प्रायः गैर आबाद पड़े हैं। फतहपुर सीकरी की इमारतों मे सबसे प्रसिद्ध बुलन्द दरवाजा, ख्वाब गाह, शेख सलीम चिश्ती की समाधि, दीवाने खास, इबादतखाना, बीरबल का सोनहरा महल आदि हैं। बुलन्द दरवाजे का निर्माण अकबर ने दक्षिण की विजय के उपलक्ष मे करवाया था तथा यह भारत का सबसे ऊंचा और विशाल विजयद्वार है। ऊंचाई मे यह १६७ फीट है तथा वास्तुकला की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है। फतहपुर सीकरी की इमारतें सौन्दर्य और कला की दृष्टि से अनुपम है। इनको देखकर फर्ग्युसन ने कहा था कि ये बड़े आदमी के मस्तिष्क का दर्पण था। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने फतहपुर सीकरी के विषय मे लिखा है, कि यह नगर प्रस्तर द्वारा निर्मित एक काव्य के समान है जो कि अपना सानी नही रखता है। आगरे के लाल किले मे जोधाबाई का महल, जहांगीरी महल आज भी प्रशंसनीय है। इलाहाबाद का चालीस स्तम्भों वाला महल तथा सिकन्दरा का अकबर का मकबरा स्तुत्य भवन हैं। सिकन्दरा के मकबरे का निर्माण अकबर ने शुरू करवाया था जो जहांगीर के समय मे पूर्ण हुआ। इसे बौद्ध विहारों के नमूने पर बनाया गया है। प्रारम्भ

मे इसका जो नक्शा तैयार किया गया था उसके अनुसार इसका गुम्बज सगमर-मर पत्थर का और इसके अन्दर की छत सोने की होनी चाहिए थी । यदि ऐसा कर दिया जाता तो शहनशाह अकबर का ये मकबरा सौन्दर्य मे अद्वितीय हो जाता । पर इसके बिना भी यह अत्यन्त सुन्दर और कलात्मक है और अकबर जैसे महान् सम्राट के अनुरूप है । फतहपुर सीकरी, आगरा और सिकन्दरा की इन इमारतो के अतिरिक्त अकबर ने लाहौर एव इलाहबाद मे भी अनेक इमारतो का निर्माण करवाया था । विलियम फिन्च ने लिखा है कि इलाहबाद के महल के निर्माण में चालीस वर्ष लगे तथा उसमे ५ हजार से बीस हजार तक शिल्पी व मजदूर चालीस वर्षों तक निरन्तर कार्य करते रहे । आगरा के किले के समान लाहौर मे भी अकबर ने एक विशाल किले का किर्माण कराया था ।

जहागीर को चित्रकला से अत्यधिक प्रेम था अत उसने वास्तुकला की ओर विशेष ध्यान नही दिया । किन्तु उसकी मलिका नूरजहाँ को वास्तुकला से अधिक प्रेम था । उसने अपने पिता एतमादुदौला का मकबरा, जो आगरा मे बनवाया, सौन्दर्य और कला की दृष्टि से अनुपम है । यह मकबरा सगमरमर से बनाया गया है और इसकी शैली राजपूती है । रावी के तटपर जहागीर के मकबरे का निर्माण भी नूरजहा ने कराया था जो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है । यद्यपि जहागीर ने भवन निर्माण मे विशेष दिलचस्पी नही दिखाई पर बागो एव उद्यानो का उसे बहुत शौक था । काश्मीर में डल झील के तट पर स्थित सुन्दर शालीमार एवं निसात उद्यान और अजमेर मे आनासागर के घाट उसके प्रकृति सौन्दर्य प्रेम के ज्वलन्त उदाहरण है ।

मुगल सम्राटो मे वास्तुकला की दृष्टि से शाहजहा का स्थान सर्वोच्च है । उस द्वारा निर्मित महल, दुर्ग, उद्यान, मसजिद आदि आगरा, दिल्ली, लाहौर, काबुल, कान्धार, काश्मीर, अजमेर, अहमदाबाद आदि कितने ही स्थानो पर अब तक भी विद्यमान हैं । शाहजहा की इमारतें यद्यपि अकबर की इमारतो की

अपेक्षा भव्यता तथा मौलिकता मे निम्न कोटि की हैं परन्तु सरसता, रमणीयता और सम्पन्न व कलापूर्ण अलंकरण की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। अकबर तथा शाहजहाँ के भवनों का अन्तर स्पष्ट करते हुए लूनिया नामक विद्वान ने लिखा है "यदि अकबर की इमारतों का सौन्दर्य विराट है तो शाहजहाँ की इमारतों का सौन्दर्य सूक्ष्म और कोमल है। यदि अकबर कालीन कला मे महाकाव्य की विराट गरिमा और दिगन्त का विस्तार है तो शाहजहाँ की कला में अलंकृत गीत काव्य की रसात्मकता और सूक्ष्म चमत्कार है।" शाहजहाँ की वास्तु-कृतियों मे सबसे महत्वपूर्ण आगरे का ताजमहल है जो विश्व की धरोहर तथा प्रेम का प्रतीक बन गया है। ताज उस्ताद ईसा की कल्पना व प्रतिभा का परिणाम है। इसके निर्माण में भारतीय, पर्शियन, अरब, टर्की, यूरोपीय आदि शिल्पियों का सहयोग प्राप्त किया गया था। ताजमहल वास्तुकला की सर्वोत्कृष्ट कृति है। दिल्ली का लाल किला और जामामसजिद सौन्दर्य की दृष्टि से अनुपम है। लाल किले की मोती मसजिद, दीवाने आम, दीवाने खास आदि इमारतें शाहजहाँ के सौन्दर्य और कला प्रेम की परिचायक हैं। शाहजहाँ द्वारा निर्मित वृहत् आकार वाले मयूर सिंहासन की भव्यता को देखकर तो शाहजहाँ के युग को स्वर्ण काल कहा जाता है। शाहजहाँ ने मनकारमयी वास्तुकला द्वारा पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने का स्वप्न लिया था तथा उसको इसमे सफलता भी प्राप्त हुई थी। उसने दिल्ली के लाल किले मे बने दीवाने खास पर पर्शियन भाषा का एक पद उत्कीर्ण करवाया था जिसका अर्थ है कि "यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।" शाहजहाँ की मृत्यु के उपरान्त स्थापत्य कला की अवनति प्रारम्भ हो गई क्योंकि औरङ्गजेब कट्टर धर्म पन्थी व्यक्ति था। उसने शिल्पकला की प्रगति मे सहयोग नहीं दिया। उसने अपने निजी प्रयोग के लिए दिल्ली के लाल किले में संगमरमर की एक मसजिद का निर्माण कराया था जो अब तक विद्यमान है। उसने काशी मे भी विश्वनाथ के मन्दिर को भूमिसात् कराके उसी के भग्नावशेषों पर एक मसजिद का निर्माण कराया था। लाहौर की बादशाही मसजिद भी औरङ्गजेब की ही कृति है। औरङ्गजेब की मृत्यु के उपरान्त मुगल साम्राज्य

खण्ड खण्ड हो गया अत शिल्पकला की प्रगति अवरुद्ध हो गई। पर मुगल साम्राज्य के भग्नावशेष पर जो अनेक हिन्दू और मुस्लिम राज्य इस युग मे कायम हुए उनके राजा एवं नवाबा ने भवन निर्माण की प्रक्रिया को जारी रखा। अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर, लखनऊ का इमामबाडा और हैदराबाद की आलीशान इमारतें इसी युग मे बनी।

मन्दिर एव मूर्तियाँ— भारत मे मुसलमानो की राज्य स्थापना की वजह से मूर्तिकला का विकास सम्भव नही रहा। मुसलमान मूर्ति पूजा के विरोधी थे तथा मूर्ति भजन का व अपना धर्म समझते थे। प्राचीन एव मध्य युग मे जिस रीति से विशाल मन्दिरो एव मूर्तियो का निर्माण होता था वह अब प्राय बन्द हो गया था। अत हिन्दू कलाकारो ने पत्थर पर विविध आकृतियो, बेलो व फूलो का निर्माण कर अपनी मूर्ति कला को प्रकट किया। अकबर ने धर्म निरपेक्ष नीति को अपनाया। अत उसके शासन काल मे अनेक मन्दिरो और मूर्तिया का निर्माण हुआ था। मानसिंह ने १६ वी सदी मे वृन्दावन मे गोविन्द देव का विशाल मन्दिर तथा महाराजा वीरसिंह देव ने ओरछा मे चतुर्भुज मन्दिर का निर्माण कराया।

चित्रकला— वास्तुकला के समान चित्रकला मे भी मुगल काल मे काफी उन्नति हुई। मुगलो की चित्रकला का उद्भव फारस मे हुआ था। पर पशिया के श्रोत से जो चित्रकला मुगलो द्वारा भारत मे प्रविष्ट हुई वह विशुद्ध पर्शियन नही थी। जब मगोल लोगो ने फारस को विजयी कर उसे अपने राज्य मे मिला लिया, तो वे लोग अपने साथ एक ऐसी चित्रकला को उस देश मे ले गये जो बौद्ध, बैक्ट्रियन और मगोलियन प्रभाव के सम्मिश्रण का परिणाम थी। फारस मे आने पर पर्शियन तत्व भी इसमे सम्मिलित हो गया तथा पर्शियन के तैमूरवशी शासको के सरक्षण मे इसका निरन्तर विकास होता रहा। मुगल विजेता बाबर तैमूर वश का था। तैमूर के सभी वशजो का चित्रकला से प्रेम था। विशेषतया हीरात के शासक हुसैन बैकरा के सरक्षण मे इस कला का असाधारण रूप से

विकास हुआ। उसके आश्रय में बिहज़ाद नाम का प्रसिद्ध चित्रकार रहता था जिसकी गणना संसार के सर्वोत्कृष्ट कलावन्तों में की जाती है। बिहज़ाद ने चित्रकला की एक नई शैली का प्रारम्भ किया जिसमें फारसी, चीनी, बौद्ध आदि कलाओं के सर्वोत्कृष्ट तत्वों का अत्यन्त सुन्दर ढंग से सम्मिश्रण किया गया था। बिहज़ाद की कला से बाबर भली भांति परिचित था और जब उसने भारत में अपना राज्य स्थापित किया तो इस कला का भारत मे प्रवेश हुआ। बाबर के काल में अनेक ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों को इस कला के अनुसार चित्रित किये गये चित्रों द्वारा विभूषित किया गया। बाबर के समान हुमायूं को भी चित्रकला से प्रेम था तथा वह एक सफल चित्रकार भी था। शेरशाह सूरी द्वारा परास्त होने के कारण वह भारत छोड़कर फारस चले जाने के लिये विवश हुआ था। पर्शिया के शासक शाह तहमास्प के पास रहते हुए वह अनेक चित्रकारों के सम्पर्क में आया और उनकी कला से अत्यधिक प्रभावित हुआ। भारत लौटते वक्त वह सैयदअली तबरीजी और ख्वाज अब्दुस्समद नामक चित्रकारों को अपने साथ लाया था। ये चित्रकार बिहज़ाद द्वारा स्थापित चित्रकला शैली के अनुयायी थे। इन पर्शियन चित्रकारों को हुमायूं ने 'दस्ताने अमीर हुरजा' नामक ग्रन्थ को चित्रित करने का कार्य सुपुर्द किया। इन दो चित्रकारों द्वारा चित्रित की गई यह पुस्तक अब तक सुरक्षित है।

उपरोक्त दोनों चित्रकार भारत में ही स्थिर रूप से बस गये थे। हुमायूं और अकबर के दरबार मे रहते हुए वे भारत के चित्रकारों के निकट सम्पर्क में आये तथा इससे मुगल चित्रकला शैली का विकास हुआ जिसमें बिहज़ाद की नवीन शैली और भारत की परम्परागत प्राचीन शैली का अत्यन्त सुन्दर रूप से सम्मिश्रण हुआ तथा मुगल युग में यह निरन्तर विकास को प्राप्त करती रही अकबर को चित्रकला से विशेष रुचि थी। उनके दरबार मे अनेकों हिन्दू-मुसलमान चित्रकार थे जिनमें प्रमुख अब्दुस्समद, सैयदअली तबरीज, फर्रुखबेग जमशेद, दसवन्त, बसावन, साँवलदास, ताराचन्द और जगन्नाथ आदि थे। अकबर के संरक्षण मे जो कलाकार चित्रकला की उन्नति करने मे संलग्न थे उनमे

संख्या बहुत अधिक थी। इनमे सौ चित्रकार बहुत प्रसिद्ध थे। सत्रह कलाकार तो ऐसे थे जिन्हे अपनी कला का उस्ताद माना जाता था। इन सत्रह उस्तादो मे १३ हिंदू थे। अबुल फजल ने इनके विषय मे लिखा है। कि 'ये हिन्दू चित्रकार इतने उच्चकोटि के हैं कि संसार मे मुश्किल से ही कोई इनकी समकक्षता कर सकता है।' अकबर कालीन चित्रकार हस्तलिखित पुस्तको को चित्रित करने, प्रसादो की दिवारो को विभूषित करने, वस्त्र और कागज पर चित्र बनाने मे अपनी कला को अभिव्यक्त करते थे। अकबर के आदेशानुसार उन्होंने चगेज नामा, 'रामायण, नलदमयन्ती, कालीय दमन, महाभारत आदि विविध प्रसिद्ध पुस्तको की चित्रो द्वारा विभूषित किया।

अकबर की भांति जहांगीर भी चित्रकला का प्रेमी था। वस्तुतः चित्रकला अपने गौरवपूर्ण पद को जहांगीर के काल मे प्राप्त कर सकी। चित्रकारो ने अपने सुन्दर तथा सजीव चित्रा से जहांगीर के काल को चित्रकला का स्वर्ण युग बना दिया। नवीनता, स्वाभाविकता, स्वस्थता, गतिशीलता और सजीवता का चित्रकला मे समावेश कर उन्होंने चित्रकला को उत्कृष्टता के शिखर पर पहुँचा दिया। जहांगीर चित्रकारो का आश्रयदाता था तथा अनेक चित्रकार यथा फारुखबेग, मुहम्मदनादिर, मुहम्मदमुराद, आगारजा, अबुलहसन, उस्ताद मसूर विशनदास, गोवर्धन और मनोहर उसके दरबार की शोभा थे। शाहजहा को वास्तुकला से अत्यधिक प्रेम था अत. उसने दरबार के आश्रय मे रहने वाले चित्रकारो की संख्या मे बहुत कमी कर दी थी। इससे अनेक कलाकार बेरोजगार हो गये। मुगल दरबार से निराश होकर इन कलावन्तो ने विविध राजपूत राजाओ और हिमालय के पर्वतीय प्रदेशो के राजाओ का आश्रय लिया और वहा जाकर चित्रकला की नई शैली का विकास किया, जिन्हें 'राजपूत शैली' और 'पहाड़ी शैली' कहते हैं। शाहजहा के काल मे चित्रकला की मुगल शैली का ह्रास प्रारम्भ हो गया। और उसके स्थान पर राजपूत शैली आदि उन्नति करने लगी। पर्सी ब्राउन ने ठीक ही लिखा है कि 'मुगल चित्रकला की आत्मा जहांगीर के साथ ही मृत प्रायः हो गई थी।'

मुगल युग में चित्रकारों का प्रिय विषय राज-दरबार का ऐश्वर्य था। इसी कारण वे अमीर-उमरावों के ऐश्वर्यशाली रत्न जटित परदों व बहुमूल्य वस्त्राभूषणों को अपने चित्रों में अंकित करने पर विशेष ध्यान देते थे। वे चित्रों में रंगों को इतने कलात्मक रूप से प्रयोग करते थे कि उनके चित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उनमें रंग के स्थान पर मणि-माणिक्यों का प्रयोग किया गया हो।

संगीत कला—संगीत कला की भी मुगल युग में बहुत उन्नति हुई। डेनपून के मतानुसार प्रत्येक मुगल शाहज़ादे से यह आशा की जाती थी कि वह संगीत में भी प्रवीण हो। बाबर को संगीत का बहुत चाव था। हुमायूं के दरबार में प्रत्येक सोमवार व बुधवार को संगीतज्ञ एकत्रित होते थे और सम्राट उनके गीतों को बड़े शौक के साथ सुनता था। अकबर के दरबार में कितने ही संगीतज्ञों को आश्रय प्राप्त था जिनकी संख्या ३६ थी। इनमें भारतीयों के अतिरिक्त फारसी, तूरानी और कश्मीरी संगीतज्ञ भी थे जिनमें सबसे प्रसिद्ध तानसेन था। तानसेन ग्वालियर का निवासी था तथा जन्म से हिन्दू था। मुसलमानों के सम्पर्क में आने के कारण इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। तानसेन भारत का सबसे प्रसिद्ध गायनाचार्य हुआ है तथा उसके राग व रागनियां आज तक भी भारत में सर्वत्र प्रचलित हैं। जहांगीर एवं शाहजहां ने भी संगीतज्ञों को आश्रय दिया और उनके काल में भी इस कला की बहुत उन्नति हुई। औरंगजेब ललितकलाओं का कट्टर विरोधी था तथा उसकी नीति के फलस्वरूप संगीतज्ञ भी राजपूत राजाओं और अन्य श्रीमन्त लोगों का आश्रय प्राप्त करने के लिए विवश हुए।

इन कलाओं के अतिरिक्त सुन्दर लेखन कला की ओर भी मुगल सम्राटों ने ध्यान दिया। वस्तुतः उन्होंने अपने कला प्रेम से भारत को भव्य बना दिया। अकबर ने भारत को सुन्दर एवं भव्य बनाने का कार्य प्रारम्भ किया, जहांगीर ने संवर्द्धन किया तथा शाहजहां ने उसे पूर्णता को पहुंचा दिया। शाहजहां के उपरान्त कला का पतन होना प्रारम्भ हो गया।

[५] धर्म

अत्यधिक समय तक देश मे एक साथ निवास करने के कारण हिन्दुओ और मुसलमाना में एक दूसरे के निकट सम्पर्क मे आने की जो प्रवृति सल्तनत युग मे प्रारम्भ हुई थी मुगल काल मे बहुत अधिक जोर पकड गई। मुगल सम्राटो ने भारतवर्ष मे धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था। परिणामस्वरुप हिन्दुओ और मुसलमानो मे सहयोग एव समन्वय का वातावरण पदा हो गया था। धार्मिक सघर्षो का प्रश्न हल हो गया तथा विजित एव विजेता के भाव भी पर्याप्त मात्रा मे समाप्त हो गये। इसी समन्वय की नीति के कारण भारत मे सूफी धर्म का प्रचार हुआ तथा राम और कृष्ण के भक्त अपनी इच्छानुसार ईश्वर की उपासना कर सके। स्वमी रामानन्द द्वारा प्रारम्भ की गई राम भक्ति की परम्परा को तुलसीदास ने जन-साधारण तक पहुँचाया। अष्टछाप के सर्वोच्च कवि सूर ने कृष्ण की भक्ति को अपने गीतो द्वारा जनता मे प्रसार करने का अनुपम कार्य किया। अकबर न 'दीन इलाही' नामक नये धर्म का प्रतिपादन किया।

अकबर धर्म के मामले मे बहुत सहिष्णुता था। उसके धार्मिक विचारों पर उसकी हिन्दू रानिया एव सूफी सम्प्रदाय के शेख मुबारक और उसके पुत्र अबुलफजल और फैजी के विचारो का बहुत प्रभाव पडा। अकबर ने अपनी राजधानी फतहपुर सीकरी मे एक इबादतखाने (पूजागृह) का निर्माण कराया। सप्ताह मे एक बार (बृहस्पतिवार) इस स्थान पर एक सभा होती थी जिसमें हिन्दू, जैन, पारसी, यहूदी, ईसाई, शिया, सुन्नी आदि विविध सम्प्रदायो के विद्वान धार्मिक विषयो पर विचार करते थे। अकबर स्वय इस सभा में सभापति का आसन ग्रहण करता था तथा विविध धर्माचार्यों के विचारो का ध्यानपूर्वक श्रवण करता था। विविध धर्मों के विद्वानो के विचारो को सुनने के कारण अकबर के धार्मिक विश्वासों म महान् परिवर्तन आया। इस्लाम के प्रति उसका विश्वास शिथिल पडने लगा। सभी धर्मों मे साम्य स्थापित करने की दृष्टि से

उसने एक नवीन धर्म स्थापित करने का निश्चय किया। उसने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 'दीन इलाही' नामक धर्म चलाया। वह स्वयं दीनइलाही का प्रवर्तक और गुरु बना। इस धर्म का मुख्य सिद्धान्त यह था कि ईश्वर एक है और अकबर उसका पैगम्बर तथा सर्वोच्च पुजारी हैं। मनुष्य को सत्य असत्य का निर्णय करते हुए अपनी बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए तथा किसी अन्धविश्वास को नहीं मानना चाहिए। इस धर्म के अनुयायी मांस भक्षण से परहेज करते थे तथा पशु हिंसा को पाप मानते थे। सूर्य एवं अग्नि की उपासना अनिवार्य थी तथा निम्न कोटि के व्यक्तियों (बहेलिये, मछुए, कसाई आदि) के साथ भोजन करना वर्जित था। दीन इलाही के प्रत्येक अनुयायी को वर्षगांठ के अवसर पर दावत देनी पड़ती थी। प्रत्येक अनुयायी को आवश्यकतानुसार क्रमशः अपनी सम्पत्ति, जीवन, सम्मान तथा धर्म त्यागने को उद्यत रहना पड़ता था। इस धर्म के अनुयायी परस्पर मिलने पर 'अल्लाहो अकबर' अथवा 'जल्ला जल्लालहू' कह कर अभिवादन करते थे। उपरोक्त सिद्धान्तों के अध्ययन से प्रकट होता है कि दीन इलाही कोई नया धर्म नहीं था। अकबर ने विभिन्न धर्मों के अनुयायियों को प्रसन्न करने के लिए विभिन्न धर्मों के अनेकों सिद्धान्तों को इसमें सम्मिलित कर लिया था। सम्राट ने कभी इस धर्म को बरबस लादने की चेष्टा नहीं की अतः इस धर्म के अनुयायियों की संख्या केवल १८ तक ही सीमित रही। राजा मानसिंह ने इस धर्म को स्वीकार नहीं किया। अकबर की मृत्यु के उपरान्त इस धर्म की समाप्ति हो गई। यद्यपि दीन इलाही सम्प्रदाय ने भारत में अपना कोई स्थिर प्रभाव नहीं छोड़ा किन्तु वह इस युग की धार्मिक प्रवृत्तियों का मूर्त रूप था। डा० ताराचन्द ने लिखा है कि "अकबर का दीन इलाही एक ऐसे निरंकुश शासक का क्षणिक उद्वेग नहीं था जिसके पास आवश्यकता से अधिक शक्तियां थी वरन् उन तत्वों का परिणाम था जो भारत भूमि में विकसित हो रहे थे तथा कबीर आदि की शिक्षाओं द्वारा व्यक्त किये जा रहे थे। परिस्थितियों ने इस प्रयत्न को विफल कर दिया परन्तु दैव अब भी उसी लक्ष्य की ओर इङ्गित करता है।" दीन इलाही द्वारा अकबर ने एक महान्

कार्य प्रारम्भ किया था, किन्तु औरङ्गजेब ने असहिष्णुता की नीति अपनाकर हिन्दुओ और मुसलमानो के बढते हुए सहयोग एव समन्वय की गति को रोक दिया 'अ ग्रे जो ने अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु धार्मिक मतभेद को प्रोत्साहन दिया। परिणामस्वरूप हिन्दुओ और मुसलमानो में द्वेष बढा तथा सहयोग एव समन्वय की भावना नष्ट हो गई।

प्रश्नावली

१ मुगल कालीन समाज एव शासन व्यवस्था पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

२. मुगल युग के हिन्दी साहित्य एव ललितकला के विकास पर निबन्ध लिखिए।

३ दीन इलाही धर्म पर प्रकाश डालिए।

४. मुगल युग की भारतीय सभ्यता एव संस्कृति को क्या देन है ?

५ हिन्दू मुस्लिम सास्कृतिक समन्वय पर सक्षिप्त लेख लिखिए।

६. मुगल काल में साहित्य तथा ललित कला के क्षेत्रो में भारतीयों की मुख्य देन क्या रही ? रा वि' १६५६

७ मिली-जुली (Composito) भारतीय संस्कृति के उदय का दिग्दर्शन कराइए। रा वि १६५६

८ संक्षिप्त नोट लिखिए

(अ) तुलसी दास रा वि १६६०

(आ) राजस्थानी चित्रकला रा वि १६६०

१३ मुगल साम्राज्य का ह्रास एवं ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना

(१) मुगल साम्राज्य का ह्रास

चौगताई तुर्क बाबर ने अपने बाहुबल से २१ अप्रैल १५२६ ई० को पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी और १७ मार्च १५२७ ई० को खानवा के युद्ध में राजपूतों के नेता राणा सांगा को परास्त कर मुगल साम्राज्य की स्थापना का पथ प्रदर्शित किया। अकबर ने अपनी राजनीतिज्ञता तथा कुशलता से मुगल साम्राज्य की वृद्धि की तथा उसे व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। धार्मिक-सहिष्णुता तथा 'सुलह कुल' की नीति अपनाकर उसने मुगल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान किया। जहाँगिर व शाहजहां ने अपने ऐश्वर्य प्रिय स्वभाव से साम्राज्य को वैभव प्रदान किया। किन्तु औरंगजेब ने अपनी अदूरदर्शिता तथा धार्मिक असहिष्णुता से इसे पतन के मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। शाह जहाँ को कैद कर तथा अपने भ्राताओं का रक्त बहाकर औरंगजेब १६५८ में मुगल साम्राज्य का अधिनायक बना। सम्राट औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था तथा अपना जीवन पूर्णतः अपने धर्म के अनुकूल व्यतीत करता था। अपने धर्म के सामने उसे राज्य सिंहासन, प्रेम तथा आराम की चिन्ता न थी तथा अपनी धार्मिक कट्टरता के समक्ष अकबर की उदारता, जहाँगीर की विलासप्रियता तथा शाहजहाँ के एश्वर्य का कोई मूल्य न था।

औरंगजेब का उद्देश्य भारत में इस्लाम साम्राज्य की स्थापना करना था उसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास किया तथा असंभव को संभव करने की

चेष्टा की। सर्व प्रथम उसके कोप क शिकार हिन्दू ही हुए और उनके विरुद्ध उसने अत्याचार एवं दमन की नीति का आश्रय लिया। उसने हिन्दुओ के मदिरो को नष्ट कर दिया। सोम नाथ मन्दिर, प्रसिद्ध विश्वनाथ मन्दिर, केशवराय मन्दिर आदि औरंगजेब की आज्ञा से तोड दिये गये। अनेको मन्दिरो को मस्जिदों में परिणत कर दिया। नये मन्दिरो का निर्माण तथा पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार बंद कर दिया। मूर्तियों को तोडा गया तथा उनका अपमान किया गया। व्यापार व्यवसाय आदि में हिन्दुओ और मुसलमानो मे भेद किया। मुसलमानों को पूर्णत चुंगी कर मे मुक्त करके हिन्दुओं पर पाच प्रतिशत चुंगी कर दी। हिन्दुओ को राजकीय नौकरियों से वंचित किया गया और उनको हटाकर उनके स्थान पर मुसलमानो को नियुक्त किया। औरंगजेब ने अनेक प्रलोभन देकर हिन्दुओ को धर्म परिवर्तन करने को प्रेरणा दी। 'मुसलमान हो जाओ, और कानूनगो बन जाओ'—यह उस समय एक कहावत सी बन गई थी। बहुत से हिन्दुओ को बलात मुसलमान बना लिया गया। हिन्दू धर्म के प्रचारको का दमन किया। हिन्दुओं को हाथी पालकी तथा अरबी एव फारसी घोडो पर चढने मे वर्जित किया। दिवाली और होली जसे प्रसिद्ध त्योहार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। औरंगजेब की इस हिन्दू विरोधी नीति का परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए बहुत बुरा हुआ। चारों ओर विद्रोह होने लगे। मथुरा के समीप जाटो ने विद्रोह कर दिया। बीस साल तक जाट लोग निरन्तर मुगलो के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। नारनौल के समीप सतनामी सम्प्रदाय के अनुयायियो ने विद्रोह किया। इस विद्रोह को शान्त करने में औरंगजेब को विकट कठिनाइयो का सामना करना पडा। पजाब मे सिक्खों ने गुरु तेगबहादुर ने औरंगजेब की नीति का विरोध किया। औरंगजेब ने तेगबहादुर पर बगावत फैलाने का अपराध लगा कर बडी क्रूरता से उनका वध करवा दिया। सिक्खो ने गुरु की हत्या का बदला लेने के लिए औरंगजेब के विरुद्ध मोर्चा तैयार किया। महापुरुष गोविन्द सिंह के नेतृत्व मे प्रबल सैनिक शक्ति खालसा ने औरंगजेब से सघर्ष प्रारम्भ कर दिया तथा मुक्तेश्वर के स्थान पर मुगलो को हराया। विशाल मुगल सेना

विद्रोह को दबाने भेजी गई। युद्ध में गुरु गोविन्द के दो पुत्र काम आयेऔर दो पुत्र सरहिन्द के सूबेदार द्वारा धर्म परिवर्तन न करने के अपराध में जिन्दा दीवार में चुनवा दिये गये। सिक्खों ने अनेकों कष्ट सहन किये किन्तु आन्दोलन बन्द नहीं किया। राजपूताना में दुर्गादास राठौड के नेतृत्व में राजपूतों ने विद्रोह का झण्डा खडा किया। २५ वर्ष तक राजपूत लोग मुगलों के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। मेवाड के राणाराजसिंह ने भी इस संघर्ष में दुर्गादास का साथ दिया। राजपूतों ने जोधपुर तथा मेवाड के युद्धों में मुगल सम्राट को जबरदस्त शिकस्त दी। अन्त में औरंगजेब को राजपूतों के साथ संधि करने और उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए विवश होना पडा। दक्षिण भारत में शिवाजी ने मेराठा राज्य की नींव डाली, जिसका उद्देश्य मुस्लिम शासन का अन्त कर हिन्दू राज शक्ति का पुनरुद्धार करना था। आर्थिक दृष्टि से भी राज्य को अपार हानि उठानी पड़ी। राज्य की आय कम हो गई। व्यापार को अपार क्षति पहुँची। हिन्दू व्यापारी दक्षिण को चले गये इससे शाही सेनाओं की छावनियों में अन्न की कमी होगई, निरन्तर युद्धों से राज कोष खाली हो गया। जो सम्राट अपने लिए कुछ भी व्यय नहीं करता था उसने अपनी धर्मान्धता के कारण युद्धों में अपार धन का क्षय किया। औरंगजेब की इस नीति से मुगल साम्राज्य की आधार शिला हिल गई और वह पतन की प्रतिक्षा करने लगा। हिन्दूओं की निद्रा भंग हुई और वह पुनः अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे।

औरङ्गजेब की धार्मिक कट्टरता ने उसे दक्षिण की शिया रियासतों पर भी आक्रमण करने को बाध्य किया। औरङ्गजेब शिया सम्प्रदाय के मुसलमानों को भी घृणा की दृष्टि से देखता था। वह उनके उतना ही विरुद्ध था जितना हिंदुओं के। साम्राज्य विस्तार की आकांक्षा और विधर्मी शिया शासन का अन्त करने की अभिलाषा से उसने एक बड़ी सेना को साथ ले दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसके शासन काल के पिछले २५ वर्ष दक्षिण में ही व्यतीत हुए। आखिर औरङ्गजेब गोलकुण्डा और बीजापुर की स्वतन्त्र सल्तनतों का अन्त कर उन्हें अपने साम्राज्य के अन्तर्गत करने में सफल हुआ। किन्तु यह उसके

विनाश की भूमिका सिद्ध हुआ। साम्राज्य इतना विशाल हो गया कि उस पर नियन्त्रण रखना अत्यन्त दुष्कर कार्य हो गया। शिया रियासतों के समाप्त होते ही मरहठों की शक्ति को स्वतन्त्र रूप से विकसित होने का अवसर मिला और वे मुगल साम्राज्य के लिए समस्या बन गये। औरङ्गजेब के लम्बी अवधि तक दक्षिण में रहने से उत्तरी भारत में दुर्व्यवस्था फैल गई और साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो गई। डा० स्मिथ ने ठीक ही कहा है कि, 'दक्षिण उसकी कीर्ति तथा उसके शरीर की कब्र थी।' जिस प्रकार स्पेन के फोड़े ने नैपोलियन का सर्वनाश कर दिया उसी प्रकार औरङ्गजेब का सर्वनाश दक्षिण के फोड़े ने किया।

मरहठों का अभ्युदय—औरङ्गजेब के शासन काल की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना मराठा शक्ति का अभ्युदय है। शाहजी के पुत्र शिवाजी ने मराठों को एक प्रबल शक्ति के रूप में परिवर्तित कर उसमे राष्ट्रीय भावना का विकास किया। शिवाजी का जन्म देवी शिवा के आशीर्वाद के फलस्वरूप १६२७ ई० मे शिवनेर दुर्ग में हुआ था। शिवा को प्रारम्भ से ही पिता का स्नेह प्राप्त न हो सका। दादाजी कोणदेव की शिक्षा-दीक्षा और माता जीजा-बाई की स्नेहमयी शिक्षा ही उसे प्राप्त हुई। प्रारम्भ से ही माता ने उच्च हिन्दू आदर्शों का परिचय कहानियों के रूप मे दिया। दादाजी कोणदेव ने पुस्तकीय शिक्षा की अपेक्षा शारीरिक शिक्षा, सैन्य संगठन, दुर्ग भेदन आदि की कला से परिचय कराया। समर्थ गुरु रामदास ने उस शिक्षा को पूर्णता प्रदान की। *यह अब देश, गऊ तथा ब्राह्मणों की रक्षा के निमित्त अपने सीमित साधनों को* लेकर कार्य क्षेत्र मे उतर पड़ा। महत्वाकांक्षी शिवाजी ने महाराष्ट्र के नवयुवक किसानों को इकट्ठा किया और बीजापुर राज्य के कितने ही दुर्गों पर अधिकार कर लिया। विवश होकर बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने शिवाजी से सन्धि कर ली और उसे इन सब दुर्गों का स्वामी स्वीकार कर लिया, जिन्हें उसने पिछले वर्षों मे जीता था। औरङ्गजेब दक्षिणी-पथ में अपने आधिपत्य को स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था। अतः उत्तराधिकार के युद्ध से निवृत होकर उसने दक्षिण की ओर अपनी दृष्टि फेरी। शाइस्ताखाँ, जसवन्तसिंह और

जयसिंह के नेतृत्व में मुगल साम्राज्य की सेनाओं ने शिवाजी पर आक्रमण किये। पहले दो सेनापति शिवाजी को काबू में लाने में असमर्थ रहे। जयसिंह ने कूटनीति का आश्रय लिया तथा शिवाजी से सन्धि करली। शिवाजी मुगल दरबार में आये किन्तु सम्राट ने अनुचित व्यवहार किया तथा वे उत्तेजित हो उठे। शिवाजी को कारागृह मे रखा गया परन्तु उन्होंने निकल भागने की व्यवस्था करली और वे सकुशल दक्षिण लौट आये। पूना लौटकर शिवाजी ने अपने राज्य को भली-भांति संगठित किया। १६७४ ई० में रायगढ़ के दुर्ग में बड़ी धूमधाम से उनका राज्याभिषेक हुआ। औरङ्गजेब के सौभाग्य से १६८० ई० मे शिवाजी की मृत्यु हो गई और औरङ्गजेब की एक चिन्ता दूर हो गई। शिवाजी का पुत्र सम्भाजी मुगल सम्राट के मुकाबले में अपने राज्य की रक्षा करने में असमर्थ रहा। सम्भाजी परास्त हुआ तथा कैद कर लिया गया और बड़ी क्रूरता के साथ उसका वध किया गया। यद्यपि मुगल सेनाओं ने मराठों के दुर्गों पर कब्जा कर लिया था, पर मराठे लोग इससे हार नहीं मान गये थे। राजाराम ने मुगलों से निरन्तर युद्ध जारी रखा। उसकी मृत्यु के पश्चात् मरहठों का नेतृत्व राजाराम की पत्नी ताराबाई के हाथ मे आया। ताराबाई ने अदम्य साहस तथा शौर्य का परिचय दिया, चारों ओर लूट मार प्रारम्भ कर दी तथा युद्ध का पासा पलट दिया। मरहठों की शक्ति निरन्तर बढ़ने लगी। १७०३ ई० मे मराठों ने बरार को लूटा तथा गुजरात और बड़ोदा पर भी धावा बोलने का साहस किया। मराठों की शक्ति का दमन औरङ्गजेब न कर सका तथा इसी शोक में उसका १७०७ ई० में ६० वर्ष की आयु में देहान्त हो गया।

औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात उसका विशाल साम्राज्य हवा में गायब होने लगा। उसकी हिन्दू विरोधी नीति के कारण मुगल शासन के राष्ट्रीय रूप का अन्त हो गया था और राजपूत सिक्ख मराठे आदि विविध हिन्दू राजशक्तियाँ मुगल आधिपत्य का अन्त कर अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने मे तत्पर हो गई थीं। मुगल राजकुल व उसके मुस्लिम मनसबदारों व सूबेदारों मे ऐक्य नहीं था। वे आपस में लड़ने, अपने स्वतन्त्र राज्य कायम करने और अपने व्यक्तिक

उत्कर्ष की फिक्र मे रहते थे। परिणामतः विशाल मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और उसके स्थान पर विविध राज्य कायम होने लगे। पंजाब मे सिक्खो ने जोर पकड़ा बुन्देलखण्ड, राजपूताना और मध्य भारत मे अनेक स्वतन्त्र व अर्ध-स्वतन्त्र राजपूत राज्य कायम हुए। जाटो ने आगरा के समीप के प्रदेशो मे अपने राज्य स्थापित किये। मराठो ने अपनी विजय यात्रायें प्रारम्भ की। मुगल बादशाहो द्वारा नियुक्त प्रान्तीय सूबेदार दिल्ली के बादशाह की शक्ति की उपेक्षा कर स्वतन्त्र राजाओं के समान आचरण करने की प्रवृत्ति रखने लगे।

मुगल साम्राज्य के पतनोन्मुख काल में मुगल सिंहासन पर बहादुरशाह, जहांदाराशाह, फर्रुखसियर, रफीउद्दाराजात, रफी उदौला, मुहम्मद इब्राहीम आलमगीर, शाहआलम आदि एक के पश्चात् एक गद्दी पर बैठे जो अपने वजीरो एवं मनसबदारों के हाथो मे कठपुतली मात्र थे। सन् १७३९ ई० मे उत्तर पश्चिम से अचानक ईरान के शाह नादिरशाह का आक्रमण हुआ। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर मुहम्मदशाह विराजमान थे। उसने कर्नाल के स्थान पर नादिरशाह का मुकाबला किया किन्तु नादिरशाह की विजय हुई। नादिर भारत की अपार सम्पत्ति लेकर अपने देश लौट गया। शाहजहां का 'तख्त ताऊस' तथा कोहनूर हीरा, भी उसे प्राप्त हुआ। मराठो, राजपूतो और सिक्खो ने मुगल साम्राज्य को पहले ही खोखला कर दिया था। जो शक्ति उसमे शेष थी, वह अब नादिरशाह के आक्रमण से नष्ट हो गई। इसके बाद मुगल बादशाह नाम को ही भारत का सम्राट रह गया। नादिरशाह का अनुकरण कर के १६५७ ई० मे अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया और बुरी तरह दिल्ली को लूटा। इस समय तक भारत मे पेशवाओं के नेतृत्व मे मराठो की शक्ति बहुत बढ चुकी थी। मराठो की विजयिनी स्वर्ण ध्वजा समस्त महाराष्ट्र, गुजरात, मालवा, मध्य भारत, उड़ीसा तथा पजाब मे फहरा कर उनके उत्कर्ष का परिचय देने लगी। मरहठा सरदारों ने दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया तथा कामबक्ष के पुत्र को हटाकर शाहआलम को बादशाह बना दिया। सन् १७६१ मे अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर पुनः आक्रमण किया

उसने मराठों से पंजाब छीन लिया तथा आगे बढ़ कर दिल्ली को अपने कब्जे में कर लिया। जब यह समाचार मरहठों को विदित हुआ, तो पेशवा ने अब्दाली से मुकाबला करने के लिए बड़ी भारी तैयारी की। सदाशिव राव भाऊ और बालाजी बाजीराव पेशवा के पुत्र ने बीस हजार घुड़ सवार, दस हजार पैदल, इब्राहीम गर्दे के नेतृत्व में एक बहुत बड़ा तोपखाना लेकर दिल्ली की तरफ प्रस्थान किया। अनेक राजपूत और जाट राजाओं ने भी अब्दाली के विरुद्ध पेशवा की सेना को सहयोग दिया। सदाशिव राव ने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया तथा पेशवा के पुत्र विश्वासराव को दिल्ली का 'मराठा-सम्राट' उद्घोषित करने की योजना बनाई। अहमदशाह अब्दाली ने भी मरहठों का मुकाबला करने के लिए पूर्ण शक्ति के साथ तैयारी की थी। १७६१ ई॰ के समाप्त होने के पूर्व ही पानीपत के रण क्षेत्र में अब्दाली और मरहठों की सेना में घोर संग्राम हुआ। सदाशिवराव भाऊ ने अपने उद्दण्ड व्यवहार द्वारा जाटों और राजपूतों को नाराज कर दिया था अतएव पानीपत के युद्ध में इन लोगों ने मराहठों का साथ नहीं दिया। युद्ध में मरहठे लोग परास्त हुए। सदाशिवराव भाऊ, विश्वासराव और अन्य अनेक मराठे सरदार युद्ध में मारे गये। पानीपत की इस पराजय से मरहठा शक्ति को बहुत क्षति पहुँची तथा उनके उत्कर्ष का काल समाप्त हो गया। अहमदशाह अब्दाली भारत में राज्य स्थापना के उद्देश्य से नहीं आया था। अतएव मराठों की शक्ति को नष्ट करने के पश्चात् दिल्ली का राज्य सिंहासन मुगल सम्राट शाह आलम को देकर स्वदेश लौट गया। इस काल में भारत में विदेशी अंग्रेज जाति अपनी शक्ति का विकास करने में संलग्न थी। मरहठों के निर्बल पड़ने तथा अब्दाली के लौट जाने पर अंग्रेजों की शक्ति भारत में तेजी के साथ बढ़ने लगी और अठारहवीं सदी के अन्त तक उन्होंने भारत की प्रधान राजशक्तियों को नियंत्रित कर लिया। इस विदेशी शक्ति को भारत में अपना आधिपत्य स्थापित करने में जो सफलता प्राप्त हुई, उसका प्रधान कारण भारत की विशृंखल राजनैतिक अवस्था थी। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य का विघटन होना प्रारम्भ हो गया था।

अवध, बंगाल तथा दक्षिण के सूबेदार स्वतन्त्र बन बैठे। मुगल बादशाह दिल्ली का नाममात्र का शासक था। सिक्खों ने पंजाब मे अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिए। राजपूताने के विविध राजा मुगल बादशाह को राजनीति से खुलकर खेलने लगे। मरहठों ने अनेक स्वतन्त्र एवं शक्ति शाली राज्यो—ग्वालियर, नागपुर, इन्दौर, बड़ौदा व महाराष्ट्र आदि का निर्माण कर लिया था। देश में कोई एक ऐसी प्रबल राजशक्ति नही रह गई थी, जो इन विदेशी एवं विधर्मी लोगों से भारत की रक्षा कर सके। सार्वभौम सत्ता के अभाव में देश में राष्ट्रीय एकता की भावना न रही तथा अंग्रेजो ने ऐसी परिस्थिति से लाभ उठा कर अपनी आकांक्षा की पूर्ति की।

अंग्रेजों के प्रभुत्ता के इतिहास मे प्रवेश करने के पूर्व हमें संक्षिप्त रीति से मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों पर दृष्टिपात् करना चाहिए। मुगल सम्राटो में औरंगजेब पर उसकी जिम्मेदारी सबसे अधिक है। मुगलो में उत्तराधिकार का कोई नियम न था। किसी भी सम्राट की मृत्यु गृह-युद्ध की सूचना मात्र होती थी। दरबार कुचक्रो तथा षड्यन्त्रो का केन्द्र बन जाता था। राज्य की एकता भंग हो जाती थी तथा देश की आर्थिक शक्ति क्षीण हो जाती थी। विदेशी आक्रमणकारियों तथा विद्रोहियो को प्रोत्साहन मिलता था। मुगलों का सैन्य संगठन भी ठीक नही था मनसबदार आपस में लड़ा करते थे। औरंगजेब की संदेह पूर्ण नीति से किसी भी राजपुत्र को राज्यकीय अनुभव प्राप्त करने का अवसर नही मिला। औरंगजेब के पश्चात् कोई भी योग्य उत्तराधिकारी गद्दी पर नही बैठा। मुगल सम्राट भोग विलास में जीवन व्यतीत करते थे। अतः १७०७ ई० के पश्चात् होने वाले सभी सम्राट, मन्त्री तथा मनसबदारो के हाथों की कठपुतली होते थे। सैनिको का भी नैतिक पतन हो गया था। बाबर के काल वाली शक्ति तथा जोश उनमे बाकी नही रह गया था। मुगल साम्राज्य की विशालता भी उसके पतन के लिए जिम्मेदार है। देश की आर्थिक स्थिति ने भी मुगल शासन के पतन मे योग दिया। इसके अलावा मुगल शासक विदेशी थे अतः भारतीयों को उनके प्रति स्वामी भक्ति भी नहीं थी तथा उन्होंने मुगलों

को हमेशा विदेशी ही समझा। औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति ने मुगल साम्राज्य की नींव हिला दी तथा नादिरशाह के आक्रमण ने तो मुगल साम्राज्य को नष्ट ही कर दिया। मुगल साम्राज्य के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था उन्होंने कभी यूरोपीय व्यापारियों के कार्यों की ओर ध्यान नहीं दिया हमेशा बेखबर रहे। मुगलों की इस अदूरदर्शिता का परिणाम यह हुआ कि ये विदेशीव्यापारी शनैः शनैः अपनी शक्ति बढाते रहे एवं अवसर मिलने पर उन्होंने मुगलों की अदूरदर्शिता का पूरा-पूरा फायदा उठाया।

[२] ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना

अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत का पश्चिमी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। १४५३ ई में कस्तुन्तुनिया पर तुर्कों का अधिकार हो जाने से स्थलीय व्यापारिक मार्ग समाप्त हो गया। यूरोपीयदेशों में भारतवर्ष के लिए सामुद्रिक मार्ग खोजने के लिए स्पर्धा प्रारम्भ हुई। इस काल में पुर्तगाल देश की सामुद्रिक शक्ति सर्वोपरि थी। २० मई १४९८ ई० को वास्कों-डी-गामा भारतवर्ष के कालीकट बन्दरगाह पर पहुँचा जहा राजा जमोरिन ने उसका स्वागत किया। 'भारत पहुँचने के लिए नवीन मार्ग का पता लग गया है'— इस समाचार को सुनकर समस्त यूरोप के निवासी खुशी से फूल उठे। नये रास्ते से पश्चिमी जातियों ने निम्न क्रम से लाभ उठाया। (१) पुर्तगीज—सन् १५०० से १६०० ई०, (२) डच—१६०० से १७०० ई०, (३) फ्रांसीसी—सन् १७०० से १७५६ ई०, (४) अंग्रेज—सन् १६००—१८०० ई०।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों में भारत में प्रतापी मुगल बादशाहों का शासन था। अतः इस युग में यूरोपियन लोग केवल व्यापार से ही सन्तुष्ट रहे। पुर्तगीज लोगों के व्यापार का प्रधान केन्द्र भारत के पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित गोआ नगर था, जो मुगल बादशाहों की सत्ता से बाहर था। सुदूर दक्षिण में उस समय किसी एक शक्तिशाली भारतीय राजा का शासन नहीं था। पुर्तगीज लोगों ने इस स्थिति से लाभ उठाया और केवल व्यापार से ही सन्तुष्ट

न रहकर उन्होने गोआ व उसके समीपवर्ती प्रदेशो पर अपना आधिपत्य भी स्थापित करना शुरू किया। पुर्तगीज गवर्नरों में अल्मीड़ा तथा अल्बुकर्क अत्यन्त प्रसिद्ध है। अल्मीड़ा ने १५०६ ई० में ड्यू बन्दर से कुछ दूर हट कर टर्की तथा मिस्र की संगठित शक्ति को बुरी तरह हराकर हिन्द महासागर मे पुर्तगीज शक्ति की धाक जमा दी। अल्बुकर्क ने साम्राज्य स्थापना की नीति को अपनाया उसने अनेको दुर्गों एवं गढ़ों का निर्माण कराया। उसने पुर्तगालियों को भारतीय स्त्रियों से विवाह करने की प्रेरणा दी। लङ्का, पूर्वी भारत, गुजरात के तट पर पुर्तगालियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया किन्तु ये लोग अपनी सत्ता का अधिक विस्तार नही कर सके। वे धर्मान्ध ईसाई थे। उन्होंने अनेक हिन्दू मन्दिरों को ईसाई गिरजो के रूप मे परिवर्तित किया, इस कारण जनता उनसे बहुत असन्तुष्ट हो गई थी। शाहजहां के समय जब दक्षिण में मुगल आधिपत्य की स्थापना का उद्योग शुरू हुआ, तो मुगलो का पुर्तगीजो से भी संघर्ष हुआ। पहले मुगलो और बाद मे मराठो की शक्ति के उत्कर्ष के कारण पुर्तगीज लोग भारत मे अपनी राजनैतिक आकांक्षाओ को पूरा कर सकने में असफल रहे।

पुर्तगीज के अनुकरण में हालैण्ड, फ्रांस और इंग्लैण्ड के जिन व्यापारियो ने भारत में व्यापार के उद्देश्य से आना शुरू किया, वे भी सोलहवी और सत्रहवीं सदियो में केवल व्यापार से ही संतुष्ट रहे। पर औरङ्गजेब के पश्चात् जब मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो गई और भारत मे अनेक छोटे-मोटे राज्य स्थापित हो गये तो इन व्यापारियों ने देश की राजनीतिक दुर्दशा से लाभ उठाया और व्यापार के साथ-साथ अपनी राजसत्ता भी स्थापित करनी शुरू की। हालैण्ड के व्यापारियो की भारत मे सूरत, चिनसूरा, कासिम बाजार, पटना, कोचीन, नैगापटम आदि स्थानो पर बहुत सी व्यापारी कोठिया थी। उन्होंने भारत के राजनीतिक मामलो मे विशेष रूप से हस्तक्षेप करने का प्रयत्न नहीं किया। पर इंग्लैण्ड और फ्रांस ने भारत की राजनैतिक दुरावस्था से पूरा पूरा लाभ उठाया, और इस देश की विविध राजशक्तियों के आपसी झगड़ों में हस्तक्षेप करके अपनी सत्ता स्थापित करने का उद्योग शुरू किया। भारत की

राजनैतिक दुर्दशा से लाभ उठा कर अपनी सत्ता इस देश में स्थापित की जा सकती है, यह विचार सबसे पहले फ्रांस के लोगों मे उत्पन्न हुआ था। डूप्ले पहला यूरोपियन राजनीतिज्ञ था जिसने भारत मे फ्रांस के आधिपत्य को स्थापित करने का स्वप्न लिया। डूप्ले १७४२ ई० में भारत का गवर्नर बनकर आया। वह एक उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ, महान् शासक एवं कूटनीतिज्ञ था। उसने भारत की राजनैतिक अनिश्चित् स्थिति के कारण भारत मे फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने का दृढ निश्चय कर लिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अंग्रेजों को परास्त करना अनिवार्य था। डूप्ले ने कूटनीति से कार्य सेना प्रारम्भ किया। उसने देशी राजाओं और नवाब के झगड़ों में पड़ने तथा उनकी आड़ में रहकर अंग्रेजो से युद्ध करने का दृढ संकल्प किया। उसने हैदराबाद के निजाम आसफशाह की मृत्यु पर उसके दोहिते मुजफ्फरजंग और कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन की मृत्यु पर चांदा साहब के उत्तराधिकार के दावे का समर्थन किया। चांदा साहब तथा मुजफ्फरजंग फ्रांसीसियों की सहायता से सफल हुए। मुजफ्फरजंग ने फ्रांसीसियों को दक्षिण का नवाब बना दिया तथा उत्तरी सरकार के नाम से विस्तृत प्रदेश भी उनको दे दिया। दक्षिण में फ्रांसीसियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। यह देखकर कर मद्रास के अंग्रेजी गवर्नर चार्ल्स फ्लोयर ने हैदराबाद एवं कर्नाटक के उत्तराधिकार के लिए क्रमशः नासिरजंग और मुहम्मदअली के दावे का समर्थन किया। राबर्ट क्लाइव ने अर्काट पर अधिकार कर लिया। चाँदा साहब तथा फ्रांसीसियों ने अर्काट को घेर लिया तथा पचास दिन तक उसको घेरे पडे रहे। क्लाइव की अनुपम वीरता तथा साहस के सामने फ्रांसीसी सेना की कुछ न चली तथा पराजित होकर रणक्षेत्र से भाग खड़ी हुई। क्लाइव दुर्ग से बाहर निकल आया एवं 'अर्नी' के स्थान पर चांदा साहब तथा फ्रांसीसी सेना को परास्त कर भीषण क्षति पहुँचाई। इसके पश्चात् 'वाण्डेवाश' के युद्ध में फ्रांसीसियों की शक्ति पूर्णतः नष्ट हो गई। युद्ध के परिणामस्वरूप अंग्रेजो का सम्पूर्ण दक्षिणी भारतीय क्षेत्र पर प्रभुत्व स्थापित हो गया। फ्रांस की सफलता का मुख्य कारण था कि १८ वी सदी मे फ्रांस में

बूर्बो वंश के स्वेच्छाचारी व निरंकुश राजाओं का शासन था और भारत में फ्रेंच लोग अपनी शक्ति के विस्तार का जो प्रयत्न कर रहे थे, उसका संचालन फ्रांस की इस निरंकुश सरकार द्वारा होता था। इसके विपरीत ब्रिटेन की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण से प्रायः स्वतन्त्र थी। उसके लिए यह अधिक सुगम था कि वह समय और परिस्थिति के अनुसार स्वतन्त्रता के साथ कार्य कर सके। डूप्ले के प्रधान प्रतिद्वन्द्वी के लिए आवश्यक नहीं था कि वह अपने प्रत्येक कार्य के लिए सरकार की अनुमति ले। पर डूप्ले को अपने कार्यों के लिए फ्रांस की सरकार का मुंह देखना पड़ता था और इस युग की फ्रेंच सरकार सर्वथा विकृत और दुर्दशाग्रस्त थी। फ्रांस की सामुद्रिक शक्ति भी प्रबल न थी अतः दूरस्थ देशों में अंग्रेजों की सामुद्रिक शक्ति की प्रबलता स्थलीय पराजयों को भी विजय में परिणत करने में समर्थ थी।

ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ की आज्ञा प्राप्त कर १६०० ई० में इंग्लैण्ड के कुछ व्यापारियों ने 'ईस्ट इन्डिया' कम्पनी की स्थापना की। मुगल सम्राट जहांगीर से कप्तान हाकिन्स तथा सर टामसरो ने अंग्रेजों के लिए व्यापारिक सुविधायें प्राप्त करलीं। १६३५ में मद्रास की नींव पड़ी। १६५० में डाक्टर बाटन के प्रयत्नों के फलस्वरूप बंगाल में कम्पनी को बिना चुंगी दिये ही व्यापार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को अनेक अधिकार प्रदान करने के साथ बम्बई प्रदान किया। १६६० ई० में अंग्रेजों ने कलकत्ते की नींव डाली तथा फोर्ट विलियम दुर्ग का निर्माण किया। १६६८ ई० में अन्य अंग्रेज व्यापारियों ने भी पृथक कम्पनी निर्माण की। १७०८ में संयुक्त कम्पनी का निर्माण हुआ। शनैः शनैः अंग्रेजों की शक्ति में वृद्धि होने लगी। प्रारम्भ में अंग्रेजों का उद्देश्य व्यापार करना मात्र ही था किन्तु भारत की राजनैतिक दशा को दृष्टिगत रखते हुए साम्राज्य निर्माण का उद्देश्य बनाया।

अपने साम्राज्य निर्माण की भावी योजना को पूर्ण करने के लिए अंग्रेजों को बंगाल प्रदेश ही उपयुक्त जंचा। बंगाल धन धान्य पूर्ण था तथा व्यापार का केन्द्र था। बंगाल के नवाब ने एक हिंदू जगत सेठ का अपमान कर

भारत की वैश्य तथा हिंदू जनता का सबसे विरोध मे कर लिया था। नवाब अलीवर्दीखाँ की मृत्यु के पश्चात् क्लाइव ने उसके उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। नवाब सिराजुद्दौला १७५७ ई० में प्लासी के युद्ध मे परास्त हुआ। अंग्रेजों की प्रभु सत्ता बंगाल में स्थाई हो गई। क्लाइव ने मीर जाफर को नवाब बनाया किन्तु कुछ समय में ही मीर जाफर को अयोग्य घोषित करके अंग्रेजों ने १७६० ई० में मीर कासिम को बंगाल का नवाब बनाया। मीर बड़ा योग्य व्यक्ति था। उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा मुगल सम्राट शाह आलम की सहायता प्राप्त कर अंग्रेजों को बंगाल से निकालने का प्रयत्न किया। १७६४ ई० मे बक्सर नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना से नवाब का संघर्ष हुआ। अंग्रेजी सेनापति मुनरो ने मीर कासिम तथा अवध के वजीर की संयुक्त सेनाओं को परास्त किया। मीर कासिम भाग गया। मुगल सम्राट शाह आलम और शुजाउद्दौला ने अंग्रेजों से इलाहबाद की सन्धि की। मुगल सम्राट अंग्रेजों के साथ हो गया और समस्त अवध तथा दिल्ली के राज्य अंग्रेजों के इशारों पर चलने लगे। प्लासी के युद्ध ने अंग्रेजों के पैर जमा दिये थे। बक्सर के युद्ध ने अंग्रेजों को व्यापारी से पूर्णतः शासक बना दिया। अब वे शनैः शनैः भारत के अन्य भागों की ओर अग्रसर होने लगे। क्लाइव के उपरान्त वारेन हेस्टिंग्स भारत का गवर्नर जनरल बन कर आया। उसने मराठा, हैदर तथा हैदराबाद के निजाम के त्री-गुट को समाप्त किया, हैदर तथा उसके पुत्र टीपू को परास्त किया, नाना फड़नवीस से साल्बाई की सन्धि की तथा अवध के नवाब से १७७३ में सन्धि कर कम्पनी के शासन को स्थिरता प्रदान की। लार्ड कार्नवालिस ने कम्पनी के कार्य में काफी सुधार किये। इसके समय १७९० ई० में मैसूर का तीसरा युद्ध हुआ जिसमें टीपू सुलतान की पराजय हुई। लार्ड वेलेजली ने आक्रमण एवं साम्राज्यवादी नीति को अपनाया। उसने सहायक सन्धि की आड़ लेकर १७९९ में टीपू पर आक्रमण कर दिया। टीपू सुलतान मारा गया। उसके राज्य का कुछ भाग अंग्रेजी प्रान्तों में मिला लिया

गया; कुछ निज़ाम को मिला तथा शेष राज्य मैसूर के पुराने राजवंश को दे दिया गया। मरहठों को परास्त कर वेलेजली ने पेशवा बाजीराव द्वितीय, भौंसले तथा सिंधिया को सहायक सन्धि स्वीकार करने को बाध्य किया। अवध के नवाब ने भी सहायक सन्धि स्वीकार करली तथा अंग्रेजी सेना रखना स्वीकार किया। वेलेजली ने अंग्रेजी राज्य की शक्ति काफी बढ़ा दी। उसने कुछ राज्य सन्धि द्वारा, कुछ राज्य युद्ध द्वारा अंग्रेजी राज्य मे मिला लिए थे। फर्रुखाबाद के नवाब तथा तंजौर के राजा को पेंशन दे दी गई और उनके राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिए गये। कर्नाटक तथा सूरत को वेलेजली ने सैन्य बल प्रदर्शन द्वारा अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। लार्ड हेस्टिंग्स ने वेलेजली के अधूरे कार्य को पूरा किया। मरहठों से चौथा युद्ध कर उनकी शक्ति को हमेशा के लिए नष्ट कर दिया। मरहठों के सहायक पिण्डारियों का दमन करके अंग्रेजों की शक्ति को स्थाई कर दिया। लार्ड बैंटिक ने भारतीय शासन में अनेक सुधार किये। सती प्रथा, नर बलि आदि को समाप्त करने के लिए कानून बनाये। लार्ड बैंटिक के समय ही भारत में प्रथम रेलगाड़ी का निर्माण हुआ। लार्ड बैंटिक के पश्चात् लार्ड एलिनबरो और लार्ड हार्डिंज क्रमशः गवर्नर जनरल बनकर भारत में पधारे। लार्ड हार्डिंज के समय प्रथम सिक्ख युद्ध हुआ। पंजाब में सिक्ख साम्राज्य की स्थापना महाराजा रणजीतसिंह ने की थी अंग्रेज इनकी शक्ति से डरते थे। अतएव बराबर मित्र बने रहे। इनकी मृत्यु के पश्चात् लाहौर दरबार में अव्यवस्था फैल गई। प्रथम और द्वितीय सिक्ख युद्ध हुए जिनमें अंग्रेजों को असफलता मिली तथा सिक्खों की शक्ति नष्ट हो गई। अंग्रेजों का 'यूनियन जैक' समस्त भारत पर लहराने लगा। उत्तर मे हिमालय से दक्षिण में कन्याकुमारी, पश्चिम मे सिन्ध से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक का प्रदेश अंग्रेज साम्राज्य के प्रतीक लाल रंग से पोत दिया गया। लार्ड डलहौजी ने गोद लेने की प्रथा को बन्द कर सात छोटे-मोटे राज्य अंग्रेजी प्रदेशों में मिला लिए। इनमें प्रमुख सितारा, झाँसी और नागपुर थे राज्य थे। कुछ अन्य राज्यों को भी दूसरे प्रकार से जब्त कर लिया।

इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक प्रायः सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजों का अधिपत्य स्थापित हो गया था और इस देश में जो अनेक राजा व नवाब रह गये थे, वे भी अंग्रेजों की आधीनता को स्वीकार करने लग गये थे, किन्तु भारतीय जनता विधर्मी शासकों से बहुत असन्तुष्ट थी क्योंकि अंग्रेज शासक भारत की पुरानी परम्पराओं और धार्मिक विश्वासों की जरा भी परवाह न करते थे। लार्ड डलहौजी के कार्य के फलस्वरूप भी भारतीयों में विद्रोह की भावना ने जोर पकड़ा। १८५७ में राज्य क्रान्ति हुई। दिल्ली पर भारतीयों का अधिकार हो गया। मुगल सम्राट बहादुरशाह को भारत का सम्राट घोषित किया गया। समस्त भारत में क्रांति की लहर जागृत हो गई। नाना साहब कानपुर में, मध्य भारत में तांत्या टोपे, बुन्देलखण्ड में झाँसी की रानी लक्ष्मी-बाई ने क्रांति का रूप उग्र बना दिया। इलाहाबाद, अवध, बिहार आदि में भी क्रांति हुई। पंजाब में सिक्ख शांत रहे। अंग्रेजों ने पूर्ण शक्ति के साथ क्रांति का दमन किया। बहादुरशाह बन्दी बना कर रंगून भेज दिया गया। जनरल हैवलोक ने कानपुर में तथा जनरल स्मिथ ने झाँसी में क्रांति को शान्त किया। नाना साहब तथा झाँसी की रानी ने वीरगति पाई। तात्या टोपे को फांसी दे दी गई। दस मास के कठोर परिश्रम के पश्चात् अंग्रेज क्रांति को दबाने में सफल हुए और भारत में अंग्रेजी शासन की जड़ें और मजबूत हो गई। सन् १८५७ की क्रांति के बाद भारत का शासन ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले लिया जो १९४७ तक कायम रहा।

प्रश्नावली

१. भारत में अंग्रेजों के राज्य स्थापना पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए उनकी सफलता के कारणों का उल्लेख कीजिए।

२. मुगल साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों का उल्लेख कीजिए। औरंगजेब पर इसकी जिम्मेदारी कहां तक है? रा. वि. १९६०

३. मुगल साम्राज्य के पतन पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

४. मरहठों के उत्कर्ष के बारे में आप क्या जानते हैं ? इनके उत्कर्ष में शिवाजी का क्या योग रहा ?

५. शिवाजी के जीवन और कार्यों पर प्रकाश डालिए।

६. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए—(१) नादिरशाह, (२) डूप्ले, (३) राबर्ट क्लाइव, (४) वेलेजली, (५) महाराजा रणजीतसिंह, (६) झाँसी की रानी और (७) १८५७ का स्वतन्त्रता संग्राम।

१४ भारत में धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन

भारत सदा से ही धर्म-परायण देश रहा है। परन्तु सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में अंग्रेजों की कूटनीति से भारत का सर्वाङ्गीण पतन हुआ। पाश्चात्य सभ्यता के थपेड़ों से भारत का धर्म भी डगमगा गया। हिन्दू धर्म का दर्शन और ज्ञान भारतीयों की दृष्टि से ओझल होने लगा। उनकी दृष्टि अंग्रेजी साहित्य एवं विदेशी वस्तुओं पर केन्द्रित होने लगी। हिन्दुओं और मुसलमानों के पवित्र धर्म-तत्वों पर मिथ्या विश्वासों की एक मोटी तह जम गई। धर्म के नाम पर अछूतों पर नाना प्रकार के अत्याचार होने लगे। समस्त भारत में कर्म-काण्ड और रूढ़ि को ही धर्म के स्थान पर स्थापित कर दिया गया। यह मिथ्या विश्वास और पुरानी सामाजिक प्रथायें समाज की शक्ति को एक संक्रामक रोग की तरह खाये जा रही थी। इस अन्धकारमय स्थिति से समाज को आशा का सन्देश देने की नितान्त आवश्यकता थी। सौभाग्य से अनेक धार्मिक सुधारकों ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रति पुनः प्रेम उत्पन्न करने, समाज पर जमे कीचड़ को दूर हटाने का प्रयत्न किया।

ब्रह्म समाज और राजा राममोहनराय— जब भारत पर धर्म के नाम पर मिथ्या आडम्बर का अन्धकार छा रहा था, उस समय उस अन्धकार को दूर करने के लिये राजा राममोहनराय रूपी दिनकर भारत की पुण्य भूमि पर उदित हुआ। राजा राममोहनराय दूरदर्शी व्यक्ति थे और वृहद् दृष्टिकोण रखते थे। इन्होंने हिन्दू, मुस्लिम तथा ईसाई धर्मों का गहन अध्ययन किया था।

धर्म के सादा और बुद्धि-संगत तथ्यों का प्रचार करने की दृष्टि से उन्होंने मूर्ति-पूजा और देवी-देवताओं का विरोध किया। उन्होंने जाति भेद, बहुविवाह, बाल-विवाह तथा सती आदि प्रथाओं के विरुद्ध घोर संघर्ष किया। विशिष्ट दशाओं में विधवा-विवाह का समर्थन किया। वह रूढ़िवादी नही थे और पश्चिमी सभ्यता एवं ईसाई धर्म की सभी अच्छी बातें ग्रहण कर लेना चाहते थे। इसीलिये रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इनको 'भारत में आधुनिकता का प्रवर्तक' कहा है। सन् १८२८ ई० में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म-समाज की स्थापना की। उनका उद्देश्य नवीन मत अथवा सम्प्रदाय की स्थापना करना न था, अपितु समस्त धर्मों की उच्च शिक्षाओं के तत्व से अभिसिंचित एक सामान्य पृष्ठभूमि मात्र की स्थापना करना था। ब्रह्म-समाज के उद्देश्य थे—एक ही ईश्वर की उपासना और मनुष्य के प्रति बन्धुत्व की भावना एवं सभी धर्मों व अनेक धार्मिक ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना। इस प्रकार की मूर्ति-पूजा और रस्मों का उन्मूलन ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन प्रार्थना एवं आत्म-शुद्धि बताया गया। कहा गया कि पश्चाताप और पाप-त्याग ही मुक्ति का साधन है। इस आन्दोलन ने हिन्दुत्व को शुद्ध करके इसमें नवीन-जीवन का संचार किया। ब्रह्म-समाज के कार्यों के महत्व को प्रो० जकारिया ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है 'राजा राममोहनराय एवं उनका यह ब्रह्म-समाज ही हिन्दू धर्म, समाज या राजनीति के क्षेत्र में समुच्च्द्वासित उन सभी सुधार-मूलक आन्दोलनों की युग धाराओं के मूल स्रोत के रूप में हमें दिखाई देते हैं, जिन्होंने विगत १०० वर्ष में भारत को हिलाया और जगाया है तथा जिनके कारण इस देश के वर्तमान युग में ऐसा अद्भुत पुनरुत्थान हो पाया है।' राजा राममोहनराय की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म-समाज का कार्य उनके दो शिष्यों महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचन्द्र सेन ने सँभाला, किन्तु इन दोनों की प्रवृत्ति एवं विचारों में बहुत भेद था अतः १८५७ में ब्रह्म-समाज की दो शाखायें बन गईं—आदि समाज एवं साधारण ब्रह्म-समाज। आदि-समाज को देवेन्द्रनाथ विशुद्ध हिन्दू धर्म के रास्ते पर चलाते रहे। केशवचन्द्र सेन ने बम्बई में 'प्रार्थना

समाज' की स्थापना की, जिसमें आत्माराम, महादेव रानाडे, के० टी० तैलंग जैसे बडे बडे आदमी सम्मिलित हुए। 'सुबोध पत्रिका' नामक एक पत्र भी निकाला गया। बम्बई के प्रार्थना समाज के अनुसार ही मद्रास मे 'वेद-समाज' की स्थापना हुई। सन् १८८१ में इन लोगो मे फिर मतभेद हुआ और केशवचन्द्र ने 'नव विधान' को जन्म दिया। 'नव विधान' समन्वयात्मक धर्म था, उसमे हिन्दू धर्म ग्रन्थो के अतिरिक्त ईसाई, बौद्ध और इस्लाम के धर्म ग्रन्थो से भी बहुत सी बातें ली गई थी।

आर्य समाज एव स्वामी दयानन्द—ब्रह्म-समाज का देश में अधिक प्रचार नही हुआ। वह शिक्षित समुदाय और विशेषकर बगाल तक ही सीमित रहा। देश में उस समय ऐसी संस्था की आवश्यकता थी जो देश में प्रचलित अज्ञान, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता का विरोध करने के साथ ही साथ भारतीयो में व्याप्त हीनता की भावना को समाप्त करके उनमें स्वाभिमान तथा अपने धर्म, सभ्यता एवं सस्कृति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करती। देश के सौभाग्य से इसी समय स्वामी दयानन्द का आविर्भाव हुआ और उन्होने १८७५ में आर्य-समाज की स्थापना करके ऐसी सस्था के अभाव को दूर किया। स्वामीजी ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए, वेदो का गूढ अध्ययन किया, उन्होंने वेदो को ही प्रामाणिक माना, अध्ययन का द्वार सभी के लिए खोल दिया। अनेकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा, अवतारवाद एव अन्ध-श्रद्धा का विरोध किया। सर्व व्यापी सर्वशक्तिमान् ईश्वर की उपासना का प्रचार किया। हिन्दुओ के प्राचीन धर्म का स्मरण कराकर भारतीयो को स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने अन्धविश्वास, पर्दा प्रथा, छूआछूत, समुद्र यात्रा के विरुद्ध आवाज उठाई तथा स्त्री शिक्षा एव विधवा विवाह का प्रचार किया, जो हिन्दू परिस्थितिवश मुसलमान व ईसाई बन गये थे उनको उन्होने पुन हिन्दू बनाना शुरू किया। हिन्दुओ के धर्म में क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन घोषित कर दयानन्द ने धार्मिक चेतना प्रदान की। अरविंद घोष के शब्दो मे स्वामी दयानन्द 'परमात्मा की इस विचार सृष्टि का एक अद्वितीय योद्धा तथा मनुष्य और मानवीय सस्थाओ का

संस्कार करने वाला एक अद्भुत शिल्पी था।' स्वामीजी ने अपने विचारों को 'सत्यार्थ-प्रकाश' नामक ग्रन्थ द्वारा प्रकाशित कर आर्य-समाज द्वारा प्रतिपादन करना आरम्भ किया। छात्रों को पाश्चात्य सभ्यता से बचाने के लिये, सादा जीवन व्यतीत करने का पाठ सिखाने के लिए आपने प्राचीन ऋषि आश्रमों के समान गुरुकुल स्थापित किये, जहाँ विद्यार्थियों में हार्दिक ब्रह्मचर्य एवं देश प्रेम की भावना कूट-कूटकर भरी जाती थी। आज भी भारत में कई गुरुकुल और सहस्रों डी० ए० वी० स्कूल व कालेज विद्यमान हैं जो उनके विचारों के सजीव प्रतीक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वामी दयानन्द ने अपने सुधारों के शङ्खनाद से हिन्दुओं के हृदयों में स्वाभिमान एवं आत्म-प्रतिष्ठा की भावना पैदा की और उनकी क्रान्ति के फलस्वरूप सोया भारत पुनः जाग उठा। आर्य-समाज की शाखाएँ आज भी भारत के तमाम बड़े-बड़े नगरों एवं शहरों में कार्य कर रही हैं।

ब्रह्मवादी संस्था (Theosophical Society)—थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना न्यूयार्क में मैडम ब्लाट्स्की और कर्नल अल्काट ने सन् १८७५ ई० में की थी। सन् १८७६ ई० में महर्षि दयानन्द का निमन्त्रण पाकर इसके दोनों संस्थापक भारत में आये और तभी से इस समाज का कार्यक्षेत्र भारतवर्ष हो गया और यहीं से इसका प्रचार अन्य देशों में हुआ। ब्रह्मवादी मानते हैं कि सभी धर्म-तत्व एक हैं। आध्यात्मिक जीवन की महत्ता तथा विश्व-बन्धुत्व का प्रचार करना ही इस आन्दोलन के उद्देश्य थे। डा० एनीबेसेण्ट के सभापतित्व में भारत में इस संस्था ने अभूतपूर्व उन्नति की। एनीबेसेण्ट के महान् व्यक्तित्व से प्रभावित होकर इसमें बहुत से विद्वान् और नेता सम्मिलित हो गये तथा शिक्षित भारतीयों में इसका प्रभाव स्थापित हो गया। इस सोसाइटी ने सेण्ट्रल हिन्दू कालिज की स्थापना की जो आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय बन गया। शिक्षा प्रचार के अतिरिक्त सोसाइटी ने समाज-सुधार का भी कार्य किया। भारतवर्ष के शिक्षित हिन्दुओं में इसका खूब स्वागत हुआ। डा० एनी-बेसेण्ट तथा जार्ज अरडेल जैसे उत्कृष्ट कोटि के विद्वानों के व्याख्यानों, लेखों तथा

पुस्तकों का उन पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। विश्वव्यापी भ्रातृत्व का उपदेश सुनाते हुए ब्रह्मवादी संस्था ने हिन्दुओं को बतलाया कि तुम्हारा धर्म विश्व में सबसे ऊँचा है। हिन्दुओं को अपने धर्म की बुराइयों को दूर कर इसको विश्व में प्रसारित करना चाहिए तथा स्वधर्म पर दृढ रहना चाहिए। इस संस्था ने हिन्दू धर्म की बहुत सी गूढ और रहस्य की बातों का वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन कर कर्म-फल और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों में विश्वास व्यक्त किया। भारतवर्ष में संस्था की स्थापना १८८२ में अध्यार (मद्रास) में हुई।

स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन—पूर्वीय तथा पाश्चात्य विचारों का समन्वय रामकृष्ण मिशन में हुआ। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने यह अनुभव किया कि सब धर्म एक ही सनातन धर्म के अंश एवं अङ्ग हैं। सभी धर्म प्रणालियों द्वारा उन्होंने ईश्वर का साक्षात्कार किया। सभी धर्मों की मूलभूत एकता, ईश्वर की अलौकिक सत्ता एवं आध्यात्मिक जीवन की महत्ता में विश्वास जमाने की सबल प्रेरणा दी। रामकृष्ण परमहंस के प्रसिद्ध शिष्य स्वामी विवेकानन्द हुए। विवेकानन्द एवं रामकृष्ण का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा प्लेटो और सुकरात का था। परमहंस की मृत्यु के १० वर्ष बाद स्वामी विवेकानन्द ने परमहंस की शिक्षाओं के प्रचार एवं दीन-दुखियों की सेवा करने के लिए रामकृष्ण मिशन संस्था खोली। विवेकानन्द १८९६ में सर्व-धर्म सम्मेलन में शामिल होने के लिए शिकागो गये, सम्मेलन में उनके धर्म सम्बन्धी ज्ञान, अद्भुत वक्तृत्व शक्ति और दीर्घकाय एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा। सम्मेलन की समाप्ति पर उन्हें अमेरिका के विभिन्न स्थानों से भाषण देने के निमन्त्रण मिले। उन्होंने अमेरिका तथा यूरोप में भारत के विशद दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए सभी धर्मों की मूलभूत एकता, वेदान्त की महत्ता एवं धर्म के क्षेत्र में समन्वय की शिक्षा दी। पाश्चात्य देशों में भी वेदों का आत्म ज्ञान गूँज उठा। उन्होंने मिस्र, चीन और जापान के भी दौरे किये और अपने गुरु के सन्देश का प्रचार किया। आपने आकर्षक व्यक्तित्व और वृहद् ज्ञान द्वारा उन्होंने संसार भर के लोगों पर अमिट छाप छोड़ी।

स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त का प्रचार करने के साथ-साथ भारतवासियो मे नवजीवन का संचार किया और आत्म विश्वास का पाठ पढाया। उन्होंने घोषणा की—"लम्बी से लम्बी रात्रि भी अब समाप्त होती जान पडती है। हमारी यह मातृभूमि अपनी गहरी नीद से जाग रही है, कोई अब उसे उन्नति करने से नही रोक सकता, ससार की कोई शक्ति अब उसे पीछे नही ढकेल सकती, क्योंकि वह अनन्त शक्तिशाली देवी अपने पैरो पर खडी हो रही है।" उन्होंने भारतवासियो को नया सन्देश दिया "इस बात की चिन्ता न करो कि एक पार्थिव शक्ति के द्वारा तुम जीत लिये गये हो और अपनी आध्यात्मिक शक्ति से तुम विश्व पर विजय प्राप्त करो।" हिन्दू-धर्म मे दृढ विश्वास होते हुए भी वे लोकतन्त्र और स्वाधीनता के पश्चिमी विचारो के विरोधी नही थे, बल्कि उनका परामर्श तो यह था कि "समानता, स्वतन्त्रता, परिश्रम और शक्ति की दृष्टि से पूरे पश्चिमी बन जाओ, किन्तु साथ ही धर्म, संस्कृति और भावना से पूरे-पूरे हिन्दू बन जाओ।"

इनके समय मे ही स्वामी रामतीर्थ भारत की पुण्य-भूमि मे अवतरित हुये। स्वामीजी ने वेदान्त, राष्ट्रधर्म तथा देश पूजा का खूब प्रचार किया। इनके भाषणो तथा लेखो ने भारतीयो के हृदयो मे वेदान्त के प्रति रुचि उत्पन्न की। आपने विश्व को यह विदित कराना चाहा कि हिन्दू सभ्यता विश्व में सर्वोच्च है और हिन्दुओ का वेदान्त-धर्म और तत्व-ज्ञान केवल हिन्दुओ के लिए ही नही वरन् मनुष्यमात्र के लिये कल्याणकारी है। आज भी विश्व मे कई जगह रामकृष्ण के मठ स्थापित है। इन मठो द्वारा वेदान्त का तो प्रचार होता ही है, इसके अतिरिक्त रोगियो की सेवा भी पर्याप्त मात्रा मे इनके द्वारा हो रही है।

राधास्वामी सत्संग—राधास्वामी सत्सग की स्थापना १८६१ मे शिवदयालजी ने आगरा मे की। छठे गुरु स्वामी आनन्दस्वरूप के समय मे इस संस्था की आश्चर्यजनक प्रगति हुई। राधास्वामी ईश्वर का नाम है और वे

विलियम बैंटिक ने नियमानुसार सती-प्रथा, शिशु-हत्या तथा नरबलि को निषिद्ध घोषित कर दिया था। राजा राममोहनराय ने इस कार्य में विशेष सहयोग प्रदान किया था। दास प्रथा को भी लार्ड विलियम बैंटिक ने १८३४ ई० में नियम विरुद्ध घोषित कर दिया। धार्मिक आन्दोलनों ने सामाजिक अन्धविश्वास, रूढ़ियों तथा कुरीतियों को दूर करने का सफल प्रयास किया। इन सब कारणों से समाज में विशुद्ध भावों का प्रचार हुआ।

स्त्रियों की दशा में सुधार--भारतीय समाज में स्त्रियों की अवस्था सुधारने की नितान्त आवश्यकता थी। प्राचीन भारत के समान उनका गौरवपूर्ण स्थान न रह गया था। स्त्रियाँ विलास की वस्तु समझी जाती थीं। विधवा समाज में तिरस्कृत थी एवं उनका जीवन बड़ा दुःखी था। पर्दे में रखकर स्त्रियों की उन्नति को अवरुद्ध कर दिया तथा उनकी शिक्षा का भी कोई प्रबन्ध न था। संक्षेप में स्त्रियों की दशा बड़ी शोचनीय थी। अतः बाल-विवाह, बहु-विवाह के विरुद्ध धार्मिक आन्दोलनों ने ऊँचे स्वर से पुकार की। विधवा विवाह के लिये प्रयास किये गये। स्त्रियों को समुचित शिक्षा प्रदान करने के लिये सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रयत्न प्रारम्भ हुये। पर्दे की प्रथा का अन्त करने का प्रयत्न भी किया गया। इस प्रकार महिलाओं की अवस्था में सुधार किया गया।

दलित वर्ग की उन्नति—जातीय भेद-भाव ने हिन्दू धर्म की आधार-शिला को हिला दिया। पद-दलित वर्ग ईसाई धर्म स्वीकार करने को उत्सुक थे। अतः सभी धार्मिक आन्दोलनों ने जात-पाँत तथा जातीय भेद-भाव की सीमाओं से परे ईश्वर को सभी को सुलभ बनाने का प्रयत्न किया। उनकी दलित स्थिति को सुधारने, शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए अनेक संस्थाओं ने कार्य किये। महात्मा गांधी ने उनके उत्थान के लिए विशेष प्रयत्न किये। भारतीय संविधान में १० वर्षों तक उन्हें विशेष अधिकार प्रदान किये। राष्ट्रीय सरकार ने छूत-छात समाप्त कर हरिजनों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार भी नियमानुसार प्रदान किया है।

श्रमिक संघ—भारत के औद्योगीकरण के फलस्वरूप देश मे एक सामाजिक समस्या का प्रादुर्भाव हुआ। वह थी श्रमिकों की चिन्ताजनक अवस्था। सरकार की उपेक्षा और पूँजीपतियो एव उद्योगपतियो के स्वार्थ के कारण यह वर्ग इस भूतल पर नारकीय जीवन व्यतीत करता था। समाज का यह महत्वपूर्ण अङ्ग इस प्रकार जीवन व्यतीत करे यह अत्यन्त खेदजनक था। शनै-शनै श्रमिको मे सामूहिक रूप से कष्टो की अनुभूति हुई तथा श्रमिक सघो की स्थापना हुई। धीरे-धीरे देश-व्यापी श्रमिक सघो का निर्माण हुआ और राष्ट्रीय सरकार के प्रयत्नो तथा श्रमिक-संघो की शक्ति ने मिलकर आश्चर्यजनक कार्य किये और आज भी यह वर्ग अपने क्षेत्र मे सुखद जीवन की आशा कर सकता है।

आदिवासी—इस समय भी भारतवर्ष मे अढाई करोड से अधिक ऐसे व्यक्ति हैं जो अभी तक सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था मे हैं। इन्हें समाज उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। किन्तु कुछ समय से भारत की राष्ट्रीय सरकार का ध्यान इन उपेक्षित जातियो की ओर भी गया है और बहुत सी सस्थायें इनमे कार्य कर रही हैं। हरिजनो की भाँति ही सरकार ने इनको भी शिक्षा इत्यादि के लिए सहायता देने तथा उनकी आर्थिक और सामाजिक दशा मे सुधार करने का निश्चय किया है। अत. आशा है कि ये भील, गोड, कोल, मीना इत्यादि आदिवासी भी अन्य जातियो की भाँति ही सभ्य एव सुसस्कृत बन जावेंगे।

महात्मा गांधी—महात्मा गाधी अपने को सच्चा हिन्दू बताया करते थे। किन्तु उनमे धार्मिक कट्टरता एव संकीर्णता नहीं थी। वे सभी धर्मों को समान तथा आदर की दृष्टि से देखा करते थे। महात्मा गाधी ने जाति-प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई तथा विविध जाति रूपी मणियो मे बिखरे भारतवासियो को राष्ट्रीयता के धागे मे पिरोकर एक किया। अन्तर्जातीय विवाह प्रारम्भ हुये। राष्ट्रपिता ने अछूतो को हरिजन का नाम दिया तथा हिन्दू समाज के माथे से इस कलक के टीके को दूर करने का भगीरथ प्रयत्न किया। महात्मा गाधी ने स्त्रियों मे शिक्षा का प्रचार कर नारी-समाज मे जागृति तथा चेतना पैदा

की। उन्होंने बाल-विवाह का विरोध किया तथा विधवा-विवाह का प्रचार किया। वर्ग-संघर्ष को समाप्त करने का भी महात्मा गांधी ने प्रयास किया था।

प्रश्नावली

१. ब्रह्म-समाज, आर्य - समाज और रामकृष्ण - मिशन का भारत के धार्मिक एवं सामाजिक जागरण में क्या स्थान है? समझाकर लिखिये।

२. महात्मा गांधी ने भारत के सामाजिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए क्या प्रयत्न किया?

३. भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों पर प्रकाश डालिए।

४. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए-(१) राजा राममोहनराय रा.वि.१९६०(२) स्वामीदयानन्द (३) ब्रह्मवादी संस्था और (४) स्वामी विवेकानन्द।

१५

राष्ट्रीय आन्दोलन

"स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है
—तिलक

राष्ट्रीय जागृति के कारण—भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन अपूर्व त्याग, साधना तथा कष्टो की गाथा है। आन्दोलन का उद्गम और विकास अनेक आर्थिक, राजनैतिक तथा सास्कृतिक प्रभाव का फल है। अतीत की महानता के बोध ने स्वतन्त्रता एव लोकतन्त्र के पश्चिमी आदर्शों से मिलकर इस भावना को जन्म दिया। इस भावना की जागृति के कारण संक्षेप मे निम्न है।

(१) अग्रेजी साम्राज्यवाद-राजनैतिक एकता तथा अग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति का परिणाम भारत के लिए हितकर सिद्ध हुआ। इस नीति के फलस्वरूप समस्त भारत अग्रेजो के अधीन हो गया और राजनीतिक एकता का निर्माण हुआ। प्रो० मून ने कहा है कि "भारतीय समाज के विविध तत्वो के बावजूद भी भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य ने तीसरे पक्ष के रूप मे भारतवर्ष को राजनैतिक एकता प्रदान की।"

(२) अंग्रेजी भाषा—अग्रेजी भारत-व्यापी भाषा बन गई और अंग्रेजी के माध्यम द्वारा भारतवासी एक दूसरे को परस्पर सरलता से समझने लगे। भारतीयो को सङ्गठित करने मे अग्रेजी का अत्यधिक महत्व है।

(३) पाश्चात्य देशो से सम्पर्क—अंग्रेजो के प्रभुत्व स्थापित हो जाने के साथ ही भारतवासियो का सम्पर्क पाश्चात्य देशो से हुआ। वे स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता के पश्चिमी सिद्धान्तो के सम्पर्क मे आए। जैसा कि लार्ड रोनल्डशे

ने कहा है, पश्चिमी शिक्षा की नवीन मदिरा भारतीय युवकों के मस्तिष्क में पहुँची। उन्होंने फ्रांसीसी क्रांति, अमरीकी स्वतन्त्रता-युद्ध, आयरिश होम रूल आन्दोलन के रूप में बहने वाली स्वातन्त्र्य-सरिता का रसास्वादन किया। शैले तथा बायरन आदि कवियों के गीतों ने उन्हें स्फूर्ति प्रदान की। मिल तथा स्पैन्सर आदि दार्शनिकों ने उन्हें प्रकाश दिया और गैरीबाल्डो, मैजिनी, डी० वलेरा तथा जार्ज वाशिंगटन आदि देश-भक्तों ने उनका पथ-प्रदर्शन किया।

यातायात के साधन—यातायात के द्रुतगामी साधनों ने स्थानों के अन्तर को कम कर दिया। भारतीय नेताओं को भारत के प्रत्येक भाग मे अपनी विचारधारा प्रसारित करने का अवसर प्राप्त हुआ।

भारतीय प्रेस तथा साहित्य—सन् १८५७ के पश्चात् भारतीय पत्र-कारिता और साहित्य का तीव्रगति से विकास हुआ। इन पत्रों ने राष्ट्रीय भावना एवं जनता को जागृत किया। अमृत बाजार पत्रिका, ट्रिब्यून और पायोनियर आदि पत्र जनता मे देश-भक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने लगे। साहित्यकारों ने भी अपने नाटकों, काव्यों, उपन्यासों, लेखों आदि के द्वारा जनता में राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। बंकिमचन्द्र चटर्जी और शरत बाबू सरीखे लेखकों की रचनाओं ने प्राचीन भारत के गौरव को प्रदर्शित किया तथा भविष्य को उज्ज्वल बनाने की प्रेरणा दी।

विद्वानों का प्रभाव—भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों का भी राष्ट्रीय जागृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैक्समूलर, मोनियर, विलियम्स, सर विलियम जान्स, जैकब, कोलब्रुक, राय आदि के अनुसन्धानों मे भारत की प्राचीन महानता, आध्यात्मिक श्रेष्ठता और देदीप्यमान सभ्यता का चित्र सामने आया। रानाडे, हरप्रसाद, भण्डारकर, राजेन्द्रलाल मित्रा ने भी इस दिशा में बहुत काम किया।

सामाजिक धार्मिक-सुधार—अनेक सामाजिक एवं धार्मिक सुधार-आन्दोलनों ने भी राष्ट्रीय जागृति मे योग दिया। १९वीं शताब्दी में आर्य-

समाज और ब्रह्मसमाज आदि अनेक आन्दोलन पैदा हुए। धर्म के पुनरुत्थान से भारतीयों को अपने उज्ज्वल अतीत का ज्ञान हुआ और स्फूर्ति मिली। इन आन्दोलनों ने सती, छूत-छात, जाति भेद, पर्दा आदि कुप्रथाओं को भी दूर किया, जो कि भारतीय संस्कृति के ह्रास काल मे इस देश के अन्दर घर कर गई थी। इससे लोगो मे एकता की भावना पैदा होने लगी, जिससे राष्ट्रीयता का मार्ग प्रशस्त हुआ। ब्रह्मसमाज के जन्मदाता राजा राममोहनराय को आधुनिक भारत का पिता और भारतीय राष्ट्रीयता का सन्देशवाहक कहा जाता है। विवेकानन्द तथा रामतीर्थ आदि भारतके सन्त-दूतो ने पश्चिम मे भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता की धाक बिठा दी। इससे स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों को अतीत आत्मविश्वास मिला। डा पट्टाभि ने ठीक ही कहा है कि ये सामाजिक एव धार्मिक सुधार-आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीयता के विभिन्न धागे हैं।

जाति भेद की नीति—अंग्रेजो की जाति भेद की नीति ने भारतीयों के आत्माभिमान को चोट लगाई। अंग्रेज भारत के लोगो को भीवर और लकड़हारे समझते थे। उनको बार-बार हीनता का बोध कराया जाता था। उनके साथ रेल-यात्रा, रेस्टोरेण्ट आदि स्थलों पर दुर्व्यवहार होता। उनके धर्म का अनादर किया जाता और उनकी परम्पराओं का उपहास किया जाता। किसी भी भारतीय देश भक्त की जीवनी उठाकर देखें तो श्वेताओं के दुर्व्यवहार के उदाहरण मिलेंगे। गरीब लोग गरीबी सहन कर सकते हैं, अनादर नही। गैरट ने ठीक ही कहा है कि भारतीय राष्ट्रीयता के उत्थान का प्रमुख कारण जातीय कटुता थी।

आर्थिक शोषण—अंग्रेज पूंजीपतियों के हितार्थ ब्रिटिश राज्य ने भारत मे मुक्त व्यापार नीति अपनाई। भारत के बने हुये माल के आयात पर इंग्लैण्ड में भारी कर लगा दिया। इस विमाता-समान व्यवहार से भारत के हस्तोद्योग तबाह हो गये। होरेस विल्सन ने लिखा है कि पेस्ली और मानचेस्टर के कारखाने भारत के हस्तोद्योग को बलिदान करके बनाये गये। अंग्रेजो की

इस नीति का प्रभाव बहुत बुरा हुआ। देश में भयंकर बेकारी फैल गई। इस बेकारी से भूमि पर भार बढ़ा। कृषि की अवस्था अच्छी नहीं थी। सिचाई की कोई व्यवस्था न थी दुर्भिक्ष और सूखा देश मे सामान्य बातें थी। भारतीय शासन बड़ा खर्चीला था, सेना का व्यय बहुत था और अनेक प्रकार से देश का धन बाहर चला जा रहा था। शिक्षित वर्ग की दशा भी बहुत खराब हो रही थी, उनके लिए ऊँची नौकरियों के द्वार बन्द थे और छोटी नौकरियों का वेतन बहुत कम था। नौकरियों के सम्बन्ध मे सरकार की जातीय समानता सम्बन्धी प्रतिज्ञाएँ कभी पूरी नही होती थी एवं भारतवासियों के साथ भेद नीति का व्यवहार होता था। इन सब बातो से भारतीय जनता मे असन्तोष एवं रोष बढ़ा और वे सरकार की आलोचना करने लगे। यह भावना फैलने लगी कि इस सब दुःख का कारण सरकार (ब्रिटिश) है यदि उसे निकाल दिया जाय तो देश खुशहाल हो सकता है।

सरकार के उद्दत एवं असन्तोषजनक कामः—आर्थिक शोषण एवं जातीय भेद से भारतीयो के हृदय में असंतोष बढ़ ही रहा था साथ ही उसके दूसरे कार्य भी भारतवासियों को तरह-तरह से भड़काने वाले हो रहे थे। हर तरह से भारतवासियों को दबाया जा रहा था। उनसे शस्त्र रखने का अधिकार छीन लिया, देशी भाषाओं के पत्रो पर जबर्दस्त रुकावटें लगादी गई, लंकाशायर के सूती कपड़े पर से कर हटा दिया गया और भारतीय कपड़ों पर चुंगी लगाई गई। दिल्ली दरबार एवं अफगान युद्ध में धनराशि का अपव्यय किया। दक्षिण भारत में फैलने वाली प्लेग व्याधि में असंख्य तबाह भारतीयो के लिये सरकार ने कोई राहत कार्य नही किया। लार्ड रिपन के समय मे तत्कालीन लॉ मेम्बर इलबर्ट ने भारतीय मजिस्ट्रेटों को यूरोपियनों के मुकदमें करने का अधिकार देकर न्याय में जातीय भेद मिटाने के लिये एक बिल पेश किया जिस पर यूरोपियनो एवं एङ्गलो-इण्डियनों ने बड़ा बवाल मचाया और अत्यन्त नीच एवं स्वार्थी मनोवृत्ति, जातीय कटुता एवं अभिमान का परिचय दिया जिससे भारतवासियों के दिलों पर बड़ी चोट लगी। आगे जाकर लार्ड कर्जन ने देश व्यापी

विरोध होते हुए भी सन् १६०५ ई० में बगाल का विभाजन करके दो अलग प्रान्त बना दिये। इस प्रकार सरकार ने स्वय अपनी उद्धतता और गलतियो से भारतवासियो में अपने प्रति असन्तोष पैदा कर दिया।

बाहरी घटनाए—इन अनेक कारणो से तो भारत में देश व्यापी असन्तोष और राष्ट्रीय जागृति हो रही थी, इसी समय बाहर कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिन्होंने भारतीयो मे आत्म विश्वास पैदा किया। सन् १८६६ ई० में एबीसीनिया ने इटली को हरा दिया और सन् १६०४ ई० मे जापान ने रूस को पराजय दी। इन दोनो घटनाओ ने यह प्रकट कर दिया कि गोरी जातिया अपराजेय नही हैं। भारतवासियो ने अपने को हीन समझने की मनोवृति भग कर दी और उन्हें आत्म विश्वास दिया।

कांग्रेस का जन्म—उपर्युक्त कारणो से देश में राष्ट्रीय एकता एव जागृति उत्पन्न हुई और सन् १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ। कांग्रेस ने राष्ट्रीय जागृति में महान योग दिया। कांग्रेस सगठन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को उचित एव सही नेतृत्व प्रदान किया। दादा भाई नौरोजी सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, बाल गगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, श्रीमती बेसेन्ट, महात्मा गाधी आदि नेताओ ने राष्ट्रीय आदोलन को सही मार्ग पर चलाया।

राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास—राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस का हमेशा से मुख्य भाग रहा है अतः राष्ट्रीय आन्दोलन एव कांग्रेस का इतिहास प्राय एक ही रहा है। कांग्रेस के पहिले भी बगाल में ब्रिटिश इण्डियन ऐसोसियेशन (१८५१) तथा इण्डियन ऐसोसियेशन (१८७६) और पूना की सार्वजनिक सभा (१८७०) इस दिशा में काम कर रही थी किन्तु ये प्रातीय संस्थायें थी एवं उनके काम में जोश बहुत कम था। अखिल भारतीय संस्था की कमी को दूर करने के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई। कांग्रेस के जन्मदाता ए ओ ह्यूम थे। यह कहा जाता है कि उनका उद्देश्य इस संस्था द्वारा

भारत के प्रमुख व्यक्तियों का संगठन कर सामाजिक सुधार करना था परन्तु लार्ड डफरिन ने हस्तक्षेप कर इस संस्था का वही कार्य निर्धारित किया जो इंग्लैंड का विरोधी दल करता था। लार्ड डफरिन चाहता था कि 'भारतीय राजनीतिज्ञ वर्ष मे एक बार एकत्रित हो तथा सरकार को यह स्पष्ट करें कि शासन मे क्या दोष हैं तथा उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

राष्ट्रीय काग्रेस के तीन काल—काग्रेस के इतिहास को तीन भागों जा सकता है—

(१) सन् १८८५ से सन् १९०५—इस काल मे काग्रेस ने क्रान्तिकारी रूप धारण नहीं किया था। इसके नेताओं ने अंग्रेजों के प्रति स्वामिभक्ति ही प्रदर्शित की।

(२) सन् १९०५ से सन् १९१९ तक—इस काल में काग्रेस ने सैनिक वेष धारण कर लिया था, इसी काल में मुसलमानों ने काग्रेस पृथक अपना अस्तित्व स्थापित किया।

(३) सन् १९१९ ई० से भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति तक अथवा गांधी युग—इस काल में स्वराज्य पार्टी का संगठन हुआ, मुस्लिम लीग ने शक्तिशाली रूप धारण किया। जन आंदोलन हुए और अन्त में काग्रेस विभाजित स्वतन्त्रता प्राप्त करने मे सफल हुई।

प्रथम अवस्था—काग्रेस की स्थापना सन् १८८५ ई० मे ए ओ ह्यू म के हाथों हुई। इसे लार्ड डफरिन का समर्थन प्राप्त था और इसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के लिये सुरक्षा हेतु काम करना था। ह्यू म ने ईमानदारी से काग्रेस का सुरक्षा वाल्व कहा है। उसने लिखा 'हमारे अपने ही कार्यों से पैदा हुई महान शक्तियों के निवास के लिए एक सुन्दर वाल्व की आवश्यकता थी और यह कार्य काग्रेस से अधिक अच्छी तरह कोई भी नहीं कर सकता था।' स्थित बहुत उत्तेजनापूर्ण थी और काग्रेस का उद्देश्य था कि मन के उद्गारों

को निकालने का अवसर देकर भावुकता को शान्त किया जाय। कांग्रेस पर शिक्षित मध्य वर्ग का प्रभाव था और यह जनता की संस्था नहीं थी। सर फिरोजशाह मेहता ने स्पष्ट कहा है कि 'प्रारम्भिक काल में कांग्रेस सर्व साधारण की प्रतिनिधि नहीं थी किन्तु पढ़े-लिखे देशवासियों का यह कर्तव्य था कि सर्व साधारण की शिकायतों को अभिव्यक्त करते और उनको दूर करने के सुझाव प्रस्तुत करते।' कांग्रेस का यह चरित्र इसकी मांगों की नम्रता, प्रार्थना और अपील के इसके उपायों तथा ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति भक्ति भाव के बार-बार प्रदर्शन से स्पष्ट हो जाता है। प्रारम्भ में कांग्रेस स्वतंत्रता अथवा स्वराज्य का स्वप्न भी न लेती थी। वे केवल यह चाहते थे कि विधान मण्डलों में उनको प्रतिनिधित्व मिले और प्रशासन में भारतवासियों का अधिक हाथ हो। उन्होंने इसके लिए कभी कोई सार्वजनिक आन्दोलन प्रारम्भ करने का प्रयत्न नहीं किया। उनका कार्य प्रस्ताव पास करने प्रतिनिधि याचिकाएं भेजने और शिष्ट मण्डल ले जाने तक ही सीमित था। उनको अंग्रेजों की न्याय प्रियता पर पूर्ण विश्वास था। दादाभाई नौरोजी ने एक बार कहा 'हम हिन्दुस्तानी एक बात पर विश्वास रखते हैं वह यह है कि यद्यपि 'जानबुल' की बुद्धि कुछ मोटी है तो भी यदि उसके सिर में होकर कोई बात उसके मस्तिष्क में पहुँच जाय कि यह ठीक एवं उचित है तो विश्वास किया जा सकता है कि वह होकर ही रहेगी।' इनका संघर्ष पूर्णतः संवैधानिक था। 'वे विद्रोह, विदेशी आक्रमण की सहायता एवं अपराध' तीनों बातों से दूर थे। अतः सरकार की प्रवृत्ति भी इन लोगों के प्रति संरक्षण की थी। किन्तु यह नीति अधिक काल तक न रह सकी और सरकारी नीति में परिवर्तन हुआ क्योंकि अब कांग्रेस शनैः शनैः सरकार की आलोचना करने लगी थी।

उग्रनीतिवाद का उदय—सन् १८९२ ई० के वैधानिक सुधारों से कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को सन्तोष नहीं हुआ। अंग्रेजों की आर्थिक नीति, भारतीयों को उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर नियुक्त न करने की नीति, कर्जन की भारत विरोध नीति, १८९९ का कलकत्ता कारपोरेशन अधिनियम, भारतीय

विश्व विद्यालय अधिनियम, सहकारी गोपनीयता अधिनियम, बंगाल का विभाजन आदि ऐसे कार्य थे जिनके कारण देश भक्तों का विश्वास ब्रिटिश न्याय प्रियता से उठ गया, यह अनुभव किया जाने लगा कि अपील एवं प्रार्थनामात्र से लाभ नहीं हो सकता। मिश्र, ईरान और आयरलैण्ड की प्रगति तथा जापान के हाथों रूस की पराजय ने इन देश भक्तों को और भी प्रोत्साहन दिया अत उग्रनीति वादियों का जन्म हुआ। उग्रनीति के कर्णाधारों ने विदेशी वस्त्र के बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम पर अधिक बल दिया। सरकारी पद, उपाधि एवं सम्मान आदि का बहिष्कार किया गया। तिलक ने गणपति और शिवाजी जयन्ती मनानी शुरू की। लाजपतराय ने आर्य समाज का कार्य किया। लाला लाजपतराय ने उग्रवादियों की नीति स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की तथा कहा, "We desire to turn our faces from the Government House and turn them to the huts of the people. This is the psychology, this is the ethics, this is the spiritual significanc of the Boycott movement" उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि अंग्रेज भीख मांगने से घृणा करते हैं। हम भी भीख को घृणास्पद समझते हैं। अत यह हमारा कर्तव्य है कि हम यह प्रगट करें कि हम भिक्षा नहीं मांग रहे हैं।

कांग्रेस की द्वितीय अवस्था—इस काल में कांग्रेस में दो दल स्पष्ट रूप से पृथक हो गये। बूढ़े एवं जवान नेताओं में बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रश्न पर बड़ा विकट मतभेद पैदा हो गया और झगड़े का अन्त समझौते द्वारा हुआ। सन् १९०६ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ। तिलक ने स्वराज्य को अपना "जन्म सिद्ध अधिकार" बताया इसके साथ ही कांग्रेस ने स्वदेशी बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्ताव पास किये। परन्तु फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि नरम दल वाले नेता महसूस करने लगे कि कलकत्ते में उक्त प्रस्तावों को पास करके वे बहुत आगे बढ़ गये हैं जो उचित नहीं हैं और वे इन प्रस्तावों को बदलने की

कोशिश करने लगे। इसी बात पर अगले वर्ष (१९०७) सूरत के अधिवेशन में फूट हो गई और गरम दल वाले लोग कांग्रेस मे अलग हो गये। नरम दल का नेतृत्व गोखले ने तथा उग्र दल का नेतृत्व तिलक ने सँभाला। उग्र दल वाले ब्रिटिश सरकार की आलोचना करते थे और देश को ज्वलन्त भाषा मे आह्वान करते थे। वे केवल शिष्ट मण्डल ले जाने मे विश्वास नही रखते थे वरन् लडना भी चाहते थे। मच एवं प्रेस से उन्होंने चिनगारियाँ छोडी। इसके लिये तिलक लाजपतराय आदि अनेक उग्रदल वादी नेताओं को कारावास का दण्ड मिला।

क्रान्तिकारी कार्यवाहिया—राष्ट्रवादी आन्दोलन की इस अवस्था मे देश भर में क्रान्तिकारी कार्यवाहिया भी फैल गई। इसके प्रमुख केन्द्र बङ्गाल महाराष्ट्र एव पजाब थे। इन क्रान्तिकारियो में बारीन्द्रकुमार घोष, सरदार अजीतसिंह करतारसिंह और सावरकर के नाम प्रमुख हैं।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विकास—प्रारम्भ मे अंग्रेजो की नीति मुसलमानों के खिलाफ थी परन्तु भारतीय नवाभ्युत्थान द्वारा हिन्दुओं की प्रगति तीव्रगति से हो रही थी। अत अंग्रेजा ने अपनी नीति में परिवर्तन किया और अलीगढ आन्दोलन को सहायता प्रदान की। सर सैयद अहमद अलीगढ आन्दोलन के जन्मदाता थे। थ्योडर बेकर ने अलीगढ के मुस्लिम कालेज के प्रधान आचार्य पद द्वारा मुसलमानो को सगठित करने का कार्य किया। सैयद अहमद को प्रत्येक सम्भव सहायता दी गई। बेकर के उपरान्त अलीगढ कालेज के प्रधान आचार्य पद पर आर्चीबाल्ट की नियुक्ति हुई। मुसलमाना को पृथक प्रतिनिधित्व दिलाने का श्रेय इसी अंग्रेज को है। आर्चीबाल्ट की योजना अनुसार सर आगा खां के नेतृत्व मे एक मुसलमान प्रतिनिधि मण्डल लार्ड मिन्टो से मिला। लार्ड मिन्टो ने उस दिन को भारतीय इतिहास के महत्व का माना है। मुसलमाना को सन् १९०९ ई० के सुधारा के अन्तर्गत पृथक प्रतिनिधि का अधिकार मिला। इसका प्रभाव बडा बुरा हुआ। हिन्दुओं और मुसलमानो के मध्य एक खाई उत्पन्न हो गई।

होम रूल ग्रान्दोलन – सन् १९०६ में तिलक तथा मिसेज एनी बेसेन्ट ने होम रूल ग्रान्दोलन प्रारम्भ किया। ऐनी बेसेन्ट ने स्पष्ट शब्दों में लिखा "भारत अपने पुत्र पुत्रियों के रक्त और आंसुओं से सौदा नहीं करता कि इतने रक्त और इतने आंसुओं के बदले इतनी स्वतन्त्रता एवं अधिकार मिलेगा। भारत एक राष्ट्र के रूप में अपना अधिकार मांगता है जो इसे साम्राज्य के अन्तर्गत मिलना चाहिये। भारत युद्ध से पहले इसकी मांग करता था। युद्ध के दौरान इसकी मांग कर रहा है और युद्ध के पश्चात् भी इसकी मांग करेगा किन्तु इनाम के रूप मे नहीं अधिकार के रूप में।"

इन लोगो ने देश के अन्दर सक्रिय ग्रान्दोलन प्रारम्भ कर दिया। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट स्वयं यत्र तत्र सर्वत्र ज्वाला जलाती फिरती दिखाई देती थी। उनके दैनिक पत्र 'न्यू इन्डिया' और साप्ताहिक 'कामन वील' ने देश भर मे हलचल मचा दी। तिलक के 'मरहट्टा' और 'केसरी' ने भी इस कार्य में बहुत सहायता दी। सरकार ने घोर दमन किया। ऐनी बेसेन्ट और तिलक को कठोर कारावास का दण्ड मिला। यह ग्रान्दोलन सन् १९१७ के पश्चात् अधिक सफलता प्राप्त न कर सका।

हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रयत्न—टर्की के प्रतिमुसलमानों में श्रद्धा की भावना थी किन्तु प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजो ने टर्की के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं किया, फल स्वरूप भारतीय मुसलमान अंग्रेजों के विरुद्ध हो गये। अतः मुसलमानों ने अंग्रेजो के विरुद्ध ग्रान्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस समय तक जिन्ना ने मुस्लिम लीग पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था, सन् १९१६ ई० में लखनऊ में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के अधिवेशन हुए। लखनऊ कांग्रेस-मुस्लिम एक्ट हिन्दू-मुस्लिम एकता को अधिक स्थाई न बना सका एवं मृग मृष्णा के सदृश्य ही रहा।

सन् १९१९ ई० के सुधारों से भारतीय जनता को किसी प्रकार का सन्तोष नहीं हुआ। इसी समय रौलेट अधिनियम पास हुआ। यह प्रबल शस्त्र

ब्रिटिश सरकार ने भारत के आन्दोलन को दबाने के लिए अपनाया। इस अधिनियम के विरुद्ध गाधीजी ने सात्याग्रह करने का आदेश दिया। समस्त देश मे हडताल हुई। १३ अप्रेल सन् १९१९ ई० में अमृतसर मे जालियावाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ जिसमे जनरल डायर की गोलिया से ४०० स्त्री पुरुष मारे गये और २००० के लगभग घायल हुए। इसी समय देश का नेतृत्व गाधीजी के हाथ मे आया।

गाधी युग का आरम्भ असहयोग आन्दोलन— सन् १९२० मे टर्की के प्रति अग्रेजो की नीति के कारण भारत मे मुसलमानो ने खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ किया। मुसलमनो का सहयोग प्राप्त करने के लिये गाधीजी ने समस्त भारतीय जनता से इस आन्दोलन मे सहयोग देने का अनुरोध किया। इस वर्ष असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। देश मे हिन्दुओ और मुसलमानो के सहयोग से असहयोग और खिलाफत दोनो आन्दोलन महात्मा गाधी तथा अली बन्धु के नेतृत्व मे जोरो से चलने लगे। इसके अन्तर्गत कौन्सिला, न्यायालयो तथा विद्यालयो एव महाविद्यालयो का बहिष्कार किया गया। इस आन्दोलन का दमन सरकार ने कठोर नीति द्वारा करना प्रारम्भ किया किन्तु सन् १९२२ ई० मे चौरीचौरा नामक स्थान पर घटित हिंसात्मक कार्यों के कारण गाधीजी ने इस आन्दोलन को समाप्त कर दिया। इस आन्दोलन का प्रभाव ग्रामीण जनता पर पडा और राष्ट्रीय आन्दोलन की जडे मजबूत हो गई।

स्वराज्य पार्टी का उत्थान—काग्रेस ने सन १९१९ के सुधारों के अनुसार संगठित धारा सभाओं का बहिष्कार किया था। परन्तु काग्रेस में एक पक्ष धारा सभाओं में प्रवेश कर सरकार के कार्य म बाधा डालने के पक्ष में था, इस विषय पर वाद-विवाद हुआ और कांग्रेस ने धारा सभाओं में प्रवेश की नीति को स्वीकार कर लिया। इसके परिणामस्वरूप स्वराज्य पार्टी का प्रभुत्व बढ गया। सी आर. दास, मालवीयजी, मोती लाल नेहरू विट्ठल भाई पटेल आदि इस पार्टी के आधार स्तम्भ थे। इस पार्टी को चुनाव में भारी सफलता मिली। केन्द्रीय धारासभा में इन्होंने सरकारी कार्य में बाधा पहुँचाने का कार्य

किया। इन्होंने कितने ही बार वाक श्राउट किया, जिससे सर तेजबहादुर सप्रू ने इसको 'चलते फिरते वाक आउट करते हुये' कहना शुरू कर दिया। सन् १६२५ में श्री चितरंजनदास की मृत्यु हो जाने से स्वराज्य दल की शक्ति अत्यधिक निर्बल हो गई।

साइमन कमीशन— सन् १६२७ ई० में साइमन कमीशन आया। आयोग के सातो सदस्य अंग्रेज थे। समस्त देश में इस कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन किया गया और काली झंडियां दिखाई गई और 'साइमन वापस जाओ' के नारे लगाये गये। किन्तु आयोग ने सन् १६३० ई० तक अपना कार्य पूर्ण किया और इसी की रिपोर्ट को सन् १६३५ के एक्ट का आधार बनाया गया।

नेहरू रिपोर्ट—१६२८ में पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक सर्वदलीय सम्मेलन दिल्ली में हुआ। इसने भारत का विधान बनाया। इसके अनुसार औपनिवेशिक स्तर की मांग प्रस्तुत की गई। कलकत्ता अधिवेशन में ही कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य की मांग प्रस्तुत करना चाहती थी परन्तु गांधीजी ने हस्तक्षेप किया। गांधीजी ने स्पष्ट कहा कि यदि १६२६ के अन्त तक औपनिवेशिक स्तर भारत को प्राप्त नहीं हुआ तो वे स्वयं पूर्ण स्वराज्य के लिये आन्दोलन जारी कर देंगे। तत्कालीन गवर्नर जनरल ने भी यह स्वीकार किया कि भारत को औपनिवेशिक स्तर देना अंग्रेजों का लक्ष्य है किन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसको मन्जूर नहीं किया।

इसके पश्चात एक महान् आर्थिक संकट आया। भारत भी विश्वव्यापी मन्दी के फंदे में आ गया। सरकार की विभिन्न दमन कार्यवाहियों के कारण वातावरण में खिचाव और भी बढ़ गया। श्रमिकों में अशान्ति फैल रही थी और भारतीय अधिकारी एवं व्यापारी भी असन्तुष्ट थे।

इन्हीं परिस्थितियों के अन्दर जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में रावी के तट पर लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने अपना लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य घोषित

किया। यह भी तय किया गया कि प्रत्येक वर्ष २६ जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाय।

सविनय अविज्ञा आन्दोलन—१२ मार्च १६३० को ७६ शिक्षित कार्यकर्ताओ के साथ गाधीजी ने समुद्र तक २०० मील पैदल यात्रा की और नमक विधानों को भंग किया। इसको दण्डी मार्च कहा जाता है। इस असैनिक अवज्ञा भग आन्दोलन मे विदेशी कपडा जलाने, शराब तथा अफीम की दुकानो पर धरना देने, सरकारी नौकरियो से पद त्याग करने और सरकारी स्कूलो एव कालेजो को छोडने का कार्यक्रम निहित था। ४ मई को गाधीजी पकडे गये। जून १६३० तक भारतीय पूर्ण विद्रोही हो गये, दमन प्रारम्भ हुआ, काग्रेस अवैध घोषित करदी गई। अनगिनत व्यक्ति गोलियो की वर्षा से मारे गये एव ६०००० व्यक्ति जेलो मे भेजे गये। काग्रेस ने प्रथम गोल मेज सम्मेलन का बहिष्कार किया। जयकर तथा सप्रू के हस्तक्षेप के कारण गाधी-इर्विन पैक्ट १६३१ ई० मे हुआ। इसके परिणाम स्वरूप सरकार ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बन्दियो को मुक्त कर दिया, उनकी सम्पत्ति को लौटाया, नमक क्षेत्र के व्यक्ति को नमक के उत्पादन का अधिकार मिला। शान्तिपूर्ण धरने के अधिकार को सरकार ने स्वीकार किया। काग्रेस ने आन्दोलन को वापस लेने का वचन दिया और साथ ही द्वितीय गोल मेज सम्मेलन मे भाग लेने की सहमति दी।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन मे गाधीजी को कोई सफलता नही मिली। निराश हृदय से वे भारत लौटे। बम्बई मे उतरते ही उन्हे बन्दी बना लिया गया। काग्रेस कार्यकर्ताओ तथा नेताओ को जेलो मे डाल दिया गया। १७ अगस्त १६३२ ई० में रेम्सेमैक्डोनल्ड ने प्रसिद्ध सामुदायिक निर्णय दिया जिसे पूना पेक्ट से संशोधित किया गया। तृतीय गोलमेज सम्मेलन का काग्रेस ने बहिष्कार किया किन्तु १६३५ के एक्ट के अनुसार हुये चुनावो मे काग्रेस ने भाग लिया। सरकार का यह आश्वासन मिल जाने पर कि गवर्नर प्रान्तो के दैनिक शासन मे हस्तक्षेप नही करेंगे, कॉग्रेस ने प्रान्तो मे मन्त्रिमण्डल बनाये

परन्तु द्वितीय महायुद्ध मे भारतीयों की सम्मति प्राप्त किये बिना ही भारत को युद्ध म घसीटने के कारण काग्रेस मन्त्रिमण्डलो ने इस्तीफे दे दिये। सन् १६४० ई० मे लार्ड लिन्लिथगो ने केन्द्रीय कार्यकारिणी मे वृद्धि करने का प्रस्ताव रखा परन्तु काग्रेस ने स्वीकार नही किया। १६४० मे लाहौर अधिवेशन मे मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माग स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त की।

क्रिप्स मिशन—मार्च १६४२ ई० मे क्रिप्स भारत आये। इन्होने विश्व युद्ध की समाप्ति पर भारत का अपना विधान बनाने के अधिकार को स्वीकार किया। रक्षा विभाग के अतिरिक्त सभी विभागो पर भारतीयो को सत्ता हस्तान्तरित करने का आश्वासन दिया। परन्तु क्रिप्स का यह कहना कि 'या तो स्वीकार करो या अस्वीकार करो' ने काग्रेस की इच्छा होते हुये भी उसे स्वीकार न करने के लिये मजबूर होना पडा।

भारत छोडो आन्दोलन—क्रिप्स के जाने के पश्चात् काग्रेस ने ८ अगस्त, १६४२ ई० को महात्मा गाधी के नेतृत्व मे प्रसिद्ध 'भारत छोडो' प्रस्ताव पास किया। प्रस्ताव मे भारत को तुरन्त स्वतन्त्रता देने की माग की गई और अस्थायी सरकार की स्थापना का सुझाव दिया। प्रस्ताव मे गाधीजी को यह अधिकार भी दिया गया कि ब्रिटेन भारत को तत्काल स्वतन्त्रता देने से इन्कार कर दे तो वे अहिंसात्मक नियमो के अनुसार सार्वजनिक आन्दोलन प्रारम्भ कर दे। किन्तु सरकार ने काग्रेस को अधिकृत रूप से आन्दोलन प्रारम्भ करने का अवसर नही दिया। ६ अगस्त को प्रात गाधीजी एव काग्रेस के प्रसिद्ध नेता पकड लिये गये। जनता ने अपनी पूर्ण शक्ति भर सरकार के दमन को समाप्त करने का प्रयत्न किया। काग्रेस अवैध सस्था घोषित की गई और प्रत्येक स्थान पर काग्रेस कार्यालय जब्त कर लिये गये। जनता को आतंकित करने के लिये कई स्थानो पर लाठी चार्ज एव गोली वर्षा की गई। जनता जोश में आ गई और देश मे कई स्थानो पर हिंसात्मक प्रदर्शन हुये। सरकार ने दमन के सभी सम्भव उपाय प्रयोग म लिए। उन दिनो में जो कुछ हुआ उसका

वर्णन डा० पट्टाभि सीतारमैया ने इस प्रकार किया है "पूरे तीन वर्ष भारत नारकीय अवस्था मे रहा"। सरकारी आकडा क अनुसार २५० रेलवे स्टेशन, ५००० डाकखाने और १५० थाने क्रान्तिकारी देशभक्तो ने नष्ट कर दिये। श्रमिक हडतालें आये दिन होने लगी। जेल म महात्मा गाधी ने इस दमन के विरुद्ध १० फरवरी सन् १९४३ ई० को २१ दिन का उपवास किया। मुसल माना ने इस आन्दोलन मे भाग नही लिया। उन्होने पृथक पाकिस्तान की माग की। भारत के विभाजन के लिये मुस्लिम लीग की माग प्रबलतर होती गई। १९४५ तक यह अवस्था रही। १९४५ मे गाधीजी मुक्त कर दिये गये। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने सार रूप मे पाकिस्तान की माग स्वीकार की, परन्तु जिन्ना के कारण उन्हे सफलता नही मिली। वेवल का शिमला सम्मेलन भी जिन्ना के कारण असफल रहा।

केबिनिट मिशन–इग्लैण्ड की श्रम दलीय सरकार ने केबिनिट मिशन नियुक्त किया। उसने काग्रेस तथा लीग के मतभेदा को दूर करने का प्रयत्न किया तथा दोनो दला की माग का मध्यम मार्ग सुझाया। पहले मुस्लिम लीग ने इस योजना को स्वीकार किया तथा काग्रेस ने अस्वीकार, किन्तु जब काग्रेस ने इसे स्वीकार किया तो लीग ने अस्वीकार कर दिया।

तदुपरान्त १६ अगस्त १९४६ को लीग ने अपनी सीधी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। कलकत्ता का हत्याकाण्ड हुआ। दो सितम्बर १९४६ को प० नेहरू ने अन्तरिम सरकार मे प्रधान मन्त्री का पद ग्रहण किया। लीगी क्षेत्र मे क्रोध की ज्वाला भभक उठी। नोआखाली तथा बिहार मे प्रतिक्रियात्मक भीषण दंगे हुये। अन्तरिम सरकार असफल रही। लीग ने उसे समाप्त करने की तथा उसके कार्य में अडचन डालने की नीति अपनाई।

ता० २० फरवरी को इग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री एटली ने घोषणा की कि जून १९४८ तक अग्रेज भारत छोड देंगे। मार्च १९४७ मे लार्ड माउन्टबटन

गवर्नर जनरल बनकर आये, उन्होंने लीग तथा कांग्रेस के नेताओं से सम्पर्क स्थापित किया तथा यह परिणाम निकाला कि जितना शीघ्र देश का विभाजन हो जाय तो अच्छा है। उसने अपनी प्रसिद्ध ३ जून की योजना रखी, इसे कांग्रेस तथा लीग ने स्वीकार किया। कांग्रेस ने देश का विभाजन स्वीकार किया। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया, किन्तु स्वतन्त्रता के साथ-साथ देश का विभाजन भी हुआ।

राष्ट्रीय आन्दोलन का यह प्रसंग अपूर्ण ही रह जायगा यदि भगतसिंह, रासबिहारी बोस, ऊधमसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि क्रान्तिकारियों का उल्लेख न हो। इन क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों की किंचित भी चिन्ता नहीं की और भारत की आजादी के लिये पूर्ण प्रयत्न किया। इनकी हिंसात्मक नीति के कारण गांधीजी एवं कांग्रेस का सहयोग इन्हें नहीं मिला। यद्यपि इन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली तदपि प्रयत्न सराहनीय हैं।

इसी प्रकार आजाद हिन्द फौज एवं नेताजी को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता क्योंकि यह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की एक प्रमुख कड़ी है। अपने अमिट त्याग एवं साहस से नेताजी एवं हिन्द फौज ने भारत को अंग्रेजों के पंजे से मुक्त कराने के लिए जो प्रयत्न किये हैं वे स्मरणीय हैं एवं सदैव आजाद हिन्द सेना की कहानियाँ भारतीय क्षितिज पर अङ्कित रहेंगी।

प्रश्नावली

१. राष्ट्रीय जागृति के कारणों का उल्लेख कीजिए।
२. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास दीजिए। इस आन्दोलन में राष्ट्रपिता का स्थान निर्धारित कीजिए।
३. १९२० ई० से १९४७ ई० तक का कांग्रेस युग गाँधी युग क्यों कहलाता है?

४. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए —(१) स्वराज्य पार्टी, (२) साइमन कमीशन, (३) होम रूल ग्रान्दोलन, (४) भारत छोड़ो ग्रान्दोलन, (५) केबिनिट मिशन तथा (६) माउन्टबेटन योजना।

५. मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकास पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

६. भारतीय राष्ट्रीय ग्रान्दोलन की मुख्य विशेषताग्रों पर प्रकाश डालिए।

७. १८५६ से १६४७ तक के भारतीय राष्ट्रीय ग्रान्दोउन की प्रमुख विशेषताग्रों का वर्णन कीजिए। रा० वि० १६५६

१६ भारत में ब्रिटिश प्रशासन
(British Indian Administration)

"वायसराय तीन कार्य करता है। वह ताज का प्रतीक है, वह गृह शासन का प्रतिनिधित्व करता है, वह भारतीय प्रशासन का प्रमुख है।"

—रामसे मेक्डानल्ड

विषय प्रवेश—अंग्रेज १७ वीं सदी के प्रारम्भ में साहसी व्यापारियों के रूप में इस विशाल भारतवर्ष में आये और भारतीय शासकों की अकुशलता तथा भ्रष्टता के परिणामस्वरूप आगामी दो सौ वर्षों में भारत के स्वामी बन बैठे। इंग्लैण्ड के लिए भारतीय साम्राज्य 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' नामक एक व्यापारिक संस्था द्वारा जीता गया। कम्पनी वास्तव में कोई प्रभुत्व संपन्न निकाय नहीं थी और जब यह राजनीतिक शासन की जिम्मेदारी उठाने लगी तब ब्रिटिश संसद ने इसके कार्य में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया। कम्पनी केवल एक व्यापारिक संस्था थी अतएव वह ब्रिटिश संसद के बिना किसी प्रकार के मार्ग दर्शन अथवा नियन्त्रण के शासन प्रबन्ध करने के योग्य नहीं समझी गई। ब्रिटिश संसद ने १७७४ ई० और १८५८ ई० के मध्य कम्पनी के कार्य एवं भारत में उसके द्वारा स्थापित की जाने वाली सरकार का स्वरूप निश्चित करने की दृष्टि से कई अधिनियम बनाये। सन् १८५७ की राज्य क्रान्ति के बाद १८५८ ई० में कम्पनी समाप्त कर दी गई और ब्रिटिश ताज व संसद ने देश के शासन की सभी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। १९४७ तक भारत में ब्रिटिश शासन कायम रहा। ब्रिटिश संसद व ताज का भारत पर पूर्ण नियन्त्रण था तथा यह भारतवर्ष के लिए सार्वभौम शक्ति थी। भारतीय शासन के तीन मुख्य अङ्ग थे—

गृह सरकार, भारत की केंद्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार। भारत की केन्द्रीय सरकार व प्रांतीय सरकार पर नियन्त्रण रखने के लिए ब्रिटेन मे परिषद्-नात भारत सचिव होता था। भारत सचिव के कार्यालय को 'भारत कार्यालय' कहा जाता था जिसमे भारत सचिव के डिप्टी, सहायक, क्लर्क और लेखाधिकारी आदि शामिल थे। उनकी सख्या ३०० मे ऊपर थी। भारत की केन्द्रीय सरकार का उच्च अधिकारी गवर्नर जनरल था तथा प्रान्तो मे गवर्नर होते थे। शासन प्रबन्ध पूर्ण रूप से नौकरशाही के हाथ मे था। प्रान्त जिलो मे तथा जिले तहसीलो मे विभक्त थे। देशी रियासतो का सम्बन्ध ताज से था। देशी राज्यो मे अग्रेज रेजीडेन्ट रहते थे। भारतीय प्रशासन ब्रिटिश ससद द्वारा निर्मित अधिनियमो के अन्तर्गत था। इन अधिनियमो की सक्षिप्त रूपरेखा निम्न प्रकार है--

१८५८ का अधिनियम--१८५८ ई० मे ब्रिटिश ससद ने एक अधिनियम बनाया। अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय शासन की बागडोर कम्पनी से लेकर ताज को दे दी गई। नियन्त्रण बोर्ड और कोर्ट आफ डाइरैक्टर्स के सब अधिकार भारत सचिव को प्रदान किये गये। भारत सचिव का वेतन भारतीय राजस्व से दिये जाने की व्यवस्था की गई। एक भारत परिषद की स्थापना हुई, जिसमें १५ सदस्य होते थे। उनमे से सात सदस्यो को कोर्ट आफ डाइरैक्टर्स चुनता था और शेष आठ को ताज मनोनीत करता था। कम से कम उनमे आधे वह व्यक्ति होते थे, जो भारत मे कम से कम दस वर्ष रह चुके हो और जिनको नियुक्ति के समय भारत छोडे १० वर्ष से अधिक नही हुए हो। सदस्यो का व्यवहार जब तक अच्छा रहता, वह पदासीन रहता था। प्रत्येक सदस्य को भारतीय राजस्व से प्रति वर्ष १२०० पौंड वेतन मिलता था। भारत-सचिव भारत परिषद् का प्रधान होता था। उसको मत देने का अधिकार था तथा मत के सन्तुलन पर निर्णायक मत देने का भी अधिकार था। भारत सचिव को कार्य की सुविधा के लिए परिषद् को समितियों मे बाटने का अधिकार था। भारत सचिव परिषद के मत की अवहेलना कर सकता था किन्तु इसके लिए

उसे कारण स्पष्ट करना पड़ता था। भारतीय राजस्व में से व्यय तथा स्वीकृत राशि के मामलों में उसे भारत परिषद के बहुमत के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार न था। भारत में अधिकारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में संरक्षण और अधिकार के विभाजन तथा वितरण, भारत सरकार के लिए ठेके करने क्रय और विक्रय करने और भारत सरकार की संपत्ति तथा वास्तविक और निजी जागीर से संबंधित निर्णय करते समय बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत की सहमति आवश्यक थी। कम्पनी की भू-सेना व नौसेना ताज की सेनाओं में मिला दी गई। भारत में नियुक्तियों का संरक्षण भारत सरकार और परिषद्-गत भारत सचिव में बाँट दिया गया। परिषद्-गत भारत सचिव के लिए प्रति वर्ष संसद के समक्ष भारत की आर्थिक स्थिति और गत वर्ष के भौतिक प्रगति का प्रतिवेदन रखना आवश्यक कर दिया गया। गवर्नर जनरल के लिए प्रत्येक कार्य में भारत सचिव के आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। गवर्नर जनरल को वायसराय का नाम दिया गया। भारत सचिव को गवर्नर जनरल से गुप्त सन्देश मंगवाने और भेजने का अधिकार दिया गया। यह पत्र और सन्देश 'भारत-परिषद' के सम्मुख रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

१८६१ का अधिनियम—केंद्रीय सरकार— भारत के गवर्नर जनरल और वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में पांचवां सदस्य और बढ़ा दिया गया। वायसराय को परिषद के सदस्यों को विभागों के कार्य सौंपने का अधिकार दे दिया गया। उसे सरकारी कार्यों के संचालन के लिए नियमों, उपनियमों और विनियमों को बनाने का अधिकार दिया गया। परिषद् में कम से कम छः और अधिक से अधिक १२ सदस्यों को बढ़ाने की व्यवस्था की गई। गवर्नर जनरल इन सदस्यों को मनोनीत करता था। परिषद के आधे सदस्य गैर सरकारी होते थे। उनकी कार्यावधि दो वर्ष की रखी गई। विधान परिषद् का कार्य केवल वैधानिक था। सार्वजनिक उत्सव धर्म, वित्त, रक्षा और विदेशी सम्बन्ध आदि विषयों पर सोच विचार करने के लिए परिषद् को गवर्नर

जनरल की पूर्व सम्मति व अनुमति लेना आवश्यक था। विधान परिषद द्वारा पास किये गये प्रत्येक अधिनियम के लिए गवर्नर जनरल की अनुमति आवश्यक थी। गवर्नर जनरल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार दे दिया गया था जो छ माह तक लागू रह सकते थे।

प्रान्तीय सरकार—बम्बई एव मद्रास की परिषदो का आकार बढ़ा दिया और बगाल, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा पंजाब मे भी ऐसी परिषदें स्थापित करने की व्यवस्था कर दी। इनकी कार्यवाही भी केंद्रीय परिषद् की भांति सीमित थी। साधारणतया केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयो में कोई भेद नही पाया जाता था, परन्तु सर्वजनिक ऋण, वित्त, धर्म और डाक तार-सबन्धी कार्यों पर केन्द्रीय सरकार का एकमात्र अधिकार था।

१८६२ का भारत कौंसिल अधिनियम—प्रातीय परिषदो को विस्तृत कर दिया और उन्हें बजट पर विवेचना करने तथा प्रशासकीय प्रश्न पूछने का अधिकार दे दिया यद्यपि उन्हें मतदान का अधिकार नही था। गवर्नर जनरल की परिषद को ऐसा कोई अधिकार नही दिया गया था। प्रातीय परिषदो में गैर सरकारी सीटो की सख्या बढा कर इसने भारतीय प्रशासन में चुनाव का सिद्धान्त लागू किया। स्थानीय सस्थायें और अन्य दिलचस्पी रखने वाली संस्थाओ की ओर से सुझाव देने की व्यवस्था भी थी।

१६०६ का अधिनियम—इस अधिनियम के द्वारा प्रातीय और केन्द्रीय विधान परिषद का आकार विस्तृत कर दिया। केन्द्रीय कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यो की सख्या अधिक से अधिक ६० और प्रातीय परिषदो की ५० तक बढ़ा दी। पजाब, बर्मा, आसाम मे विधान सभा के सदस्यो की सख्या ३० तक ही रखी गई। प्रत्येक परिषद में सरकारी तथा गैर सरकारी सदस्य होते थे। अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय विधान परिषद मे सरकारी बहुमत बनाये रखने की व्यवस्था थी। इसमें ३७ सरकारी सदस्य और ३२ गैर सरकारी सदस्य होते थे। सरकारी सदस्यो में से २८ को गवर्नर जनरल मनोनीत करता था

और शेष ६ सदस्य जिसमें गवर्नर जनरल भी होता था पदेन सदस्य होते थे। गैरसरकारी सदस्यों में ५ मनोनीत होते थे, जबकि शेष का चुनाव होता था प्रांतों में सरकारी अधिकारियों के बहुमत का व्यवधान नहीं था, फिर भी यह ऐसे होते थे कि सरकारी और गैर मनोनीत सरकारी अधिकारी मिलकर निर्वाचित सरकारी और गैर सरकारी अधिकारियों से अधिक होते थे। परिषदों के लिए चुनाव वर्गों के आधार पर होता था। मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया गया। विधान परिषदों के कार्य पर्याप्त रूप से बढ़ा दिये गये। केन्द्रीय परिषद में बजट पर बहस के लिए अधिकार दिया गया व एक विस्तृत नियमावली बनाई गई। सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार दे दिया गया। पूरक प्रश्न का अधिकार भी मिला। सरकार को सुझाव देने के लिए प्रस्ताव रखने की भी अनुमति दे दी गई। प्रांतीय विधान परिषदों ने भी इसी विधि का अनुसरण किया, इस अधिनियम ने बम्बई, बंगाल और मद्रास की कार्यकारी परिषदों में सदस्यों की संख्या चार करदी।

१९०९ के सुधारों से भारतीय जनता का कोई वर्ग सन्तुष्ट नहीं हुआ। प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ हो जाने से ब्रिटिश सरकार ने भारत की जनता को प्रसन्न करने के लिए भारत में ब्रिटिश नीति व उद्देश्य के सम्बन्ध में एक घोषणा करना उपयुक्त समझा। ता० २० अगस्त १९१७ को तत्कालीन भारत सचिव मिस्टर माण्टेग्यू ने यह घोषणा की कि 'भारतीयों को शासन की प्रत्येक शाखा के सम्पर्क में अधिकाधिक लाया जाय और भारत में उत्तरोत्तर उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की स्थापना की दृष्टि से स्व-शासकीय संस्थाओं का क्रमश विकास किया जाय ताकि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अविच्छिन्न अङ्ग बना रहे। ... इस नीति का विकास केवल क्रमिक अवस्थाओं को प्राप्त करते हुए ही किया जा सकता है।' इस घोषणा के कुछ काल के पश्चात ही श्री माण्टेग्यू भारतीय नेताओं से राजनैतिक चर्चायें करने के लिए व्यक्तिशः भारत पधारे। एक वर्षोपरान्त ब्रिटिश संसद ने १९१९ का अधिनियम पास किया ज 'माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड' सुधार के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१६१६ का अधिनियम —इस अधिनियम के अनुसार निम्न परिवर्तन किए गये।

गृह सरकार—इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय सरकारो के अतिरिक्त और महत्वपूर्ण परिवर्तन नही किये गये थे। अत. गृह सरकार के ढाचे मे बहुत कम परिवर्तन हुए। भारत सचिव का वेतन ब्रिटिश राजस्व में से देने की व्यवस्था की गई। भारत परिषद् के सदस्यो की सख्या अधिक से अधिक १५ से घटा कर १२ और कम से कम १० मे घटा कर ८ करदी गई। इसमें आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए थे जो अपनी नियुक्ति के पूर्व भारत में १० साल रह चुके हो या नौकरी कर चुके हो। परिषद् के सदस्यो की कार्यावधि घटा कर ५ वर्ष करदी गई। भारत सचिव और परिषद के निरीक्षण, निर्देशन तथा नियन्त्रण करने में अधिकारों को सीमित तथा नियमित करने के लिए नियम बनाने की व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था के द्वारा भारत-सचिव का प्रान्तो में हस्तातरित विषयो पर नियन्त्रण कम हो गया, यद्यपि उसे केन्द्रीय प्रशासन की सुरक्षा पर नियन्त्रण रखने, प्रान्तो के परस्पर अनिर्णित झगड़े निपटाने, निष्पक्ष हितों की सुरक्षा करने, भारत और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों के बीच उठे हुए प्रश्नो को सुलझाने और संसद द्वारा उसको दिए गये अधिकारो का प्रयोग करने का अधिकार था। वित्तीय मामलो मे उसका नियन्त्रण वित्तीय स्वायत्तताकी प्रथा के अन्तर्गत जारी रहा, जिसमें यह निश्चित किया गया था कि जब कभी भारत सरकार तथा केंद्रीय विधान मण्डल किसी वित्तीय मामलों पर सहमत हो जाय तो भारत सचिव उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। इस अधिनियम द्वारा गृह क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन था—परिषद-का ताज द्वारा प्रधान लेखा परीक्षक व हाईकमिश्नर की नियुक्ति। हाई कमिश्नर का कार्य राजनैतिक न होकर एक एजेंसी काय था। ब्रिटेन मे भारतीय विद्यार्थियो की देख-भाल करना, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व करना, भारत सरकार के लिए ब्रिटेन में सामान खरीदना आदि इसके प्रमुख कार्य रखे गये थे।

प्रान्तीय क्षेत्र में परिवर्तन— गवर्नरों के प्रान्त १९१६ के अधिनियम के पूर्व अंग्रेजी भारत १५ प्रांतों में विभक्त था, जिनमें तीन परिषद-गत गवर्नर के, चार लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के और आठ चीफ कमिश्नर के अधीन थे। इस अधिनियम से ५ और अन्य प्रान्तों को परिषद-गत गवर्नर का प्रांत बना दिया गया। इस प्रकार गवर्नरों के प्रांत की संख्या आठ हो गई। गवर्नर के अधीन जो पांच प्रांत बने उनके नाम थे— संयुक्त प्रांत, पंजाब, मध्य प्रान्त, बिहार एवं आसाम।

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों का विभाजन— १९१९ के अधिनियम के अन्तर्गत भारत के कार्यों को केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों में विभक्त कर दिया गया। परिषद-गत गवर्नर जनरल को रक्षित विभागों के प्रशासन पर निरीक्षण करने का अधिकार दे दिया गया। हस्तांतरित विषयों के प्रबन्ध पर उसके अधिकार कुछ कम कर दिये गये। रक्षा, यातायात, विदेशी सम्बन्ध केंद्रीय सरकार के पास रहे।

प्रान्तों में द्वैध शासन का आरम्भ—१९१९ के अधिनियम के अन्तर्गत द्वैध प्रणाली प्रचलित की गई। इस प्रणाली के अनुसार प्रांतीय सरकार के कार्य को दो भागों में विभक्त किया गया—(१) हस्तांतरित, जो सार्वजनिक नियन्त्रण में रखे गये और (२) रक्षित, जो अधिकारियों के नियन्त्रण में रखे गये। प्रथम का प्रबन्ध गवर्नर अपने मंत्रियों की सहायता से करता था और रक्षित विषयों का कार्य वह कार्यकारी परिषद की सहायता से करता था। वित्त कानून तथा व्यवस्था रक्षित विषय रखे गये। स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य सफाई तथा चिकित्सा आदि हस्तांतरित विषय रखे गये।

प्रांतीय विधान मण्डल पर्याप्त विस्तृत किये गये और मताधिकार का भी विस्तार हुआ। प्रांतीय विधान सभाओं को प्रांतीय बजट तथा हस्तांतरित विभागों पर नियन्त्रण रखने का अधिकार दे दिया गया। अधिनियम के लागू

होने के प्रथम चार वर्ष पश्चात् प्रांतीय परिषदों को अपने अध्यक्ष स्वयं चुनने का अधिकार था।

प्रत्येक प्रांत की एक वैधानिक सस्था होती थी और हर प्रांतीय परिषद की कार्यवधि तीन वर्ष निश्चित थी। गवर्नर को उसे समय से पूर्व भंग करने, अथवा अवधि बढाने का अधिकार था। मन्त्री प्रांतीय धारासभा के प्रति उत्तरदायी होते थे। गवर्नर के हस्ताक्षर बिना कोई बिल नियम नहीं बन सकता था। नगरपालिका व जिला बोर्डों के अधिकारों में वृद्धि करदी गई तथा उनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढा दी गई।

केन्द्र में परिवर्तन—भारतीय विधान मण्डल के दो सदन थे। एक तो राज्यपरिषद, जिसमें अधिक से अधिक ६० सदस्य होते थे। इनमें २० सरकारी अधिकारी और ३३ निर्वाचित सदस्य होते थे। विधान सभा के सदस्यों की कुल सख्या १४० होती थी, जिसमें १०० निर्वाचित होते थे। प्रधान निर्वाचित करने का अधिकार सभा को दे दिया गया था, परन्तु अधिनियम के लागू होने के प्रथम चार वर्ष पश्चात् ही वह इस अधिकार का प्रयोग कर सकती थी। राज्य परिषद् की साधारण कार्यावधि पांच साल थी तथा विधान सभाकी कार्यावधि तीन वर्ष थी। गवर्नर जनरल को किसी भी विशेष परिस्थिति में किसी भी सदन को समय से पूर्व भंग करने अथवा अवधि बढ़ाने का अधिकार था।

इस अधिनियम से गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद की रचना में भी कुछ परिवर्तन हुए। सदस्यों की संख्या की सवैधानिक सीमा समाप्त कर दी गई और यह व्यवस्था की गई कि तीन सदस्य सरकारी कर्मचारी होने चाहिए। कानून सदस्य उच्च न्यायालय का एडवोकेट अथवा बैरिस्टर होना चाहिए। साधारण तथा असाधारण का भेद मिटा दिया गया। प्रधान सेनापति को रक्षा विभाग सौंपा गया। सदस्यों की नियुक्ति ब्रिटिश ताज भारत सचिव की सिफारिश पर ५ वर्ष के लिए करता था। गवर्नर जनरल के अधिकार

अपरिमित थे। उसके प्रशासकीय अधिकार अनेक थे। वह बहुत सी नियुक्तियां करता था, कार्यकारी परिषद की बैठको की अध्यक्षता करता था तथा कार्यकारी परिषद को निर्णयों को रद्द कर सकता था। समस्त प्रशासन यन्त्र पर उसका नियन्त्रण था। उसको बहुत से वैधानिक अधिकार थे। वह केन्द्रीय विधान मण्डल को आमन्त्रित, स्थगित और विघटित कर सकता था। कुछ महत्वपूर्ण विषयो पर विधेयक उसकी आज्ञा के बिना प्रस्तुत नही किये जा सकते थे। वह विधान मण्डल में विधेयको पर बहस को रोक सकता था, अध्यादेश जारी कर सकता था, विधान सभा द्वारा अस्वीकृत विधेयक को स्वीकार कर सकता था, तथा विधान सभा द्वारा पास किये विधेयक को अस्वीकृत भी कर सकता था। बजट के ८०% भाग को वह स्वीकृत करता था क्योंकि इस पर वोट नहीं होता था। जिन मदो पर बहस हो सकती है, उनको लौटाने का अधिकार भी उसे था। संक्षेप में गवर्नर जनरल स्वेच्छाचारी शासक था तथा भारत में ब्रिटिश शासन यन्त्र की धुरी था। उसे २,५६००० रुपया वार्षिक वेतन तथा इतना ही वार्षिक भत्ता आदि मिलता था।

उपरोक्त सुधारो के अतिरिक्त १९१९ के अधिनियम में भारत में एक लोक सेवा आयोग स्थापित करने की व्यवस्था थी जिसका कार्य सार्वजनिक सेवाओ में भरती और नियन्त्रण के सम्बन्ध में भारत सचिव की आज्ञाओ को कार्यान्वित करना था।

उपरोक्त सुधारों से भारतीय जनता को किसी प्रकार का सन्तोष न हुआ। प्रान्तो में द्वैध शासन सफल नहीं हुआ क्योंकि इसका प्रचलन केवल भारतीयों की आखों में धूल डालने का शरारत पूर्ण प्रयास था। एनीबेसेन्ट ने तो यहां तक कहा कि " It is ungenorous for the Btitisher to offer and it is unworthy for India to accept " कांग्रेस के विरोध के फलस्वरूप अंग्रेजो को बाध्य होकर १९३५ का एक्ट पास करना पड़ा।

१६३५ के अधिनियम के अनुसार भारत की शासन व्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तन किये गये —

बर्मा को भारत से राजनैतिक दृष्टि से पृथक करने की व्यवस्था की गई। उडीसा और सिन्ध नामक दो प्रान्त बनाये गये। गवर्नर के ११ प्रान्त बनाये गये। मद्रास, बम्बई, बगाल, सयुक्त प्रान्त, बिहार और आसाम मे दो दो वैधानिक सदन बनाये गये। उच्च सदन का नाम विधान परिषद तथा निम्न सदन का नाम विधान सभा रखा गया। पजाब, मध्य प्रान्त और बरार, उडीसा, सिन्ध और उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्तो मे एक एक ही सदन की व्यवस्था थी जिसको विधान सभा कहा जाता था। गवर्नर का केवल विधान परिषद् मे कुछ सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। विधान सभा के सभी सदस्य निर्वाचित होते थे। विधान परिषद् एक स्थाई सभा था किन्तु उसके एक तिहाई सदस्य हर तीसरे वर्ष कार्यमुक्त होते थे। विधान सभा की कार्यावधि ५ वर्ष थी प्रान्तो में द्वैध शासन समाप्त कर दिया गया। प्रान्तो मे न कोई रक्षित विषय था और न कार्यकारी परिषदें ही। सभी प्रान्तीय विषयो की व्यवस्था के लिए एक मन्त्री परिषद थी। मन्त्री प्रान्तीय विधान मण्डल के निर्वाचित सदस्यो मे से चुने जाते थे और सामूहिक उत्तरदायित्व रखते थे। जहा तक प्रान्तीय विषयो का सम्बन्ध था, प्रान्तीय सरकारें स्वशासी बनादी गई थी। द्वैध शासन का स्थान स्वशासन ने ले लिया। मताधिकार अधिक लोगो को दे दिया गया और विधान मण्डलो में स्त्रियो को विशेष स्थान दिए गए। इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय सरकार में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का प्रयास किया गया—भारत मे सघीय व्यवस्था स्थापित करने का सुझाव दिया गया। अखिल भारतीय सघ मे अ ग्रेजी भारत के प्रान्त और देशी भारत की रियासतें शामिल होनी थी। सघीय विधान मण्डल के दो सदन थे—सघीय सभा—निम्न सदन और राज्य परिषद-उच्च सदन। राज्य परिषद मे २६० सदस्य थे, जिनमें से १०४ सदस्यो को रियासतो के शासक चुनते थे। शेष मे मे १५० सदस्य गवर्नर तथा चीफ कमिश्नरो के प्रान्तो से निर्वाचित होते थे। ६ सदस्यो को गव-

नर जनरल अपने विवेक पर मनोनीत करता था। वह एक स्थायी समिति थी, जो भग नहीं की जा सकती थी इसके सदस्य ६ वर्ष के लिए चुने जाते थे, जिनमे से एक तिहाई हर तीसरे वर्ष कार्य मुक्त होते थे। संघीय सभा मे ३७५ सदस्य होते थे, जिनमे से २५० सदस्य प्रान्तों जो भारत का प्रतिनिधित्व करते थे और १२५ रियासतों के शासको द्वारा मनोनीत होते थे। इसकी कार्यावधि ५ साल थी। रेलवे प्रशासन के लिए एक संघीय रेलवे अधिकार स्थापित किया गया। संघ से सम्बन्धित विवादास्पद बातों के निर्णय के लिए भारत का संघीय न्यायालय स्थापित किया गया।

१९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर जनरल—१९३५ के अधिनियम ने गवर्नर जनरल की निरकुशता को अछूता छोड दिया। गवर्नर जनरल को एक कार्य दिया गया कि वह भारतीय रियासतो के सम्बन्ध मे हिज मैजेस्टी की सरकार का प्रतिनिधित्व करे। प्रान्तो मे द्वैध शासन हटा कर वह केन्द्र मे स्थापित कर दिया गया। रक्षा, विदेशी मामले, धार्मिक मामले तथा कबाइली क्षेत्रो के व्यवस्था-सम्बन्धी कुछ विषय गवर्नर जनरल के एकाधिपत्य मे दे दिये गये। इनका प्रबन्ध उसे अपने द्वारा मनोनीत किए हुए कुछ परिषद के सदस्यो की सहायता से करना था। अन्य संघीय विषय गवर्नर जनरल तथा मन्त्री परिषद के हाथो मे सौंप दिये गये। बहुत से मामलो मे गवर्नर जनरल अपने निर्णय और विवेक से काम ले सकता था। स्वविवेक करते समय उसे मन्त्रियो से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं थी। ऐसे विषयो की सख्या बहुत थी जिनमे से कुछ प्रमुख हैं--(१) रक्षा, विदेशी मामलो, धार्मिक मामलो तथा कबाइली क्षेत्रो की व्यवस्था विषयक रक्षित विभागो का संचालन करना (२) अपने कार्य मे सहायता के लिए तीन सदस्यो की एक परिषद नियुक्त करना (३) मन्त्री परिषद को चुनना, बुलाना और उसे भङ्ग करना था (४) संघीय विधान मण्डल मे भाषण देना। (५) संघीय सभा को बुलाना, प्रारम्भ करना तथा विघटित करना और दोनो सदनो का संयुक्त अधिवेशन बुलाना था। (६) भारत काल में वह अध्यादेश जारी कर सकता था। उसको 'गवर्नर

जनरल अधिनियम' जारी करने का अधिकार दिया गया था, किन्तु यह अधि-नियम भारत-सचिव के सम्मुख प्रस्तुत करने पड़ते थे। (७) वह आपत काल घोषित करके संविधान को स्थगित कर सकता था और अतिरिक्त अधिकार को अपने हाथ मे ले सकता था। (८) वह विधान मण्डल के अन्दर किसी विधान पर विचार रोक सकता था। कुछ अवस्थाओं में संघीय और प्रान्तीय विधान मण्डल मे विधेयक प्रस्तुत करने से पूर्व उसकी पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य होता था। (६) वह प्रान्तीय गवर्नरो को आदेश जारी कर सकता था, जिनका कर्त्तव्य था कि वे उनका पालन करे। (१०) संघीय बजट के जिस भाग पर मत नही लिया जाता था, उसका नियन्त्रण उसके हाथ मे था। यह कुल व्यय का ८०% था। गवर्नर जनरल को कई बार व्यक्तिगत निर्णय पर चलना पड़ता था ऐसा करते समय वह मन्त्रियो से परामर्श तो लेता था किन्तु उनके परामर्श से आबद्ध नही था। व्यक्तिगत निर्णय पर उसे जो महत्वपूर्ण कार्य करना होता था, वह उसके विशेष उत्तरदायित्व थे, जो निम्नलिखित हैं—(१) भारत अथवा इसके किसी भाग पर शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरे को रोकना (२) संघीय सरकार की वित्तीय स्थिरता और ऋणों की रक्षा करना। (३) अल्प सख्यका के उचित अधिकारो की रक्षा करना। (४) सरकारी सेवाओं के उचित अधिकारो की रक्षा। (५) कार्य कारिणी कार्यवाहियो द्वारा भेद भाव विरोधी उपबन्धो को लागू करना। (६) ब्रिटेन अथवा बर्मा से मगवाये जाने वाले माल के विरुद्ध भेद भाव को रोकना। (७) भारतीय रियासतो के अधि-कारो और उनके शासकों के अधिकारो और प्रभाव की रक्षा करना तथा (८) अपनी विवेक बुद्धि से करने वाले कार्यों के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था करना।

प्रान्तीय गवर्नर—१६३५ ई० के भारत सरकार अधिनियम के अन्त र्गत गवर्नर के अधिकार तीन श्रेणियों मे बाँटे जा सकते हैं। (१) अपने विवेक के अनुसार (२) व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार (३) विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार। इन तीनो श्रेणियो में शासन से सम्बन्धित कोई भी विषय आ सकता था, वहाँ उसे मन्त्रियो के साथ

परामर्श आवश्यक नहीं था, वह अपने आप निर्णय करके लागू कर सकता था। गवर्नर के इस अधिकार की वजह से प्रांतीय स्वायत्तता में कमी आ गई थी क्योंकि प्रान्तीय शासन-व्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण विषय इस व्यवस्था के अन्तर्गत रखे गये थे। जिन मामलों में गवर्नर को अपने व्यक्तिगत निर्णयानुसार काम करना होता था, उनमें उसका मन्त्रियों से परामर्श करना अपेक्षित था। किन्तु गवर्नर इस परामर्श से आबद्ध नहीं होता था, प्रत्युत उनके सर्वथा विपरीत भी कार्य कर सकता था। व्यक्तिगत निर्णय पर उसने महत्वपूर्ण कार्य करना होता था, वह उसके विशेष उत्तरदायित्व थे जो निम्नलिखित हैं—(१) अपने प्रान्त में शान्ति और व्यवस्था के लिए किसी खतरे को रोकना, (२) अल्पमतों के उचित हितों की रक्षा करना, (३) सार्वजनिक सेवाओं के अधिकारों और हितों का संरक्षण, (४) ब्रिटिश प्रजा के साथ भेद भाव रोकना, (५) विशेष तौर से अलग किये गए क्षेत्रों में शान्ति और सुशासन की रक्षा, (६) राज्यों के अधिकारों तथा राजाओं के प्रभाव की रक्षा, (७) गवर्नर जनरल द्वारा अपने विवेकानुसार जारी की गई आज्ञाओं का वैधानिक पालन करवाना। तीसरी श्रेणी में वह विषय आते हैं, जिनके लिए गवर्नर को मन्त्रियों का अनुसरण करना होता था। मन्त्री विधान मण्डल के सदस्य होते थे और उसके प्रति उत्तरदायी भी। प्रान्तीय स्वायत्तता की अन्तिम सीमा यही था। गवर्नर को स्पष्ट आदेश थे कि जितने ऐसे विषय जो गवर्नर के विवेकात्मक अधिकारों के क्षेत्र में नहीं आते हैं उन सब पर उसे मन्त्रियों के परामर्श का अनुसरण करना होगा। किन्तु यह अनुसरण उसके विशेष उत्तरदायित्वों के विपरीत नहीं होने चाहिए। उसको कितने ही प्रशासकीय अधिकार थे। राज्यकी सेवाओं के कर्मचारियों, जिला न्यायाधीशों लोक सेवा-आयोग के सदस्यों और प्रधान तथा अपने कार्यालय के कर्मचारियों की नियुक्ति, तबदीली, वेतन आदि पर नियंत्रण उसके हाथ में था। संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर अधिनियम की धारा ९३ के अनुसार गवर्नर प्रान्त का शासन अपने हाथ में ले सकता था जो ६ माह तक कार्यान्वित रहता था। इसकी अधिकतम कार्यावधि ३ वर्ष तक हो सकती थी।

गवर्नर, गवर्नर जनरल की अनुमति से अधिनियम और घोषणायें जारी करता था। उसको कितने ही वैधानिक अधिकार थे। वह दोनो सदनो का आमन्त्रित और स्थगित कर सकता था और दोनो मे भाषण दे सकता था। निम्न सदन को विघटित कर सकता था। प्रत्येक अधिनियम पर उसकी स्वीकृति अनिवार्य थी और वह जिसको चाहे वीटो कर सकता था। उसको मन्त्रिया के परामर्श से अथवा अपने विवेक और व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार गवर्नर अधिनियम के रूप मे स्थाई विधान निर्माण का अधिकार था जो लोकतन्त्र मे नई बात थी। उसको कितने ही वित्तीय अधिकार प्राप्त थे। वह बजट तैयार करवा कर विधान मण्डल मे प्रस्तुत करवाता था। इसकी मदो को मताधीन और मतमुक्त श्रेणियो मे विभाजित करवाता था। उसे बहाली का अधिकार प्राप्त था। इस प्रकार हम देखते हैं कि १९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर को असीमित अधिकार प्रदान किये गये थे। प्रान्ता मे स्वायत्तता का कोई मूल्य नही रह गया था। लोकप्रिय मन्त्रिया के होते हुए भी गवर्नर को विस्तृत अधिकार वास्तविक जनतन्त्र के विपरीत थे।

१९३५ के पूर्व प्रान्त केवल भारत सरकार की एक एजन्सी के समान थे। नए अधिनियम ने इन प्रान्तों को एक नई स्थिति प्रदान की। अब प्रान्तो को वैधानिक, वित्तीय तथा शासन सम्बन्धी अधिकारा के लिए केन्द्र के सामने हाथ नही फैलाना पडता था बल्कि प्रान्तो के अधिकारा की व्यवस्था एक्ट मे की गई थी, जिसमे केन्द्रीय सरकार के अधिकारा का भी वर्णन किया गया था। १९३५ के एक्ट मे प्रान्तीय विधान मण्डल तथा कार्य कारिणी के कार्यों तथा अधिकारा की व्यवस्था अलग अलग की गई। यद्यपि प्रान्तीय स्वायत्त शासन मे इससे पर्याप्त प्रगति हुई किन्तु इस मे प्रतिबन्धी भी थे। प्रान्तीय और संघीय विधान म विरोध होने पर संघीय विधान की महत्ता रहती थी। कुछ नियमा के लिए गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति अनिवार्य थी। सभी गवर्नर से सम्बन्धित अधिनियमा पर गवर्नर जनरल का पूर्ण नियन्त्रण था। प्रान्ता को केन्द्र से प्राप्त निर्देशो के अनुसार चलना पडता था और गवर्नर जनरल के शान्ति और

सुरक्षा-विषयक आदेशों का भी पालन करना पड़ता था। केन्द्र को प्रान्तीय सूची में वर्णित विषयों पर विधान बनाने का अधिकार था तथा इनको कार्यान्वित भी केन्द्र के अधिकारियों द्वारा करवाया जा सकता था।

१९३५ के गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया ऐक्ट का प्रान्तीय भाग १ अप्रैल १९३७ को लागू किया गया। नए मताधिकार के आधार पर किए गये सामान्य चुनावों में कांग्रेस दल के ११ प्रान्तों में से ६ में बहुमत पैदा हुआ। कांग्रेस दल ने उस समय ६ प्रान्तों में और बाद में आठ प्रान्तों में (बम्बई, मद्रास, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, आसाम, उत्तर प्रदेश और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रदेश) में अपने मन्त्रिमण्डल बनाये। संविधान पर सद्भावना पूर्वक कार्य होने लगा। गवर्नर मन्त्रियों को नियुक्त अथवा पदच्युत बहुमत दल के नेता की इच्छानुसार करता था। प्रधान मंत्री का पद प्रारम्भ हुआ। मन्त्री लोग सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना से कार्य करते थे। जब तक विधान मंडल में बहुमत का विश्वास प्राप्त रहे, मंत्री लोग सत्तारूढ़ रहते थे। विभागों का वितरण प्रधान मंत्री स्वयं करता था। गवर्नर मन्त्री परिषद की बैठकों का सभापतित्व करता था। मन्त्रिमण्डल की अनौपचारिक बैठकें हुआ करती थीं, जिनका सभापति प्रधान मन्त्री होता था और इन्हीं बैठकों में नीति के मामलों की चर्चा होती थी। सभा सचिव की नियुक्ति की परम्परा प्रारम्भ हुई। सभा सचिव मन्त्रियों के सहायक होते थे। ये सत्ता-रूढ़ दल के सदस्य होते थे और जब मन्त्रालय में परिवर्तन होता था, तभी वे अपने पद से हट जाते थे। गवर्नर हर दृष्टि से केवल संवैधानिक प्रमुख रह गया। गवर्नर ने वैधानिक वीटो तथा रक्षि की बहानों के अधिकारों का प्रयोग कभी नहीं किया। प्रांतों में कार्यकारिणी की शक्ति का प्रयोग मंत्री पूरी तरह करते थे। मन्त्रिमण्डल ने अनेक प्रकार के सुधार जारी किए। परन्तु वह कोई क्रान्तिकारी पग नहीं उठा सकते थे क्योंकि गवर्नर का डंडा सिर पर रहता था और उनको वित्त पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं था फिर भी इतना कहना पड़ेगा कि संविधान का प्रान्तीय भाग सफल रहा। सितम्बर, १९३९ में युद्ध प्रारम्भ होने के पश्चात् सुधार कार्य

को बहुत धक्का लगा। भारत के लोगों की अनुमति लिए बिना भारत की ओर से युद्ध की घोषणा तथा अधिक केन्द्रीय हस्तक्षेप से देश में क्षोभ फैल गया। ८ प्रमुख प्रान्तों में कांग्रेस ने त्याग पत्र दे दिए। धारा ९३ लागू कर गवर्नरों ने शासन व्यवस्था अपने हाथों में ले ली। गवर्नर अपने विवेक से प्रान्तों का शासन चलाने लगे। उत्तरदायी मन्त्रियों की जगह पर गवर्नरों ने अपनी इच्छानुसार भारतीय असैनिक सेवा के कुछ वरिष्ट पदाधिकारियों को नियुक्त कर लिया, जिन्हें परामर्श दाता कहा जाता था और उनको सरकार के कुछ विभागों का काम सौंप दिया गया। विधान मण्डल तोड़ दिये गये और गवर्नरों ने विधान बनाने, टैक्स लगाने, खर्च की आज्ञा देने आदि विषयों के बारे में गवर्नर जनरल के नियन्त्रण के अधीन, पूर्ण अधिकार, अपने हाथों में ले लिए तथा उनका प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। लोकप्रिय शासन का नाम निशान नहीं रहा और नौकरशाही का शासन स्थापित हो गया। यह गवर्नरी शासन १९४२ के संशोधन से निरन्तर हो गया क्योंकि उसके अनुसार युद्ध की समाप्ति के एक वर्ष पश्चात् तक जारी रहने की आज्ञा देदी गई। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल द्वारा त्याग पत्र दिये जाने के बाद ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग को गाठना शुरू किया और आसाम, सीम-प्रांत तथा उड़ीसा में लीग के मंत्रिमण्डल बनाये। गवर्नरों तथा अभी तक कार्य कर रहे मंत्रिमण्डल के सम्बन्ध बिगड़ गये। विशेषाधिकार का प्रयोग बढ गया और मन्त्रिमण्डल के दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप होने लगा। हस्तक्षेप इतना बढ गया था कि बंगाल के डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी जैसे स्वाभिमानी मन्त्रियों को मंत्रिमण्डल छोड़ देना पड़ा और उन्होंने बाहर निकलकर प्रांतीय स्वशासन की पोल खोली। सिंध के प्रधान मन्त्री अल्लाबख्श को उनके पद से हटा दिया गया क्योंकि उसने सरकार की दमनकारी नीति के विरोध में 'खान बहादुर' की पदवी अपने नाम से हटा दी थी। इसी प्रकार बंगाल के मुख्य मन्त्री मि० फजलुलहक को बुलाकर उससे जबरदस्ती त्याग पत्र पर हस्ताक्षर करवाये। प्रांतों में अल्पतन्त्र स्थापित हो गया एवं गवर्नरों ने विशेष उत्तरदायित्वों को काम में

लेना प्रारम्भ कर दिया। केन्द्र भारत कालीन उपबन्धों के बहाने प्रांतीय शासन व्यवस्था मे हस्तक्षेप करने लगे।

१६३५ के अधिनियम से केन्द्रीय सरकार के स्वरूप पर कोई अन्तर नहीं पड़ा क्योंकि इन उपबन्धों को केन्द्रीय सरकार पर लागू नहीं किया गया। केन्द्र में थोड़े बहुत परिवर्तन, सिर्फ भारतीयों के आंसू पोछने के लिए ही किये गये थे। भारतीयों के हाथों में वास्तव मे कोई भी अधिकार नही दिये गये। सरकार का स्वरूप द्वैध शासन का सा था। देशी राज्यो के संबंध का विभाग गवर्नर जनरल के हाथों मे था और वह ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों की हैसियत से यह कार्य करता था। रक्षा तथा वैदेशिक कार्य के विभाग गवर्नर जनरल के हाथों में थे। विनिमय तथा मुद्रा विभाग का प्रबन्ध रिजर्वबैंक करता था और वह राजनैतिक नियंत्रण से मुक्त था। भारतीय रेलवे का कार्य चलाने के लिए एक संघीय रेलवे बोर्ड था। इस प्रकार भारत के ८०% व्यय वाले विभागों का कार्य मंत्रिमंडल के हाथ मे नही था। पर मंत्रियों पर लगाये गये प्रतिबन्ध तो और भी ज्यादा थे अर्थात् भारतीय व्यापार, उद्योग, वाणिज्य में ब्रिटिश सरकार का कितना अंश हो, इसका निश्चय भारतीय मंत्रियों के अधिकार मे बाहर की बात थी। भारत को सुरक्षा के लिए गवर्नरी जनरल उत्तरदायी था संघीय मंत्रिमण्डल के हाथ मे थोड़े से अधिकार थे।

महायुद्ध से भारत सरकार के कार्य मे कोई परिवर्तन नही हुआ। ऐक्ट के शुरू होने के समय पर भारत सरकार केवल चार प्रकार के स्थानीय, संघीय, सहकारी तथा परामर्शदात्री कार्य करती थी। जो क्षेत्र केन्द्रीय सरकार के प्रत्यक्ष अधीन थे, उनमें प्रांतीय शासन को सौंपे गये स्थानीय सरकार के सभी कार्य उसके एजेन्ट करते थे। युद्ध, वैदेशिक कार्य, राजनैतिक कार्य, वित्त और सचार विभागो का कार्य मनमाने ढङ्ग पर एकतंत्र प्रणाली से होता था। १६४१ में गवर्नर जनरल की कौंसिल मे ५ भारतीय पहली बार सम्मिलित किये गये। इन सदस्यों को वर्तमान विभागों के टुकड़े करके दे दिये गए तथा प्रमुख विभाग अंग्रेजों सदस्यों के हाथ मे रहे।

क्रिप्स प्रायोग—दिसम्बर, १९४१ को जापान युद्ध मे शामिल हो गया। जापानी सेनायें दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों को रौंदती हुई भारतीय दरवाजे पर आ पहुँची। ब्रिटिश सरकार बहुत भयभीत हो गई और उसे भारतीयो के पूर्ण सहयोग की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव हुई। सर स्टेफर्ड को कुछ प्रस्ताव देकर भारत भेजा गया। उस प्रस्ताव के दो भाग थे। एक भाग में भारत की स्वतत्रता का दीर्घकालीन प्रश्न था और दूसरे केन्द्र मे तुरन्त एक अन्तरिम सरकार स्थापित करने का प्रश्न था। दीर्घकालीन प्रस्तावों का मतलब साफ नही था। उन प्रस्तावा पर बातचीत सफल न हो पाई। काग्रेस ने माग की कि गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी-परिषद मे सभी सदस्य भारतीय हो। पर ब्रिटिश शासन रक्षा विभाग को भारतीय के हाथ मे सौपने के लिए तैयार नही था। १९४२ गाधीजी के नेतृत्व में 'अंग्रेजो भारत छोडो' आदोलन का प्रस्ताव पास हुआ। समस्त भारत में आंदोलन व्याप्त हो गया। १९४५ में वेवल ने अपनी योजना रखी।

वेवल योजना तथा शिमला सम्मेलन—लार्ड वेवल ने भारत में राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए प्रयत्न किया। शिमला मे भारत के सभी राजनैतिक दलो का सम्मेलन बुलाया। एक महीने तक बात चलती रही। वेवल योजना का मुख्य उद्देश्य यही था कि कार्यकारिणी परिषद में सभी भारतीय सदस्यो को रखा जाय अर्थात् कार्यकारिणी का भारतीयकरण कर दिया जाय। यह सम्मेलन असफल रहा क्योकि मि० जिन्ना कार्यकारिणी में किसी भी राष्ट्रीय मुसलमान की नियुक्ति के लिए राजी नही हुए। काग्रेस एक राष्ट्रीय दल होने के कारण अपने सदस्यो में एक राष्ट्रीय मुसलमान रखना चाहती थी और मि० जिन्ना चाहते थे कि सभी मुसलमान सदस्य लीगी हों।

केबीनेट प्रायोग—१४ अगस्त १९४५ को जापान के साथ युद्ध समाप्त हुआ। आम चुनावों के फलस्वरूप ब्रिटेन मे मजदूर दल की सरकार बनी। मजदूर सरकार ने तीन सदस्यों का केबीनेट आयोग भारत भेजा। यह आयोग

२४ मार्च को दिल्ली पहुँचा। मापोग तथा लार्ड वैवल ने भारतीय नेताओं के साथ वार्तालाप प्रारम्भ किया। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग आधारभूत संवैधानिक विषयों पर समझौता न कर पाये। शिष्टमण्डल ने समस्या हल करने के लिए १६ मई, १६४६ के भारत को संघ बनाने का प्रस्ताव रखा। इस संघ में प्रांतों के साथ देशी राज्यों को भी सम्मिलित करने की योजना थी। संघ को यातायात, विदेशी विभाग तथा सुरक्षा का कार्य सौंपने की व्यवस्था थी। प्रांतों को समूह बनाने की स्वतन्त्रता भी दी गई। पहले कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों उसको स्वीकार करने को तैयार थे। परन्तु बाद में मुस्लिम लीग ने इसका बहिष्कार किया।

केन्द्रीय सरकार के स्वरूप में पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन २ सितम्बर १६४६ में हुआ, जबकि मंत्रीमण्डल योजना में किये गये सुधारों के अनुसार अन्तरिम सरकार बनाई गई। गवर्नर जनरल की कौंसिल का संगठन पहली बार इस प्रकार किया गया कि उसमें सभी भारतीय सदस्य रखे गये। इस कौंसिल के मुख्य कार्यकर्ता पं० जवाहरलाल नेहरू थे तथा वह गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी कौंसिल के (उपप्रधान उपसभापति) थे। अन्तरिम सरकार में पहले १५ सदस्य थे—पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री राजगोपालाचारी, श्री शरद बोस, श्री जगजीवन राम, सरदार बलदेवसिंह, डा० जान मथाई, डा० शफात अहमद और श्री आसफअली। मुस्लिम लीग के सदस्यों के लिए ५ स्थान रिक्त रखे। जवाहरलाल ने अन्तरिम सरकार बनाने के पूर्व ही वायसराय से वचन ले लिया था कि उनकी सरकार कैबिनेट प्रणाली के अनुसार कार्य करेगी और उनके कामों में वायसराय कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। यह सरकार कानूनी स्थिति के अनुसार तो कार्यकारिणी सभा ही थी पर वास्तविक रूप से यह कैबीनेट थी और उसने संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ किया। २५ अक्टूबर को लीग के मि० लियाकतअली, मि० गजनफरअली, मि० चुन्दिगर आदि ५ सदस्य अंतरिम सरकार में शामिल हुए। इन्होंने (लीगी सदस्यों ने) कैबीनेट प्रणाली

के अनुसार कार्य करने से इन्कार कर दिया एवं सहयोग की भावना भी नही रखी। जगह जगह साम्प्रदायिक दगे हुए और अन्तरिम सरकार उनको रोकने में असफल रही। १९४७ के मार्च में माउन्टबैटन भारत का वायसराय बनकर भारत आया। उसने भारत की राजनीती का अध्ययन किया और कांग्रेस तथा लीग के नेताओ से सम्पर्क स्थापित किया। उसने अपनी जना के अनुसार भारत को दो भागो मे विभक्त करने की व्यवस्था की। नरेशो को अंग्रेजी सधिया से विमुक्त कर स्वतन्त्रता प्रदान करने की व्यवस्था की, कि वह इच्छानुसार किसी भी विभाग से अपना सबध स्थापित करें। देश के विभाजन का लीग तथा कांग्रेस ने स्वीकार किया अत १९४७ ई० मे ब्रिटिश ससद ने भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट पास किया। भारत दो उपनिवेशो मे विभक्त हो गया भारत और पाकिस्तान। दोनो उपनिवेशो को अपना सविधान बनाने का अधिकार मिला। १५अगस्त को देश स्वतन्त्र हुआ। अन्तरिम सरकार की जगह मन्त्रिमडल का निर्माण हुआ।

सघीय न्यायालय— यद्यपि अधिनियम के अनुसार सघ की स्थापना नही हुई, फिर भी सघीय न्यायालय स्थापित किया गया। सघीय न्यायालय मे एक प्रधान न्यायपति तथा सम्राट द्वारा नियुक्त अन्य न्यायधीश होते थे। प्रधान न्यायपति को ७००० रु और अन्य न्यायाधीशो का ५५०० रु मासिक वेतन मिलता था। न्यायाधीश ६५ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रहता था। किन्तु कुछ स्थितियो मे पदच्युत किया जा सकता था जैसे (१) गवर्नर जनरल को अपना त्याग पत्र दे देने के कारण, (२) वह दुर्व्यवहार या शारीरिक अथवा मानसिक अयोग्यता के कारण सम्राट द्वारा अपने पद से हटाया जा सकता था, यदि प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति यह रिपोर्ट कर दे कि अमुक न्यायाधीश को इन परिस्थितियो मे पदच्युत कर देना चाहिए। केवल वही व्यक्ति सघीय न्यायालय का न्यायधीश पद की नियुक्ति के योग्य होता था जो (१) ब्रिटिश भारत या किसी सघबद्ध राज्य के उच्च न्यायालय से कम से कम ५ वर्ष न्यायाधीश रह चुका हो अथवा (२) वह इग्लैण्ड या उत्तरी आयरलैण्ड का कम से

कम निरन्तर दस वर्ष तक बैरिस्टर रह चुका हू अथवा स्काटलैण्ड में अधिवक्ता सभा (Faculty of Advocates) का कम से कम दस वर्ष वकील रह चुका हो अथवा (३) ब्रिटिश भारत या संघबद्ध राज्य के उच्च न्यायालयों या दो या दो से अधिक न्यायालयों का कम से कम दस वर्ष वकील रह चुका हो। न्यायालय के क्षेत्र में प्रारम्भिक अपीलिए तथा परामर्श सम्बन्धी विषय होने थे।

प्रश्नोत्तरी

१ गृह सरकार से क्या समझते हैं ? भारत सचिव के कार्यों का वर्णन कीजिए।

२ गवर्नर-जनरल की भारत के केन्द्रीय प्रशासन में क्या स्थिति थी। उसके कर्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

३ अन्तरिम सरकार पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

४ प्रान्तों में स्वशासी सरकार के कार्यों का वर्णन कीजिए। द्वितीय महायुद्ध के समय प्रान्तों का शासन किस प्रकार होता था ?

५ भारत में ब्रिटिश शासन प्रबन्ध के ढांचे का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

६ संघीय न्यायालय पर टिप्पणी लिखिए।

७ भारत की सांस्कृतिक व भौतिक प्रगति में ब्रिटिश प्रशासन की देन का मूल्यांकन कीजिए। रा० वि० १९६०